से. वेनेत्स्की

कहानियां धातुओं की

से. वेनेत्स्की

कहानियां धातुओं की

मीर प्रकाशन, मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.

अनुवादक: रमीन्द्र पाल सिंह

S.I. Venetsky
TALES
ABOUT METALS

На языке хинди

सोवियत संघ में मुद्रित

© Издательство „Металлургия", 1986
© हिन्दी अनुवाद, मीर प्रकाशन, 1988

ISBN 5-03-000302-9

विषय-सूची

प्रस्तावना . 6
सबसे हल्की धातु . . 7
अंतरिक्ष-युग की धातु 17
भ्रांति का मुकाबला करने वाला योद्धा . . 27
मृदा से "रजत" . . . 36
पृथ्वी का बेटा 49
विटामिन V . 60
रहस्यमय "X" . . 69
लोहे का पक्का दोस्त . '80
महान कर्मयोगी 91
शांति की तोपों का आवेश 106
"ताम्र राक्षस" . . . 117
बहुत प्राचीन और यशस्वी 128
"चादर", जिससे स्टील ढका जाता है . 143
यूरेनियम शलाकों की "पोशाक" . 155
फ्लैट नंबर इकतालिस . 164
लोहे का दोस्त . 173
अभिजात वर्ग का 183
सख्त भी है और नर्म भी . . . 197
जन्म के समय बहुत यंत्रणा हुई . 207
प्रकाश देनेवाला 214
तीन तालों के अन्दर बंद . . . 224
धातुओं का राजा – राजाओं की धातु . 235
रजत जल 252
धातु, जिसने रोम को तबाह कर दिया . 263
बीसवीं शताब्दी का इंधन . . 274

प्रस्तावना

शताब्दियों से धातुएं मनुष्य की सेवा करती आ रही हैं। इनकी सहायता से वह विपत्तियों का सामना करता आ रहा है। धातुओं के बल पर वह प्रकृति के रहस्य समझ रहा है तथा बड़े काम की चीजें बना रहा है।

धातुओं की दुनिया बड़ी विस्तृत तथा रंग-बिरंगी है। कुछ धातुओं – ताम्र, लोहा, लेड, पारद, स्वर्ण, रजत, टिन के साथ मनुष्य हजारों सालों से परिचित है परंतु कुछ धातुएं ऐसी हैं जिनसे मनुष्य केवल पिछले दशकों में परिचित हुआ है।

धातुओं के गुण विस्तृत तथा विविध हैं। उदाहरण के लिये, पारद शीत से बिल्कुल नहीं घबराता है और टंग्स्टन आग की तीव्र ज्वाला से नहीं डरता है। लीथियम एक बढ़िया तैराक हो सकता हैं क्योंकि वह पानी से दुगुना हलका होता है। रजत बड़ा अच्छा सुचालक है जबकि टाइटेनियम को इस काम से नफरत है। परंतु धातुओं के गुणों में कितनी भी विविधता क्यों न हो, वे एक परिवार की सदस्य फिर भी बनी रहती हैं। पुस्तक में कुछ महत्त्वपूर्ण धातुओं के इतिहास तथा उनके भविष्य पर प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक विज्ञान के जगत में प्रथम कदम रखने वाले स्कूली छात्रों के लिये दिलचस्प होगी। आशा है कि वे लोग भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेंगे, जो अपना सामान्य ज्ञान बढ़ाना चाहते हैं।

सबसे हलकी धातु

हमेशा जवान – पिछली शताब्दी की सैर – कार्ल्सबाड का आरोग्यकारी जल – कौनसी चीज हलकी है? – वैसलिन बाथ – विमान चालकों को रक्षा-जाकेट दिये गये – गाऊट का इलाज – आवश्यकता आविष्कार की जननी है – जल में न डूबनेवाली धातु – न सर्दी का डर और न ही गर्मी का – ऐन्टार्कटिक महाद्वीप में काफी दूर तक – शाश्वत स्नेहक – क्या काँच जायकेदार होता है? – नीली ज्वाला – "प्रथम वायलिन" – बमबारी के परिणाम – लीथियम न्यूट्रॉन निगल जाता है – बीस द्नीपर जलबिजलीघर की कुल क्षमता के बराबर – वही पुराना ईंधन-मिट्टी का तेल – लीथियम लीथियम का मुकाबला करता है – नाभिकीय गोंद – दक्षिणी डकोटा में पाया गया एक क्रिस्टल – "खुल जा सिम-सिम!" – जूठा नाश्ता

मेंडेलीफ की आवर्त सारणी में धातुओं का ग्रुप लीथियम से शुरू होता है। यह ऐसी पहली धातु थी जिसकी खोज की 150-वीं जयंती 1967 में मनायी गयी। इतने वर्ष बीत जाने पर भी इस धातु का महत्त्व जरा भी कम नहीं हुआ है। आधुनिक तकनीक में इसकी उतनी ही कद्र है जितनी पिछली शताब्दी में थी। आधुनिक प्रविधि में यह धातु बहुत ज्यादा उपयोगी सिद्ध हो रही है। फिर भी आज के वैज्ञानिक विश्वास ही नहीं करते कि उन्हें इस धातु की सारी खूबियां मालूम हैं। उनके विचारानुसार भविष्य में इस धातु का महत्त्व और भी ज्यादा बढ़ जायेगा। लेकिन इन बातों की चर्चा करने से पहले, आइये, हम पिछली शताब्दी में लौटते हैं और स्वीडिश रसायनज्ञ आर्फवेडसन की प्रयोगशाला देखने चलते हैं। यह 1817 की बात है।

...प्रयोगशाला में शांति छायी हुई है। कई दिनों से वैज्ञानिक स्टाकहोल्म के पास ऊटो की खानों में पाये गये खनिज पेटेलाइट का विश्लेषण करने में व्यस्त हैं। वह बार-बार अपने विश्लेषण के परिणामों की जांच करते हैं परंतु हर बार सब अवयवों की प्रतिशत संख्या का योग 96 आता है। बाकी 4% का क्या बना? क्या ऐसा संभव है...? निश्चित रूप से खनिज में कोई अज्ञात तत्त्व उपस्थित है। आर्फवेडसन बार-बार कोशिश करते हैं। अंत में वह मान जाते हैं कि उन्होंने एक नयी क्षारीय धातु खोज निकाली है। चूंकि यह धातु अपने "नजदीकी संबंधियों" पोटेशियम तथा सोडियम की तरह कार्बनिक उत्पादों में नहीं बल्कि खनिज में पायी गयी, इसलिये वैज्ञानिक ने इस धातु का नाम लीथियम रखने का फैसला किया (यूनानी शब्द "litheos" से, जिसका अर्थ "पत्थर" है)।

शीघ्र ही आर्फवेडसन ने यह धातु अन्य खनिजों में भी ढूंढ़ निकाली। एक अन्य स्वीडिश रसायनज्ञ बर्जेलियस ने कार्ल्सबाड तथा मैरियेनबाड* के जल में इस धातु की उपस्थिति सिद्ध कर दिखाई। हमारे जमाने में फ्रांस की विची नामक जगह इसी कारण से ही तो प्रसिद्ध है कि वहां के खनिज जल में लीथियम लवण विद्यमान हैं जिनकी वजह से इस जल में अतिलाभदायक स्नान-चिकित्सा गुण हैं।

---

* चेकोस्लोवाकिया का एक स्वास्थ्यप्रद स्थान। इसका आधुनिक नाम मारिआन्स्के-लाज्ने है।

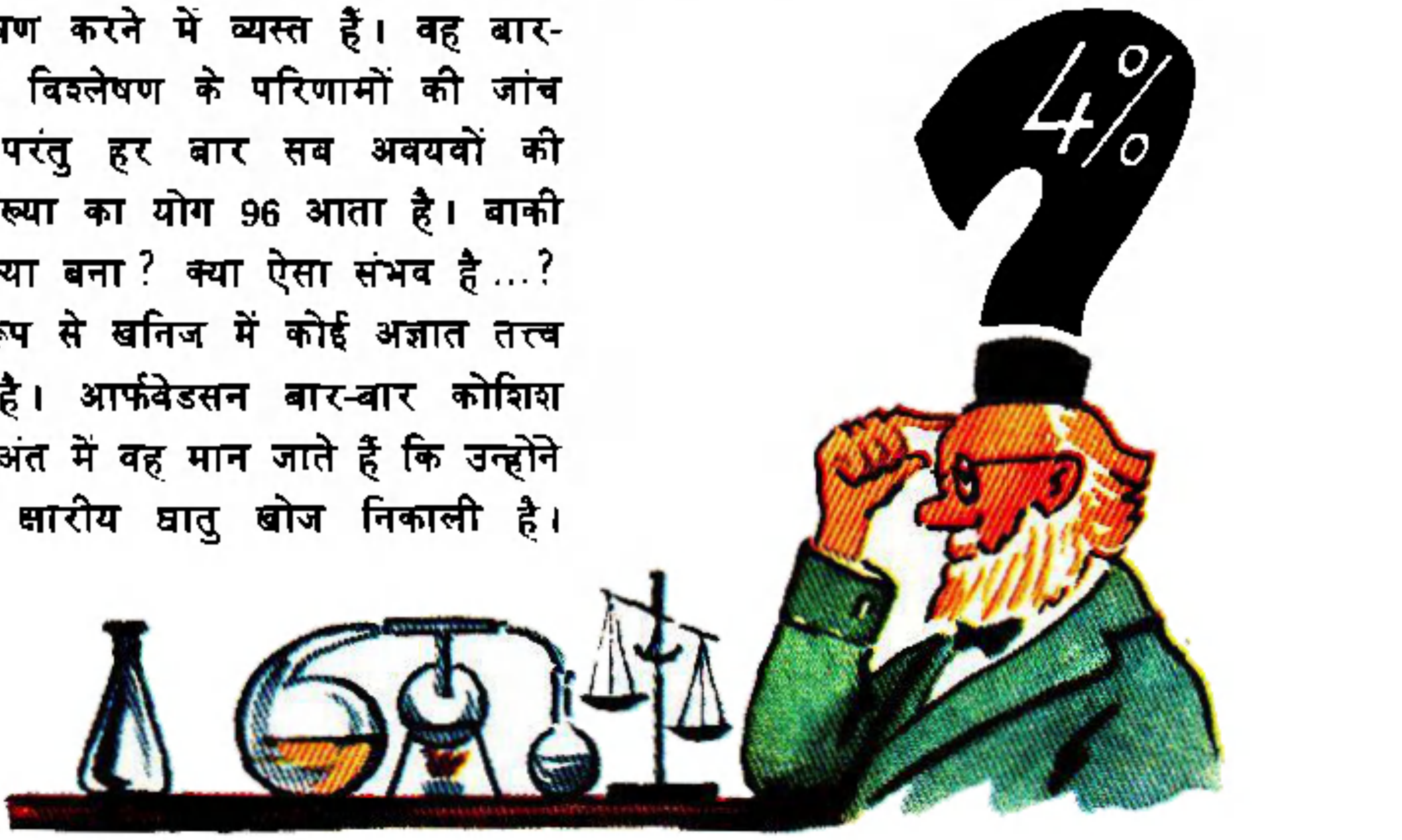

1818 में अंग्रेज वैज्ञानिक डैवी ने लीथियम के हाइड्रोक्साइड से पहली बार इसके शुद्ध कण निकाले और 1855 में दो और वैज्ञानिकों ने स्वतंत्र रूप से अपने-अपने देशों में गलित लीथियम क्लोराइड के विद्युतविश्लेषण से शुद्ध लीथियम प्राप्त कर दिखाया। ये थे – जर्मन रसायनज्ञ बुन्सत तथा अंग्रेज भौतिकविद् मैथसन। देखने में यह चांदी जैसे सफेद रंग की कोमल धातु थी जिसका वजन जल के वजन का करीब आधा था। धातुओं में हलकेपन में लीथियम का कोई भी दूसरी धातु मुकाबला नहीं कर सकती – ऐलुमिनियम इससे 5 गुना भारी है, लौह 15 गुना और ऑस्मियम 40 गुना!

सामान्य ताप पर ही लीथियम वायु में उपस्थित नाइट्रोजन तथा आक्सीजन के साथ तीव्र प्रतिक्रिया कर जाता है। लीथियम के एक छोटे से टुकड़े को कांच के ऐसे बर्त्तन में रख कर देखें जिसमें शीशे का प्लग खूब कस कर लगा हुआ हो। आप देखेंगे कि लीथियम सारी वायु का अवचूषण कर लेगा जिसके फलस्वरूप बर्तन निर्वातयुक्त हो जायेगा तथा वायुमंडलीय दाब प्लग को इतना ज्यादा कस देगा कि आप उसे बर्तन से अलग करने में शायद ही समर्थ हो सकेंगे। यही कारण है कि लीथियम का संचयन एक कठिन समस्या है। सोडियम को तो आसानी से मिट्टी के तेल या पैट्रोल में सुरक्षित रखा जा सकता है पर लीथियम के साथ ऐसा तरीका नहीं अपनाया जा सकता: वह एकदम सतह पर बैठ जायेगा और प्रज्वलित होने लगेगा। लीथियम को सुरक्षित रखने के लिये इसकी बत्तियां बना कर उन्हें वैसलिन या पैराफिन में रख देते हैं। इन चीजों का लेप संरक्षी आवरण की भूमिका निभाता है।

हाइड्रोजन के साथ लीथियम और भी ज्यादा तीव्रता से प्रतिक्रिया कर जाता है। धातु की थोड़ी सी मात्रा भी इस गैस के भारी आयतनों को आकर्षित करने की क्षमता रखती है: एक किलोग्राम लीथियम हाइड्राइट में 2800 लीटर हाइड्रोजन होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमरीकी विमानचालकों को लीथियम हाइड्राइट की रक्षा-जाकेट (पेलेट) दी गयीं जिनका प्रयोग आपत्काल में किया जा सकता था। समुद्र के ऊपर उड़ते समय अगर जहाज कैश होकर पानी में गिर जाये तो जैसे ही पेलेट पानी के संपर्क में आयेगा, जाकेट तुरंत घुल जायेगी और हाइड्रोजन निकलना शुरू हो जायेगा। यह हाइड्रोजन बचाव के साधनों को फुलाने लगेगा, जैसे लाइफ-बोट, लाइफ-जाकेट, ऐन्टेना वाला बैलून आदि।

लीथियम यौगिकों में अपार जल-अवचूषण की क्षमता होने के कारण इनका विस्तृत उपयोग पनडुब्बियों, हवाई जहाजों के रेस्पिरेटरों तथा कंडिशनरों में हवा की सफाई करने के लिये किया जाता है।

लीथियम के औद्योगिक उपयोग का प्रथम प्रयास इस शताब्दी के आरंभ में किया गया। इससे पहले लगभग सौ साल तक इसका प्रयोग मुख्यत: गाऊट के इलाज के लिये किया जाता था।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी को औद्योगिक प्रयोग के लिये टिन की बहुत सख्त जरूरत पड़ रही थी। देश में ऐसा कच्चा माल भी नहीं था जिससे टिन प्राप्त किया जा सके। अत: वैज्ञानिकों को इसके बदले में जल्दी से दूसरी धातु की खोज करनी थी। लीथियम ने उनकी समस्या पूरी तरह से हल कर दी। एक लेड-लीथियम ऐलॉय

बेहतरीन घर्षणरोधी धातु सिद्ध हुआ, इसका नाम वाहन धातु (Bahn-metal) था। तब से तकनीकी कार्यों में विभिन्न लीथियम ऐलॉय लगातार प्रयुक्त किये जा रहे हैं, जैसे, ऐलुमिनियम, बेरिलियम, ताम्र, जिंक तथा रजत ऐलॉय। एक अन्य हलकी धातु मैग्नीशियम के साथ लीथियम के ऐलॉय से भविष्य में काफी आशा की जा रही है। मैग्नीशियम में बहुत सारी उपयोगी विशेषताएं तो हैं। निर्माण-कार्यों में इसके प्रयोग की बात उल्लेखनीय है। वे बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। एक लीथियम-मैग्नीशियम ऐलॉय, जिसमें लीथियम की मात्रा 50% से अधिक है, जल से हलका होता है। इस प्रकार के संयोजन से कई ऐलॉय बनाये जा चुके हैं, परंतु दुर्भाग्यवश वे सभी अस्थायी सिद्ध हुए हैं; वायु में तुरंत उपचयित हो जाते हैं। धातु-विशेषज्ञ ऐसी टैकनालाजी विकसित करने का प्रयास करते रहे जिसकी बदौलत लीथियम के ऐलॉय दीर्घकालीन रहें। सोवियत संघ की विज्ञान-अकादमी के अन्तर्गत बाइकोव नामक अनुसंधान-संस्थान के वैज्ञानिक इस समस्या के हल में सफल हुए हैं। उन्होंने निर्वातरहित पिघलाऊ वैद्युत भट्टी में निष्क्रिय गैस आर्गन की मदद से लीथियम और मैग्नीशियम का ऐलॉय प्राप्त किया जो वायु में धुंधला नहीं होता और न ही जल में डूबता है।

उच्च प्रतिक्रिया-क्षमता, निम्न गलनांक (केवल 180.5°C) तथा अपने यौगिकों के निम्न घनत्व के कारण लौह व अलौह धातुकर्म में लीथियम का प्रयोग एक उत्तम विगैसर, विऑक्सीकारक के रूप में किया जाता है। वह धातु में पिघली गैसों, जैसे आक्सीजन और नाइट्रोजन, को निकाल देता है। लीथियम की सहायता से कुछ ऐलॉयों की संरचना अल्पकणीय बन जाती है जिससे उनके यान्त्रिक गुण बेहतर हो जाते हैं। ऐलुमिनियम के उत्पादन में लीथियम एक प्रक्रमी उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। विद्युतविश्लेषण में लीथियम यौगिक मिलाने से ऐलुमिनियम विद्युत-अपघटनी सेल का संवेग प्रवाह बढ़ जाता है तथा अवगाह ताप और विद्युत की खपत कम करने में भी सफलता प्राप्त होती है।

पहले जो क्षारीय बैटरियां बनायी जाती थीं उनके विद्युतविश्लेषक में केवल सोडियम हाइड्रोक्साइड विलयन प्रयुक्त किया जाता था। जैसे ही इसमें लीथियम हाइड्रोक्साइड की थोड़ी सी मात्रा (कुछ ग्राम) मिलायी जाने लगी, इन बैटरियों की कार्य-अवधि तीन गुना बढ़ गयी। इसके साथ-साथ बैटरियों की तापीय परास-क्षमता भी काफी बढ़ गयी: 40°C ताप पर भी बैटरी डिसचार्ज नहीं होती और शून्य से 20°C नीचे तापमान होने पर भी सही सलामत रहती है। एक लीथि-यमरहित अपघटित्र में इतने ज्यादा या कम ताप को सहने की क्षमता नहीं होती। हाल ही में जापान में हाथ की घड़ियों के लिये ऐसे सेल बनाये गये हैं। इन सेलों के ऐनोडों में लीथियम प्रयुक्त किया गया है जिसका वजन केवल 34 माइक्रोन है। यह ऐनोड मनुष्य के बाल से भी बारीक है। एक सेल से घड़ी 200-300 घंटे चल सकती है। अमरीकी फर्में भी लीथियम से काफी आशा लगायी बैठी हैं।

कुछ कार्बनिक लीथियम यौगिकों (स्टिऐरेट, पामिऐट तथा अन्य) के भौतिक गुण विस्तृत ताप-परिसरण में वैसे के वैसे ही रहते हैं जिसकी वजह से इनका प्रयोग सैनिक मशीनों

के स्नेहक के रूप में किया जाता है। यह लीथियमयुक्त स्नेहक ही तो है जिसकी वजह से ऐन्टार्कटिक महाद्वीप में भारी जीपें ऐसे-ऐसे इलाकों में पहुँच जाती हैं जहां तापमान $-80°C$ तक गिर जाता है। लीथियम-स्नेहक कारों में भी बहुत विश्वसनीय सिद्ध हुआ है। सोवियत कार "लादा" के मालिक इसे "शाश्वत स्नेहक" कहते हैं। इस कार के कुछ घर्षणरत पुर्जों को सिर्फ एक बार इस स्नेहक की जरूरत पड़ती है।

हालिवुड की हिट फिल्मों पर बनी चेकोस्लोवाकियन पैरोडी का एक मुख्य पात्र फिल्म में "शैतानी काकटेल" लेता है। वह कई सारे गिलास खा जाता है। भारतीय योगी भी तो अक्सर ऐसा करिश्मा दिखाते हैं। वे पहले गिलास चबाते हैं और फिर उसकी किरचें इतने स्वाद के साथ निगलते हैं जैसे कि इससे ज्यादा स्वादिष्ट कोई और चीज है ही नहीं। अगर हम पाठकों से यह पूछें: "क्या आपने कभी काँच खाया है?" जवाब मिलेगा – "कैसा बेहूदा सवाल कर रहे हैं? निश्चित रूप से कभी नहीं खाया।" परंतु पाठक भ्रम में हैं। साधारण काँच जल में विलीन हो जाता है। यह बात जरूर है कि वह चीनी की तरह नहीं घुलता, पर घुलता जरूर है। सर्वाधिक सुग्राही वैश्लेषिक तुला यह बताती है कि गर्म चाय के हर गिलास के साथ हम $\frac{1}{1000}$ ग्राम काँच खा जाते हैं। लेकिन काँच बनाते समय अगर उसमें लैन्थेनम, जिर्कोनियम तथा लीथियम के लवण मिला दिये जायें तो उसकी विलेयता सौ गुना कम हो जाती है। इस तरह के काँच पर सल्फ्यूरिक अम्ल तक का कोई असर नहीं पड़ता।

काँच के उत्पादन में लीथियम की उपयोगिता केवल काँच की विलेयता कम करने तक ही सीमित नहीं रह गयी है। लीथियम से रूपांतरित काँच में महत्त्वपूर्ण आप्टिकल गुण होते हैं। इस काँच में उत्तम ताप-सह्यता उच्च विशिष्ट प्रतिरोधकता तथा निम्न परावैद्युत हानि जैसे बहुमूल्य गुण होते हैं। टेलीविजन ट्यूब के काँच में लीथियम विशेष रूप से मिलाया जाता है। अगर एक साधारण विन्डो ग्लास के ऊपर लीथियम लवणों का घोल पोत दिया जाये तो उस पर एक घनी संरक्षी परत जम जायेगी जो ग्लास की मजबूती दुगुनी कर देगी। उच्च तापमानों का भी अब इस ग्लास पर कोई असर नहीं पड़ेगा। लीथियम की बहुत थोड़ी मात्रा (0.5 - 1.5%) मिलाने से ही काँच की ढलाई का तापमान काफी कम किया जा सकता है।

प्राचीन काल से ओस की बूंद को पारदर्शकता का प्रतीक माना जाता है। परंतु आधुनिक टैकनालाजी में सिर्फ ओस की बूंद जैसे पारदर्शक काँच से काम नहीं चलाया जा सकता। आज ऐसी प्रकाशिकीय चीजों की जरूरत है जो प्रकाश की दृश्य किरणें ही नहीं बल्कि अदृश्य किरणें भी प्रेषित कर सकें, उदाहरण के लिये, पराबैंगनी किरणें।

साधारण टेलीस्कोपों से खगोलज्ञ दूरस्थ मंदाकिनी के विकिरण का अध्ययन नहीं कर सकते। सभी ज्ञात प्रकाशिकीय पदार्थों के मुकाबले में लीथियम फ्लोराइड में पराबैंगनी किरणों की पारदर्शकता अधिक होती है। लीथियम फ्लोराइड के मोनोक्रिस्टलों से बने लेंस खगोलज्ञों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। इनकी सहायता से वे ब्रह्मांड के रहस्यों का पता चला रहे हैं।

कुछ विशेष प्रकार के ग्लेज, इनैमल, पेंट, बढ़िया किस्म की चीनी-मिट्टी तथा फेएन्स के उत्पादन में लीथियम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। वस्त्र उद्योग में लीथियम के कुछ यौगिक कपड़ों के श्वेतन, रंगबंधन तथा रंजन में प्रयुक्त किये जाते हैं।

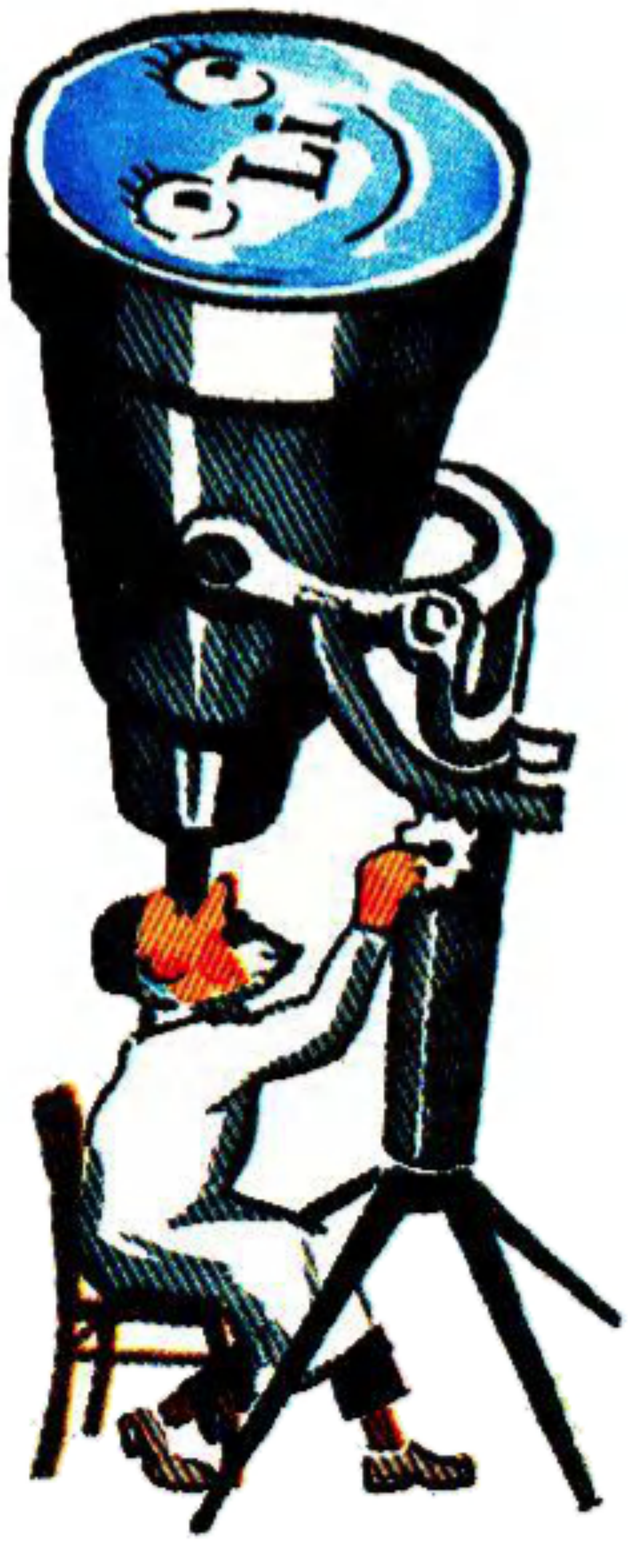

लीथियम लवणों की बदौलत आतिशबाजी की गोलियां तथा गोले अपने पीछे चमकीला हरे-नीले रंग का निशान छोड़ जाते हैं।

निम्न प्रयोग द्वारा लीथियम के पाइरोटैक-निकल गुणों का प्रदर्शन किया जा सकता है। चीनी की एक डली लें और उसे आग से जलाने की कोशिश करें। डली पिघलनी शुरू हो जायेगी पर जलेगी नहीं। लेकिन जलाने से पहले अगर डली पर तंबाकू की राख लगा दी जाये तो वह बड़ी सरलता से जलने लगेगी और जलते समय एक अतिसुंदर नीली ज्वाला निकलेगी। इसकी वजह यह है कि बहुत सारे पौधों की तरह तंबाकू में भी लीथियम की काफी मात्रा विद्यमान होती है। जिस समय तंबाकू की पत्तियां जलती हैं कुछ लीथियम यौगिक राख में रह जाते हैं जिनके कारण चीनी की डली में से नीली ज्वाला निकलती है।

अभी तक हमने जितनी भी बातें बतायी हैं वे लीथियम के गौण उपयोगों पर प्रकाश

डालती हैं। आइये, हम अब इसके असली गुणों व उपयोगों की चर्चा शुरू करते हैं। हमारा इशारा परमाणु ऊर्जिकी की ओर है जिसमें लीथियम निकट भविष्य में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहेगा। वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि न्यूट्रानों की सहायता से समस्थानिक लीथियम-6 के नाभिक बड़ी आसानी से नष्ट किये जा सकते हैं। लीथियम का नाभिक जैसे ही न्यूट्रॉन अवशोषित करता है वह अस्थायी प्रकृति का हो जाता है तथा दो नये परमाणुओं में विभाजित हो जाता है: हलकी निष्क्रिय गैस हीलियम तथा दुलर्भतम अतिभारी हाइड्रोजन, इसे ट्राइटियम कहते हैं। बहुत अधिक उच्च ताप होने पर ट्राइटियम परमाणु तथा हाइड्रोजन के एक अन्य भारी समस्थानिक-ड्यूटीरियम के परमाणुओं का संयोजन हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा की बृहत् मात्रा बनती है (तापनाभिकीय ऊर्जा)।

लीथियम-6 के समस्थानिक तथा ड्यूटीरियम के यौगिक पर जब न्यूट्रानों की वर्षा की जाती है तो तापनाभिकीय प्रतिक्रियाएं पूरे जोर पर होती हैं। इसका प्रयोग लीथियम रिऐक्टरों में नाभिकीय ईंधन के रूप में किया जाता है। यह यूरेनियम ईंधन से बेहतर रहता है: लीथियम सुगमता से प्राप्त हो जाता है, यूरेनियम से सस्ता पड़ता है तथा रेडियोऐक्टिव विघटन पदार्थ भी नहीं बनाता है। इसके अलावा इस प्रक्रिया का नियंत्रण भी सरल होता है।

लीथियम-6 में मंद गति वाले न्यूट्रानों को पकड़ने की क्षमता होने के कारण इसका प्रयोग यूरेनियम रिऐक्टरों में प्रतिक्रियाओं की तीव्रता के नियंत्रक के रूप में भी किया जाता है। इस गुण के कारण यह समस्थानिक विकिरण संरक्षी स्क्रीन तथा अतिदीर्घ अवधि वाली नाभिकीय बैटरियों में इस्तेमाल किया जाता है। आशा है कि निकट भविष्य में लीथियम-6 परमाणु उड्डयन-यंत्रों में मंद न्युट्रानों के अवशोषक की तरह प्रयुक्त होने लगेगा।

अन्य क्षारीय धातुओं की भांति लीथियम भी नाभिकीय संयंत्रों में ताप-वाहक के रूप में प्रयुक्त होता है। इस काम के लिये कम दुर्लभ समस्थानिक लीथियम-7 ठीक रहता है (प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले लीथियम में इसकी मात्रा 93 % होती है)। अपने हलके "भाई" की तरह लीथियम-7 ट्राइटियम के उत्पादन के लिये कच्चे माल का काम नहीं कर सकता, इसलिये तापनाभिकीय तकनीक के लिये इसका कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन यह तापवाहक की भूमिका बड़ी सुंदरता से निभाता है। इस कार्य में लीथियम-7 के निम्न गुण इसकी सहायता करते हैं: उच्च ताप-धारिता तथा ताप-चालकता, द्रवावस्था का बृहत् तापीय परास, नगण्य श्यानता तथा निम्न घनत्व।

पिछले कुछ समय से राकेट तकनीक में लीथियम का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी के गुरुत्वीय बल से मुक्त होकर अंतरिक्ष में पहुंचने के लिये ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। विश्व के प्रथम अंतरिक्ष यात्री यूरी गगारिन ने जिस अंतरिक्ष यान पर यात्रा की थी उसे अंतरिक्ष में ले जाने वाले राकेट में 6 इंजन लगे हुए थे जिनकी कुल क्षमता 2 करोड़ अश्व-शक्ति थी। दनीपर पनबिजलीघर जैसे 20 बिजलीघरों की शक्ति मिलाकर इसके बराबर होगी।

इस बात में कोई शक नहीं कि राकेट

के ईंधन का चुनाव एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। अभी तक सबसे उपयुक्त ईंधन मिट्टी का तेल साबित हुआ है (जी हां, हम उसी मिट्टी के तेल की बात कर रहे हैं जो जमाने से मनुष्य के काम आ रहा है)। इस ईंधन के लिये उपचायक की भूमिका द्रव ऑक्सीजन निभाता है। इसके दहन में इतनी ऊर्जा निकलती है जो नाइट्रोग्लिसरीन की ऐसी ही मात्रा के दहन से उत्सर्जित ऊर्जा से ढाई गुना अधिक होती है। नाइट्रोग्लिसरीन अतिशक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ माना जाता है।

धात्विक ईंधन का भविष्य काफी उज्जवल दिखाई दे रहा है। 50 से अधिक वर्ष पूर्व धातुओं को राकेटों के ईंधन के रूप में प्रयुक्त करने के सिद्धांत तथा तकनीक की स्थापना सर्वप्रथम दो अद्वितीय सोवियत वैज्ञानिकों ने की। वे थे—यू० कोन्द्रत्यूक तथा फे० त्सान्देर। इस काम के लिये सबसे अधिक उपयुक्त धातुओं में लीथियम का महत्त्वपूर्ण स्थान है (केवल बेरिलियम की ताप-वाहन क्षमता इससे अधिक है)। संयुक्त राज्य अमरीका में राकेटों के लिये ऐसे ठोस ईंधन के पेटेन्ट प्रकाशित हो चुके हैं जिसमें लीथियम की मात्रा 51 से 68 % तक रहती है।

मजे की बात यह है कि राकेट-इंजनों के काम के दौरान लीथियम लीथियम का ही मुकाबला करता है। एक तरफ तो ईंधन का घटक होने के कारण लीथियम विशाल तापमान पैदा कर देता है। दूसरी ओर मृत्तिका-पदार्थों की उच्च तापरोधकता के कारण राकेट के तुंडों तथा दहन-कक्ष पर लीथियम का लेप चढ़ा दिया जाता है जिससे वे लीथियम ईंधन के नष्टकारी प्रभाव का मुकाबला कर सकते हैं। इस प्रकार का एक लीथियम मृत्तिका-पदार्थ "स्पूपेलाइट" है।

आज वह जमाना आ गया है जब तकनीक में इस्पात, पीतल तथा कांच की जगह विभिन्न संश्लिष्ट बहुलक पदार्थ प्रयुक्त किये जा रहे हैं। लेकिन जब भी इंजीनियर इस प्रकार के बहुलकों को आपस में मिलाना चाहते हैं या किसी अन्य पदार्थ के साथ उनका संयोजन कराना चाहते हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिये, फ्लुओरिनयुक्त बहुलक

टेफ्लान एक उत्तम प्रतिसंक्षारक है परंतु कुछ समय पहले तक इसको किसी भी काम में इस्तेमाल नहीं किया जाता था क्योंकि यह धातु के साथ ठीक तरह से संयोजित नहीं हो पाता था। सोवियत वैज्ञानिकों ने बहुलकों की विभिन्न पदार्थों के साथ नाभिकीय वेल्डिंग की एक बिल्कुल नयी विधि ढूंढ़ निकाली है। जिन पदार्थों या बहुलकों को जोड़ना होता है उनकी सतह पर लीथियम या बोरान के यौगिकों की थोड़ी सी मात्रा लगा दी जाती है। ये यौगिक एक किस्म से "नाभिकीय गोंद" का कार्य करते हैं। जब इन सतहों पर न्यूट्रानों की वर्षा की जाती है, तो नाभिकीय प्रक्रियाएं घटने लगती हैं जिनके दौरान ऊर्जा बहुत बड़ी मात्रा में उत्सर्जित होती है। इसके फलस्वरूप बहुत अल्प समय के लिये (सेकेंड के 10 अरबवें हिस्से से भी कम समय) इन बहुलकों या पदार्थ के कुछ सूक्ष्मस्थानों पर तापमान सैकड़ों तथा हजारों डिग्री तक पहुंच जाता है। लेकिन ये कुछ क्षण ही वेल्डिंग के लिये काफी होते हैं: इनके दौरान स्पर्षक-तलों के अणुओं का विस्थापन हो जाता है तथा कभी-कभी वे संयोजित होकर रसायनिक अनुबंध भी बना देते हैं और इस प्रकार नाभिकीय वेल्डिंग-कार्य संपन्न हो जाता है।

साधारणतया मेंडेलीफ की आवर्त सारणी के शीर्ष वामपक्ष के आरंभिक तत्त्व प्रकृति में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, उदाहरण के लिये, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम तथा ऐलुमिनियम। परंतु इनका पड़ोसी लीथियम एक बहुत ही विरल धातु है। प्रकृति में लगभग 30 खनिज ऐसे हैं जिनमें यह बहुमूल्य धातु विद्यमान है। इनमें सबसे मुख्य खनिज स्पॉडुमीन (ट्राइफेन) है। इस खनिज के क्रिस्टल देखकर रेल की पटरी पर बिछे स्लीपरों या वृक्ष-स्तंभों की याद आ जाती है। कभी-कभी इन क्रिस्टलों का आकार बहुत ही बड़ा होता है। अमरीका के दक्षिणी डकोटा राज्य में इस खनिज का एक ऐसा क्रिस्टल मिला है जिसकी लंबाई 15 मीटर से भी अधिक है तथा वजन दसियों टन है। अमरीकी भंडारों में स्पॉडुमीन की दो अतिसुंदर किस्में पायी गयी हैं – अल्पमूल्य खनिज हिडेनाइट तथा कुन्जाइट, जिनका रंग क्रमशः पन्नी हरा तथा गुलाबी-बैंजनी है।

लीथियम के उत्पादन के लिये आवश्यक आधारभूत कच्चे माल का काम ग्रेनाइट पेग्माटाइट कर सकता है जिसके प्रकृति में अनगिनत भंडार हैं। अनुमान है कि एक घन किलोमीटर ग्रेनाइट में 100000 से अधिक टन लीथियम होता है। आज दुनिया के सभी देशों में जितने लीथियम का उत्पादन हो रहा है वह सब मिलाकर भी इस संख्या से कई गुना कम है। लीथियम के अलावा ग्रेनाइट निक्षेपों में नियोबियम, टैन्टेलम, जिर्कोनियम, थोरियम, यूरेनियम, नियोडिमियम, सीज़ियम, सीरियम, प्रोजियोडिमियम तथा अन्य कई विरल तत्त्व उपस्थित हैं। परंतु समस्या यह है कि इन मूल्यवान तथा विरल तत्त्वों को ग्रेनाइट में से निकाला कैसे जाये?

आज वैज्ञानिक ऐसे तरीके खोजने में व्यस्त हैं जो "खुल जा सिम-सिम" की तरह ग्रेनाइट के खजाने खोल देंगे। इसमें कोई शक नहीं कि उन्हें इस कार्य में सफलता प्राप्त होगी।

लीथियम की कहानी समाप्त करने से पहले हम अमरीका के सुप्रसिद्ध भौतिकविद् राबर्ट

वुड के जीवन की एक मजेदार घटना का वर्णन करना चाहेंगे। इस घटना में लीथियम ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1891 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक वुड सुप्रसिद्ध प्रोफेसर रेमसै से रसायन पढ़ने के लिये बाल्टीमोर आये। वे विश्वविद्यालय के नजदीक एक बोर्डिंग-हाउस में ठहरे। कुछ दिनों में दूसरे विद्यार्थियों से उन्हें पता चला कि उनकी मकान-मालकिन नाश्ते में अक्सर जूठी चीजें देती है। जो चीजें शाम को डिनर के समय लड़के प्लेटों में छोड़ देते थे, उनको वह सुबह नाश्ते में रख देती थी। लेकिन समस्या यह थी कि इस बात को सिद्ध कैसे किया जाये?

वुड कठिन से कठिन समस्या का हल ढूंढ़ने के लिये प्रसिद्ध थे। इस बार भी उनकी बुद्धि ने लड़कों की समस्या हल कर दी। एक दिन शाम को डिनर के समय उन्होंने प्लेट में मांस के कई सारे टुकड़े छोड़ दिये तथा चुपके से उन पर लीथियम क्लोराइड छिड़क दिया। इस यौगिक का आकार तथा स्वाद नमक जैसा होता है तथा इसके खाने से कोई नुकसान नहीं होता। अगले दिन सुबह जब लड़के नाश्ता करने बैठे, उन्होंने मांस के कुछ टुकड़े उठा लिये और फिर स्पेक्ट्रोस्कोप में उनका अध्ययन किया। उन्होंने स्पेक्ट्रम में लाल रेखा देखी जो लीथियम के कारण उत्पन्न हो गयी थी। मकान-मालकिन की चोरी पकड़ी गयी। बहुत सालों बाद वुड ने बड़े मजे के साथ लोगों को बताया कि किसी जमाने में उन्होंने जासूस का काम भी किया था।

अंतरिक्ष-युग की धातु

कहानियां सच सिद्ध हो रही हैं – महारानी क्ल्यौपेट्रा की पन्ने की खानें – रोमन सम्राट का शौक – "यह हरा, शुद्ध, चमकीला तथा कोमल होता है" – "इनका" जाति के रेड-इंडियनों का रहस्य – अधिकारी बिना पूर्व सूचना के निरीक्षण करने आ गये – अनमोल पत्थर रूस में वापस आ जाता है – "हरी सुबह और खूनी शाम" – भिलदा नाम का कुत्ता बेरिलियम खोजता है – "घायल" क्रिस्टल की नुमाइश – एक सनसनीखेज खबर – परेशान करने वाला तत्त्व – भूठा आरोप – "सजा" रद्द कर दी गयी – अंतरिक्ष में – संदेहजनक आर्डर – विस्फोट नहीं होगा – सबसे हलके तत्त्वों का गुट – एक महत्त्वपूर्ण खोज – न्यूट्रॉन धीरे चलने लगते हैं – ध्वनि की विजय – परमाणु "सूई" – कृत्रिम रत्न

"बेरिलियम की गिनती सर्वाधिक सैद्धांतिक तथा प्रायोगिक महत्त्व रखने वाले विशिष्ट तत्त्वों में की जाती है।

...आकाश पर विजय, हिम्मत से भरी जहाजी तथा बैलूनी उड़ानें हलकी धातुओं के बिना असंभव हैं। आधुनिक वैमानिकी में मुख्यत: दो धातुओं का प्रयोग किया जा रहा है – ऐलुमिनियम तथा मैग्नीशियम, पर हमें दिखाई दे रहा है कि शीघ्र ही बेरिलियम भी इस कार्य में प्रयुक्त किया जाने लगेगा।

और तब हमारे हवाई जहाजों की गति हजारों किलोमीटर प्रति घंटा हो जायेगी।

भविष्य में बेरिलियम से बहुत आशाएं हैं!

भूरसायनज्ञ – आप लोगों को बेरिलियम के नये भंडार ढूंढ़ने चाहियें। रसायनज्ञ – आप लोग इस हलकी धातु को इसके साथी ऐलुमिनियम से अलग करने का तरीका सीख लें। शिल्पविज्ञानी ऐसी हलकी मिश्रधातुएं बनायें, जो पानी में न डूबें, जो इस्पात की तरह भारी हों, रबड़ जैसे लचीली हों, प्लैटिनम की भांति मजबूत हों तथा रत्नों की तरह शाश्वत हों...

हो सकता है कि आज ये शब्द कहानी सी लगते हों। लेकिन आपको पता ही है कि हमारे देखते ही देखते कितनी कहानियों ने वास्तविकता का रूप ले लिया है, वे हमारी दिनचर्या का एक अंग बन गयी हैं। क्या आपको याद नहीं है कि कुछ अर्से पहले रेडियो तथा सवाक् चलचित्र भी एक कहानी ही तो समझे जाते थे।"

ये शब्द महान सोवियत वैज्ञानिक अकादमीशियन आ० फेरस्मान (1883-1945) ने कहे थे जिन्होंने कुछ दशकों पूर्व ही बेरिलियम का महत्त्व समझ लिया था।

निस्संदेह, बेरिलियम का असली उपयोग आने वाले दिनों में किया जायेगा। फिर भी आवर्त सारणी में कुछ ऐसे तत्त्व हैं जिनका इतिहास बेरिलियम के इतिहास की तरह बहुत पुराना है।

2000 से भी ज्यादा साल पहले महारानी क्ल्योपैट्रा के गुलामों ने पन्ने की विख्यात खानों की खुदाई करके हरे रंग के पत्थर के प्यारे-प्यारे क्रिस्टल ढूंढ़ निकाले। ये खानें न्यूबी के रेगिस्तानी इलाकों में थीं। ऊँटों के काफिले इन पन्नों को लाल सागर ले आये, जहां से वे यूरोप, मध्य तथा सुदूरपूर्व के महलों में पहुंच गये और बाइज़ेन्टीनी के सम्राटों, फारस के शाहों, चीन के बादशाहों तथा हिन्दुस्तानी महाराजाओं की शोभा बन गये।

पन्नों की चमक, शुद्धता तथा रंगदीप्ति की सुंदरता ने इंसान को हमेशा मोहित किया है। पन्नों के रंग अतिसुंदर होते हैं – गहरा हरा, चमकीला हरा, झिलमिला हरा। रोमन सम्राट नीरो तलवारबाजी देखने के लिये पन्ने के एक विशाल क्रिस्टल का इस्तेमाल करता था। सुप्रसिद्ध रूसी लेखक अ० कुप्रिन ने निम्न शब्दों में इस पत्थर की व्याख्या की है: "पन्ने वसंती घास की तरह हरे, शुद्ध, चमकीले तथा कोमल होते हैं।"

अमरीका की खोज से पन्ने के इतिहास में एक नयी घटना घटी। स्पेनिश हमलावरों को मैक्सिको, पेरू तथा कोलंबिया के मकबरों और मंदिरों में गहरे हरे रंग के बड़े बड़े पन्ने मिले।

कुछ सालों के दौरान उन्होंने बहुमूल्य खजाने को लूट लिया, परन्तु भरसक प्रयत्नों के बावजूद उन्हें यह नहीं पता चला कि इन रत्नों की खानें कहां हैं। केवल 16वीं शताब्दी के मध्य में अमरीका के हमलावरों को 'इंका' जाति के रहस्य का पता लगा और

उनको कोलंबिया के पन्नों की खानों का रास्ता मालूम हो गया।

यूराल की एक छोटी नदी के पास जंगल में झाड़-झंखाड़ इकट्ठा करते समय एक मजदूर मैक्सिम कोझेव्नीकोव को 1831 में पहला रूसी पन्ना मिला। शीघ्र ही यूराल के बड़े-बड़े चमकीले पन्ने विश्व में विख्यात हो गये।

1834 में यूराल की जैम-कटिंग फैक्टरी के मैनेजर काकोविन को एक अतिसुंदर विशाल पन्ना मिला जिसका वजन 2 किलोग्राम से ज्यादा था। काकोविन ने इस अद्वितीय पत्थर की कटिंग खुद करने का फैसला किया। काश, उसको मालूम होता कि इस सुंदर रत्न की भूमिका उसके नसीब में कितनी घातक सिद्ध होगी! परंतु यह घटना छिपी न रह सकी और इसकी खबर राजधानी पीटर्सबर्ग* पहुँच गयी। शीघ्र ही अधिकारियों का एक दल उसके घर आ पहुँचा। उसने पत्थर ढूँढ़ निकाला और उसे राजधानी पहुँचा दिया। मैनेजर जेल भेज दिया गया जहां उसने आत्महत्या कर ली।

पीटर्सबर्ग में भी यह पन्ना सरकारी खजाने तक नहीं पहुँच पाया। पहले वह काउंट पेरोव्स्की के पास रहा और उसके बाद ड्यूक कोचुबेई के पास। 1905 में कोचुबेई की भू-संपत्ति लुटने के बाद पन्ना वियेना पहुँच गया जहां से रूसी सरकार ने एक बड़ी कीमत देकर इसे खरीद लिया। आज यह जादुई पन्ना सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के खनिजीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है।

पन्ने की गिनती बेरिलियम के खनिजों में की जाती है। बेरिलियम परिवार के कुछ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सदस्य निम्न रत्न हैं: नीला-हरा, समुद्री जल जैसा ऐक्वामेरीन, गुलाबी, वोरोब्येवीत, शराबी-पीला हेलिओदोर, पीला-हरा बेरिल, पानी जैसा शुद्ध फिनेकाइड, कोमल नीला यूक्लेस, पारदर्शी हरा क्रिसोबेरिल तथा इसकी आश्चर्यजनक विविधता – एलेग्जैन्ड्राइट, जो दिन में गहरा हरा तथा कृत्रिम प्रकाश में

---

* लेनिनग्राद का पहला नाम।

किरमिजी रंग का हो जाता है। रूसी लेखक नि० लेस्कोव ने एलेग्जैन्ड्राइट की व्याख्या इन शब्दों में की है: "हरी सुबह और खूनी शाम"।

भू-पर्पटी में बेरिलियम विरल धातु नहीं है, हालांकि ऐसा माना जाता है। इसका कारण यह है कि बेरिलियम खनिज का पता लगाना कठिन होता है। इसमें मानव का पुराना दोस्त कुत्ता उसका सहायक हो सकता है।

पिछले कुछ समय से अखबारों में अक्सर यह खबर छपने लगी है कि भूविज्ञानी खनिज ढूंढ़ने में कुत्तों की मदद ले रहे हैं। प्राचीन काल से मनुष्य कुत्तों की अदभुत घ्राणशक्ति से लाभ उठाया आ रहा है। लेकिन इनकी "भूवैज्ञानिक प्रतिभा" किस श्रेणी की है? ये झबरे "अयस्क अन्वेषक" कौन-कौनसे खनिज ढूँढ़ सकते हैं? "इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने में सोवियत विज्ञान अकादमी के खनिजीय संग्रहालय ने हमारी मदद की"। ये शब्द डा० गे० वासील्येव के हैं जो बहुमूल्य खनिज ढूँढ़ने के इस नये तरीके के प्रारंभक हैं। वे जीव विज्ञान में डी० एस-सी० की डिग्री से सम्मानित हैं। उन्होंने बताया कि धात्विक बेरिलियम के साथ किये गये प्रयोग में उन्हें आशातीत सफलता मिली। उन्होंने झिलदा नाम के एक कुत्ते को बेरिलियम सूँघाया और फिर उसे इसे ढूँढ़ने का इशारा किया। असंख्य खनिजों में से कुत्ते ने केवल निम्न खनिज चुने: पन्ना, ऐक्वामेरीन, वोरोब्येवीत, फिनेकाइड, बर्ट्रेन्डाइट अर्थात् केवल वे खनिज जिनमें बेरिलियम विद्यमान है। अगली बार बेरिलियमयुक्त सभी पत्थर डा० वासील्येव ने अन्य पत्थरों में मिला दिये। इस बार भी कुत्ते ने उन्हें ढूँढ़ लिया। अब वैज्ञानिक ने फिर कुत्ते को इशारा किया। कुत्ते ने संग्रहालय का एक चक्कर लगाया और एक स्टेंड के सामने खड़े होकर भौंकना शुरू कर दिया। उस स्टेंड पर एक विशाल पन्ना रखा हुआ था।

वनस्पतिजगत के कुछ नमूने भी बेरिलियम की खोज में अपना योग दे सकते हैं। इनमें एक है—मामूली चीड़ का वृक्ष। इसकी विशेषता यह है कि वह मिट्टी से बेरिलियम का चूषण करते हुए अपनी छाल में उसको सांद्रित करता रहता है। अगर चीड़ का वृक्ष बेरिलियम की खान के कहीं पास उगता है तो उसकी छाल में बर्च-वृक्ष या किसी दूसरे पेड़ की तुलना में दर्जनों गुना और मिट्टी की तुलना में सैकड़ों गुना अधिक बेरिलियम जमा होता है।

सभी बेरिलियमयुक्त खनिजों में केवल बेरिल ही ऐसा है जो औद्योगिक महत्त्व रखता है। प्रकृति में बेरिल अतिविशाल क्रिस्टलों के रूप में पाया जाता है। इनका वजन हजारों किलोग्राम तक पहुँच सकता है और इनकी लंबाई कई मीटरों की हो सकती है। कुछ समय पहले मदागास्कार द्वीप पर 380 टन वजन वाला बेरिल का क्रिस्टल पाया गया है जिसकी लंबाई 18 मीटर और चौड़ाई 3.5 मीटर है।

लेनिनग्राद के खनन संग्रहालय में एक क्रिस्टल रखा हुआ है जिसकी लंबाई 1.5 मीटर है। 1943 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान संग्रहालय की छत पर बम गिर जाने से इस क्रिस्टल को बहुत क्षति पहुँची। तब किसी ने इस बात को सोचा तक नहीं था कि भविष्य में यह क्रिस्टल फिर संग्रहालय की शोभा बढ़ायेगा। कुछ वर्षों बाद जौहरियों के कठिन परिश्रम से इसका पुनरुद्धार हो

गया। आज इस संग्रहालय में क्रिस्टल के पास गोले की 2 किरचें रखी हुई हैं तथा एक अंतर्लेख पर इसकी गाथा लिखी हुई है। केवल यही चीजें बाकी रह गयी हैं जो इस क्रिस्टल के "आपरेशन" की याद दिलाती हैं।

यह कोई अचंभे की बात नहीं कि जौहरियों के साथ-साथ रसायनज्ञ भी प्राचीन काल से बेरिलियम रत्नों में रुचि रखते आ रहे हैं।

अठारहवीं शताब्दी में, जब आवर्त सारणी में चौथे नम्बर का तत्त्व अभी अज्ञात था, कई वैज्ञानिकों ने बेरिल का विश्लेषण करने का प्रयास किया परंतु उनमें से किसी को भी इसके अंदर उपस्थित नयी धातु ढूंढने में सफलता नहीं मिली। ऐसा लगता था जैसे कि यह तत्त्व ऐलुमिनियम तथा इसके यौगिकों के पीछे छिप गया है। इस तत्त्व के गुण ऐलुमिनियम से बहुत मिलते जुलते थे लेकिन फिर भी दोनों में कुछ न कुछ फर्क जरूर था। इस अंतर की पुष्टि करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति थे – फ्रेंच रसायनज्ञ लुई निकोला वोक्लेन। फ्रेंच क्रांति के कैलेन्डर के छठे साल के छब्बीसवें वृष्टिमय दिन अर्थात् 15 फरवरी 1798 के दिन फ्रेंच विज्ञान अकादमी की बैठक में वोक्ले ने यह सनसनीखेज खबर दी कि बेरिल तथा पन्ने में एक नयी "मृदा" उपस्थित है जिसके गुण ऐलुमिना या ऐलुमिनियम आक्साइड से भिन्न हैं।

इस नये तत्त्व के लवणों का स्वाद मीठा था, अतः वोक्लेन ने इसका नाम "ग्लूसिनियम" रखा (यूनानी शब्द ग्लूसि से, जिसका अर्थ है मीठा)। परंतु अब यह नाम केवल फ्रांस तक सीमित रह गया है। सुप्रसिद्ध रसायनज्ञों म० क्लाप्रोत तथा अ० एकेबेर्ग

ने इसका नाम "बेरिलियम" रखा और इसी नाम से यह तत्त्व अन्य देशों में जाना जाता है।

बेरिलियम तथा ऐलुमिनियम के गुणों में समानता होने के कारण आवर्त सारणी के जन्मदाता द० मेंडेलीफ को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। बात यह थी कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में इस समानता के कारण बेरिलियम 13.5 परमाणु भार वाली त्रिसंयोजक धातु समझी जाती थी, अतः सारणी में इस धातु को कार्बन तथा नाइट्रोजन के बीच में होना चाहिये था। इसकी वजह से तत्त्वों के गुणों की निश्चित क्रमबद्धता गलत साबित होने लगी तथा लोगों को आवर्त नियम की सत्यता पर संदेह होने लगा। परंतु मेंडेलीफ अपनी बात पर डटे रहे। उन्हें बेरिलियम के परमाणु भार पर शक था तथा उनके हिसाब से यह तत्त्व त्रिसंयोजक की जगह द्विसंयोजक था तथा इसमें मैग्नीशियम के गुण थे। इन बातों के आधार पर उन्होंने बेरिलियम का परमाणु भार 9 मानकर इसे द्वितीय ग्रुप में रख दिया। शीघ्र ही स्वीडिश रसायनज्ञों ल० नेल्सन

तथा ओ० पीटरसन ने मेंडेलीफ की बात स्वीकार कर ली हालाँकि कुछ समय पहले यही दोनों वैज्ञानिक बेरिलियम को एक त्रिसंयोजक धातु बता रहे थे। इस प्रकार आवर्त सारणी की "शांति भंग करने वाले" तत्त्व बेरिलियम से एक अतिमहत्त्वपूर्ण रासायनिक नियम को मान्यता प्राप्त हुई।

इस तत्त्व की किस्मत भी अपने भाई-धातुओं जैसी रही। हालाँकि 1828 में ही जर्मन रसायनज्ञ फ० व्योलेर और उनसे स्वतंत्र रूप से फ्रांसीसी रसायनज्ञ अ० ब्यूसी ने यह धातु प्राप्त कर ली थी परंतु इसका शुद्ध धात्विक रूप प्राप्त करने में सफलता केवल 70 साल बाद मिली। फ्रेंच वैज्ञानिक प० लेब्रो ने संगलित लवणों के विद्युत अपघटन से बेरिलियम को शुद्ध रूप में प्राप्त किया। यह कोई अचंभे की बात नहीं है कि इस शताब्दी के आरंभ में रासायनिक निदर्शिकाओं में इस धातु को "निकम्मा" – "किसी काम का नहीं" बताया गया है।

बीसवीं सदी में विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में बहुत ज्यादा तरक्की हुई है। इस उन्नति ने रसायनज्ञों को मजबूर कर दिया कि वे बेरिलियम को दी गयी सजा पर पुनर्विचार करें। शीघ्र ही शुद्ध बेरिलियम के अध्ययन से उन्हें यह पता चला कि इस धातु में बहुसंख्यक मूल्यवान गुण विद्यमान हैं।

बेरिलियम की गिनती सबसे हलकी धातुओं में की जाती है परंतु इसके साथ-साथ यह बहुत ज्यादा मजबूत धातु होती है। बेरिलियम निर्माण-कार्य में प्रयुक्त इस्पात से भी ज्यादा मजबूत होता है। अगर 1 वर्ग मिलिमीटर काट वाली ऐलुमिनियम का तार 10 किलोग्राम से कुछ ज्यादा वजन की चीज बर्दाश्त कर सकता है (उदाहरणतया पानी से भरी बाल्टी) तो ऐसी ही काट का बेरिलियम तार इससे भी छःगुना अधिक वजन सह सकता है जो एक वयस्क व्यक्ति के वजन के लगभग है। साथ ही साथ इसका गलनांक ऐलुमिनियम तथा मैग्नीशियम की तुलना में काफी उच्च होता है। इतने सारे उपयोगी गुणों के कारण आज बेरिलियम वैमानिकी की मुख्य धातु है। हवाई जहाजों में बेरिलियम के बने पुर्जे ऐलुमिनियम के पुर्जों से ज्यादा हलके होते हैं।

उत्तम ताप-चालकता, उच्च ताप-धारिता तथा ताप-प्रतिरोधकता जैसे महत्त्वपूर्ण गुणों के कारण बेरिलियम तथा इसके यौगिक अंतरिक्ष तकनीक में ताप-संरक्षक के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। अमरीकी समाचारपत्रों के अनुसार अंतरिक्ष यान "मर्करी" के केबिन के ताप-संरक्षक तत्त्व बेरिलियम से बनाये गये थे।

बेरिलियम के बने पुर्जे उच्च परिशुद्धता तथा विमीय स्थायित्व वाले होते हैं। इनका प्रयोग घूर्णदर्शी-उपकरणों के निर्माण में किया जाता है जो रॉकेटों, अंतरिक्ष यानों तथा कृत्रिम भू-उपग्रहों के अभिविन्यास तथा स्थिरीकरण-तंत्रों में प्रयुक्त किये जाते हैं।

अंतरिक्ष तकनीक में बेरिलियम के एक अन्य गुण से बहुत आशाएं हैं। इसके दहन के दौरान ताप का बहुत बड़ी मात्रा में उत्सर्जन होता है। इस गुण की दृष्टि से कोई दूसरी धातु बेरिलियम का मुकाबला नहीं कर सकती। इसीलिये अन्तरिक्ष-तकनीक के निर्माता बेरिलियम को चंद्रमा तथा पृथ्वी से ज्यादा दूर स्थित ग्रहों की ओर उड़ान के समय राकेटों के उच्चतम और्जिकीय ईंधन का संभावित पूरक समझते हैं। इसके अलावा

बेरिलियम से राकेट-व्यवस्थाओं के ईंधन-टैंकों का निर्माण करने का प्रस्ताव भी है। इस हालत में अगर ईंधन खत्म हो जायेगा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा क्योंकि इसके बाद टैंक ईंधन के रूप में जलाया जा सकेगा।

वैमानिकी में ताम्र तथा बेरिलियम के ऐलॉयों – बेरिलियम कांस्य का उपयोग काफी विस्तृत है। श्रांति व संक्षारण के प्रति उत्तम प्रतिरोधकता, बृहत् ताप परिसार में प्रत्यास्था तथा उच्च वैद्युत और ताप चालकता रखने वाले पुर्जों के निर्माण में इन ऐलॉयों का प्रयोग किया जाता है। ये पुर्जे बहुत ज्यादा मजबूत भी होते हैं। आज एक आधुनिक बड़े हवाई जहाज में 1000 से भी ज्यादा पुर्जे इन ऐलॉयों के बने होते हैं। उच्च तन्यता के कारण बेरिलियम कांस्य का प्रयोग बहुत बढ़िया क़िस्म के स्प्रिंग बनाने में किया जाता है। ये स्प्रिंग कभी नहीं टूटते, इनमें करोड़ों लोड-चक्र सहने की क्षमता होती है।

इस मौके पर हम द्वितीय विश्व युद्ध की एक रोचक घटना बतानी चाहेंगे, जिसका स्प्रिंगों के साथ संबंध रहा है। हिटलर के दिनों जर्मनी को बेरिलियम का कच्चा माल मिलना बंद हो गया था। सामरिक महत्त्व की इस धातु का खजाना अमरीका के पास था। तब जर्मन लोगों ने एक चालाकी खेली। उन्होंने तटस्थ देश स्वीटजरलैंड को बेरिलियम कांस्य की तस्करी का क्षेत्र बनाना चाहा। शीघ्र ही अमरीकी फर्मों को स्वीटजरलैंड के "घड़ीसाजों" से इतने अधिक आर्डर मिले कि इतने बेरिलियम कांस्य से आने वाले 500 साल में विश्व की सारी घड़ियों के स्प्रिंग बनाये जा सकते थे। परंतु जर्मनों की चालाकी पकड़ी गयी और अमरीका ने इन आर्डरों का माल नहीं

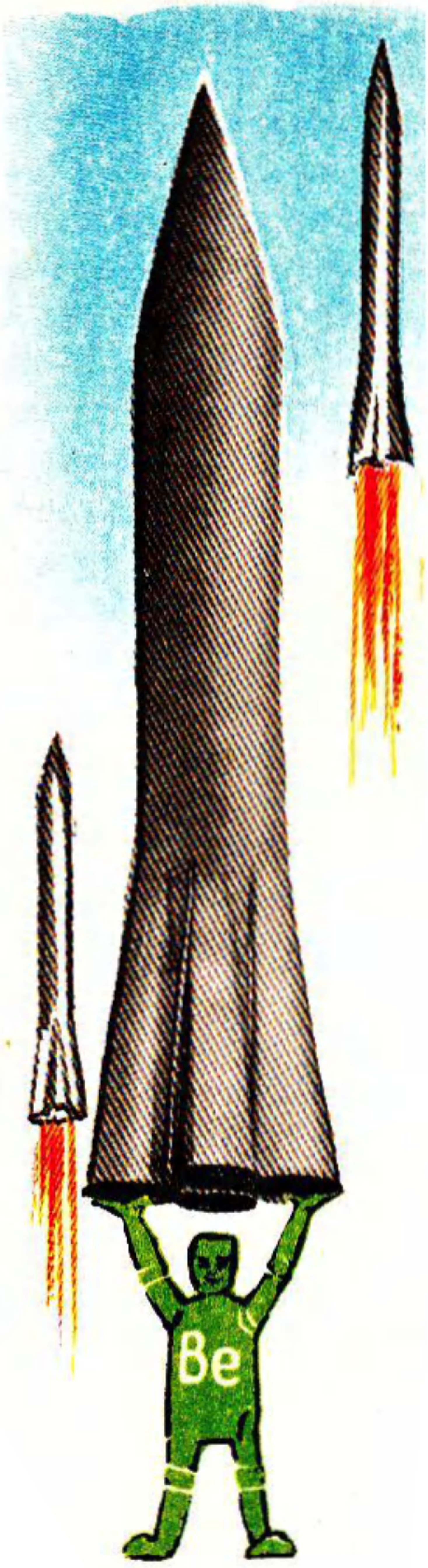

भेजा। परंतु फिर भी जर्मन लोग कहीं न कहीं से बेरिलियम कांस्य ले रहे थे क्योंकि नयी उच्चवेगी मशीनगनों से लैस फासिस्टों के हवाई जहाजों में बेरिलियम कांस्य के स्प्रिंगों का प्रयोग किया जा रहा था।

अधिकांश धातुओं तथा ऐलॉयों को अक्सर एक "व्यावसायिक रोग" लग जाता है जिसके फलस्वरूप वे धीरे-धीरे नष्ट होते जाते हैं। इस रोग का नाम है – श्रांति। इस्पात में अगर बेरिलियम की थोड़ी सी मात्रा मिला दी जाये तो यह श्रांति तुरंत दूर हो जाती है। मोटरकारों में कार्बन स्टील के बने स्प्रिंग अक्सर आठ या साढ़े आठ लाख झटकों के बाद टूट जाते हैं परंतु अगर इस स्टील में "विटामिन Be" मिला दिया जाये तो स्प्रिंग इस रोग से सुरक्षित रहते हैं और करोड़ों झटके सह सकते हैं।

स्टील पर जब पत्थर या अन्य किसी धातु से चोट मारी जाती है तो चिंगारियां निकलने लगती हैं परंतु बेरिलियम कांस्य के साथ ऐसा नहीं होता। इस गुण के कारण यह ऐलॉय

विस्फोट कार्यों के लिये आवश्यक औजारों के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। ये औजार खनन कार्यों, बारूद फैक्टरियों तथा तेल भंडारों में अति उपयोगी सिद्ध होते हैं।

बेरिलियम मैग्नीशियम के गुणों पर बहुत ज्यादा असर डालता है। बेरिलियम के कुछ हजारवें अंश मिलाने से प्रगलन और ढालन (700° के आसपास तापमान होने पर) के समय मैग्नीशियम ज्वलन से सुरक्षित रहता है। इसके साथ-साथ बेरिलियम ऐलॉयों की वायु तथा जल में संक्षारणता भी बहुत ज्यादा कम हो जाती है।

अपने रासायनिक गुणों की बदौलत बेरिलियम स्टील का एक विआक्सीकारक हो सकता है। यह स्टील में उपस्थित आक्सीजन से इसको मुक्त कर देता है। अफसोस है कि यह धातु बहुत महंगी है जिसके कारण धात्विकी में इसका बड़ी मात्रा में उपयोग असंभव है। परन्तु धातुकर्मियों ने बेरिलियम को एक और काम में अतिउपयोगी पाया है। स्टील की चीजों, पुर्जों की ऊपरी सतह पर अगर इस धातु का गाढ़ा लेप चढ़ा दिया जाये (बेरिलिकरण) तो उनकी मजबूती, स्थायित्व तथा प्रतिरोधकता बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। यह काम बेरिलियम की बहुत थोड़ी मात्रा से संभव है।

एक्सरे टैक्नीशियन बेरिलियम के बहुत ज्यादा पक्ष में हैं क्योंकि जितनी भी धातुएं वायु में आक्सीकृत नहीं होती हैं उनमें से एक्सरे-किरणें प्रेषित करने की सर्वाधिक क्षमता बेरिलियम में है। आज सारी दुनिया में इस धातु का प्रयोग एक्सरे ट्यूबों की "खिड़कियों" के निर्माण में किया जाता है। इन "खिड़कियों" की पारदर्शकता पुरानी "खिड़कियों" से लगभग 20 गुना अधिक है जिनमें बेरिलियम

की जगह ऐलुमिनियम का इस्तेमाल किया जाता था।

बेरिलियम ने परमाणु तथा इसके नाभिक के संरचना सिद्धांत के विकास में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। तीसरे दशक के आरंभ में जर्मन भौतिकविदों व० बोटे तथा ग० बैकर ने बेरिलियम पर ऐल्फा-कणों की बमबारी करके "बेरिलियम विकिरण" ढूँढ़ निकाला। यह काफी क्षीण था परंतु इसकी वेधन-क्षमता उच्च थी, किरणें लेड की कई सेंटीमीटर मोटी चादर के आरपार निकल गयीं। इस विकिरण की प्रकृति सन् 1932 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक जेम्स चेडविक ने ज्ञात की। उन्होंने बताया कि यह विकिरण विद्युत निष्क्रिय कणों के प्रवाह से बना है तथा प्रत्येक कण का द्रव्यमान प्रोटोन के द्रव्यमान के लगभग बराबर होता है। इन कणों का नाम "न्यूट्रॉन" रखा गया।

विद्युत आवेश के अभाव के कारण न्यूट्रॉन अति सरलता से अन्य तत्त्वों के परमाण्विक नाभिकों में प्रवेश कर जाते हैं। इस गुण के कारण न्यूट्रॉन परमाण्विक आर्टिलरी के निर्माण में एक अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर चुका है। आज न्यूट्रॉन तोपें नाभिकीय प्रतिक्रियाओं के प्रेरण में विस्तृत रूप में प्रयुक्त की जाती हैं।

बेरिलियम की परमाण्विक संरचना के अध्ययन से पता चला है कि इसमें न्यूट्रॉनों की प्रगहण-क्षमता निम्न है परंतु उनकी प्रकीर्णता की क्षमता उच्च है। इस गुण के कारण बेरिलियम न्यूट्रॉनों को तितर-बितर कर देता है, उनकी दिशा बदल देता है तथा उनकी गति इस हद तक मंद कर देता है कि श्रृंखला प्रतिक्रियाएं अधिक प्रभावशाली ढंग से घटने लगती हैं। न्यूट्रॉनों की गति मंद करने वाले सभी कठोर पदार्थों में बेरिलियम सबसे उत्तम माना जाता है। बेरिलियम न्यूट्रॉनों का एक अतिश्रेष्ठ परावर्तक है। यह उन्हें रिऐक्टर के सक्रिय क्षेत्र में लौटा देता है तथा स्रवन नहीं होने देता है। इसके अतिरिक्त बेरिलियम में उच्च विकिरण रोधकता भी होती है। बहुत अधिक उच्च तापमान होने पर भी इसका यह गुण कायम रहता है।

इन अद्वितीय गुणों के कारण बेरिलियम की गणना परमाणु इंजीनियरी के सर्वाधिक आवश्यक तत्त्वों में की जाती है।

इस बात में कोई शक नहीं कि बेरिलियम की "ध्वनिप्रेषण" क्षमता विज्ञान के लिये बहुत महत्त्व रखती है। वायु में ध्वनि का वेग 330 मीटर प्रति सेकेंड होता है तथा जल में – 1500 मीटर प्रति सेकेंड। बेरिलियम में ध्वनि के वेग ने सारे रिकार्ड तोड़ दिये हैं। इस धातु के माध्यम में ध्वनि का वेग 12600 मीटर प्रति सेकेंड हो जाता है (अन्य धात्विक पदार्थों की तुलना में 2-3 गुना अधिक)।

बेरिलियम आक्साइड में भी बहुत उपयोगी गुण होते हैं। उच्च तापसह (गलनांक 2500°C से अधिक), उत्तम रासायनिक प्रति-रोधक तथा उत्तम ताप चालक होने के कारण इसका प्रयोग प्रेरण भट्टियों तथा क्रूसिबलों के उत्पादन में किया जाता है। ये क्रूसिबलें धातुओं तथा ऐलॉयों के गलन में प्रयुक्त की जाती हैं। उदाहरण के लिये, निर्वात में बेरिलियम के गलन के लिये केवल बेरिलियम आक्साइड की बनी क्रूसिबलों का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि वे इसके साथ किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करती हैं। बेरिलियम आक्साइड परमाणु

रिऐक्टरों के ताप-विलगन तत्त्वों के आवरण के लिये प्रयुक्त होता है।

आशा की जाती है कि बेरिलियम आक्साइड के तापरोधी गुणों का प्रयोग पृथ्वी की गहराइयों के अध्ययन में भी किया जायेगा। वैज्ञानिकों ने एक परियोजना बनायी है जिसके अंतर्गत पृथ्वी के अंदर 32 किलोमीटर की गहराई तक पहुंचकर मृदा के नमूने लिये जा सकेंगे। इस कार्य में वे एक "परमाणु सूई" का प्रयोग करेंगे। यह सूई एक परमाणु रिऐक्टर जैसी होगी जिसे बेरिलियम आक्साइड के तापरोधक डिब्बे के अंदर रखा जायेगा और जिसका नुकीला सिरा टंग्स्टन के भारी ऐलॉयों से बना होगा।

कांच-उद्योग में भी बेरिलियम के प्रयोग का काफी अरसा हो गया। इसे मिलाने से कांच की दृढ़ता, प्रकाश आवर्त्तन-क्षमता और रसायनिक प्रतिरोधकता बढ़ जाती हैं। बेरिलियम आक्साइड और इसके दूसरे ऐलॉयों के मिश्रण से स्पेक्ट्रम की सभी किरणों – पराबैंगनी से लेकर इंफ्रारेड तक – के लिये उच्च पारदर्शी विशेष कांच बनाये जाते हैं।

बेरिलियम आक्साइड कृत्रिम पन्नों और दूसरे रत्नों के उत्पादन के लिये भी कच्चे माल की भूमिका निभाता है। ऐसे रत्न उच्च दाब और ताप के वातावरण में बनाये जाते हैं। यह प्रक्रिया आज न केवल प्रयोगशालाओं में बल्कि औद्योगिक परिस्थितियों में भी अपनायी जा रही है।

अद्वितीय वैज्ञानिक तथा स्वप्नदर्शी अ० फेर्समान की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गयी है। बेरिलियम ने अल्प समय में ही वैज्ञानिकों की आशायें पूरी कर दीं। किसी जमाने में यह एक तुच्छ धातु थी, इसे बहुत कम लोग जानते थे परंतु आज इसकी गिनती बीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धातुओं में की जाती है।

श्रांति का मुकाबला करने वाला योद्धा

कीमियागरों का सिरदर्द—खजाना पानी में छिपा है—आतिशबाजी नहीं की गयी—माचिस की तीली से ही जल जाता है—पृथ्वी की निचली परतों में—"पहाड़ी चमड़ा" — कौनसा तरीका बेहतर है? — वरुण देवता आराम की नींद सो सकते हैं — सबकी साझेदारी समान हैं — कठिन परिस्थितियों में — धात्विकी की दुनिया में — पानी के नीचे की दुनिया — कवच तैयार है — "एक ... दो ... तीन, फोटो खींच रहा हूँ" — इससे ज्यादा जरूरी काम भी हैं — केले खाने चाहियें — हृद्‌रोग का खतरा — "लड़का चाहते हैं या लड़की?" — एक नया दुर्गलनीय यौगिक — ग्रिगनार्ड का योगदान — वायलिन की तरह — इसका असली उपयोग भविष्य में होगा — चंद्रमा की यात्रा

मध्ययुग में कीमियागरों पर एक ही धुन सवार थी, वे दिन-रात पारस-मणि की खोज में व्यस्त थे। उन्होंने यह उम्मीद लगा रखी थी कि जैसे ही पारस-मणि मिल जायेगी, वे इसकी मदद से घटिया किस्म की धातुओं को स्वर्ण में बदल सकेंगे।

'अनुसंधानकर्ता' इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अलग-अलग तरीके अपना रहे थे। कुछ लोगों का विचार था कि लेड को इतना गर्म किया जाये कि वह 'रेड सिंह' में परिवर्तित हो जाये (अर्थात् गलनांक तक) तथा फिर अगर इसे अंगूरों की खट्टी शराब में उबाला जाये तो पारस-मणि प्राप्त हो जायेगी। दूसरे लोगों का खयाल था कि जानवरों का मूत्र पारस-मणि का सर्वोत्तम स्रोत है। ऐसे भी लोग थे जो यह कहते थे कि पारस-मणि जल में छिपी है।

अठारहवीं शताब्दी के अंत में एक अंग्रेज कीमियागर ने, जो शायद तीसरी धारणा का समर्थक था, एप्स्म शहर के पास बहते एक झरने का खनिज जल उबाल कर देखा। उसे पारस-मणि तो मिली नहीं, हां एक नया लवण जरूर प्राप्त हो गया। इस लवण का स्वाद कड़वा था और यह मृदु विरेचक था। कुछ सालों बाद पता चला कि जब इस लवण की "स्थायी क्षारक"* से प्रतिक्रिया करायी जाती है तो एक सफेद रंग का भूरभूरा, हलका पाउडर प्राप्त होता है। यूनान के एक शहर मैग्नेजी के पास एक ऐसा खनिज मिला जिसके तापानुशीतन से भी बिल्कुल ऐसा ही पाउडर प्राप्त हुआ। इस समानता के कारण एप्स्म में पाये गये लवण का नाम श्वेत मैग्नीशिया रखा गया।

1808 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक हैम्फ्री डेवी ने श्वेत मैग्नीशिया के विश्लेषण से एक नया तत्त्व प्राप्त किया जिसका नाम मैग्नीशियम रखा। इस नये तत्त्व के आविष्कार की खुशी में आतिशबाजी नहीं की गयी क्योंकि उस वक्त तक किसी को भी यह पता नहीं था कि इस नये तत्त्व में उत्तम आतिशबाजी गुण विद्यमान हैं।

मैग्नीशियम सफेद-चांदी जैसे रंग की एक बहुत हलकी धातु है। यह धातु ताम्र या लौह से 5 गुना हलकी है। ऐलुमिनियम जैसी हलकी धातु भी इससे डेढ़ गुना भारी है। मैग्नीशियम का गलनांक ज्यादा उच्च नहीं है — केवल 650°C, परंतु साधारण परिस्थितियों में इसका गलन काफी कठिन कार्य है। वायु में 550°C तक गर्म

---

* उन दिनों सोडे तथा पोटैश को इस नाम से जाना जाता था।

किये जाने पर यह भभक उठता है तथा इसमें से चमकीली, झिलमिली ज्वाला निकलने लगती है (इस महत्त्वपूर्ण गुण के कारण आतिशबाजी में मैग्नीशियम का उपयोग बहुत प्रचलित है)। इस धातु को जलाने के लिये माचिस की एक तीली ही काफी रहती है। क्लोरीनयुक्त वातावरण में यह साधारण ताप पर ही जलने लगती है। इसके दहन के समय बहुत बड़ी संख्या में पराबैंगनी किरणें निकलती हैं तथा ऊष्मा का बहुत बड़ी मात्रा में उत्सर्जन होता है: इस ईंधन की कुछ ग्राम मात्रा से एक गिलास बर्फीले पानी को उबाला जा सकता है।

वायु में यह धातु शीघ्रता से धुंधली पड़ जाती है क्योंकि इसके ऊपर आक्साइड की परत जम जाती है। इस आक्साइड की वजह से धातु का इससे अधिक उपचयन नहीं हो पाता।

मैग्नीशियम एक बहुत आक्रमणशील धातु है। यह बड़ी आसानी से अधिकांश धातुओं को आक्सीजन तथा क्लोरीन से वंचित कर देती है। इस धातु पर कई अम्लों, सोडों, कास्टिक क्षारों, पेट्रोल, मिट्टी के तेल, खनिज तेलों आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता परंतु समुद्री जल के सामने यह बेबस है; इसके अंदर यह तुरंत घुल जाती है। ठंडे जल के साथ मैग्नीशियम आम तौर पर किसी भी तरह की प्रति-क्रिया नहीं करता परंतु गर्म जल में से यह बड़ी तेजी से हाइड्रोजन निकाल देता है।

भू-पर्पटी में मैग्नीशियम प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। मेंडेलीफ की आवर्त सारणी में इस धातु के जितने भी "साथी" हैं उनमें से केवल सात प्रकृति में इससे अधिक मात्रा में मिलते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि विशेषतया पृथ्वी की निचली परतों में इस धातु के विशाल भंडार मिलने चाहियें। मैग्नीशियन लगभग 200 ज्ञात खनिजों में विद्यमान है। इनमें से एक खनिज में विशेष गुण होते हैं: एक रूमाल की तरह इसकी तह की जा सकती है, कागज की भांति इसके अंदर कोई भी चीज लपेटी जा सकती है और इसकी धज्जियां भी बड़ी आसानी से उड़ायी जा सकती हैं।

ऐसे खनिज का एक अद्वितीय नमूना 1953 में सुदूर पूर्व में मिला। एक बार जब मजदूर लोग खानों में बहुधातुओं के अयस्क ढूंढ़ रहे थे, उन्हें एक छोटी सी गुफा दिखाई दी। इस गुफा के अंदर एक भूरे-सफेद रंग का दोहरा "पर्दा" लटक रहा था जिसकी लंबाई 1.5 मीटर के आसपास और चौड़ाई लगभग 1 मीटर थी। खनिकों ने जब इस "पर्दे" को छूकर देखा तो वह स्वेड चमड़े की तरह नर्म तथा लचकदार लगा। वे इस पर्दे के "धागों" का हलकापन देखकर आश्चर्य में डूब गये थे।

इस अनोखी चीज को मास्को भेज दिया गया। रसायनिक विश्लेषण से पता चला कि इस खनिज का मुख्य अवयव मैग्नीशियम का ऐलुमिनियमसिलिकेट था तथा यह ऐस्बेस-टॉस ग्रुप का खनिज था। इसे सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक फेर्समान ने बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में यूराल पर्वतमाला के पाली-गोर्स्क नामक भंडार में खोजा। इसी वजह से इसका नाम पालीगोर्स्काइट रखा गया। इन अनोखे गुणों के कारण इस खनिज को अक्सर "पहाड़ी चमड़ा" कहते हैं। सुदूर पूर्व में मिला यह खनिज अब सोवियत विज्ञान

अकादमी के खनिजीय संग्रहालय की शोभा बना हुआ है। विशेष बात यह है कि इतने बड़े आकार का "पहाड़ी चमड़ा" विश्व में पहली बार पाया गया है।

मैग्नेसाइट, डोलोमाइट तथा कार्नेलाइट मैग्नीशियम के उत्पादन के मुख्य स्रोत हैं।

मैग्नीशियम के उत्पादन की दो विधियां हैं—विद्युत-तापीय तथा विद्युत-अपघटनी। प्रथम विधि में यह धातु सीधी मैग्नीशियम आक्साइड से प्राप्त की जाती है। इस प्रक्रिया में किसी भी अपचायक का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे, कार्बन, ऐलुमिनियम आदि। यह विधि काफी सरल है तथा पिछले कुछ समय से इसका प्रचलन बढ़ता जा रहा है परंतु फिर भी अभी तक विद्युत-अपघटनी विधि मैग्नीशियम के औद्योगिक उत्पादन की मुख्य विधि है। इस विधि के अन्तर्गत गलित मैग्नीशियम लवणों का विद्युत अपघटन किया जाता है, मुख्यतः क्लोराइड लवणों का। इस प्रकार प्राप्त धातु अतिशुद्ध होती है, उसमें 0.01% से कम अवसाद होते हैं।

मैग्नीशियम केवल भू-पर्पटी में ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है। महासागरों तथा सागरों में भी इसके अपुल भंडार विद्यमान हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि एक घन मीटर समुद्री जल में 4 किलोग्राम मैग्नीशियम होता है। महासागरों तथा सागरों के जल में इस तत्त्व की कुल मात्रा $6 \cdot 10^{16}$ टन है। जिन लोगों का गणित से बिल्कुल वास्ता नहीं पड़ता, वे भी इस संख्या की विशालता का अनुमान लगा सकते हैं। फिर भी सुविधा के लिये हम यह बात निम्न उदाहरण द्वारा समझानी चाहेंगे: कालक्रम के आरंभ होने से अब तक मानवजाति 6 अरब सेकेंड ($6 \cdot 10^{10}$) से ज्यादा जी चुकी है। अगर हमारे युग के प्रथम दिनों से ही मनुष्य ने समुद्री जल से मैग्नीशियम प्राप्त करना शुरू कर दिया होता तो यह धातु तब खत्म होती जब मनुष्य प्रति सेकेंड इसकी 10 लाख टन मात्रा समुद्र से निकालता।

लेकिन वरुण देवता को चिंता करने की जरूरत नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान

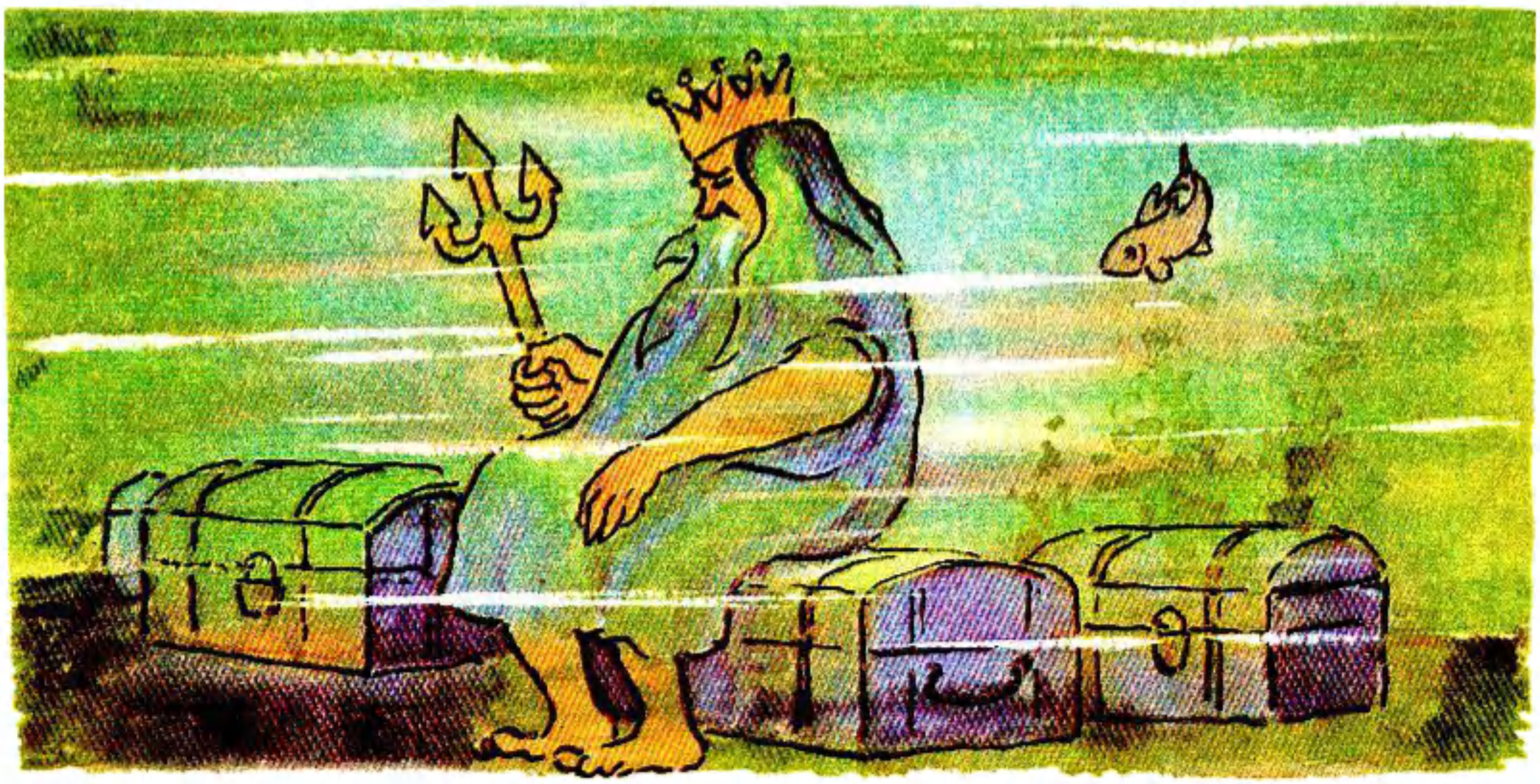

इस धातु का उत्पादन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था परंतु फिर भी साल भर में (सेकेंड में नहीं!) केवल 80 हजार टन धातु प्राप्त की गयी। इस धातु को समुद्री जल से प्राप्त करने की विधि काफी सरल है। सबसे पहले समुद्री जल विशाल टैंकों में भर लेते हैं फिर इस जल में समुद्री शैलों का बनाया दूधिया चूना मिलाते हैं। इस मिश्रण को "मैग्नीशियम दुग्ध" कहते हैं, जो बाद में मैग्नीशियम क्लोराइड में परिवर्तित हो जाता है। इसके उपरांत विद्युत अपघटन द्वारा मैग्नीशियम को क्लोरीन से अलग कर दिया जाता है। आजकल बहुत सारे देशों में, विशेषकर, जिन देशों में मैग्नीशियम खनिज के अपने बड़े भंडार नहीं हैं, समुद्री जल से प्राप्त करने वाले मैग्नीशियम कारखाने हैं। मैग्नीशियम के अलावा समुद्री किनारों पर स्थित इन कारखानों में नमक और सज्जी (Glauber salt) बड़ी मात्रा में मीठे पानी तथा कास्टिक सोडे का उत्पादन भी किया जा रहा है।

खारी झीलों से भी मैग्नीशियम प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि इनके जल में भी मैग्नीशियम क्लोराइड उपस्थित होता है जिसे प्राकृतिक लवण जल भी कहते हैं। सोवियत संघ में मैग्नीशियम के भंडार क्रीमिया (साकी तथा सासिक-इवाश झीलें), वोल्गा नदी के आसपास के इलाकों (एल्टन झील) तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में हैं।

हां, तो आपको पता चल गया है कि मैग्नीशियम क्या चीज है और इसे प्राप्त कैसे किया जाता है। परंतु क्या आप जानते हैं कि इस धातु तथा इसके यौगिकों का उपयोग क्या है?

बहुत अधिक हलका होने के कारण मैग्नीशियम निर्माण-कार्य के लिये एक अच्छे पदार्थ का काम कर सकता है। परंतु दुर्भाग्यवश शुद्ध रूप में यह धातु बहुत ही कोमल तथा अस्थायी होती है। इसी कारण इंजीनियर लोग इसको अन्य धातुओं के साथ मिलाकर विभिन्न ऐलॉय बनाते हैं। मैग्नीशियम के ऐलुमिनियम, जिंक तथा मैंगनीज ऐलॉयों का उपयोग विस्तृत है। इस गुट के हर सदस्य की साझेदारी समान है: ऐलुमिनियम तथा जिंक ऐलाय की मजबूती बढ़ाते हैं, मैंगनीज ऐलॉय की संक्षारण-प्रतिरोधता उच्च करता है। और मैग्नीशियम ऐलॉय का वजन हलका बनाये रखता है। मैग्नीशियम ऐलॉयों के बने पुर्जे ऐलुमिनियम के पुर्जों के मुकाबले 20-30% हलके तथा ढलवें लोहे और इस्पात के पुर्जों की तुलना में 50-75% हलके होते हैं। हाल में कई देशों में निर्माण-कार्य में प्रयुक्त मैग्नीशियम और लीथियम के ऐलॉय से बने ढांचों का उपयोग करने का विचार है। कोई संदेह नहीं कि यह ऐलॉय 'बेरोजगार' नहीं रहेगा।

हवाई जहाजों के निर्माण में मैग्नीशियम ऐलॉयों के हलके वजन के कारण इनका बहुत बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जा रहा है। 1934 में ही सोवियत संघ में एक हवाई जहाज "सेर्गो आर्झोनिकीद्जे" बनाया गया, जिसमें करीब सारे के सारे पुर्जे मैग्नीशियम ऐलॉयों के बने थे। यह जहाज सभी परीक्षणों में सफल रहा तथा लंबे अर्से तक कठिन उड़ानें भरता रहा। दूसरे महायुद्ध के समय मैग्नीशियम ऐलॉयों से हवाई जहाजों के पहिये, उपकरणों की बाडी और दूसरे पुर्जे बनाये जाते थे।

राकेटों के निर्माण में भी मैग्नीशियम बहुत प्रचलित है। मैग्नीशियम ऐलॉय की

तापरोधकता की बदौलत अन्तरिक्ष-यानों में इससे बने बाहरी हिस्से स्टील के बने हिस्सों की तुलना में कम गर्म होते हैं।

मोटरकारों के निर्माण, कपड़े-उद्योग, पुस्तकों के प्रकाशन, रेडियो-तकनीक, प्रकाशिकीय उपकरणों में हलके ऐलायों का उपयोग किया जा रहा है। मैग्नीशियम धात्विकी में भी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न धातुओं (वैनेडियम, क्रोमियम, टाइटेनियम, जिर्कोनियम आदि) के उत्पादन में इस धातु का प्रयोग एक अपचायक के रूप में किया जाता है। गलित लौह में मैग्नीशियम मिलाने से लौह की संरचना तथा यांत्रिकीय गुण उत्तम हो जाते हैं। इसके अलावा मैग्नीशियम इस्पात तथा ऐलॉयों के अपचयन में भी सहायक सिद्ध होता है (यह उनके अंदर आक्सीजन की मात्रा कम कर देता है जिसकी उपस्थिति हानिकारक होती है)।

सोवियत संघ में इंजीनियर पैट्रोल-उद्योग में भी मैग्नीशियम का इस्तेमाल कर रहे हैं। कस्पियन सागर में तेल की निकासी के उद्देश्य से जो प्लेटफार्म लगाये गये हैं, उनके स्टील के ढांचों पर मैग्नीशियम की संरक्षी परत चढ़ायी गयी है। इंग्लैंड के इंजीनियरों ने मैग्नीशियम के लिये एक और नया काम ढूंढ़ लिया है। उन्होंने इस धातु के ऐलॉयों से एक विशेष प्रकार का कवच बनाया है जो पानी के अंदर बहुत अधिक जल-स्थैतिक दाब सहने की क्षमता रखता है।

मैग्नीशियम (पाउडर, तार या रिबन) के जलने पर तीव्र, चमकीली, झिलमिली ज्वाला निकलती है। इस अद्वितीय गुण के कारण युद्ध-सामग्री के निर्माण में मैग्नीशियम का बहुत बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। मैग्नीशियम से सिग्नल देने वाले राकेट,

ट्रेसर बुलेट, गोले तथा अग्नि-बम्ब बन जाते हैं। कुछ समय पहले फोटोग्राफर ल इस तत्त्व का बहुत प्रयोग करते थे: "एक दो ... तीन ... फोटो खींच रहा हूँ"। उ इतना कहते ही मैग्नीशियम पाउडर : से जल उठता था और उसका प्रकाश फो के इच्छुकों के चेहरे स्पष्ट कर देता थ परंतु अब इस कार्य में मैग्नीशियम पाउ प्रयुक्त नहीं किया जाता, उसकी जगह शक्ति शाली विद्युत बल्ब इस्तेमाल किये जाते

लेकिन इससे मैग्नीशियम की सेहत कोई असर नहीं पड़ा। उसके पास इ भी ज्यादा जरूरी काम हैं। वह सौर ऊ के संचयन जैसे महत्त्वपूर्ण काम में भ लेता है। यह धातु क्लोरोफिल का एक घ है जो एक महान जादूगर की तरह स ऊर्जा का अवशोषण करता रहता है। क्लो फिल कार्बनिक एसिड तथा जल को सम्मि कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित कर देता – शर्करा, स्टार्च आदि, जो मनुष्यों त जंतुओं के पोषण के लिये अति आवश्य

होते हैं। कार्बनिक पदार्थों के संघटन की इस प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण (photo synthesis) कहते हैं। इसके दौरान पत्तियां आक्सीजन निःश्वासित करती हैं। क्लोरोफिल के बिना जीवन असंभव है तथा मैग्नीशियम के बिना क्लोरोफिल असंभव है क्योंकि इसके अंदर हमेशा इस तत्त्व की 2% मात्रा उपस्थित रहती है। यह क्या बहुत ज्यादा है? आप खुद ही इस बात का फैसला कर सकते हैं: वनस्पतियों के क्लोरोफिल में कुल मिलाकर 10 खरब टन मैग्नीशियम विद्यमान है। वनस्पतियों के अतिरिक्त सभी प्राणियों में भी क्लोरोफिल होता है। अगर आपका वजन 60 किलोग्राम है तो आपके शरीर के अंदर लगभग 25 ग्राम मैग्नीशियम होना चाहिये।

कुछ वर्ष पहले अमरीका में मिनेसोटा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि अंडे के छिलके में जितना ज्यादा मैग्नीशियम होगा, वह उतना ही ज्यादा मजबूत होगा। इससे यह निष्कर्ष निकला कि अगर मुर्गियों का दाना बदल दिया जाये तो उनके अंडों की मजबूती बढ़ायी जा सकती है। यह खोज मुर्गी-पालन उद्योग के लिये कितना अधिक महत्त्व रखती है इसकी कल्पना आप निम्न आंकड़ों से कर सकते हैं – अकेले मिनेसोटा राज्य में हर साल 10 लाख डालर से ज्यादा मूल्य के अंडे टूट कर व्यर्थ जाते हैं।

मैग्नीशियम का चिकित्सा में विस्तृत उपयोग किया जाता है। ऊपर हम एप्स्म लवण – सल्फ्यूरिक अम्ल के मैग्नीशियम लवण (मैग्नीशियम सल्फेट) का वर्णन कर चुके हैं जो एक प्रभावकारी मृदु विरेचक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। उच्च जठर अम्लता, हृद्दाह तथा अम्ल विषाक्तन के उपचार

में शुद्ध मैग्नीशियम आक्साइड (भर्जित मैग्नीशियम) का प्रयोग किया जाता है। मैग्नीशियम परआक्साइड पेट की गड़बड़ी दूर करने की बेहतरीन दवा के नाम से प्रसिद्ध है।

आंकड़ों से यह पता चला है कि गर्म जलवायु वाले देशों के लोगों की रुधिर वाहिकाएं ठंडे देशों के वासियों की रुधिर वाहिकाओं के मुकाबले कम ऐंठती हैं। मालूम है कि मैग्नीशियम के कुछ लवणों के अंतर्धिरीय या अंतर्पेशीय इंजेक्शन से रुधिर वाहिकाओं की ऐंठन दूर की जा सकती है। फल और सब्जियां खाने से मनुष्य के शरीर के अंदर इन लवणों की आवश्यक मात्रा जमा हो जाती है। खुमानी, आड़ू तथा फूल गोभी में मैग्नीशियम की भरपूर मात्रा होती है। एशिया के लोगों के भोजन में मैग्नीशियम काफी होता है, इसी कारण से इन लोगों को यूरोप व अमरीका के लोगों के मुकाबले ऐथिरोस्क्लेरोसिस तथा अन्य हृद्रोग कम होते हैं। अंग्रेज डाक्टरों की सिफारिश है कि शरीर के लिये मैग्नीशियम की आवश्यक आधी

दैनिक मात्रा (0.3-0.5 ग्राम) को पूरा करने के लिये मनुष्य को दिन में चार केले खाने चाहियें।

हंगरी के वैज्ञानिकों ने जानवरों पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि अगर जीव के अंदर मैग्नीशियम की कमी है तो उसे हृद्रोग होने की ज्यादा संभावना है। कुछ कुत्तों को मैग्नीशियम की भरपूर मात्रा वाले लवणों का भोजन खिलाया गया और दूसरे कुत्तों को मैग्नीशियम की बहुत कम मात्रा दी गयी। परिणाम यह हुआ कि जिन कुत्तों ने मैग्नीशियम कम खाया था वे हृद्रोग के शिकार हो गये।

चिड़चिड़े तथा आसानी से उत्तेजित हो जाने वाले लोगों को शांत प्रकृति वाले लोगों के मुकाबले हृद्रोग ज्यादा होते हैं। इसका कारण यह है कि जिस समय वे उत्तेजित होते हैं, उनके अंदर उपस्थित मैग्नीशियम "जलने लगता है"।

फ्रेंच जीवविज्ञानियों का विचार है कि बीसवीं शताब्दी की गंभीर समस्या – श्रांति के इलाज में भी मैग्नीशियम सहायक सिद्ध हो सकता है। अनुसंधान कार्यों से यह पता चला है कि पूर्णतया स्वस्थ लोगों की तुलना में थके हुए लोगों के रुधिर में मैग्नीशियम की मात्रा कम होती है। नार्मल "मैग्नीशियम वक्र" में अगर जरा सा भी विचलन आ जाता है तो मनुष्य पर इसका थोड़ा-बहुत बुरा असर जरूर पड़ता है।

हाल में ही फ्रांस के जीवविज्ञानियों ने एक बड़ी रोचक बात बतायी है। उनका कहना है कि संतान का लिंग कुछ तत्त्वों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये, अगर एक भावी मां पोटेशियम की अधिक मात्रा वाला भोजन खाती है तो उसके लड़का पैदा होने की ज्यादा संभावना है परंतु अगर उसके भोजन में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम की बहुतायत है तो लड़की पैदा होने की संभावना है। आशा है कि डाक्टर लोग शीघ्र ही भावी माताओं के लिये विशेष मेनू निश्चित कर लेंगे जिसके आधार पर "इच्छानुसार" लड़का या लड़की पैदा किये जा सकेंगे। परंतु इससे पहले यह देखना पड़ेगा कि इन तत्त्वों का यह असर मनुष्य पर पड़ता भी है या नहीं। क्योंकि फिलहाल ये प्रयोग ... गायों तक सीमित हैं।

मैग्नीशियम यौगिकों का उपयोग केवल चिकित्सा तक ही सीमित नहीं है। उदाहरण के लिये, मैग्नीशियम आक्साइड रबड़ उद्योग में, सीमेंट तथा उच्चतापीय ईंटों के उत्पादन में प्रयुक्त किया जाता है। मैग्नीशियम पर-आक्साइड का प्रयोग कपड़ों के श्वेतन में किया जाता है। मैग्नीशियम सल्फेट वस्त्र तथा कागज उद्योग में तीक्ष्ण रंजक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसका कार्बाइट तापरोधक-सामग्रियों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

मैग्नीशियम की गतिविधियों का एक और विस्तृत क्षेत्र है – कार्बनिक रसायन। स्प्रिट तथा ऐनिलीन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्बनिक पदार्थों के निर्जलीकरण में मैग्नीशियम पाउडर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। कार्बन-मैग्नीशियम यौगिक बहुत महत्त्व रखते हैं (इनके अंदर मैग्नीशियम का परमाणु सीधा कार्बन के परमाणु के साथ आबंधित होता है)। इन पदार्थों का संश्लिष्ट रसायन में बहुत अधिक संख्या में प्रयोग किया जाता है। क्षारीय मैग्नीशियम हैलाइड इनका एक बढ़िया उदाहरण है। इनमें हैलोजेन (क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन) भी शामिल हैं। इन यौगिकों का महत्त्व समझाने के लिये इतना बताना ही काफी है कि 1912 में फ्रेंच रसायनज्ञ ग्रिगनार्ड को क्षारीय मैग्नीशियम हैलाइड तथा कार्बनिक यौगिकों के संश्लेषण की विधि खोजने के उपलक्ष में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

...इस प्रकार हमने यह देख लिया है कि प्रकृति तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में मैग्नीशियम विस्तृत भूमिका निभाता है। लेकिन हमारे विचार से अभी यह कहने में जल्दी नहीं करनी चाहिये कि हमें इस तत्त्व की हर बात पता चल गयी है।

मैग्नीशियम ऐलॉय चंद्रमा पर पहुँच चुके हैं। स्टेशन "लूना 24" पर चंद्रमा की मिट्टी का नमूना प्राप्त करने के लिये जो स्वचलित ड्रिल लगाया गया था उसके पुर्जों के निर्माण में इन ऐलॉयों का प्रयोग किया गया था। इस ड्रिल रूपी रोबोट में कई विशेषताएं होनी चाहिये थीं। पहली बात तो यह कि वह हलका होना चाहिये था क्योंकि अगर एक किलोग्राम वजन भी फालतू होता तो इसके लिये बड़ी मात्रा की अतिरिक्त ईंधन की जरूरत पड़ती। दूसरी बात यह कि इसके पुर्जे पूर्णतया मजबूत होने चाहिये थे। अगर इस बात में जरा सा भी संदेह होता कि वक्त पर वे खराब हो सकते हैं तो उन्हें इतनी जिम्मेदारी का काम नहीं सौंपा जा सकता था। इस बात में कोई शक नहीं कि चंद्रमा की सतह पर ड्रिलिंग का काम बहुत ही उत्तरदायी तथा कठिन था।

इंजीनियरों ने स्वचलित ड्रिल के निर्माण-कार्य में अति हलके तथा अति मजबूत टाइटेनियम तथा मैग्नीशियम ऐलॉय प्रयुक्त करने का निश्चय किया। इस ड्रिल को अंतरिक्ष में भेजने से पहले पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा अत्यधिक कठोर पर्वती चट्टानों की ड्रिलिंग करके इसकी परीक्षा की गयी। आरम्भ में यह कार्य साधारण जलवायुवी परिस्थितियों में और उसके बाद एक बहुत बड़े चैम्बर में गंभीर निर्वात्त में चंद्रमा जैसा ताप उत्पन्न करके (दिन के वक्त $+110°C$ तथा रात को $-120°C$) किया गया। सब जगह ड्रिल ने सफलतापूर्वक कार्य किया। शीघ्र ही स्वचलित स्टेशन की उड़ान भी सफलतापूर्वक संपन्न हो गयी और चंद्रमा की मिट्टी का नमूना पृथ्वी पर पहुँच गया।

मृदा से "रजत"

रोमन सम्राट टिबेरियस "खतरे" की जड़ ही मिटा देता है – पेरिस की प्रदर्शनी में सनसनी – सम्राट के महल में भोज का आयोजन–एक 'सांठगांठ'–चीन के एक मकबरे का रहस्य–इंजीनियर की दूरदर्शिता–ऐलुमिनियम के "साथियों" की खोज–वैज्ञानिक विल्म को सफलता में विश्वास नहीं आता–"रैकों" का निर्माण बंद कर दिया जाता है – संग्रहालय में रखी एक चीज की वास्तविकता कुछ और ही निकली – हर बुराई में कुछ अच्छाई भी होती है – उपग्रह "डको" रेडियो-संकेत प्रतिबिंबित करता है – 'ऐलुमिनौट' समुद्र में डुब रहा है – मास्को और लेनिनग्राद के बीच – "सेन्ट ऐलुमिनियम नामक गिरजा" – बियर-बार खुल जायेगा ? – घड़ी पर और छाती में – गिटार की धुन हो जाये – कंबल एक सिगरेट-केस के अंदर आ जाता है – चंद्रमा की जगह मंगल ग्रह की हालत क्या है? –ऐलुमिनियम कूड़े-कचरे से बनाया जाता है

प्राचीन इतिहासकार प्लीनी ज्येष्ठ ने 2000 वर्ष पुरानी एक अनोखी घटना का वर्णन किया है। एक बार रोमन सम्राट टिबेरियस के दरबार में एक अनजान व्यक्ति हाजिर हुआ। उसने सम्राट को एक चांदी जैसा चमकीला परंतु वजन में बहुत हलका प्याला भेंट किया और बताया कि यह धातु उसने मृदा से प्राप्त की है और इस धातु का अभी तक किसी और को पता नहीं है। सम्राट को उस कारीगर का धन्यवाद करना चाहिये था परंतु वह दूरदर्शी नहीं था। उसे डर लगा कि कहीं यह धातु उसके खजाने में भरे सोने-चांदी का महत्त्व न खत्म कर दे, अतः उसने कारीगर का सिर कटवा दिया तथा उसकी वर्कशाप भी नष्ट करवा दी जिससे कि भविष्य में इस "खतरनाक" धातु को कोई और न बना सके।

यह कहना कठिन है कि घटना वास्तविक है या काल्पनिक। परंतु हां, "खतरा" जरूर हट गया और वह भी, अभाग्यवश काफी लंबे अर्से के लिये। इस घटना के लगभग 1500 वर्ष बाद केवल सोलहवीं शताब्दी में प्रतिभाशाली जर्मन चिकित्सक तथा प्रकृतिविद् फिलिप औरेलिस थिओफास्टस पारासेलस ने ऐलुमिनियम के इतिहास में एक नया पृष्ठ लिखा। विभिन्न पदार्थों तथा खनिजों, जिनमें ऐलम भी शामिल थे, का अध्ययन करके पारासेलस ने यह स्थापित किया कि ऐलम एक विशेष प्रकार की मृदा के लवण हैं तथा किसी अज्ञात धातु का आक्साइड इनका एक घटक है। आगे चलकर इस आक्साइड का नाम ऐलुमिना रखा गया।

पारासेलस ने जिन ऐलमों पर ध्यान दिया था वे प्राचीन काल में भी ज्ञात थे। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस, जो ईसा से 5 शताब्दी पूर्व जीवित थे, के कथनानुसार प्राचीन काल में लोग कपड़ों के रंजन के लिये एक खनिज अभिकर्मक का प्रयोग करते थे जिसे वे "ऐलुमेन" कहते थे। यह वही 'ऐलम' थे जिनका अध्ययन जर्मन वैज्ञानिक ने किया।

जहां तक रूस की बात है तो ऐलमों का सर्वप्रथम वर्णन आठवीं-नौवीं शताब्दियों के इतिहास में मिलता है। यहां भी ऐलमों का प्रयोग कपड़ों के रंजन तथा मोरक्को चमड़े के उत्पादन में किया जाता था। मध्ययुग में यूरोप में कई ऐलम प्लांट चालू हो गये थे।

1754 में जर्मन रसायनज्ञ मारग्राफ को ऐलम मृदा प्राप्त करने में सफलता मिल गयी जिसकी चर्चा 200 साल पहले पारासेलस ने की थी। कई दशकों बाद अंग्रेज वैज्ञानिक हेम्फ्री डेवी ने ऐलम में छिपी धातु को प्राप्त करने का प्रयास किया। 1807 में उन्हें क्षारों के विद्युत-अपघटन से सोडियम तथा पोटेशियम प्राप्त करने में सफलता मिल गयी परंतु इसी ढंग से वह ऐलम का अपघटन नहीं कर पाये। कुछ सालों बाद इसी तरह का प्रयास स्वीडिश वैज्ञानिक बेर्जेलियस ने किया परंतु वह भी असफल रहे। यह सब होते हुए भी वैज्ञानिकों ने उनके "काबू से बाहर" इस धातु का नाम रखने का फैसला किया। बेर्जेलियस ने इसका नाम बदल कर ऐलु-मिनियम और बाद में डेवी ने थोड़ा सासुधार करके "ऐलुमिनियम" रख दिया।

प्राचीन रोम के उस अज्ञात कारीगर की तरह धात्विक ऐलुमिनियम प्राप्त करने में सर्वप्रथम सफलता एक डेनिश वैज्ञानिक एर्स्टेड को मिली। 1825 में एक रसायनिक पत्रिका में उनका एक लेख छपा जिसमें

यह बताया गया था कि प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप वैज्ञानिक ने "एक ऐसी धातु का टुकड़ा प्राप्त किया है जिसका रंग तथा चमक टिन जैसी है"। परंतु यह पत्रिका बिलकुल भी लोकप्रिय नहीं थी जिसके कारण वैज्ञानिकों को एर्स्टेड की खोज का पता नहीं चला। उन दिनों एर्स्टेड खुद विद्युचुंबक संबंधी अनुसंधान-कार्य में इतने ज्यादा व्यस्त थे कि उन्होंने अपनी इस खोज पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

इस घटना के 2 साल बाद युवा परंतु पहले से ही विख्यात जर्मन रसायनज्ञ व्योलर अपने मित्र एर्स्टेड से मिलने कोपेनहैगन आये। एर्स्टेड ने उन्हें बताया कि वे ऐलुमिनियम की प्राप्ति पर आगे और कोई प्रयोग नहीं करने जा रहे हैं। परंतु व्योलर की इस धातु में बहुत ज्यादा दिलचस्पी थी, अतः जैसे ही जर्मनी लौटे, उन्होंने तुरंत इस समस्या पर कार्य शुरू कर दिया। 1827 के अंत में उनका एक लेख छपा जिसमें उन्होंने इस नयी धातु को प्राप्त करने की विधि का वर्णन किया था। सच कहें कि व्योलर की इस विधि द्वारा ऐलुमिनियम को केवल दानों के रूप में प्राप्त किया जा सकता था जिनका आकार एक पिन की टोपी से ज्यादा बड़ा नहीं था। परंतु वैज्ञानिक ने प्रयोग जारी रखे और अंत में उन्हें ऐलुमिनियम द्रव्य के रूप में प्राप्त करने में सफलता मिल ही गयी। परन्तु इस कार्य में... 18 साल लग गये।

उस समय तक यह नयी धातु काफी प्रसिद्ध हो गयी थी, परंतु बहुत कम मात्रा में प्राप्त होने के कारण इसका मूल्य स्वर्ण से भी अधिक था तथा इसे प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं था।

यह कोई अचंभे की बात नहीं कि यूरोप के एक राजा ने जब ऐलुमिनियम के बटनों वाला कुरता पहनना शुरू कर दिया, वह अन्य राजाओं को तुच्छ नजरों से देखने लगा। ये राजा और तो कुछ नहीं कर सके, बस, इस धनी राजा से जलने जरूर लगे और उस दिन का इंतजार करने लगे, जब वे भी ऐसा कुरता बनवा सकेंगे।

खुशकिस्मती से उन्हें ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा: 1855 में पेरिस में आयोजित एक विश्व प्रदर्शनी में "मृदा से प्राप्त रजत" दिखाया गया, जिसने सारी दुनिया में तहलका मचा दिया। इस प्रदर्शनी में ऐलुमिनियम की पट्टिकाएं तथा सिल्लियां दिखायी गयी थीं जिन्हें फ्रेंच वैज्ञानिक तथा उद्योगपति सैन्ट-क्लेर डेविल ने प्राप्त किया था।

इस प्रदर्शनी से पूर्व निम्न घटनायें घटीं। नैपोलियन तृतीय उन दिनों फ्रांस का सम्राट था, जो "महान चाचे का छोटा भतीजा"

के नाम से प्रसिद्ध था। सम्राट को अपना ठाठ-बाठ दिखाने का बहुत शौक था। एक बार उसने एक भोज का आयोजन किया जिसमें सम्राट के परिवार के सदस्यों तथा प्रतिष्ठित मेहमानों को ऐलुमिनियम की छुरियां तथा कांटे दिये गये और बाकी सब लोगों को सम्राट की ज्यादती बहुत चुभ रही थी तथा खाने की तनिक भी इच्छा नहीं हो रही थी, परंतु किया क्या जाता। उन दिनों सम्राट की भी इतनी हैसियत नहीं थी कि वह हर मेहमान के लिये ऐलुमिनियम की छुरी और काँटे का प्रबंध कर सके।

शीघ्र ही नैपोलियन ने एक ऐसी ढीठ योजना तैयार की जिससे उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल जाती। परंतु सम्राट का मुख्य उद्देश्य यही था कि दूसरे राजाओं को कैसे नीचा दिखाया जाये। उसने अपने सैनिकों को ऐलुमिनियम के कवच पहनाने का फैसला किया। सम्राट ने सैन्ट-क्लेर डेविल को बहुत बड़ी धनराशि देकर ऐलुमिनियम की बड़ी मात्रा तैयार करने का आदेश दिया। डेविल ने व्योलर की विधि के आधार पर ऐलुमिनियम बनाने की आवश्यक तकनीक ढूंढ़ निकाली परंतु फिर भी धातु का मूल्य कम नहीं हुआ।

यही कारण था कि फ्रेंच सैनिकों को ऐलुमिनियम के कवच पहनकर घूमने का मौका नहीं मिला परंतु सम्राट ने अपने निजी अंगरक्षकों का ख्याल फिर भी रखा। शीघ्र ही नैपोलियन के अंगरक्षकों ने ऐलुमिनियम के कवचों में पेरेड करनी शुरू कर दी।

फ्रांस के बोनापार्टवादी क्षेत्रों ने सैन्ट-क्लेर डेविल द्वारा शुद्ध ऐलुमिनियम की प्राप्ति की बात से लाभ उठाकर यह प्रचार करने की कोशिश की कि इस धातु के

आविष्कार का श्रेय फ्रांस का है। परन्तु सैन्ट-क्लेर डेविल ने एक वास्तविक वैज्ञानिक होते हुए इस झूठ दावे का एक अनोखा उत्तर दिया। उन्होंने अपने ऐलुमिनियम से एक तमगा बनाकर इस पर फ्रिड्रिख व्योलर का चेहरा तथा 'सन् 1827' अंकित किया और जर्मन वैज्ञानिक को उपहारस्वरूप भेंट किया।

इन्हीं दिनों विश्व प्रदर्शनी में "डेविल का रजत" दिखाया गया। हो सकता है कि प्रदर्शनी के आयोजकों ने ऐलुमिनियम को विस्तृत उपयोग वाली धातु मान कर प्रदर्शनी में रख दिया था परंतु इससे धातु की विरलता कम नहीं हुई। हां, यह बात जरूर है कि दूरदर्शी लोग तभी यह समझ गये थे कि बटन तथा कवच के रूप में ऐलुमिनियम का उपयोग इस धातु के इतिहास की बहुत छोटी घटनाएं हैं। सुप्रसिद्ध रूसी लेखक नि० चेरनीशेव्स्की (1828-1889) ने जब ऐलुमिनियम की बनी चीजों को पहली बार देखा

तो उन्होंने निम्न शब्दों में इस धातु की प्रशंसा की : "इस धातु का भविष्य उज्जवल है। दोस्तो, आपके सामने समाजवाद की धातु रखी हुई थी।" 1863 में प्रकाशित उनके उपन्यास "क्या करना है?" में निम्न शब्द मिलते हैं : "...इस अंदरूनी घर की वास्तु-कला कितनी सरल है, खिड़कियों के बीच की दीवार के हिस्से कितने छोटे-छोटे हैं, खुद खिड़कियां कितनी विशाल, चौड़ी तथा छत तक ऊंची हैं। ...पर ये फर्श तथा छतें किस चीज की बनी हैं? ये दरवाजे तथा खिड़कियों की चौखटें किस चीज की बनी हैं? यह है क्या चीज? रजत? प्लैटिनम? ... हां, अब मैं समझ गया। साशा* ने मुझे इस धातु का बना एक तख्ता दिखाया था जो कांच की तरह हलका था। अब तो औरतें इस धातु के बने कान के बुंदे तथा जड़ाऊ पिन प्रयोग करने लग पड़ी हैं। और हां, साशा यह भी कह रहा था कि वह दिन दूर नहीं, जब ऐलुमिनियम लकड़ी की जगह ले लेगा और संभव है कि पत्थर की जगह भी इस धातु का प्रयोग होने लगेगा। कितनी अमीरी दिखाई दे रही है! जिधर देखो, उधर ऐलुमिनियम...। इस हाल में आधा फर्श नंगा है और आप देख ही रहे हैं कि वह ऐलुमिनियम का है...।"

उपरोक्त भविष्यवाणी के बावजूद भी उन दिनों ऐलुमिनियम पहले की तरह जौहरी की धातु समझा जाता था। मजे की बात तो यह है कि 1889 में जब मेंडेलीफ लंदन में थे, रसायन के विकास में अद्वितीय योगदान के उपलक्ष में उन्हें एक मूल्यवान उपहार दिया गया: उन्हें स्वर्ण तथा ऐलुमिनियम की बनी एक तराजू भेंट की गयी।

इस बीच फ्रांस में सैंट-क्लरे डेविल ने इस दिशा में बड़े जोर-शोर से काम शुरू कर दिया। शीघ्र ही उन्होंने ला-ग्लैसियेर नामक एक शहर में विश्व का प्रथम ऐलु-मिनियम कारखाना खोल दिया। परंतु ऐलु-मिनियम के उत्पादन के दौरान इतनी ज्यादा विषाक्त गैसें निकलीं कि सारे शहर का वातावरण दूषित हो गया। शहर के निवासियों ने तकनीकी प्रगति की परवाह नहीं की और अपने स्वास्थ्य को प्राथमिकता देते हुए सरकार से इस बात की शिकायत की। सरकार ने कारखाना हटाने का आदेश दे दिया। पहले कारखाना पेरिस के पास एक इलाके में लगाया गया पर बाद में वहां से भी इसे हटा दिया गया और फ्रांस के दक्षिण में ले जाया गया।

इस समय तक अधिकांश वैज्ञानिक यह बात समझ गये थे कि डेविल के भरसक प्रयास के बावजूद भी उसकी विधि का कोई भविष्य नहीं है। विभिन्न देशों में रसा-यनज्ञों ने इस दिशा में अनुसंधान कार्य जारी रखे। 1865 में विख्यात रूसी वैज्ञा-निक बेकेतोव ने ऐलुमिनियम के उत्पादन की एक नयी रोचक विधि प्रस्तुत की जिसे शीघ्र ही फ्रांस तथा जर्मनी के ऐलुमिनियम कारखानों में अपना लिया गया।

ऐलुमिनियम के इतिहास की सबसे महत्त्व-पूर्ण घटना सन् 1886 में घटी जब एक अमरीकी मार्टिन हाल तथा एक फ्रेंच तुस्सेन एरू ने एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में कार्य करके विद्युत अपघटन द्वारा इस धातु के उत्पादन की विधि खोज निकाली। इन दोनों की विधि कोई नयी विधि नहीं थी। इनसे पूर्व 1854

* उक्त उपन्यास का एक पात्र।

में एक जर्मन वैज्ञानिक बुन्सेन ने ऐलुमिनियम के लवणों के विद्युत अपघटन से ऐलुमिनियम प्राप्त करने का सुझाव प्रस्तुत किया था। परंतु उनके इस प्रस्ताव का औद्योगिक प्रयोग केवल 30 साल बाद किया गया। चूंकि विद्युत अपघटन विधि में ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा में आवश्यकता थी अत: यूरोप में इस विधि से ऐलुमिनियम प्राप्त करने का सर्वप्रथम कारखाना न्यूहाउजन (स्वीटजरलैंड) में लगाया गया। इस जगह के चुनाव का मुख्य कारण रेईन नदी का जलप्रपात था जिससे विद्युत बनाने में बहुत कम खर्चा लग रहा था।

और आज 100 से भी ज्यादा साल बीत जाने पर ऐलुमिनियम उत्पादन की बात विद्युत अपघटन के बिना सोची भी नहीं जा सकती। यही वजह है कि वैज्ञानिक एक अजीब चीज देखकर अचंभे में पड़ गये हैं। चीन में सुप्रसिद्ध सेनापति चाऊ-चू का मकबरा है जिसकी मृत्यु तीसरी शताब्दी के आरंभ में हुई थी। कुछ समय पहले जब वैज्ञानिकों ने इस मकबरे पर रखे एक आभूषण का स्पेक्ट्रमी विश्लेषण करके देखा तो उनके आश्चर्य की कमी न रही। परिणाम इतना विचित्र था कि वैज्ञानिकों को कई बार प्रयोग दोहराना पड़ा। हर बार स्पेक्ट्रम यह बता रहा था कि आभूषण में 85% धातु ऐलुमिनियम है अर्थात् प्राचीन कारीगरों ने जिस ऐलॉय से इसे बनाया था उसमें मुख्यत: ऐलुमिनियम का इस्तेमाल किया था। परंतु क्या तीसरी शताब्दी में यह संभव था? उन दिनों मनुष्य विद्युत से बिल्कुल भी परिचित नहीं था और अगर वह जानता भी था तो केवल आकाश की बिजली के रूप में। परंतु इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि मनुष्य ने इस

बिजली का प्रयोग किया होगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल में ऐलुमिनियम प्राप्त करने की कोई दूसरी ही विधि थी।

पिछली शताब्दी के अंत में ऐलुमिनियम का उत्पादन काफी बढ़ गया जिसके फलस्वरूप इसकी कीमत गिर गयी। यह स्वाभाविक था कि जौहरियों की अब इस धातु में कोई रुचि नहीं रही थी परंतु औद्योगिक संसार तुरंत इसकी ओर आकर्षित हुआ। उन दिनों उद्योग के क्षेत्र में बड़ी-बड़ी घटनाएं घट रही थीं: मशीनरी के निर्माण में बहुत तेजी से विकास हो रहा था, मोटर-कारों का निर्माण शुरू हो गया था और इनसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वैमानिकी के क्षेत्र में, जिसमें ऐलुमिनियम एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला था, पहले कदम उठाने का प्रयास किया जा रहा था।

1893 में मास्को में एक रूसी इंजीनियर नि० भूकोव की "ऐलुमिनियम तथा इसकी धात्विकी" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें निम्न शब्दों में इस धातु के महत्त्व का वर्णन किया गया था: "तकनीक में ऐलुमिनियम अद्वितीय भूमिका निभायेगा और अगर सभी धातुओं का नहीं तो अधिकांश परम्परागत धातुओं का स्थान जरूर ले लेगा ..."। इस कथन के कुछ कारण थे; उस समय "मृदा से प्राप्त रजत" के अद्वितीय गुणों का पता चल चुका था। ऐलुमिनियम सर्वाधिक हलकी धातुओं में से एक है। यह धातु ताम्र तथा लौह से लगभग तीन गुना हलकी होती है। साधारण परिस्थितियों में यह धातु रसायनिक रूप से काफी स्थायी रहती है। उच्च सुघट्यता होने के कारण ऐलुमिनियम को लपेट कर 3 माइक्रोन तक मोटी पन्नी बनायी जा सकती है, इससे मकड़ी के जालों जितने बारीक तार खींचे जा सकते हैं: 1000 मीटर लंबाई होने पर इसका भार केवल 27 ग्राम होता है तथा इसे माचिस की एक डिब्बी के अंदर रखा जा सकता है। इतने सारे गुण होते हुए भी इस धातु में एक कमी फिर भी थी; इसकी मजबूती काफी कम थी। इसी कारण वैज्ञानिकों ने अब इस धातु की मजबूती की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया।

पुराने जमाने से यह बात सबको पता है कि धातुओं के मुकाबले उनके ऐलॉय ज्यादा मजबूत होते हैं। इसी कारण धातुकर्मी अब उन "साथियों" की खोज में जुट गये जो ऐलुमिनियम से मिलकर उसे "ताकतवर" बना देंगे। शीघ्र ही उन्हें इस उद्देश्य में सफलता मिल गयी। जैसाकि विज्ञान के इतिहास में कई बार होता है इस बार भी एक आकस्मिक घटना ने इस खोज में निर्णायक भूमिका निभाई ...

यह बीसवीं शताब्दी के आरंभ की बात है। एक बार जर्मन रसायनज्ञ विल्म ने एक ऐसा ऐलॉय बनाया जिसमें ऐलुमिनियम के अलावा कई अन्य धातुएं घटक के रूप में प्रयुक्त की गयी थीं: ताम्र, मैग्नीशियम, मैंगनीज आदि। यह ऐलॉय ऐलुमिनियम से ज्यादा मजबूत था परंतु वैज्ञानिक को ऐसा आभास हो रहा था कि कठोरीकरण से इसकी मजबूती और भी ज्यादा बढ़ायी जा सकती है। उन्होंने इस ऐलॉय के कई नमूने लगभग 600°C तापमान तक गर्म किये और फिर उन्हें पानी में डाल दिया। वैज्ञानिक ने देखा कि कठोरीकरण से प्राप्त परिणामों में असमानता थी जिसके कारण विल्म को अपने उपकरण की परिशुद्धता तथा मापन पर संदेह होने लगा।

वैज्ञानिक कई दिनों तक अपने उपकरण की जांच करते रहे। इस दौरान ऐलॉय के नमूने मेज पर पड़े रहे, उन्हें किसी ने नहीं छेड़ा। जब यंत्र दोबारा कार्य के लिये तैयार हो गया तब विल्म ने नमूनों की ओर ध्यान

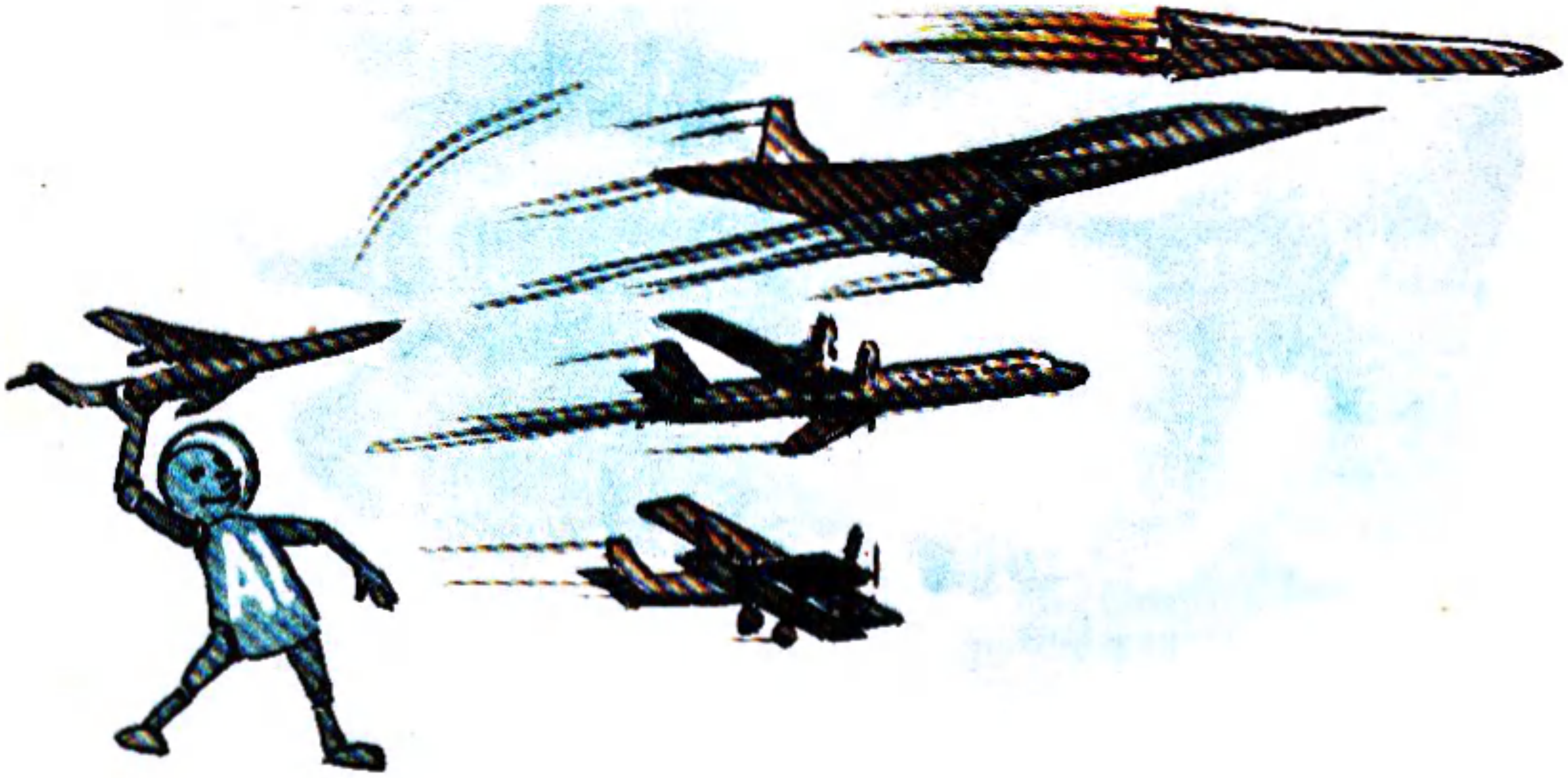

दिया। उन्होंने देखा कि ऐलॉय की मजबूती तो बढ़ गयी थी। वैज्ञानिक ने प्रयोग जारी रखे और अब जो परिणाम प्राप्त हुए उन्हें देखकर विल्म को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था: उपकरण बता रहा था कि नमूनों की मजबूती दुगुनी बढ़ गयी है।

वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों को बार-बार दोहराया और हर बार उन्हें इस बात पर विश्वास करना पड़ा कि कठोरीकरण के कुछ दिनों बाद ऐलॉय की मजबूती बढ़नी शुरू हो जाती है। इस प्रकार विल्म ने एक अद्वितीय परिघटना की खोज कर डाली; उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कठोरीकरण के पश्चात ऐलुमिनियम के ऐलॉयों का खुद बखुद जरण होता रहता है।

विल्म को इस बात का खुद भी पता नहीं था कि जरण प्रक्रिया के दौरान धातु के अंदर क्या प्रतिक्रिया घटती थी परंतु उन्होंने अपने प्रयोगों के आधार पर ऐलॉय के सर्वोत्तम संयोजन तथा उसके ताप उपचार की सर्वोत्तम परिस्थितियां निश्चित कर लीं और अपनी इस विधि का एकस्व अधिकार ले लिया। शीघ्र ही उन्होंने एक जर्मन फर्म को अपना पेटेंट बेच दिया। 1911 में नये ऐलॉय का पहला लाट बाजार में आ गया। इसका नाम ड्यूरैलऐलुमिनियम रखा गया परंतु आगे चलकर इसे ड्यूरैलूमिन नाम से पुकारा जाने लगा।

सन् 1919 में ड्यूरैलूमिन के बने सर्वप्रथम हवाई जहाज आकाश में उड़ने लगे और तभी से ऐलुमिनियम ने सदा के लिये वैमानिकी के साथ संबंध जोड़ लिया। शीघ्र ही इसकी "पंख वाली धातु" के नाम से सारे विश्व में ख्याति फैल गयी। यह पदवी इसे ठीक ही मिली थी क्योंकि इसने पुराने जमाने से चली आ रही "रैकों" को विशाल हवाई जहाजों में परिवर्तित कर दिया था। परंतु उन दिनों इस धातु की कमी थी और इसी

कारण बहुत सारे हवाई जहाजों, विशेष रूप से हलके जहाजों के निर्माण में लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता था।

उन दिनों सोवियत संघ में केवल कोल्चू-गिन अलौहधातु का एक कारखाना था जहां ऐलुमिनियम के एक ऐलॉय "कोल्चूगऐलु-मिनियम" का उत्पादन हो रहा था। इसकी संरचना तथा गुण डूरैलूमिन से काफी मिलते जुलते थे। अब वैज्ञानिकों के सामने मुख्य समस्या यह थी कि ऐलुमिनियम का बड़े पैमाने पर उत्पादन कैसे किया जाये।

1929 के आरंभ में लेनिनग्राद में "क्रास्नी विबोर्भेत्स" नामक कारखाने में ऐलुमिनियम प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे थे। इन प्रयोगों का निर्देशन एक अद्वितीय वैज्ञानिक पा॰ फेदोत्येव कर रहे थे, जिन्होंने इस "पंख वाली धातु" के इतिहास में बहुत सारी महत्त्वपूर्ण घटनाएं लिखी हैं। 27 मार्च 1929 का दिन वैज्ञानिक के लिये शुभ साबित हुआ। इस दिन उन्हें प्रथम 8 किलोग्राम ऐलुमिनियम प्राप्त करने में सफलता मिली। बाद में फेदोत्येव ने इस घटना का महत्त्व निम्न शब्दों में व्यक्त किया: "इस दिन को सोवियत संघ में ऐलुमिनियम के उत्पादन का जन्मदिन समझना चाहिये क्योंकि इस दिन देश में पहली बार देशी माल से ऐलु-मिनियम प्राप्त किया गया। इस कार्य में वोल्खोव पनबिजलीघर की विद्युत का प्रयोग किया गया"। उन दिनों लेनिनग्राद के अखबारों ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि "ऐलुमिनियम की पहली सिल्ली को संग्रहालय की एक स्मरणीय-वस्तु समझना चाहिये तथा सोवियत तकनीक की महान उपलब्धि होने के कारण इसकी एक स्मारक की तरह सुरक्षा करनी चाहिये"। कुछ समय बाद लेनिनग्राद के वासियों ने सोवियत संघ की सोवियतों की पांचवीं कांग्रेस को क्रास्नी विबोर्भेत्स कारखाने में प्राप्त ऐलुमिनियम के कुछ नमूने तथा इस धातु की बनी कई चीजें भेंट कीं।

औद्योगिक प्रयोगों की सफलता देखकर देश में वोल्खोव और दनीपर नदियों के पास कारखाने लगाये गये। पहला कारखाना 1932 में चालू हो गया तथा दूसरा इसके एक साल बाद।

इन्हीं सालों में यूराल के इलाकों में ऐलुमिनियम अयस्कों के विशाल भंडार खोजे गये। इस खोज का इतिहास बहुत रोचक है। 1931 में एक युवा भूविज्ञानी नि॰ कार-भाविन ने यूराल में पाये गये अयस्कों के संग्रहालय में रखे एक नमूने पर ध्यान दिया जिसे अन्य वैज्ञानिकों ने लौह की निम्न मात्रा वाला अयस्क समझ रखा था। कार-भाविन को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ कि इस अयस्क तथा बॉक्साइड (एक पहाड़ी मृदा, जिसमें ऐलुमिनियम बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान होता है) में बहुत अधिक समानता थी। उन्होंने इस खनिज का विश्लेषण किया और यह देखा कि "गरीब लौह अयस्क" वास्तविकता में एक बेहतरीन ऐलुमिनियम अयस्क था। जिस जगह यह अयस्क मिला था वहां भूविज्ञानी इसकी खोज में लग गये और शीघ्र ही उन्हें इस कार्य में सफलता मिल गयी।

इन नये भंडारों के मिलते ही यूराल ऐलुमिनियम कारखाना लगाया गया और इसके कुछ सालों बाद (द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान) बोगोस्लोव्स्की कारखाना। विजय दिवस — 9 मई 1945 के ऐतिहासिक दिन इस कारखाने ने ऐलुमिनियम का पहला लाट तैयार किया।

आज सोवियत संघ में बहुत सारे कारखानों में इस "पंख वाली धातु" का उत्पादन हो रहा है परंतु इसकी मांग बढ़ती जा रही है। निस्संदेह, पहले की तरह आज भी ऐलुमिनियम मुख्यतः वैमानिकी में प्रयुक्त किया जा रहा है। हवाई जहाजों तथा राकेटों के निर्माण में प्रयुक्त सभी धातुओं में प्रथम स्थान ऐलुमिनियम का है। सोवियत संघ में पृथ्वी के प्रथम कृत्रिम उपग्रह का आवरण ऐलुमिनियम ऐलॉयों से बनाया गया था।

1960 में अमरीका ने रेडियो संकेतों के परावर्त्तन के लिये एक कृत्रिम उपग्रह "इको-I" छोड़ा। यह एक विशाल उपग्रह था जिसका व्यास 30 मीटर था। इसका निर्माण पोलिमेर की झिल्ली से किया गया था जिसके ऊपर ऐलुमिनियम की बहुत पतली परत चढ़ी हुई थी। इतना बड़ा आयाम होने पर भी उपग्रह का वजन केवल 60 किलोग्राम था। संयुक्त राज्य अमरीका के 'सेटरन' नामक राकेट में द्रव हाइड्रोजन और द्रव आक्सीजन के टैंकों की निर्माण-सामग्री के रूप में भी ऐलुमिनियम ऐलॉय चुने गये क्योंकि वे विशाल ताप-परास (परम शून्य से 200°C तक) में विश्वसनीय रूप से काम में लाये जा सकते हैं।

अतिशुद्ध ऐलुमिनियम की पन्नी ने एक कृत्रिम उपग्रह में प्रतिदीप्तिशील पर्दे का कार्य किया जिससे सूर्य द्वारा उत्सर्जित आवेशित कणों का अध्ययन किया गया। जब अमरीकी अंतरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रांग तथा एडविन ऑल्ड्रिन चंद्रमा पर उतरे, उन्होंने इसकी सतह पर इसी तरह की एक पन्नी बिछा दी और 2 घंटे तक इस बात का अध्ययन करते रहे कि सूर्य द्वारा उत्सर्जित गैसों का इस पन्नी पर क्या प्रभाव पड़ा। चंद्रमा से वापस लौटते समय अंतरिक्ष यात्री यह पन्नी तथा चंद्रमा की मृदा के कुछ नमूने उठा लाये। इन सब चीजों को उन्होंने ऐलुमिनियम के बने विशेष प्रकार के डिब्बों में रखा था।

ऐलुमिनियम अंतरिक्ष उड़ानों के साथ-साथ समुद्र की गहराइयों के अध्ययन में भी प्रयुक्त किया जा रहा है। कुछ साल पहले अमरीका ने एक ऐसी समुद्रविज्ञानीय पनडुब्बी "ऐलुमिनोट" बनायी है जो 4600 मीटर की गहराई तक जा सकती है। आम तौर पर समुद्री जहाजों तथा पनडुब्बियों के निर्माण में इस्पात का इस्तेमाल किया जाता है परंतु यह विशेष पनडुब्बी ऐलुमिनियम से बनायी गयी है।

यातायात साधनों में भी ऐलुमिनियम का बड़े शौक से प्रयोग किया जा रहा है। आजकल सोवियत संघ में एक सुपरएक्सप्रेस रेलगाड़ी बनायी जा रही है। देखने में यह गाड़ी एक आधुनिक हवाई जहाज के फ्यूजिलेज जैसी है। और इसकी गति भी तो "टू" हवाई जहाज जैसी है। इंजीनियरों ने सुझाव दिया है कि इस एक्सप्रेस का निर्माण ऐलुमिनियम से किया जाये। इस प्रकार की एक गाड़ी बनाकर उसका परीक्षण भी किया गया है। परीक्षण के दौरान गाड़ी पर 300 टन दबाव डाला गया तथा इसका अचंद कंपनों तथा अन्य "आयानों" से सामना कराया गया। इतना सब कुछ होते हुए भी धातु का कुछ नहीं बिगड़ा। अब सोवियत संघ के वासी ऐसी गाड़ी पर सफर कर रहे हैं।

ऐलुमिनियम में उच्च संक्षारण प्रतिरोधता होती है। इसका श्रेय इस धातु की ऊपरी सतह पर जमी एक अति पतली परत को जाता है। यह एक कवच की तरह धातु की आक्सी-

जन से रक्षा करती है। अगर यह परत रूपी कवच न हो तो ऐलुमिनियम वायु में ही भभक उठेगा और चमकीली ज्वाला के साथ जलने लगेगा। इसी सुरक्षा कवच के कारण ऐलुमिनियम दसियों सालों तक रसायनिक उद्योग जैसे खतरनाक कार्यों में सफलतापूर्वक कार्य करता रहता है जबकि अन्य धातुओं के "स्वास्थ्य" पर ऐसे उद्योगों का बहुत बुरा असर पड़ता है।

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि ऐलुमिनियम में एक और कीमती गुण है: यह धातु विटामिनों को नष्ट नहीं करती है। यही कारण है कि इस धातु से मक्खन के उत्पादन तथा चीनी के परिष्करण के लिये आवश्यक उपकरण तथा मिठाई व बियर उद्योग का साज-सामान भी बनाया जाता है। इसलिये यह संयोग की बात नहीं कि अन्तरिक्ष-यात्रियों का भोज और फलों का रस ऐलुमिनियम ट्यूबों में रखा जाता है। पृथ्वी पर भी खाद्य-उद्योग के लिये टिनों का निर्माण ऐलुमिनियम से ही किया जाता है।

निर्माण कार्य में इस धातु की स्थिति बहुत मजबूत है। आज से बहुत साल पहले सन् 1890 में अमरीका में इस धातु का प्रयोग एक घर के निर्माण में किया गया। 50 साल बाद भी इस घर में लगी ऐलुमिनियम की सभी चीजें सही सलामत दिखाई दीं। 1897 में पहली बार इस धातु से एक बिल्डिंग की छत बनायी गयी जिसको आज तक एक भी बार मरम्मत की जरूरत नहीं पड़ी है।

मास्को में क्रेमलिन के अंदर स्थित कांग्रेस का भव्य प्रासाद ऐलुमिनियम तथा प्लास्टिक से बनाया गया है। 1958 में ब्रसेल्स में आयोजित विश्व प्रदर्शनी में सोवियत संघ का मण्डप ऐलुमिनियम तथा कांच से बनाया गया था। यह मण्डप इतना सुंदर था कि बेल्जियम के अखबारों ने इसका नाम "समाजवाद का महल" रख दिया। पुलों, बिल्डिंगों, डामों, पनबिजलीघरों आदि के ढांचों, हैंगरों– हर चीज के निर्माण में इस अद्भुत हलकी धातु का प्रयोग किया जा रहा है।

वैद्युत इंजीनियरी इस धातु की मुख्य उपभोक्ता है। ऐलुमिनियम का उपयोग उच्चवोल्टता लाइनों, मोटरों व ट्रान्सफोर्मरों की कुंडलियों, केबलों, कंडेसरों व बल्बों के बेसों के निर्माण में किया जाता है।

स्टील पर जमी आक्सीजन हटाने के लिये धातुविज्ञानी ऐलुमिनियम का प्रयोग करते हैं। बहुत सारे ऐलॉय ऐलुमिनोतापीय विधियों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। इन प्रक्रियाओं में थर्मिट मिश्रण का मुख्य घटक ऐलुमिनियम ग्रिट होता है। पोलियुरिटेन और ऐलुमिनियम मनुष्य के कृत्रिम हृदय के निर्माण में प्रयुक्त हुए हैं। 1982 में एक अमरीकी बार्नी क्लार्क के हृदय पर किये गये आपरेशन के परिणामस्वरूप यह कृत्रिम उपकरण उसके वक्ष में कई महीनों के दौरान धड़क रहा था।

डाकटिकट संग्रहकर्ताओं के संग्रहण में भी ऐलुमिनियम देखा जा सकता है: 1955 में हंगरी ने एक विचित्र डाकटिकट निकाली। यह टिकट एक ऐलुमिनियम की पन्नी पर छपी हुई थी जिसकी मोटाई 0.009 मिलीमीटर थी। बाद में अन्य कई देशों ने भी ऐसी टिकटें छापीं।

अब ऐलुमिनियम का धागा भी बन गया है (इस धागे पर ऐलुमिनियम की बहुत पतली परत चढ़ी होती है)। इस धागे में अद्वितीय गुण होते हैं: यह शीतन और तापन – दोनों कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस धागे के बने पर्दे अगर खिड़-

कियों पर इस तरह टांग दिये जायें कि धात्विक परत बाहर की ओर रहे तो ये पर्दे प्रकाश की किरणों को तो गुजरने देंगे, परंतु गर्म किरणों को रोक देंगे, जिसकी वजह से गर्मियों के दिनों में भी कमरा ठंडा रहेगा। जाड़ों के दिनों में पर्दों को पलट दें – तब कमरा गर्म रहेगा। इस धागे की बनी बरसाती पहन कर न गर्मी का डर रहेगा और न सर्दी का। अगर इसकी धात्विक परत बाहर की ओर रखेंगे तो गर्मियों में सूर्य की तीव्र किरणों से बचे रहेंगे और अगर इस को उलटा पहन लें तो जाड़ों में ठंड से बचे रहेंगे। चेकोस्लोवाकिया में अब ऐलुमिनियम के कंबलों का उत्पादन शुरू हो गया है जिन्हें गर्मियों में भी ओढ़ा जा सकता है और सर्दियों में भी। मजे की बात तो यह है कि इस प्रकार के एक कंबल का वजन केवल 55 ग्राम है तथा इसे एक सिगरेट केस के अंदर रखा जा सकता है। इस बात में कोई शक नहीं कि भूविज्ञानी, टूरिस्ट, मछुआरे, अन्य शब्दों में, जिन लोगों को धूप या ठंड में काम करना पड़ता है, वे सभी इस नये धागे की जाकेटों तथा टैन्टों की अहमियत जरूर समझेंगे। गर्म जलवायु वाले स्थानों में ऐलुमिनियम की टोपियों, हैटों, गाउनों तथा छतरियों की बहुत कद्र होगी। धात्विक वर्दी एक इस्पात प्रगालक का काम काफी "ठंडा" कर देगी। ऐसी वर्दी से आग बुझाने वालों को भी काफी सहूलियत मिलेगी।

पिछले कुछ समय से वैज्ञानिक तथा इंजीनियर लोग कुछ नये पदार्थों के निर्माण पर बहुत ज्यादा ध्यान दे रहे हैं। इन्हें फोममेटल कहते हैं। इस विरल परिवार के प्रथम सदस्य फोमऐलुमिनियम के बनाने की विधि ढूंढ़ी जा चुकी है। यह नया पदार्थ हद से ज्यादा हलका है। फोमऐलुमिनियम की कुछ किस्मों के 1 घन सेंटीमीटर का वजन केवल 0.19 ग्राम है। बोतल की डाट, जो हमेशा हलकेपन का मानक समझी जाती है, इस पदार्थ का मुकाबला नहीं कर सकती क्योंकि यह इससे 25-30% भारी होती है। फोमऐलुमिनियम के बाद वैज्ञानिक लोगों ने फोमबेरिलियम, फोमटाइटेनियम तथा अन्य अद्वितीय पदार्थ बनाये हैं।

सुप्रसिद्ध कथाकार ह० वैल्स ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में एक उपन्यास लिखा

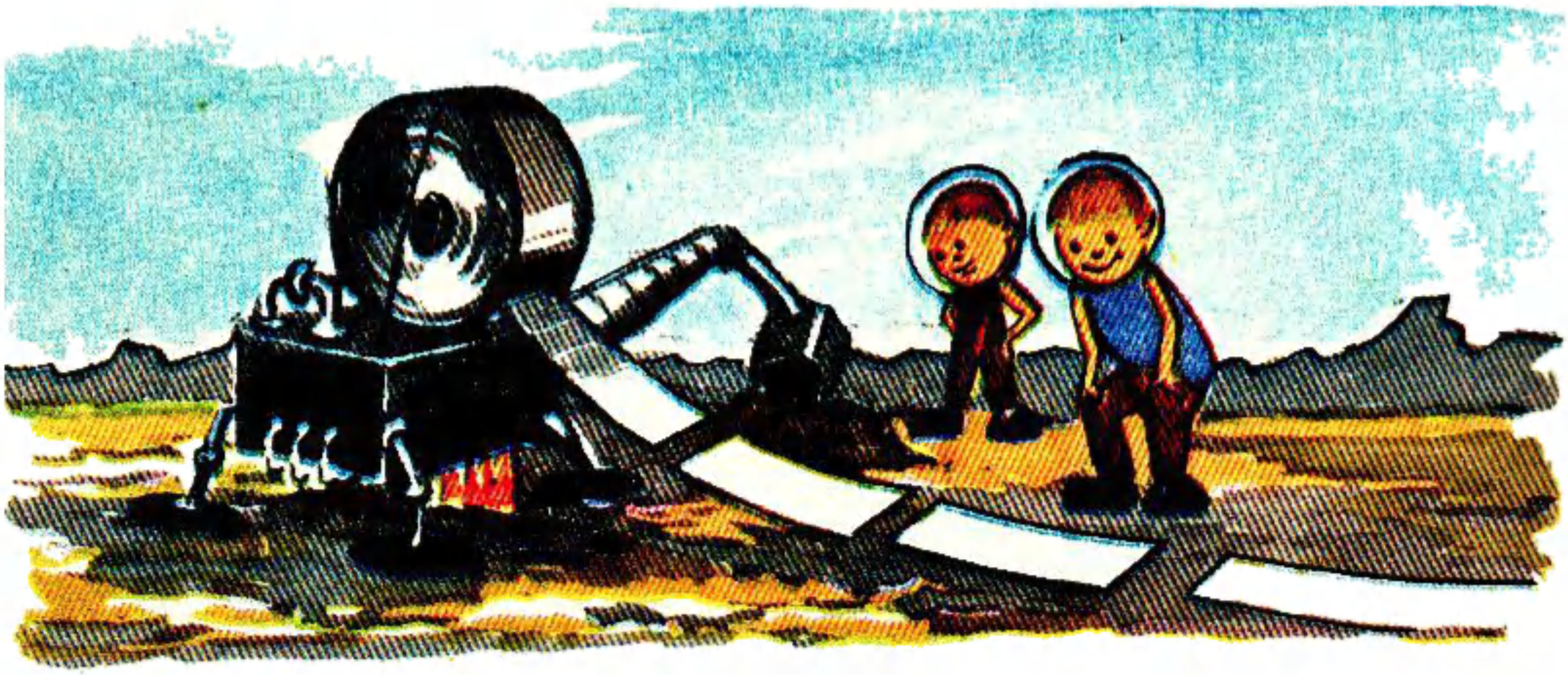

—"संसारों की लड़ाई"। इस में लेखक ने एक ऐसी मशीन का वर्णन किया था, जिसकी सहायता से मंगल ग्रह के वासी ऐलुमिनियम बना रहे थे: "सुबह से लेकर शाम तक यह चुस्त मशीन मृदा से ऐलुमिनियम की कम से कम सौ सिल्लियां जरूर बना देती थीं"।

जिन दिनों लोगों को चंद्रमा की केवल चाक्षुष जानकारी थी, एक अमरीकी अंतरिक्ष वैज्ञानिक ने गणना करके यह बताया कि चंद्रमा की सतह पर प्रति हैक्टर क्षेत्र में लगभग 100 टन शुद्ध ऐलुमिनियम मिल सकता है। वैज्ञानिक का यह मत था कि चंद्रमा एक अतिविशाल प्राकृतिक फैक्टरी की तरह है जहां "सूर्यी हवा" (सूर्य से निकल रहे प्रोटोनों का प्रवाह) लौह, मैग्नीशियम, ऐलुमिनियम अयस्कों को शुद्ध धातुओं में परिवर्तित कर देती है। अभी तक इस परिकल्पना की पुष्टि नहीं हुई है परंतु अमरीकी अंतरिक्ष-यात्रियों तथा सोवियत स्वचलित स्टेशनों से चंद्रमा की मिट्टी के जो नमूने प्राप्त हुए हैं उनके विश्लेषण से यह बात जरूर सिद्ध हो गयी है कि चंद्रमा की मृदा में ऐलुमिनियम आक्साइड काफी मात्रा में विद्यमान है। फिर भी अमरीकी वैज्ञानिकों का मत काफी हद तक सही सिद्ध हुआ। सोवियत स्वचलित स्टेशन 'लूना-20' चंद्रमा की मिट्टी का जो नमूना पृथ्वी पर लाया इसमें शुद्ध ऐलुमिनियम के तीन कण पाये गये। इन कणों का आकार मिलिमीटर के दसवें अंश से कम है। विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी पर ऐलुमिनियम शुद्ध रूप में विद्यमान नहीं है।

ऐसा लगता है कि मंगल तथा चंद्रमा पर "ऐलुमिनियम की समस्या" नहीं है। अच्छा, पृथ्वी पर इसकी क्या स्थिति है? कह सकते हैं कि यहां भी स्थिति ठीक ही है। यह बात जरूर है कि अभी हमारे ग्रह पर मंगल ग्रह पर जैसी ऐलुमिनियम बनाने की मशीनें नहीं हैं तथा पृथ्वी पर ऐलुमिनियम की टनों मात्रा बिखरी नहीं पड़ी है, परंतु पृथ्वीवासियों को शिकायत नहीं होनी चाहिये। प्रकृति ने खुद ही इस बात का ध्यान रखा है कि लोगों को इस अद्भुत धातु की कमी महसूस न हो। भू-पर्पटी में ऐलुमिनियम की मात्रा केवल आक्सीजन तथा सिलिकन की मात्रा से निम्न है, परंतु अन्य सभी धातुओं से अधिक है।

प्रकृति वास्तव में बहुत धनवान है परन्तु मनुष्य को यह "धन" संभाल कर खर्च करना चाहिये। इंजीनियरों ने अब ऐसी कई परियोजनाएं बनायी हैं, जिनके अनुसार शहरों के कूड़े में से उपयोगी घटकों को निकाल कर अलग किया जा सकता है। कूड़े से ऐलुमिनियम प्राप्त करने के लिये इस मशीनरी में एक विशेष प्रकार का विद्युतचुम्बकीय यंत्र लगाया गया है। आप कहेंगे कि ऐलुमिनियम पर चुम्बकीय क्षेत्र का तो कोई असर ही नहीं पड़ता फिर इसकी सहायता से ऐलुमिनियम कैसे अलग की जा सकती है? बात यह है कि अगर ऐलुमिनियम की किसी चीज में प्रत्यावर्त्ती धारा प्रवाहित करके उसे आवश्यक विद्युत क्षेत्र में ले आयें तो कुछ समय के लिये धातु चुम्बकित हो जाती है। बस, इसी वक्त चुम्बक धातु को पकड़ लेते हैं।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि ऐलुमिनियम के कच्चे माल की हमें कमी नहीं है। यह काम अब वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों का है कि वे इस "पंख वाली धातु" के उत्पादन की विधियां विकसित करें तथा इसके उपयोग के नये क्षेत्र खोजें।

पृथ्वी का बेटा

राकेट आकाश में स्थिर हो जाता है – " क्या आपने अपना नाम कभी बदलता है ? " – पृथ्वी के बेटों के सम्मान में – लगभग असंभव कार्य – गलती पर गलती – विस्तृत प्रतिध्वनि – दूध में मक्खी गिर पड़ी – मजाक उड़ाने की कोई जरूरत नहीं है – कैद से छुटकारा – " काला पक्षी " – कितना अधिक सहनशील ! – नाविक नावों की अदला-बदली करते हैं – पटैरा जहाज " रा " – बेतुकी बात – हजार साल बाद – महासागरों की गहराइयों में – दोष दूर किया जा सकता है – और आप इसे विरल कहते हैं ! – आइये , थोड़ी सी कल्पना करते हैं ! – खुले प्रशांतक में टाइटेनियम की पहली खान – आक्सीजन के आलिंग में – कठिन परीक्षण

18 अगस्त 1964 के प्रभातकालीन घंटों में मास्को के शान्तिपथ में (प्रोस्पेक्त मीरा – एक लंबी और चौड़ी सड़क) एक अंतरिक्ष यान की "उड़ान" शुरू हुई। यह अंतरिक्ष यान न तो चंद्रमा पर पहुंचा और न ही शुक्र पर। परंतु फिर भी इसके भाग्य में कोई कम इज्जत नहीं लिखी थी। चांदी जैसी एक धातु का बना यह स्मरण-स्तंभ सदा के लिये मास्को के आकाश में स्थिर हो गया था। इस राकेट ने उस सोवियत व्यक्ति की यादगार अमर की है जिसने अंतरिक्ष के द्वार खोले हैं।

इस राकेट के निर्माणकर्त्ता बहुत दिनों तक इस बात का निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि यह शानदार स्मारक किस चीज से बनाया जाये। पहले उन्होंने इसका डिजाइन कांच से बनाना चाहा, फिर प्लास्टिक से और उसके बाद जंगरोधी स्टील से। अंत में उन्होंने तीनों चीजों को खुद ही अस्वीकार कर दिया। लंबे प्रयोगों के बाद वे इस निश्चय पर पहुंचे कि राकेट के निर्माण के लिये सबसे अच्छी धातु टाइटेनियम रहेगा।

भावी पीढ़ियों को हमारे समकालीनों के वीरतापूर्ण कारनामों के बारे में बताने का श्रेय, टाइटेनियम को क्यों दिया गया?

टाइटेनियम को चिरस्थायी धातु कहने की कोई वजह है। लेकिन इसके गुणों का वर्णन करने से पहले हम इसका इतिहास बताना चाहेंगे।

अगर टाइटेनियम को कोई फार्म भरना पड़े तो फार्म के कालम में – "क्या आपने अपना नाम कभी बदला है?" उसे लिखना पड़ेगा : "हां, 1795 तक मेरा नाम "मेनाकिन" था"। 1791 में एक अंग्रेज पादरी ग्रेगोर ने एक नया तत्त्व खोजा। ग्रेगोर को खनिज तथा रसायन के अध्ययन का शौक था।

लगता है कि इस तत्त्व को अपना नाम अच्छा नहीं लगा और मौका मिलते ही उसने अपने लिये एक अतिसुंदर नाम चुन लिया – टाइटेनियम। इस तत्त्व को ऐसा मौका सन् 1795 में मिला जब एक जर्मन रसायनज्ञ मार्टिन क्लाप्रोत ने एक अन्य खनिज रूटाइल में भी इसे खोज निकाला। टाइटेनियम नाम "टाइटेन" शब्द से बनाया गया। प्राचीन यूनान की पौराणिक कथाओं में पृथ्वी के बेटों को इस नाम से पुकारा जाता था।

दो साल बाद यह पता चला कि ग्रेगोर तथा क्लाप्रोत ने एक ही तत्त्व खोजा था। उस समय से तत्त्व का नाम "टाइटेनियम" पक्का हो गया।

वैज्ञानिक ने कोई तत्त्व खोज लिया तो इसका मतलब यह नहीं हुआ कि उसने तत्त्व को शुद्ध रूप में प्राप्त कर लिया। ग्रेगोर तथा क्लाप्रोत को भी शुद्ध टाइटेनियम नहीं मिला था। उन्हें आक्सीजन के साथ इसका एक यौगिक टाइटेनियम ऑक्साइड (श्वेत रवेदार पाउडर) प्राप्त हुआ था। टाइटेनियम को इसके यौगिकों से अलग करना असंभव सा लग रहा था। पिछली शताब्दी के बहुत सारे प्रसिद्ध रसायनज्ञों ने इस समस्या का हल ढूंढ़ने के प्रयास किये पर सफलता किसी को भी नहीं मिली।

एक बार ऐसा लगा कि अंग्रेज वैज्ञानिक वोलैस्टोन को शायद इस कार्य में सफलता मिल गयी है। 1823 में उन्हें धातुमल में कुछ क्रिस्टल मिले। इनका अध्ययन करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये क्रिस्टल शुद्ध टाइटेनियम के बने थे। इसके 33 साल बाद जर्मन रसायनज्ञ व्योलर ने सिद्ध किया कि ये क्रिस्टल शुद्ध टाइटेनियम न होकर

इसके नाइट्रोजन तथा कार्बन यौगिक थे अर्थात् वोलैस्टोन को गलतफहमी हो गयी थी।

बहुत सालों तक यह समझा जाता रहा कि धात्विक टाइटेनियम प्राप्त करने में सर्व-प्रथम सफलता विख्यात स्वीडिश वैज्ञानिक बर्जेलियस को मिली थी जब उन्होंने पोटेशियम फ्लुओरोटाइटेनेट का धात्विक सोडियम द्वारा अपचयन किया था। परंतु आज जब हम टाइटेनियम तथा बर्जेलियस के उत्पाद के गुणों की तुलना करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्वीडिश विज्ञान अकादमी के सचिव को भी गलतफहमी हो गयी थी क्योंकि अन्य अम्लों के मुकाबले हाइड्रोफ्लु-ओरिक अम्ल में टाइटेनियम तीव्रता से घुल जाता है जबकि बर्जेलियस के टाइटेनियम पर इसका कोई असर नहीं पड़ा था।

केवल 1875 में रूसी वैज्ञानिक द० किरी-लोव को धात्विक टाइटेनियम प्राप्त करने में सफलता मिल गयी। उन्होंने अपने अनुसंधान कार्यों के परिणाम "टाइटेनियम पर अनुसं-धान" नामक पुस्तिका में छापे परंतु ज़ार के रूस में इस अद्वितीय खोज पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया और इस प्रकार उनकी इस खोज से संसार अपरिचित रह गया।

1887 में बर्जेलियस के देशभाइयों नील्सन तथा पीटरसन ने एक वायुरोधी स्टील सिलिंडर में टाइटेनियम टैट्राक्लोराइड का धात्विक सोडियम द्वारा अपचयन करके लगभग शुद्ध टाइटेनियम (लगभग 95%) प्राप्त की।

1895 में फ्रेंच रसायनज्ञ हेनरी मोईसान ने शुद्ध टाइटेनियम प्राप्त करने की दिशा में अगला कदम उठाया। उन्होंने एक आर्क भट्टी में टाइटेनियम डाइआक्साइड का हाइ-ड्रोजन द्वारा अपचयन किया और इस प्रकार

प्राप्त धातु का दो बार परिष्करण किया। इस टाइटेनियम में केवल 2% अशुद्धियां थीं।

आखिरकार 1910 में अमरीकी रसायनज्ञ हंटर ने नील्सन तथा पीटरसन की विधि में कुछ सुधार लाकर कुछ ग्राम शुद्ध टाइटे-नियम प्राप्त कर लिया। इस घटना की चर्चा बहुत सारे देशों में हुई। यही कारण है कि अधिकांश लोग शुद्ध टाइटेनियम की प्राप्ति का श्रेय गलती से इनके पहले हुए आविष्कारकों को नहीं, बल्कि हंटर को देते हैं।

खैर, किसी ने भी सही, शुद्ध टाइटेनियम तो प्राप्त हो ही गयी थी। परंतु इसे पूर्णतया शुद्ध टाइटेनियम फिर भी नहीं कहा जा सकता था क्योंकि अभी भी इसमें एक प्रतिशत के दसवें भाग से भी कम अशुद्धियां रह गयी थीं। यह दूध में मक्खी गिरने जैसी बात थी। इन अशुद्धियों ने धातु को भंगुर, अदृढ़ तथा मशीनी कामों के लिये अनुपयुक्त बना रखा था। इन कमियों ने टाइटेनियम को बहुत बदनाम कर दिया था और इसे एक बेकार धातु समझी जाती थी। यह स्वाभाविक था कि इस बदनामी की वजह से टाइटेनियम

ने महत्त्वपूर्ण कार्यों में भाग लेने की बात तक नहीं सोची और वह इधर-उधर के कामों से संतुष्ट होता रहा।

1908 में ही अमरीका में दो वैज्ञानिकों रोजे और बारट्रान तथा नार्वे में वैज्ञानिक फारूप ने यह सुझाव दिया था कि श्वेत वर्णक प्राप्त करने के लिये लेड और जिंक के यौगिकों के स्थान पर टाइटेनियम आक्साइड का प्रयोग करना चाहिये। लेड और जिंक के वर्णकों की तुलना में श्वेत टाइटेनियम वर्णक से अधिक क्षेत्र रंगा जा सकता है। इसके अलावा टाइटेनियम वर्णक जहरीला भी नहीं था क्योंकि टाइटेनियम आक्साइड मानव के लिये तनिक भी हानिकारक नहीं है। चिकित्सा इतिहास में एक ऐसी घटना का उल्लेख है, जब एक व्यक्ति ने एक ही बार में आधा किलो टाइटेनियम आक्साइड खा लिया था और उसका कुछ नहीं बिगड़ा था।

धीरे-धीरे टाइटेनियम आक्साइड चमड़े तथा कपड़ों के रंजन में, कलई युक्त कांच और पोर्सलिन के उत्पादन में प्रयुक्त होने लगा। कृत्रिम हीरों के निर्माण में भी इसका प्रयोग शुरू हो गया।

बाद में टाइटेनियम के दूसरे यौगिक टाइटेनियम टैट्राक्लोराइड को भी काम मिल गया। यह यौगिक बहुत साल पहले 1826 में फ्रेंच रसायनज्ञ ड्यूमा ने प्राप्त किया था। इसमें घना धुआं पैदा करने का अद्वितीय गुण होने के कारण प्रथम विश्व युद्ध के दिनों इसका विस्तृत प्रयोग किया गया। शांति के दिनों यह यौगिक बसंत में पेड़-पौधों की पाले से रक्षा करने में प्रयुक्त किया जाता है।

परंतु आगे चलकर हम देखेंगे कि टाइटेनियम की यह मांग ठीक ही थी कि उसे इससे भी ज्यादा गंभीर तथा रोचक कार्य दिये जायें।

आखिर वह दिन आ ही गया। 1925 में होलेंड के वैज्ञानिकों वान आर्केल तथा डि बोहर ने टाइटेनियम टैट्राक्लोराइड का टंग्स्टेन के एक तप्त तार पर विघटन करके अतिशुद्ध टाइटेनियम प्राप्त किया। तब पता चला कि यह विचार बिल्कुल गलत था कि टाइटेनियम एक अति भंगुर धातु है। वान आर्केल और डि बोहर द्वारा प्राप्त टाइटेनियम बहुत सुघट्य लचीला था। इसकी लौह की तरह फोर्जिंग की जा सकती थी; इसकी शीटें, पत्तियां और तार बनाये जा सकते थे और इसकी बारीक पन्नी भी बनायी जा सकती थी।

अब इसके शानदार नाम का कोई मजाक नहीं उड़ा रहा था। इस धातु के लिये तकनीक के दरवाजे खुल गये थे।

ऐसा लगता है कि टाइटेनियम कृतघ्न नहीं था। वैज्ञानिकों ने अशुद्धियों से इसका पीछा छुड़वाया तो इसके बदले टाइटेनियम ने अपने अद्वितीय गुणों द्वारा उन्हें मोहित

करना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिये, वैज्ञानिकों को पता चला कि लौह से दुगुनी हलकी होने पर भी यह धातु स्टील की बहुत सारी किस्मों से अधिक मजबूत है। औद्योगिक धातुओं में टाइटेनियम से अधिक मजबूत कोई धातु नहीं है। ऐलुमिनियम जैसी बहुमुखी धातु भी टाइटेनियम् का मुकाबला नहीं कर सकती। हालाँकि टाइटेनियम इससे डेढ़ गुना भारी है, परंतु मजबूती में यह धातु ऐलुमिनियम से छः गुना श्रेष्ठ है। टाइटेनियम का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि उच्च ताप पर भी इसकी मजबूती कायम रहती है (650°C तक और अगर इसमें कुछ ऐलॉय मिला दिये जायें तो 500°C तक), जबकि ऐलुमिनियम के बहुत सारे ऐलॉयों की मजबूती 300°C ताप पर ही कम होनी शुरू हो जाती है।

टाइटेनियम एक अति कठोर धातु है। यह ऐलुमिनियम, लौह और ताम्र से ज्यादा मजबूत है। धातु का तरलता-बिंदु जितना उच्च होता है, उसके पुर्जों की मजबूती उतनी ही ज्यादा होती है तथा उनका आकार व रूप भी लंबे अर्से तक कायम रहता है। ऐलुमिनियम के मुकाबले टाइटेनियम का तरलता बिन्दु पांच गुना उच्च है तथा लौह से तिगुना।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि हवाई जहाज के निर्माणकर्त्ताओं ने ध्वनि अवरोध का मुकाबला करने के लिये जिस धातु का चुनाव किया, वह टाइटेनियम ही था। विदेशी अखबारों में छपी एक खबर के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका ने छठे दशक में एक ऐसा पराध्वनिक जेट "काला पक्षी" बनाया है जो एक घंटे में 3200 किलोमीटर से भी ज्यादा दूरी तय कर सकता है। इस

जहाज की बाडी टाइटेनियम से बनायी गयी थी। उस समय से अब तक विमान-निर्माण-उद्योग में टाइटेनियम की स्थिति और मजबूत हो गयी है। इसके ऐलॉयों से हवाई जहाजों के विभिन्न बाहरी अंगों का निर्माण किया जाता है। इंजन नैसेल, एलेरोन, रडर-बार (दिकनियंत्रक, विभिन्न कल-पुर्जे, आदि)।

टाइटेनियम के प्रयोग की बदौलत विमानों का वजन कम हो जाता है। उदाहरणतया इंजन में स्टील बोल्टों की जगह टाइटेनियम के बोल्ट लगा दिये जायें तो जहाज के इंजन का वजन लगभग सौ किलोग्राम कम हो जाता है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि आने वाले वर्षों में ध्वनि की गति से दो-तीन गुना तेज उड़ने वाले हवाई जहाजों के निर्माण में टाइटेनियम तथा इसके ऐलॉयों का प्रयोग 60 से 90% तक बढ़ जायेगा।

अंतरिक्ष तकनीक को भी टाइटेनियम की जरूरत पड़ेगी। इस धातु के बने टैंक द्रवित आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के संचयन के लिये श्रेष्ठ हैं: अति निम्न तापमान होने पर टाइटेनियम अन्य धातुओं की तरह विघटित

नहीं होता बल्कि और भी ज्यादा मजबूत हो जाता है। ऐसा लगता है कि भविष्य में अंतरिक्ष में जितने भी स्टेशन बनाये जायेंगे, उन सबके निर्माण में टाइटेनियम मुख्य भूमिका निभायेगा। 1969 में सोवियत अंतरिक्ष यात्रियों गिओर्गी शोनिन तथा वालेरी कुबासोव द्वारा अंतरिक्ष में किये गये प्रयोगों से यह पता चला कि अंतरिक्ष निर्वात में टाइटेनियम की वेल्डिंग तथा कर्तन सरल होते हैं।

टाइटेनियम का महत्त्व केवल अंतरिक्ष यान के निर्माता ही नहीं बल्कि अन्य लोग भी समझ रहे हैं। उदाहरणतया इसका उपयोग घड़ियों तथा कैमरों के निर्माण में किया जा रहा है। एक विदेशी कंपनी इस धातु का प्रयोग साइकिल की बाडी के निर्माण में भी कर रही है। इस प्रकार की वाडी का वजन लगभग 1 किलोग्राम होता है तथा पूरी साइकिल का कुल वजन 7 किलोग्राम से भी कुछ कम ही होता है।

टाइटेनियम ने रसायनज्ञों को भी आकर्षित किया है। एक कारखाने में निम्न प्रयोग किया गया: ढलवे लोहे, जंगरोधी स्टील तथा टाइटेनियम से तीन पम्प बनाये गये और फिर इन पम्पों से आक्रामी द्रव की निकासी की गयी। पहला पम्प सिर्फ 3 दिन चला, दूसरा 10 दिन परंतु तीसरा (टाइटेनियम वाला) 6 महीने लगातार इस्तेमाल होने के बाद भी ठीक तरह से काम करता रहा और बिल्कुल सही सलामत रहा।

हालांकि टाइटेनियम अभी भी बहुत ज्यादा महंगा है, परंतु सस्ती धातुओं की जगह अगर इसका प्रयोग किया जाये तो आखिर में बचत जरूर होगी। उदाहरण के लिये, एक रसायनिक संयंत्र के रिएक्टर का निर्माण अगर जंगरोधी स्टील से किया जाये तो वह टाइटेनियम के ऐलॉयों से बने रिएक्टर से चार गुना महंगा पड़ेगा। परंतु स्टील के बने रिएक्टर की आयु केवल 6 महीने होती है और टाइटेनियम के रिएक्टर की 10 साल। इस खर्चे में अगर स्टील के रिएक्टरों को हर 6 महीने बाद बदलने में लगे व्यय को जोड़ दिया जाये तथा इस दौरान हुई काम की हानि का भी हिसाब लगा लिया जाये तो यह देखेंगे कि महंगा टाइटेनियम सस्ते स्टील से काफी सस्ता पड़ता है हालांकि बात बड़ी अजीब सी लगती है। परंतु यह सच है।

टाइटेनियम के औद्योगिक उपयोग पर कुछ

साल पहले लंदन में एक प्रदर्शनी आयोजित की गयी थी जिसमें विभिन्न रसायनिक कारखानों में बने टाइटेनियम संयंत्रों के असंख्य नमूने रखे गये थे। टाइटेनियम के बने तुंड सल्फर डाइआक्साइड तथा अन्य गर्म गैसों के वातावरण में दो महीने से भी ज्यादा रहने पर भली भांति कार्य करते रहे, परंतु जंगरोधी स्टील के बने तुंड कुछ घंटों बाद ही खराब होने लगे।

टाइटेनियम के बने पुर्जे क्लोरीन, सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक अम्ल तथा अन्य रसायनिक 'आक्रमकों' के वातावरण में सफल सिद्ध हो रहे हैं। कुछ कारखानों में तो 120 मीटर ऊँची संवाती पाइपों के निर्माण में इसी धातु का प्रयोग किया गया है। यह बात जरूर है कि इतने ऊंचे पाइपों के निर्माण में खर्चा काफी आता है, परंतु ऐसे पाइपों को सौ साल तक मरम्मत की जरूरत भी तो नहीं पड़ती है।

कर्तन औजारों के निर्माण में कठोर ऐलॉयों का प्रयोग किया जाता है। उनमें टाइटेनियम का विस्तृत प्रयोग किया जाता है। किसी भी औजार पर अगर टाइटेनियम कार्बाइड की पतली सी परत चढ़ा दी जाये तो उसकी कर्तन क्षमता बहुत उच्च हो जाती है।

टाइटेनियम ऐलॉयों के बने शल्य औजार बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। सुप्रसिद्ध नार्वेजियन अन्वेषक तुर खेरदाल के नेतृत्व में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय समुद्री अभियान के एक सदस्य सोवियत डाक्टर यूरी सेन्केविच अपने साथ इस यात्रा के दौरान पटेरे जहाज 'रा' पर टाइटेनियम शल्य औजारों को ले गये थे क्योंकि वे बहुत हलके हैं, उनपर, जंग नहीं लगता और लंबे अर्से तक उनका उपयोग किया जा सकता।

छठे दशक में वैज्ञानिकों ने टाइटेनियम के साथ निकैल का एक अद्भुत ऐलॉय बनाया जिसका नाम निटिनोल है। इस ऐलॉय में एक अद्वितीय गुण है – इसे अपना अतीत 'याद' रहता है अर्थात् विरूपण तथा अन्य आवश्यक प्रक्रमों के बाद यह फिर से अपने पहले रूप में आ जाता है (इसका सविस्तार वर्णन निकैल वाले अध्याय "ताम्र राक्षस" में किया गया है)।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक अधिकांश धातुकर्मी टाइटेनियम और लौह का संयोजन लौह के गुण के लिये हानिकारक मानते थे। उनके इस भ्रम को दूर करने में बहुत सारे साल लग गये। आज टाइटेनियम के मुख्य उपभोक्ताओं में धात्विकी का मुख्य स्थान है। स्टील तथा ऐलॉयों की सैकड़ों ऐसी किस्में गिनी जा सकती हैं जिनमें यह धातु कम या ज्यादा मात्रा में उपस्थित होती है। जंगरोधी स्टील में इस धातु के मिश्रण से अंतराक्रिस्टलीय संक्षारण से बचाव हो जाता है। क्रोमियम की उच्च मात्रा वाले तापरोधी ऐलॉयों में टाइटेनियम मिलाने से कण का आकार सूक्ष्म हो जाता है, धातु एकरूपी हो जाती है तथा सूक्ष्मक्रिस्टलीय बन जाती है। अन्य तापरोधी ऐलॉयों में टाइटेनियम एक प्रबल तत्त्व की भूमिका निभाता है।

टाइटेनियम की आक्सीजन के साथ तीव्र प्रतिक्रिया (इस बात पर हम आगे प्रकाश डालेंगे) होने के गुण के कारण इस धातु का प्रयोग स्टील के विआक्सीकरण के लिये किया जाता है अर्थात् स्टील से आक्सीजन अलग करने के लिये: सिलिकन एक शक्तिशाली विआक्सीकारक समझा जाता है, परंतु टाइटेनियम की विआक्सीकरण-क्षमता सिलिकन

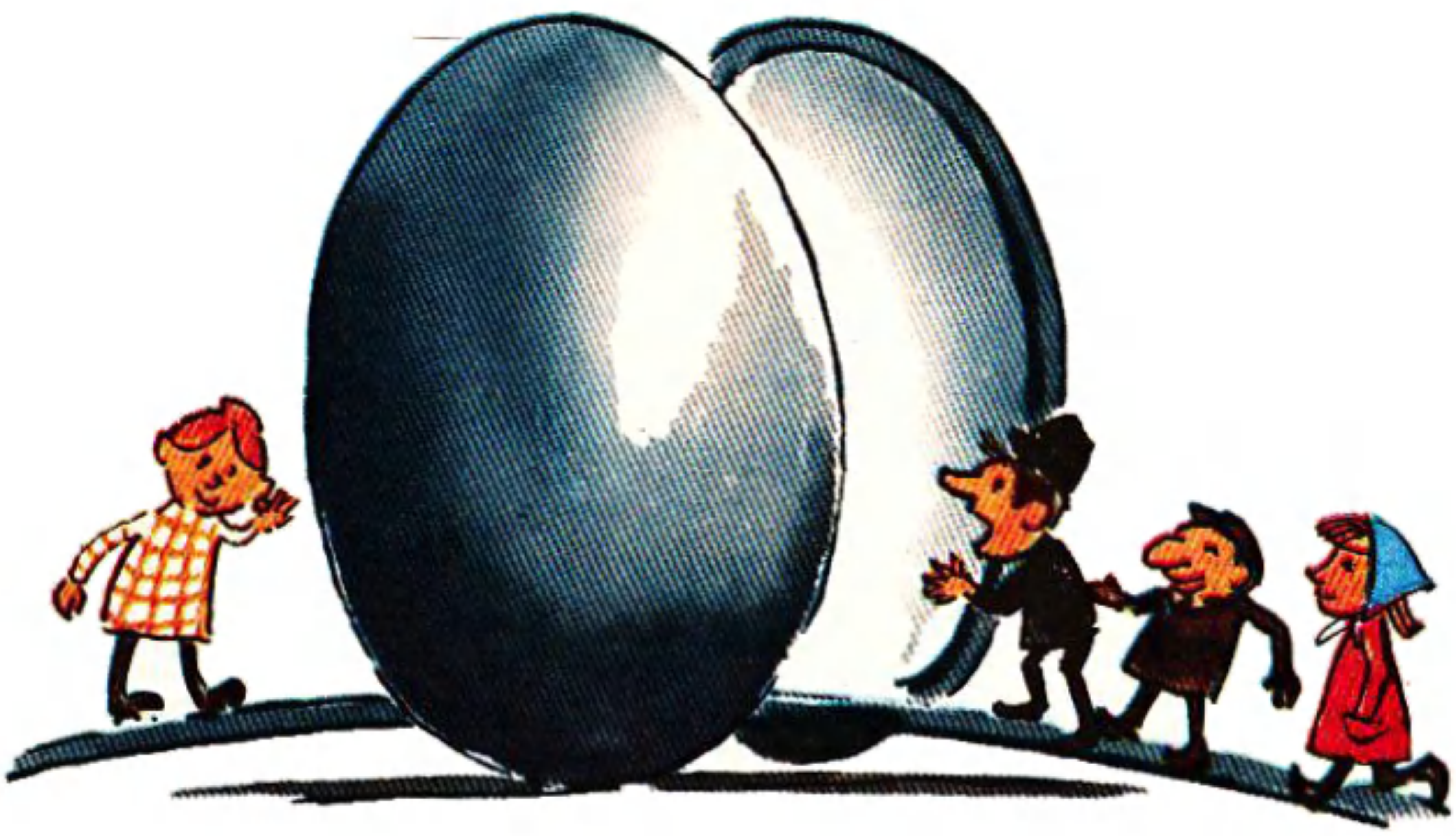

से भी 10 गुना अधिक होती है। टाइटेनियम नाइट्रोजन के साथ भी ऐसी ही प्रतिक्रिया करता है। स्टील को गैसरहित कर देने से उसके यांत्रिक गुण श्रेष्ठ हो जाते हैं तथा उसका संक्षारण प्रतिरोध भी बढ़ जाता है।

टाइटेनियम में एक बहुमूल्य गुण यह है कि धातुओं के सबसे खतरनाक शत्रु संक्षारण का इस पर कोई असर नहीं होता। इस धातु में अद्वितीय संक्षारण प्रतिरोध क्षमता होती है। टाइटेनियम की एक प्लेट को 10 साल तक समुद्री जल में डूबो कर रखने पर उसपर जरा सा भी जंग नहीं लगा। अगर यही प्लेट लोहे की बनी होती तो इतने अर्से बाद उसका निशान भी बाकी नहीं रहता। 10 साल तो बहुत ही कम अर्सा है। गणना से पता चला है कि अगर ऐसा ही एक प्रयोग 1000 साल पहले किया गया होता, उदाहरणतया, जब रूस में ईसाई धर्म फैल गया था तो हमारे दिनों तक टाइटेनियम के अंदर केवल 0.02 गहराई मिलीमीटर तक जंग लग जाता। यही वजह है कि जलपोतों व अंतर्जलीय उपकरणों के निर्माता टाइटेनियम में उतनी ही दिलचस्पी दिखा रहे हैं जितनी वायुयानों के निर्माता तथा रसायनज्ञ। अमरीकी कंपनी "जनरल इलैक्ट्रिक" ने ऐसे स्टेशनों को बसाने की परियोजना बनायी है जो मनुष्य को समुद्र की 3700 मीटर की गहराई तक पहुंचा सकते हैं। इस परियोजना में महत्त्वपूर्ण भूमिका टाइटेनियम ऐलॉयों को दी गयी है।

टाइटेनियम में उच्च जंगरोधी क्षमता विद्यमान होने के कारण ही तो मानव की अंतरिक्ष विजय को अमर करने वाले स्तंभ के निर्माताओं ने इस धातु को प्राथमिकता दी। उन्हीं सालों में एक अन्य स्मारक के निर्माण के लिये टाइटेनियम ही इस्तेमाल करने का विचार किया गया। अंतर्राष्ट्रीय विद्युत-संचार संघ की शताब्दी के उपलक्ष में यूनेस्को ने एक स्मारक बनाने का फैसला किया है। इस स्मारक के प्रोजेक्ट पर एक प्रतियोगिता आयोजित की गयी। विभिन्न देशों से प्राप्त 213 प्रोजेक्टों में प्रथम पुरस्कार सोवियत वास्तुकारों के प्रोजेक्ट को दिया गया। इस प्रोजेक्ट के अनुसार जेनेवा के अंदर नेशन

स्क्वेअर में 10.5 मीटर ऊंचे दो कंक्रीट शैलों के रूप में एक स्मारक बनाना है। ये शैले टाइटेनियम की प्लेटों से सुसज्जित होंगे। इस स्मारक की विशेषता यह होगी कि जो भी आदमी एक विशेष रास्ते पर चल कर इन शैलों के बीच से गुजरेगा, उसे अपनी आवाज, कदमों की आहट तथा शहर का शोर सुनाई देगा। इसके साथ-साथ उसे इन दो गोल शैलों के केंद्र में अपना प्रतिबिंब भी दिखाई देगा।

टाइटेनियम में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र से भी इसपर कोई भी असर नहीं पड़ता है। इसका यह गुण कभी-कभी लाभदायक होता है। इस प्रकार टाइटेनियम बहुत बहुमूल्य गुणों का वाहक है। इसलिये अद्भुत सोवियत धातुकर्मी अकादमीशियन बार्दिन ने लिखा है: "आजकल न केवल कच्चा लोहा और स्टील बहुमूल्य धातु माननी चाहिये... यह स्थान टाइटेनियम को भी देना चाहिये जो लोहे का एक जवान प्रतिद्वंदी है। वह अपने 'स्वभाव' की दृष्टि से – हल्कापन, प्रबलता, तापरोधिता और जंगरोधी क्षमता की दृष्टि से – लौह से बेहतर है।" फिर सवाल उठता है कि स्टील या ऐलुमिनियम की तुलना में उद्योग में टाइटेनियम का उपयोग अब तक कम क्यों है?

बात यह है कि इस धातु की कीमत बहुत ज्यादा है जिसकी वजह से इसका उपयोग सीमित है। सच कहें तो यह "खराबी" जन्मजात नहीं है। धातु को अयस्कों से प्राप्त करना बहुत अधिक कठिन कार्य है। अगर सांद्रित रूप में टाइटेनियम की आपेक्षिक कीमत 1 ली जाये तो दीर्घकालीन तथा कठिनतम प्रक्रियाओं के बाद जो शुद्ध टाइटेनियम प्राप्त होता है उसकी कीमत सैकड़ों गुना बढ़ जाती है। परंतु अब स्थिति सुधारने के प्रयास किये जा रहे हैं: नयी धातु के उत्पादन की विधियों में सुधार लाये जा रहे हैं और वह दिन दूर नहीं जब यह धातु भी ऐलुमिनियम की तरह सस्ती हो जायेगी। आपको पता ही है कि पिछली शताब्दी में ऐलुमिनियम भी तो बहुमूल्य धातुओं में गिना जाता था। वह दिन आने वाला है जब दुकानों में टाइटेनियम तथा इसके ऐलॉयों के बने चम्मच, छुरी, कांटे बिकने लगेंगे – टाइटेनियम घर-घर पहुँच रहा है।

पिछले दिनों तक बिना किसी आधार के टाइटेनियम एक विरल धातु समझा जाता था। कुछ लोगों का तो आज भी यही मत है। जबकि सच तो यह है कि प्रकृति में केवल गिनी चुनी धातुएं ऐसी हैं जो टाइटेनियम से ज्यादा विस्तृत हैं। भू-पर्पटी में ताम्र, जिंक, लेड, स्वर्ण, रजत, प्लैटिनम, क्रोमियम, टंग्स्टन, पारद, मालिब्डेनम, बिस्मथ, ऐंटिमनी, निकैल तथा टिन की जितनी मात्रा है वह सब अगर जोड़ दी जाये तो भी टाइटेनियम की मात्रा इससे कई गुना अधिक है। कितनी 'विरल' धातु है!

फिर भी कुछ हद तक 'विरल' शब्द टाइटेनियम के साथ संबंधित जरूर है: ऐसी कोई विरल ही पहाड़ी चट्टान होगी जिसमें यह धातु विद्यमान न हो।

टाइटेनियम के लगभग 70 खनिज ज्ञात हैं जिनमें यह धातु आक्साइड या टाइटेनिक अम्ल के लवणों के रूप में विद्यमान है। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इल्मेनाइट (पहले इसे मेनेकेनाइट कहते थे), रूटाइल, पेरोवस्काइट तथा स्फीन हैं। टाइटेनियम खनिजों

की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। अभी हाल में ही टाइटेनियम का एक बिल्कुल नया खनिज (बेहतर होगा अगर हम इसे खनिज न कहकर दाना कहें क्योंकि इसका वजन केवल 0.1 ग्राम है) लोवोजेर्स्कॉया तून्द्रा (कोला प्रायद्वीप में) मिला है जिसका नाम "नाटीसाइट" रखा गया है। यह नाम इसमें विद्यमान तत्त्वों के आधार पर रखा गया है—सोडियम, टाइटेनियम तथा सिलिकन।

कुल मिलाकर विश्व में टाइटेनियम अयस्कों के 150 निक्षेप ज्ञात हैं। परन्तु पृथ्वी खनिज पदार्थों से कितनी भी समृद्ध क्यों न हो, इनके भंडार कभी न कभी खत्म जरूर होंगे। इसलिये वैज्ञानिकों और विज्ञान-गप्प के कथाकारों की निगाह अब महासागरों की गहराइयों और अन्तरिक्ष पर लगी है जो भविष्य में मानव-जाति के लिये धातुओं की खान सिद्ध हो सकते हैं।

अमरीकी अंतरिक्ष यान "अपोलो" तथा सोवियत स्वचलित स्टेशन "लूना" द्वारा पृथ्वी पर चंद्रमा की मिट्टी के नमूने लाये गये। इन उड़ानों से पहले ही कुछ वैज्ञानिकों का यह मत था कि चंद्रमा की मिट्टी में टाइटेनियम भरपूर मात्रा में उपस्थित है। जो बात कल तक सिर्फ एक परिकल्पना थी वह अब सत्य सिद्ध हो गयी है। हो सकता है कि निकट भविष्य में अखबारों में यह खबर छपे कि चंद्रमा की प्रथम टाइटेनियम खान से टाइटेनियम निकाला जा रहा है।

सोवियत अंतरिक्ष यान "सोयूज-13" के कर्मीदल—अंतरिक्ष यात्री प्योत्र क्लीमूक तथा वालेन्तीन लेबेदेव पृथ्वी पर रोचक आंकड़े लाये। इन्हें एक ग्रहीय नीहारिका का पराबैंगनी स्पेक्ट्रम चित्र खींचने में सफलता प्राप्त हुई। इस नीहारिका में अंतरिक्ष यात्रियों की शुरू से ही विशेष रुचि रही थी। ऐसी नीहारिका गैस से बनी होती है जिसके केन्द्र में एक गर्म नक्षत्र होता है। चूंकि नीहारिकाएं पृथ्वी से बहुत ज्यादा दूर हैं, अतः वैज्ञानिकों को इनकी कोई विशेष जानकारी नहीं है। जब से ग्रहीय नीहारिकाओं का अध्ययन किया जा रहा है तब से उनमें केवल 17 रसायनिक तत्त्व उपस्थित पाये गये हैं। विशेष बात यह है कि "सोयूज-13" की उड़ान से 25 साल पहले तक के

समय के अंदर इस जानकारी में तनिक भी वृद्धि नहीं हुई। परतु इस अंतरिक्ष यान के उपकरणों ने नीहारिका में 2 अन्य तत्त्वों — ऐलुमिनिग्रम तथा टाइटेनियम की उपस्थिति सत्य सिद्ध कर दी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न तो हमारे ग्रह पर टाइटेनियम की कमी है और न ही इसके पड़ोसी ग्रहों तथा अन्य आकाशीय पिंडों पर। परन्तु धातु को खानों से निकालकर उसे उस रूप में भी तो बदलना है जिससे आधुनिक तकनीक में इसका उपयोग किया जा सके। और यह कोई सरल काम नहीं है।

कारण यह है कि टाइटेनियम तथा आक्सीजन की बहुत पक्की दोस्ती है। रसायन में यह जोड़ी सबसे पक्की जोड़ियों में गिनी जाती है (टाइटेनियम प्रकृति में इसी यौगिक के रूप में पाया जाता है)।

न तो विद्युत धारा टाइटेनियम को आक्सीजन से अलग कर सकती है और न ही उच्च ताप। वैज्ञानिकों को मजबूर होकर स्वतंत्र रूप से टाइटेनियम प्राप्त करने का कोई दूसरा ही तरीका खोजना पड़ा। 1940 में अमरीकी वैज्ञानिक क्रोल ने टाइटेनियम के औद्योगिक उत्पादन की एक विधि ढूंढ़ निकाली। इस विधि के अनुसार सबसे पहले क्लोरीन तथा कार्बन की सहायता से टाइटेनियम आक्साइड को टाइटेनियम टेट्राक्लोराइड में परिवर्तित कर लेते हैं तथा इस प्रकार आक्सीजन की जगह क्लोरीन ले लेता है। क्लोरीन को अलग करना काफी आसान काम है। यह काम, उदाहरणतया, मैग्नीशियम जैसा तत्त्व बड़ी सरलता से कर सकता है। टाइटेनियम टेट्राक्लोराइड मैग्नीशियम के साथ प्रतिक्रिया करके एक स्पंज बनाता है जिसमें टाइटेनियम, मैग्नीशियम तथा मैग्नीशियम क्लोराइड उपस्थित होते हैं। शुद्ध तथा ठोस टाइटेनियम प्राप्त करने के लिये इस स्पंज का निर्वात या निष्क्रिय गैस के वातावरण में (जिससे धातु वायु में उपस्थित नाइट्रोजन तथा आक्सीजन से सुरक्षित रहे) प्रगलन करते हैं। आजकल विशेष रूप से शुद्ध टाइटेनियम प्राप्त करने के लिये आयोडाइड प्रोसेस अपनाया जाता है। इसके आविष्कारक हमारे जाने पहचाने वैज्ञानिक वान आर्केल तथा डि बोहर थे।

टाइटेनियम को ज्यादा सस्ता और इस तरह उपयोगी बनाना एक बड़ी समस्या है जिसकी ओर विशेष अनुसंधान-संस्थानों का ध्यान संकेंद्रित है। इन संस्थानों की संख्या बढ़ती जा रही है। कुछ समय पहले क्लीवलैंड (सं० रा० अमरीका) में हल्की धातुओं के अध्ययन का एक नया संस्थान खोला गया। मजेदार बात यह थी कि इस संस्थान के उद्घाटन का फीता ... टाइटेनियम का बनाया गया था। इस फीते को काटने के लिये शहर के मेयर को कैंची की जगह गैस बर्नर इस्तेमाल करना पड़ा और संरक्षी चश्मा भी पहनना पड़ा।

हमारे दिनों हजारों वैज्ञानिकों का ध्यान टाइटेनियम पर केंद्रित है। असंख्य प्रयोगशालाओं में इस धातु के नमूनों पर रोज हजारों "अत्याचार" किये जाते हैं, उनके टुकड़े किये जाते हैं, उन्हें तोड़ा-मोड़ा जाता है, अम्लों व क्षारों में "उबाला" जाता है, अतिनिम्न तापमानों तक शीतित किया जाता है, उच्च आवृत्ति वाली विद्युत धारा तथा पराध्वनि से तड़फाया जाता है।

और टाइटेनियम मनुष्य को अपने रहस्य बता रहा है।

विटामिन V

दुर्घटना स्थल पर एक नयी चीज पायी गयी – विचार वास्तविकता का रूप ले लेता है – दरवाजे पर दस्तक का देवी कोई जवाब नहीं देती – एक गलती का परिणाम – जब व्योलर बीमार थे – "मैं असली गधा था!" – 40 वर्ष बाद – वैनेडियम का मूल्य! – गणनचुम्बी चट्टानों पर स्थित खान – अनोखा पेट्रोल – क्या शुक्र ग्रह से अयस्क प्राप्त किया जा सकता है? – इस्पात की अश्रांति का रहस्य – तोप आकाश में पहुंच गयी – आक्रमण और रक्षा – "राजनैतिक" चालाक बनने की कोशिश कर रहे थे – सुदूर पूर्व के इलाके में – स्याही का इंद्रधनुष – प्लैटिनम जैसी अच्छी एक धातु – सूअर भी खुश हैं – समुद्री संग्रहकर्ता – समुद्र की सतह पर बागवानी – बहुत ही पुरानी बात – भविष्यवाणी कैसे की जाती है?

"अगर वैनेडियम न होता तो मेरी मोटर-कारें भी न होतीं"। ये शब्द मोटर उद्योगपति हेनरी फोर्ड ने कहे थे। 1905 में एक बार वे कारों की दौड़ देख रहे थे। हमेशा की तरह इस दौड़ में भी एक दुर्घटना घटी, दो कारें आपस में टकरा गयीं। कुछ समय बाद जब फोर्ड दुर्घटनास्थल पर पहुँचे तो उन्हें जमीन पर दुर्घटनाग्रस्त कार के पुर्जे का एक टुकड़ा पड़ा दिखाई दिया। फोर्ड ने उसे उठा लिया। यह फ्रेंच कार के वाल्व स्पिंडल का टुकड़ा था। देखने में वह आम वाल्व स्पिंडल जैसा था परंतु आकार में काफी छोटा था। फोर्ड वैसे ही मोटर-कारों के बहुत बड़े विशेषज्ञ थे। उन्होंने उस पुर्जे को रसायनिक विश्लेषण हेतू प्रयोगशाला भेज दिया। वहां यह पता चला कि उस पुर्जे का स्टील बहुत मजबूत था और इसमें वैनेडियम मिला हुआ था।

फोर्ड ने अपनी मोटर-कारों के निर्माण में भी ऐसा स्टील इस्तेमाल करने का फैसला किया। उनका ऐसा सोचना स्वाभाविक था। अगर इस विचार को वास्तविक रूप दे दिया जाये तो कारें काफी हल्की हो जायेंगी, जिससे धातु की काफी बचत होगी। इसका मतलब यह हुआ कि कारों पर लागत कम लगेगी जिससे गाहकों की संख्या बढ़ जायेगी और मालिक की चांदी हो जायेगी। फोर्ड ने इस दिशा में काम शुरू कर दिया। उनके सामने काफी कठिनाइयां आयीं परन्तु आखिर में उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिल गयी। कई सालों बाद मोटरों की कुछ दौड़ों के बाद फ्रांस सरकार के व्यापार-विभाग ने जब फोर्ड की नयी कार के पुर्जों का परीक्षण किया तो पता चला कि अमरीकी स्टील हर लिहाज में फ्रेंच स्टील से बहुत बेहतर था।

अब प्रश्न यह उठता है कि मोटर उद्योग में क्रांति लाने वाला वैनेडियम आखिर चीज क्या है?

सुप्रसिद्ध स्वीडिश रसायनज्ञ बेर्ज़ेलियस ने वैनेडियम की कहानी इस प्रकार सुनाई: "बहुत समय पहले सुदूर उत्तर में एक अति-सुंदर देवी रहती थी जिसका नाम वैनेडिस था। सब लोग उसके प्रशंसक थे। एक दिन जब देवी सिंहासन पर बैठी आराम कर रही थी, किसी ने उसके महल का दरवाजा

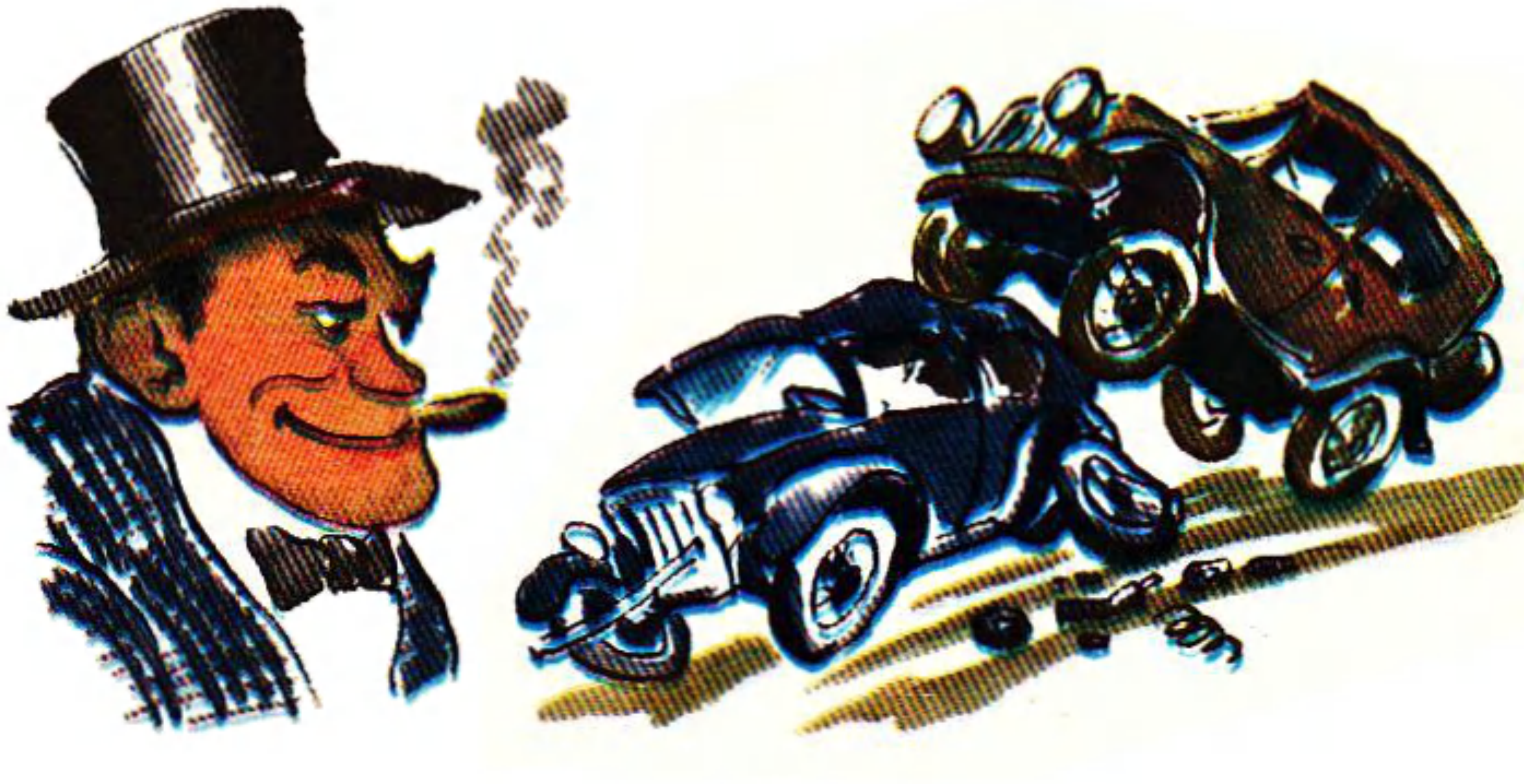

खटखटाया। देवी उठी नहीं। उसने सोचा, जो भी कोई आया है जब दूसरी बार दरवाजा खटखटायेगा, तब खड़ी होऊंगी। परंतु बाहर खड़े व्यक्ति ने दूसरी बार दरवाजा नहीं खटखटाया। वह वापस लौट गया। देवी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि ऐसा कौनसा मेहमान आया था जो इतना बेसब्र निकला। उसने खिड़की में जब झांक कर देखा तो व्योलर नामक व्यक्ति को वापस जाते देखा।

"कुछ दिनों बाद फिर किसी ने देवी के महल का दरवाजा खटखटाया। परंतु इस बार बाहर खड़ा आदमी तब तक खड़ा रहा जब तक कि देवी ने दरवाजा खोल नहीं दिया। एक अतिसुंदर नौजवान नील्स सेफ्स्ट्रोम देवी से मिलने आया था। दोनों को एक दूसरे से प्यार हो गया और उन्होंने शादी कर ली। कुछ समय बाद उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वैनेडियम रखा गया।" 1830 में स्वीडिश भौतिकविद तथा रसायनज्ञ नील्स सेफ्स्ट्रोम ने जिस नयी धातु की खोज की, उसे यही नाम दिया गया।

इस कहानी में एक बात गलत बतायी गयी है और वह यह है कि देवी वैनेडिस के महल का दरवाजा पहली बार जिस व्यक्ति ने खटखटाया था वे फ्रेडरिख व्योलर नहीं थे। वे थे—एन्ड्रेस मैनुएल डेल रीओ। रसायनज्ञ तथा खनिजविद डेल रीओ मैक्सिको-वासी थे। व्योलर से बहुत पहले 1801 में मैक्सिको में पाये गये भूरे लेड अयस्कों का अध्ययन करते समय रीओ ने उनके अंदर एक ऐसी धातु को उपस्थित पाया जो उस समय तक अज्ञात थी। इस धातु के यौगिक विविध रंगों के थे जिसके कारण वैज्ञानिक ने इसका नाम "पानक्रोमियम" रखा अर्थात् सब रंगों वाली। बाद में डेल रीओ ने इसका नाम बदल कर "एरिट्रोनियम" रख दिया जिसका अर्थ है—"लाल"।

परंतु दुर्भाग्यवश डेल रीओ अपनी खोज की वैज्ञानिक पुष्टि नहीं कर सके। इसके अलावा 1802 में वे इस गलत निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह नया तत्त्व क्रोमियम है जिसकी कुछ दिनों पहले खोज की गयी थी। कुछ सालों बाद व्योलर को सफलता मिलनेवाली थी, पर बीमारी के कारण वह अपना अनुसंधान कार्य पूरा नहीं कर सके। मेक्सीकी अयस्कों का विश्लेषण करते हुए वे हाइड्रोजन फ्लोराइड द्वारा विषक्त हो गये। इसलिये बर्जेलियस को यह कहने का अवसर मिला कि व्योलर में देवी के दरवाजे को जोर से खटखटाने की हिम्मत नहीं थी।

जब व्योलर बीमार थे वैनेडियम का दूसरा जन्म हुआ। परंतु इस बार नवजात तत्त्व युवा स्वीडिश वैज्ञानिक नील्स सेफ्स्ट्रोम की गोद में था। उन दिनों स्वीडन में धात्विकी

का विकास हो रहा था। देश के विभिन्न भागों में नये-नये कारखाने लगाये जा रहे थे। वैज्ञानिकों ने देखा कि कुछ निक्षेपों के लौह अयस्कों से प्राप्त धातु भंगुर थी, परंतु दूसरे अयस्कों से प्राप्त धातु बहुत सुघट्य थी। वैज्ञानिकों को समझ नहीं आ रहा था कि ऐसा अंतर क्यों है? सेफ्स्ट्रोम ने इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना शुरू कर दिया।

उन्होंने उच्च कोटि की धातु वाले अयस्कों का रसायनिक अध्ययन किया। काफी प्रयासों के बाद वे यह सिद्ध कर सके कि इन अयस्कों में एक नया तत्त्व विद्यमान है और यह वही तत्त्व है जिसकी बहुत साल पहले डेल रीओ ने खोज की थी, परंतु गलती से वे इसे क्रोमियम समझ बैठे थे। इस नयी धातु का नाम वैनेडियम रखा गया।

डेल रीओ और व्होलर दोनों ही इस नये तत्त्व के धर्मपिता न बन सके हालांकि इस बात की काफी संभावना थी। सेफ्स्ट्रोम की सफलता के बाद व्होलर अपने मित्र को निम्न शब्दों में एक पत्र लिखा: "मैं गधा नहीं तो और क्या था जो भूरे लेड अयस्क में इस नये तत्त्व को ही न देख पाया। बर्जेलियस मेरा मजाक ठीक ही उड़ा रहा था। मैं मानता हूँ कि देवी वैनेडियम के महल का दरवाजा मैंने ठीक तरह से नहीं खटखटाया है"।

बहुत लंबे अर्से तक कोई भी वैज्ञानिक वैनेडियम को शुद्ध रूप में नहीं प्राप्त कर सका। केवल 1869 में एक अंग्रेज रसायनज्ञ हेनरी रोस्को को बहुत प्रयासों के बाद शुद्ध धात्विक वैनेडियम प्राप्त करने में सफलता मिली। हालांकि यह शुद्धता केवल उन दिनों के लिये ठीक कही जा सकती थी क्योंकि धातु में अभी भी 4% से ज्यादा अशुद्धियां थीं

जबकि यह एक ऐसा तत्त्व है जिसमें जरा सी भी अशुद्धि होने से इसके गुणों में बहुत ज्यादा परिवर्तन आ जाता है। शुद्ध वैनेडियम रजत-भूरे रंग का होता है। यह अतिसुघट्य होता है तथा इसका फोर्जन किया जा सकता है। नाइट्रोजन, आक्सीजन, हाइड्रोजन जैसे तत्त्वों की तनिक सी मात्रा से यह धातु सख्त हो जाती है तथा किसी काम की नहीं रहती है। बहुत दिनों तक वैनेडियम को शुद्ध रूप में प्राप्त करना बहुत मुश्किल रहा क्योंकि उच्च तापों पर यह धातु अत्यधिक सक्रिय हो जाती है। वैज्ञानिकों को ऐसी कोई धातु नहीं मिल रही थी जिसकी क्रूसिबल वैनेडियम में न पिघले। वैनेडियम उच्च ताप पर हर क्रूसिबल को पिघला देता था और खुद अशुद्ध बन जाता था। वैज्ञानिक दूसरा रास्ता ढूंढ़ने पर मजबूर हो गये। इसके लिये एक विद्युत-अपघटनी विधि ढूंढ़ी गयी है जिससे 99.99% शुद्ध वैनेडियम प्राप्त होता है। इस उपलब्धि का महत्त्व समझा जा सकता है; कहां 4% और कहां 0.01%।

बहुत लंबे अर्से तक वैनेडियम को औद्योगिक कार्यों में प्रयोग नहीं किया जा सका।

और किया भी कैसे जाता। इस शती के आरंभ में ही विश्व में वैनेडियम का सालाना उत्पादन कुछ टन से ज्यादा नहीं था और उसकी कीमत कल्पना से भी ज्यादा थी; एक किलोग्राम वैनेडियम का दाम 50000 स्वर्ण रूबल था।

वैनेडियम का इतना कम उत्पादन तथा इसकी इतनी अधिक कीमत स्वाभाविक थी। हालांकि भू-पर्पटी में यह पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है – (रजत से करीब 1000 गुना अधिक), परंतु इसके भंडार बहुत कम मिलते हैं जिसके कारण यह विरल धातु समझी जाती है। जिस अयस्क में सिर्फ 1% वैनेडियम होता है उसे बहुत ही ज्यादा मूल्यवान समझा जाता है। जिन अयस्कों में इस मूल्यवान तथा विरल धातु की केवल 0.01% मात्रा विद्यमान होती है उनका भी औद्योगिक उत्पादन में उपयोग होता है।

विश्व में वैनेडियम का एक सबसे बड़ा भंडार पेरू के पहाड़ों पर समुद्र की सतह से 4700 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। हाल में कास्पियन सागर के प्रायद्वीप बुजाची के तटवर्ती इलाके में पैट्रोल का औद्योगिक उत्पादन शुरू हुआ है जिसमें वैनेडियम की मात्रा बहुत अधिक है। अब भूगर्भविदों को यह बात सोचनी चाहिये कि 'पैट्रोल अयस्क' से इस कीमती तत्त्व की निकासी कैसे की जाये।

दिलचस्प बात यह है कि पृथ्वी पर गिरने वाले उल्कापिंडों में वैनेडियम की मात्रा भू-पर्पटी की अपेक्षा 2-3 गुना अधिक होती है। सूर्य के स्पेक्ट्रम में भी ऐसी रेखाएं दिखाई देती हैं जो वैनेडियम के परमाणुओं की उपस्थिति बताती हैं: सूर्य पर भी इस धातु की मात्रा हमारी पृथ्वी से काफी ज्यादा है।

संभव है कि किसी दिन पृथ्वी के धातु-कर्मीय कारखानों को अन्य ग्रहों से ऐसे अयस्क मिलने लगें जिनमें वैनेडियम की भरपूर मात्रा हो, उदाहरण के लिये, मंगल या शुक्र से तथा यह एक साधारण बात समझी जाये, परंतु फिलहाल पृथ्वीवासियों को केवल अपने स्रोतों पर निर्भर रहना है।

अयस्कों से वैनेडियम अलग करने में अत्यधिक कठिनाई अनुभव होने की वजह से ही इस अद्भुत धातु को बहुत सालों तक किसी भी कार्य में प्रयुक्त नहीं किया गया। परंतु तकनीक के तीव्र विकास ने वैनेडियम के लिये औद्योगिक जगत के द्वार खोल दिये। इस तत्त्व में स्टील को बहुमूल्य गुण प्रदान करने की अद्वितीय क्षमता होने के कारण इसका भविष्य बन गया और इसे स्टील के विटामिन के रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

स्टील में वैनेडियम की जरा सी मात्रा (1 प्रतिशत का कुछ हिस्सा) मिलाने से ही वह सूक्ष्मकणिक, अतिस्कंदी तथा अत्यधिक मजबूत हो जाता है। ऐसे स्टील की बंकन

तथा प्रतिघात सहने की क्षमता उच्च होती है; यह आसानी से नहीं टूटता और उसे मोड़ना भी मुश्किल होता है। यही तो वे गुण हैं जिनकी कारों के पुर्जों को बहुत सख्त जरूरत है। यही कारण है कि कारों के मुख्य अंग तथा पुर्जे जैसे इंजन, वाल्व स्प्रिंग, निलंबन स्प्रिंग, ऐक्सल, शैफ्ट तथा गिअर आदि वैनेडियम स्टील के बनाये जाते हैं।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान फ्रेंच इंजीनियरों ने एक ऐसा हवाई जहाज बनाया जिस पर मशीनगन की जगह तोप लगी हुई थी। इस तोप ने जर्मन पायलटों पर कहर ढा दिया था। हवाई जहाज पर तोप कैसे फिट की जा सकी? उन दिनों हवाई जहाज बहुत छोटे होते थे तथा उन पर ज्यादा वजन नहीं रखा जा सकता था। पता चला कि हवाई जहाज पर तोप को पहुंचाने वाला और कोई नहीं वैनेडियम ही था। फ्रेंच हवाई तोपें वैनेडियम स्टील की बनी थीं। कम वजन होते हुए भी उनकी मार तगड़ी थी। उन्होंने जर्मन जहाजों पर तबाही ढा रखी थी।

इसके बाद सिपाहियों के टोप भी वैनेडियम स्टील के बनाये जाने लगे। ये टोप बहुत हलके तथा पतले थे तथा अपने मालिकों को गोलियों व हथगोलों की मार से पूर्णतया सुरक्षित रखते थे। आर्टिलरी क्रू के पक्के निशानबाजों की गोलियों से सुरक्षा के लिये भी कवच चाहिये थे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये शेफील्ड में एक विशेष प्रकार का कवच स्टील बनाया गया जिसमें सिलिकन तथा निकैल काफी मात्रा में मिलाये गये थे। परंतु परीक्षण के दौरान गोलियां बड़ी आसानी से इस धातु की बनी प्लेटों को चीर गयीं। तब केवल 0.2% वैनेडियमयुक्त स्टील इस्तेमाल करने का फैसला किया गया। परिणाम हद से ज्यादा अच्छे निकले : कठिनतम परीक्षणों के दौरान 100 से 99 बार यह स्टील कसौटी पर खरा उतरा।

इस प्रकार वैनेडियम आक्रामक के साथ-साथ रक्षात्मक कार्यों में भी प्रयोग किया जाने लगा। बहुत सारी अमरीकी, फ्रेंच तथा अंग्रेज फर्में विभिन्न क्षेत्रों में स्वेच्छा से वैनेडियम स्टील इस्तेमाल करने लगीं। परंतु जर्मन धातुकर्मियों ने इस धातु के प्रति बड़ा रूखा रवैया रखा, हालांकि वे लोग ऐसे मामलों में बहुत बड़े विशेषज्ञ समझे जाते थे। उन्होंने वैनेडियम स्टील का प्रयोग अस्वीकार कर दिया था। एक जर्मन फर्म ने तो दावे के साथ यह कह दिया था कि इस धातु का प्रचलन किसी काम का नहीं है। जर्मन लोगों की यह धारणा विरोधाभासी थी।

शीघ्र ही इस बात का कारण पता चल गया : जर्मन लोगों के खुद के पास वैनेडियम के अयस्क बिल्कुल नहीं थे, अतः वे विश्व मार्केट में इस धातु का औद्योगिक प्रयोग रोकने के लिये हर संभव प्रयास अपनाये। इस दौरान खुद वे जी जान से ऐसी कोई दूसरी धातु खोजने में लगे रहे जो स्टील पर वैनेडियम जैसा असर डाल सके। परंतु शीघ्र ही उनकी समझ में यह बात आ गयी कि कोई भी दूसरी धातु वैनेडियम का मुकाबला नहीं कर सकती और उन्हें इस धातु का महत्त्व मानना ही पड़ेगा। तब धात्विक "राजनैतिकों" ने वैनेडियम की बदनामी करनी बंद कर दी। इस धातु का उत्पादन साल दर साल बढ़ने लगा।

ऐसे उद्योगों की गिनती करना मुश्किल है जिनमें आज वैनेडियम स्टील प्रयुक्त किया

जाता है। वैमानिकी, रेलगाड़ियां, विद्युत व रेडियो इंजीनियरी तथा सैनिक उद्योग इसके मुख्य उपभोक्ता हैं। ढलवां लोहा भी वैनेडियम की "सेवायें" प्राप्त करता है। आपको याद होगा कि डेल रीओ ने इस तत्त्व का नाम पानक्रोम (सब रंगों वाला) रखा था। इसके हरे, पीले, लाल, काले और स्वर्ण रंग के लवण रंगों तथा विशेष प्रकार की स्याही के निर्माण में और कांच व चीनी-मिट्टी उद्योग में सफलतापूर्वक प्रयुक्त किये जा रहे हैं। यहां यह बताना आवश्यक है कि सेफ्स्ट्रोम द्वारा वैनेडियम के आविष्कार के बाद जिस उद्योग में पहली बार इस धातु का प्रयोग किया गया था, वह चीनी-मिट्टी उद्योग ही था। वैनेडियम यौगिकों की सहायता से पोर्सिलेन तथा मिट्टी के बर्तनों पर सोने की पालिश की जाती थी तथा कांच को हरे या आसमानी रंग में रंगा जाता था।

1842 में सुप्रसिद्ध रूसी रसायनज्ञ नि० जीनिन को ऐनिलीन प्राप्त करने में सफलता मिल गयी। इस घटना ने रंजन उद्योग के विकास में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। यहां भी वैनेडियम ही काम आया: पता चला कि सिर्फ 1 ग्राम वैनेडियम पेन्टाआक्साइड से 200 किलोग्राम वर्णहीन ऐनिलीन लवण को काले ऐनिलीन में परिवर्तित किया जा सकता है जो कि एक तीव्र रंजक है।

हमारे समय में भी रसायन में वैनेडियम के बिना काम नहीं चल रहा है। इसका आक्साइड सल्फ्यूरिक अम्ल के उत्पादन में एक उत्तम उत्प्रेरक का कार्य करता है। इस अम्ल को "रसायन की रोटी" कहते हैं। बहुत सालों तक इस काम में प्लैटिनम ऐस्बेस्टॉस का प्रयोग प्रचलित था अर्थात् ऐसा ऐस्बेस्टॉस जिस पर प्लैटिनम का पाउडर लगा होता था। परंतु दो कारणों से इस उत्प्रेरक का प्रयोग व्यावहारिक नहीं था— पहला यह कि प्लैटिनम बहुत महंगा था और दूसरा यह कि ऐसा उत्प्रेरक बहुत अस्थायी प्रकृति का था। विभिन्न गैस सम्मिश्रणों के "जहर" के कारण यह अक्सर काम नहीं करता था। यही कारण है कि जब सल्फ्यूरिक अम्ल के उत्पादन में नये उत्प्रेरक— वैनेडियम ऐलॉयों का प्रयोग करने का प्रस्ताव पेश किया गया तो सल्फ्यूरिक अम्ल की फैक्टरियों ने बड़ी खुशी से प्लैटिनम ऐस्बेस्टॉस का प्रयोग बंद कर दिया। वैनेडियम आक्साइड पैट्रोल भंजन तथा बहुत सारे जटिल कार्बनिक यौगिकों के उत्पादन में भी प्रयुक्त किया जाता है।

अब तो सूअर भी वैनेडियम की कदर जान गये हैं। अर्जेन्टीना में इनके चारे में वैनेडियम मिलाकर विभिन्न प्रयोग किये गये हैं। पता चला है कि ऐसे चारे से सूअरों की भूख बढ़ जाती है तथा उनका वजन बड़ी तेजी से बढ़ता है।

लोंग-बीच के अस्पताल की एक प्रयोगशाला में अमरीकी वैज्ञानिकों ने चूहों पर वैनेडियम के प्रभाव का अध्ययन किया। यह देखा गया कि जिन चूहों को वैनेडियम बिल्कुल नहीं दिया गया था उनकी वृद्धि आम चारा खाने वाले अपने साथियों के मुकाबले दुगुना कम गति से हो रही थी। परंतु जैसे ही उनके राशन में थोड़ा सा वैनेडियम मिला दिया गया तो कुछ दिनों बाद उनका आकार अपने साथियों जैसा हो गया था।

ऐसा लगता है कि बहुत सारे जीवित ऊतकों को अपनी कार्यगति के लिये वैनेडियम की आवश्यकता पड़ती है। मुर्गी के अंडों

व मांस, गाय के दूध, जानवरों के यकृत तथा मनुष्य के मस्तिष्क में वैनेडियम उपस्थित पाया गया है।

विचित्र बात तो यह है कि कुछ समुद्री पौधे तथा जीव, जैसे, होलोथूरियन, ऐसिडियन, जलसाही आदि, एक विशेष तरीके से जल में से वैनेडियम "इकट्ठा" करते रहते हैं। मनुष्य को अभी तक यह जानने में सफलता नहीं मिली है कि यह कौनसा तरीका है। कुछ वैज्ञानिकों का मत यह है कि इन सप्राण जीवों के अंदर वैनेडियम वही भूमिका निभाता है जो लोहा मनुष्य तथा स्तनधारी पशुओं के रुधिर में निभाता है अर्थात् वैनेडियम "श्वसन" में उनकी सहायता करता है। परंतु अन्य वैज्ञानिकों का विचार यह है कि समुद्री जीवों को वैनेडियम की आवश्यकता श्वसन के लिये नहीं, बल्कि पेट भरने के लिये है। भावी अनुसंधान कार्य ही बता सकेंगे कि कौन सच कहता है। अभी तक सिर्फ यह सिद्ध किया जा सका है कि होलोथूरियनों के रुधिर में बहुत वैनेडियम उपस्थित होता है तथा कुछ किस्मों के ऐसिडियनों के रुधिर में इस तत्त्व की मात्रा समुद्र में इसकी मात्रा से करोड़ों गुना अधिक है। ये वैनेडियम बैंक नहीं तो और क्या हैं? स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक इन समुद्री जीवों की सहायता से वैनेडियम प्राप्त करने के प्रयास कर रहे हैं। उदाहरण के लिये, जापान में समुद्र के किनारे कई किलोमीटरों तक ऐसिडियन बसा दिये गये हैं। ऐसिडियन काफी जननक्षम होते हैं। एक वर्ग मीटर क्षेत्र से जितने ऐसिडियन प्राप्त होते हैं उनका वजन 150 किलोग्राम तक हो सकता है। "फसल" इकट्ठी करने के बाद यह जीवित वैनेडियम "अयस्क"

विशेष प्रयोगशालाओं में लाया जाता है जहां इसमें से औद्योगिक धातु निकाली जाती है। कुछ दिनों पहले समाचार-पत्रों से यह पता चला है कि जापान के धातुकर्मियों ने ऐसा स्टील बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है जिसमें ऐसिडियनों से निकाला वैनेडियम मिलाया गया है।

वैनेडियम के "संग्रहकर्ता" भूमि पर भी हैं। इनमें से एक के साथ हम अच्छी तरह से परिचित हैं – वह है – जहरीली खुमी। फफूंदी की कई किस्में भी वैनेडियम की दीवानी हैं। वे वैनेडियम के बिना विकसित ही नहीं हो सकतीं। जो पौधे किसी तत्त्व का संचयन कर लेते हैं, उन्हें विज्ञान जगत

में "वायोकन्सेन्ट्रेटर" कहते हैं। ऐसे पौधे भूविज्ञानियों की अक्सर बहुत सहायता करते हैं। कुछ मूल्यवान धात्विक अयस्कों की खोज के दौरान वे एक संकेतक की भूमिका निभाते हैं।

1971 में सोवियत पुरावनस्पतिज्ञों ने त्यान शान पर्वत की ढालों पर एक ऐसे पौधे की छाप पायी जिससे विज्ञान जगत पूर्णतया अपरिचित था। उन्होंने इस पौधे का नाम "मैनेरिया" रखा। यह उस एक कोशिकीय शैवाल का नाम है जो पृथ्वी पर 1 अरब 50 करोड़ साल पहले उगता था। यहां पाठकों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस शैवाल के साथ वैनेडियम का क्या संबंध हो सकता है? हां, इन दोनों के बीच कुछ संबंध है। वैज्ञानिकों का विचार है कि उन दिनों मैनेरिया ने पृथ्वी के वातावरण के निर्माण तथा भू-पर्पटी में वैनेडियम तथा यूरेनियम आदि रसायनिक तत्त्वों के संचयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

...हमने वैनेडियम का अतीत भी बता दिया है और वर्तमान भी। आप पूछेंगे कि इसका भविष्य क्या है? इस अद्वितीय धातु की किस्मत में क्या लिखा है?

वैनेडियम का भविष्य तो हम नहीं बता सकते, परंतु इसके अद्वितीय गुणों – अत्यधिक यांत्रिक मजबूती, उत्तम संक्षारणरोधता, उच्च गलनांक तथा लौह के मुकाबले कम विशिष्ट भार को देखते हुए यह जरूर कह सकते हैं कि वह दिन दूर नहीं जब वैनेडियम एक बेहतरीन निर्माण-सामग्री का कार्य करने लगेगा। परंतु यह तभी संभव होगा जब मनुष्य इसको बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त करना सीख जायेगा। फिलहाल वह इसकी बहुत कम मात्रा प्राप्त कर रहा है। प्रकृति के पास इस धातु के असंख्य भंडार हैं, परंतु यह इनकी सावधानी के साथ सुरक्षा करती है।

रहस्यमय "X"

चीनी लिपि — साइबेरियन लाल लेड — सब कुछ बरतन की सफाई से शुरू हुआ — क्रूसिबल में धूसर सूइयां — मित्र लोग सलाह देते हैं — सूर्य पर ज्वाला — किस्मत साथ देती है — "घटिया" व्यवहार — नया रहस्य — जंगरोधी धातु का बना स्मारक — कार्यक्रम रद्द कर दिया जाता है — क्या आप चाय आइस्क्रीम के साथ पीते हैं? — स्टील पर "पपड़ी" जम जाती है — पहला पेटेन्ट — कछुए की चाल से — एक रोचक वार्तालाप — धातुओं का क्रोमियम का बूट — देवता अपना खून बहा रहे हैं — समस्या का हल — एक नयी विशेषज्ञता — बेजोड़ — अप्रत्याशित कठिनाइयां — "मैं खुद मुकाबला करूंगा" — हीरे के लिये "बख्तर" — अंकगणित पर आधारित दृष्टिकोण — अंग्रेज लोग जानते हैं कि जो कुछ भी न कर रहे हैं, ठीक ही कर रहे हैं

आप कोई भी सोवियत धातुकर्मीय निदर्शिका खोल कर देखें, स्टील की विभिन्न ब्रैंडों में आपको बहुत सारी ब्रैंडें ऐसी मिलेंगी जिनमें अक्षर "x" उपस्थित होगा। उदाहरण के लिये Х18Н10Т, Х12М, ОХ23Ю5, ШХ15, 8Х4В4Ф1, Х14Г14Н3Т 12Х2НВФА आदि। इस विषय को न जानने वाले व्यक्ति को यह अक्षर उतना ही रहस्मय लगेगा जितनी की चीनी चित्रलिपि। परंतु एक धातुकर्मी इन अंकों व अक्षरों का मतलब उतनी ही अच्छी तरह से जानता है जितना कि एक संगीतज्ञ अपनी स्वरलिपि को। अंकों व अक्षरों के इन जोड़ों पर एक निगाह मारते ही वह समझ जाता है कि इन सब ब्रैंडों में एक बात सामान्य है और वह यह है कि इन सभी में विभिन्न मात्रा में क्रोमियम उपस्थित है (अक्षर x इसी बात को ही तो सूचित करता है)।

अपने ऐलॉय "साथियों" – निकैल, टंग्स्टन, मालिब्डेनम, वैनेडियम, टाइटेनियम, जिर्कोनियम, नियोबियम तथा अन्य तत्त्वों की तरह क्रोमियम से भी अलग-अलग तरह का स्टील बनाया जा सकता है। आधुनिक तकनीक में इस्तेमाल होने वाले स्टील में कई खूबियां होनी चाहियें: बृहत दाब तथा रसायनिक "आक्रामकों" का मुकाबला करने की शक्ति होनी चाहिये, लंबे अर्से तक भारी वजन सहने की क्षमता होनी चाहिये, मशीनिंग के उपयुक्त होना चाहिये, न गर्मी से और न ही सर्दी से खराब होना चाहिये। स्टील को यह सारे गुण प्रदान करने में क्रोमियम भी भाग लेता है।

1766 में पीटर्सबर्ग में रसायनशास्त्र के प्रोफेसर इ० लेमान ने यूराल इलाके की बेरेजोव खान में मिले एक नये खनिज का वर्णन किया, जिसमें काफी बड़ी मात्रा में लेड उपस्थित था। यह खान कैथरिनबुर्ग*

---

* रूसी भाषा में क्रोमियम को कहते हैं।

* इस शहर का आधुनिक नाम स्वेर्दलोव्स्क है।

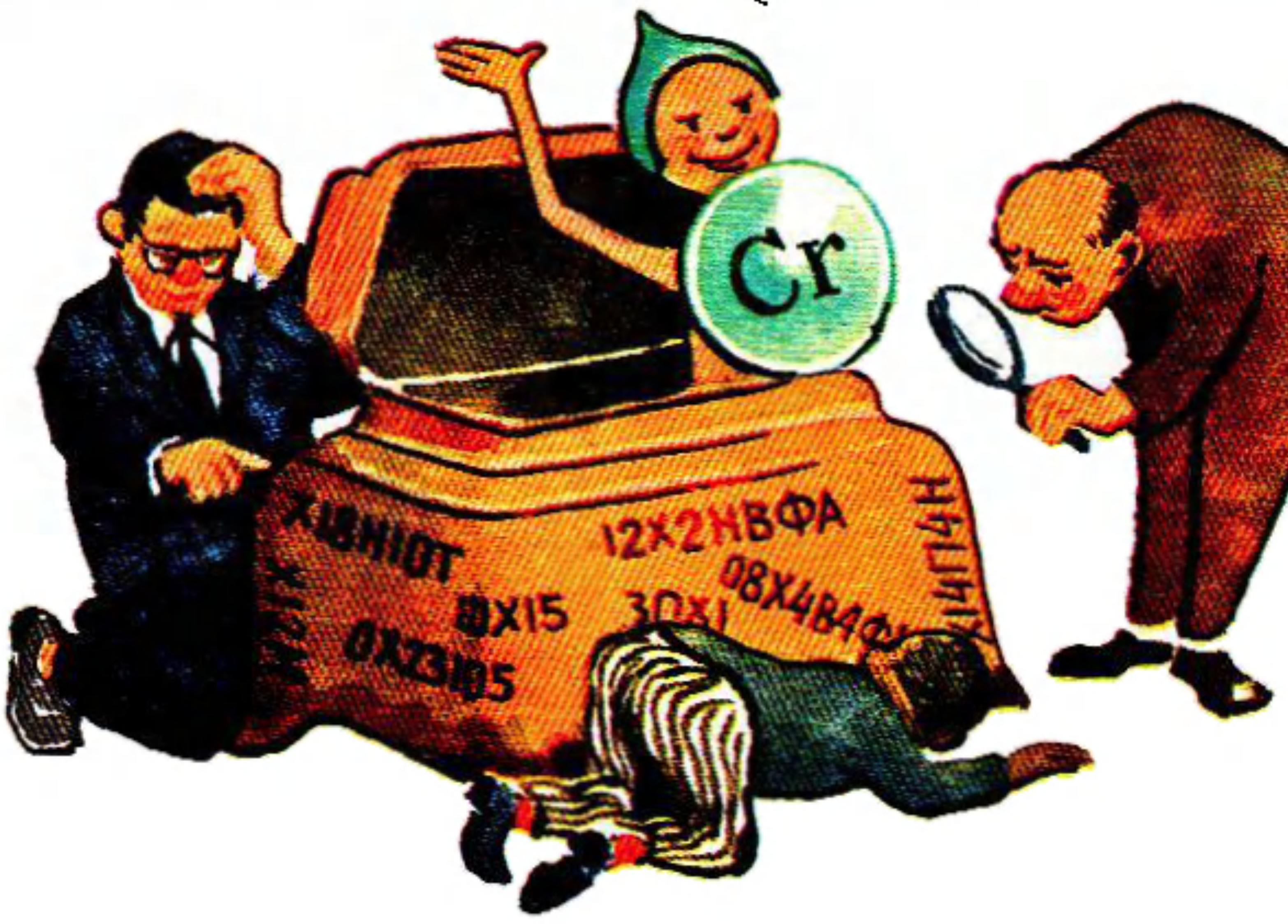

के पास थी। कुछ सालों बाद अकादमीशियन पा० पाल्लास ने निम्न शब्दों में बेरेजोव खानों का वर्णन किया: "बेरेजोव खानों में चार पिट हैं जिनमें 1752 से खुदाई चल रही है। इन पिटों से स्वर्ण, रजत तथा लेड अयस्कों के अलावा लाल रंग का एक अद्‌भुत लेड खनिज भी निकाला जा रहा है जो रूस की किसी दूसरी खान में पहले कभी नहीं मिला है। यह लेड अयस्क और भी कई रंगों का होता है (कई बार यह सिनबार के रंग का होता है), यह भारी होता है तथा अर्धपारदर्शी होता है। कभी-कभी इस खनिज के छोटे-छोटे अनियमित पिरामिड कांचमणि में जड़े होते हैं तथा ऐसे चमकते हैं जैसे कि नन्हीं मणियां। इस अयस्क का चूरा करने पर पीले रंग का अतिसुंदर वर्णक प्राप्त होता है।" इस खनिज का नाम "साइबेरियन लाल लेड" रखा गया। कुछ समय बाद इसका नाम बदल कर "क्रोको-आइट" रख दिया गया।

अठारहवीं शताब्दी के अंत में पाल्लास इस खनिज का एक नमूना पेरिस ले आये। वहां सुप्रसिद्ध फ्रेंच रसायनज्ञ लुई निकोला वैकलीन ने इसमें रुचि दिखाई। 1796 में वैकलीन ने क्रोकोआइट का रसायनिक विश्ले-षण करके देखा। अपने प्रयोगों के परिणाम का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया: "यूरोप के खनिजीय संग्रहों में जितने भी इस पदार्थ के नमूने मौजूद हैं वे सभी बेरेजोव स्वर्ण खान से लाये गये हैं। किसी जमाने में यह खान इस खनिज से भरी हुई थी, परंतु सुना है अब इसके भंडार खत्म हो गये हैं और आजकल इसे सोना देकर खरीदा जा रहा है विशेषतया, अगर इसका रंग पीला है। इस खनिज के अनियमित आकार के

नमूने या इसके छोटे-छोटे टुकड़े चित्रकारी में प्रयोग किया जा सकते हैं जहां हवा में खराब न होने वाले पीले-नारंगी रंग की वजह से ये बहुत काम के सिद्ध हो सकते हैं। साइबेरियन लाल खनिज के अतिसुंदर लाल रंग, पारदर्शकता तथा क्रिस्टलीय आ-कार ने खनिजज्ञों के मन में इसकी प्रकृति तथा प्राप्तिस्थल के प्रति रुचि पैदा कर दी है। इसका अत्यधिक विशिष्ट भार तथा लेड अयस्क की संलग्नता यह कहती है कि इस खनिज में लेड उपस्थित है। ..."

1797 में लुई वैकलीन ने एक बार फिर इस खनिज का रसायनिक विश्लेषण दोहराया। उन्होंने क्रोकाआइट को पीस कर पोटेशियम कार्बोनेट विलयन में उबाला जिसके परि-णामस्वरूप उन्हें कार्बोनेट तथा पीले रंग का एक विलयन प्राप्त हुआ। इस विलयन के अंदर उस वक्त तक अज्ञात किसी अम्ल का पोटेशियम लवण उपस्थित था। जब इस विलयन में मर्क्यूरिक साल्ट मिलाया गया तो लाल रंग का अवसाद जमा हो

गया और जब लेड साल्ट के साथ प्रतिक्रिया करायी तो पीला अवसाद जमा हो गया। जब उन्होंने विलयम में स्टैनस क्लोराइड मिलाया तो विलयन का रंग हरा हो गया। इसके बाद उन्होंने हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की सहायता से लेड अवक्षेपित कर लिया और फिर निस्यंद को वाष्पित करके प्राप्त लाल क्रिस्टलों (ये क्रोमियम एनहाइड्राइड क्रिस्टल थे) में कार्बन मिला कर उन्हें एक ग्रेफाइट क्रूसिबल में रख दिया और उच्च ताप तक गर्म किया। प्रयोग समाप्त होने पर वैज्ञानिक को क्रूसिबल में धूसर रंग की धात्विक सूइयां मिलीं। इस प्रकार वैकलीन ने एक नया तत्त्व खोज निकाला। उनके एक मित्र ने इस तत्त्व का नाम क्रोमियम रखने की सलाह दी (यूनानी शब्द "क्रोमा" से, जिसका अर्थ है – "वर्ण") क्योंकि इस तत्त्व के यौगिक विविध चमकीले रंगों के थे। प्रसंगवश यह बताना चाहेंगे कि सिलेबल क्रोम बहुत सारे ऐसे शब्दों में पाया जाता है जिनका इस तत्त्व के साथ कोई संबंध नहीं है। उदाहरण के लिये शब्द "क्रोमोसोम" का यूनानी भाषा में अर्थ है – "पिंड, जो रंग जाता है", रंगीन प्रतिबिंब प्राप्त करने के लिये जिस उपकरण का प्रयोग किया जाता है उसे क्रोमोस्कोप कहते हैं; फोटोग्राफी के शौकीन "आइसोपानक्रोम", "पानक्रोम", "ओर्थोक्रोम" आदि रंगीन फिल्मों से अच्छी तरह परिचित हैं। खगोल भौतिकविज्ञानी सूर्य के वायुमंडल में चमकने वाली रचनाओं को क्रोमोस्फियरिक ज्वालाएं कहते हैं।

आरंभ में वैकलीन को यह नाम पसंद नहीं आया क्योंकि उनके द्वारा आविष्कृत धातु साधारण धूसर रंग की थी। परंतु मित्र ने उन्हें मना ही लिया और जैसे ही फ्रेंच विज्ञान अकादमी ने उनकी खोज को मान्यता दे दी, विश्व के सारे रसायनज्ञों ने शब्द "क्रोमियम" ज्ञात तत्त्वों की सूची में जोड़ दिया।

नयी धातु की किस्मत तेज निकली। इसका उच्च गलनांक, अत्यधिक मजबूती तथा अन्य धातुओं के साथ, विशेषतया लौह के साथ, आसानी से ऐलॉय बनाने की क्षमता देखकर धातुकर्मियों ने इसमें बहुत रुचि दिखाई। वक्त बीतता जा रहा है, परंतु उनकी रुचि वैसी की वैसी ही है।

पहले की तरह आज भी धात्विकी ही क्रोमियम की मुख्य उपभोक्ता है, हालांकि बहुत दूसरे क्षेत्रों में भी इसका सफलतापूर्वक उपयोग होता है।

क्रोमियम में धातुओं के सभी गुण उपस्थित हैं – वह उत्तम ताप व विद्युत चालक है, तथा अधिकांश धातुओं की तरह चमकदार है। इसकी एक और भी खूबी है: 37°C के आसपास ताप होने पर यह "बिगड़" जाता है – इसके बहुत सारे भौतिक गुण एकदम बदल जाते हैं। इस ताप पर क्रोमियम का आंतरिक घर्षण अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता है जबकि प्रत्यस्था गुणांक निम्नतम हो जाता है। इसी प्रकार विद्युत चालकता, रेखीय प्रसार गुणांक तथा तापविद्युतवाहक बल में भी अचानक परिवर्तन आ जाते हैं।

जैसे-जैसे वैज्ञानिक इन अद्भुत गुणों को समझने की कोशिश करते रहे, क्रोमियम के एक नये गुण ने उन्हें चक्कर में डाल दिया। भौतिकविदों को पहले ही एक भौतिकीय नियम मालूम है – किसी पदार्थ की चुम्बकीय संरचना इसके क्रिस्टलिक ढांचे के बिल्कुल अनुकूल होती है। परंतु अतिशुद्ध क्रोमियम के अध्ययन से पता चला है कि इसपर यह नियम लागू नहीं होता।

क्रोमियम में जरा सी भी अशुद्धता आने पर वह बहुत भंगुर हो जाता है जिसके कारण निर्माण-कार्य में इसका प्रयोग असंभव हो जाता है। परंतु एक ऐलॉय तत्त्व होने के कारण धातुकर्मी बहुत दिनों से इसे मान्यता देते आ रहे हैं। स्टील में थोड़ा सा क्रोमियम मिलाने से उसकी मजबूती तथा जीर्णरोधता बढ़ जाती है। बाल-बेयरिंग स्टील में ये गुण होते हैं जिसमें क्रोमियम (1.5%) के अलावा कार्बन (लगभग 1%) भी मिला होता है। इस प्रकार के स्टील में बने क्रोमियम कार्बाइड हद से ज्यादा मजबूत होते हैं तथा इन्हीं की वजह से धातु अपने एक खतरनाक शत्रु-जीर्णता से नहीं डरती है।

जंगरोधी स्टील उत्तम संक्षारण प्रतिरोधी तथा उपचयन प्रतिरोधी होता है। इनमें लगभग 18% क्रोमियम तथा 10% निकैल मिला होता है। परंतु कार्बन इस स्टील के लिये हानिकारक रहता है क्योंकि क्रोमियम में कार्बाइड बनाने की प्रवृति होने के कारण इस तत्त्व की अधिक मात्राएं कार्बाइडों में बदल जाती हैं और स्टील के दानों पर जम जाती हैं। इसके फलस्वरूप इन दानों में क्रोमियम की कमी पैदा हो जाती है और वे अम्लों तथा आक्सीजन का प्रतिरोध करने योग्य नहीं रहते। इसलिये जंगरोधी स्टील में कार्बन की मात्रा निम्नतम होनी चाहिये (0.1% से अधिक नहीं)। जापानी धातुकर्मियों ने क्रोमियम और ऐलुमिनियम मिलाकर एक विशेष स्टील का नमूना प्राप्त किया है। निर्माण-कार्य में प्रयुक्त साधारण स्टील की तुलना में इस स्टील में ध्वनि-तरंगों का प्रसार सैकड़ों गुना कम होता है। इस स्टील से बनी खिड़कियों और दरवाजों के फ्रेम कोई शोर नहीं देते चाहे उनको कितनी भी जोर से क्यों न बंद करें। सीमेंट के फर्श पर इस स्टील से बने तख्ते के गिरने से कोई आवाज नहीं होती।

उच्च तापमानों पर स्टील के ऊपर "पपड़ी" जम सकती है। कुछ मशीनी पुर्जे सैकड़ों डिग्री तक गर्म हो जाते हैं। इन पुर्जों के स्टील की उपरोक्त "बीमारी" से रक्षा करने के लिये उसमें 25 से 30% तक क्रोमियम मिला देते हैं। अब यह स्टील 1000°C तक का ताप सह सकता है।

निकैल और क्रोमियम के ऐलॉय, जिन्हें निक्रोम कहते हैं, उत्तम तापक तत्त्व होते हैं। इन धातुओं की वैद्युत प्रतिरोधता का गुणांक उच्च है इसलिये धातु से वैद्युत प्रवाहित होने पर इसका तापमान जल्दी बढ़ जाता है। इन ऐलॉयों में अगर कोबाल्ट तथा ऐलुमिनियम मिला दिये जायें तो 650-900°C ताप परिसर में धातु काफी बोझ सह सकती है। ऐसे ऐलॉयों से, उदाहरण के लिये, गैस टर्बाइनों के ब्लेड बनाये जाते हैं। क्रोमियम दूसरे ऐलॉयों में भी शामिल होता है जैसे कि क्रोमेल, क्रोमाइल, क्रोमानसील। कोबाल्ट, मॉलिब्डेनम तथा क्रोमियम का एक ऐलॉय (कोमाक्रोमियम) मनुष्य के शरीर के लिये बिल्कुल भी हानिकारक नहीं है इसलिये इसका प्रयोग सर्जरी में भी किया जाता है।

आज विश्व के क्रोमियम अयस्कों का अधिकांश भाग फेरोऐलॉय कारखानों में पहुंच रहा है जहां फेरोक्रोमियम तथा धात्विक क्रोमियम की विभिन्न किस्मों का उत्पादन किया जा रहा है। फेरोक्रोमियम का उत्पादन 1820 में शुरू हुआ। फेरिक आक्साइड तथा क्रोमियम आक्साइड के मिश्रण का एक क्रूसिबल में चारकोल द्वारा अपचयन करके इसे प्राप्त किया गया। 1854 में क्रोमियम क्लोराइड के जलीय विलयनों के विद्युत अपघटन से शुद्ध धात्विक क्रोमियम प्राप्त किया गया। वात्या-भट्टी में कार्बोनिक फेरोक्रोमियम के प्रगलन के प्रथम प्रयास भी इन्हीं दिनों किये गये। क्रोमियम स्टील के प्रथम पेटेन्ट का पंजीकरण 1865 में हुआ। फेरोक्रोमियम की मांग तेजी से बढ़ने लगी।

विद्युत ने फेरोक्रोमियम के उत्पादन के विकास में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी— विद्युत-तापीय विधि से धातुओं तथा ऐलॉयों के उत्पादन में बहुत सफलता मिली। 1893 में फ्रेंच वैज्ञानिक मोईसान को विद्युत भट्टी में कार्बोनिक फेरोक्रोमियम (इसमें 60% क्रोमियम तथा 6% कार्बन था) का प्रगलन करने में सफलता मिल गयी।

अक्तूबर क्रांति से पहले रूस में फेरोऐलॉयों का उत्पादन बहुत ही धीमी गति से हो रहा था। देश के दक्षिण में कुछ कारखानों में फेरोसिलिकन फेरोमैंगनीज का बहुत थोड़ी मात्रा में प्रगलन किया जा रहा था। 1910 में दक्षिणी यूराल क्षेत्र में सात्का नदी के किनारे

एक छोटा सा विद्युतधातुकर्मी-कारखाना लगाया गया जहां फेरोक्रोमियम का उत्पादन शुरू हो गया। कुछ समय बाद यहां फेरोसिलिकन का भी उत्पादन होने लगा। परंतु देश की जरूरत को देखते हुए इन ऐलॉयों का उत्पादन बहुत थोड़ा था। रूस को ये ऐलॉय दूसरे देशों से खरीदने पड़ रहे थे।

1917 के बाद युवा सोवियत राज्य उच्च-कोटि के स्टील के उत्पादन जैसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र में पूंजीपति देशों पर निर्भर नहीं रह सकता था। देश के औद्योगीकरण की योजना को वास्तविक रूप देने के लिये ऐसे स्टील की जरूरत थी जो निर्माण-कार्य के लिये अनुकूल हो, पुर्जे बनाने के योग्य हो, जंगरोधी हो तथा जिससे बाल-बेयरिंग, मोटरें तथा ट्रैक्टर बनाये जा सकें। स्टील की इन किस्मों का एक महत्त्वपूर्ण घटक क्रोमियम था।

1927-1928 में सोवियत संघ में फेरोऐलाय कारखानों की परियोजना तथा निर्माण पर कार्य शुरू हो गया। 1931 में चेल्याबिन्स्क फेरोऐलॉय कारखाना चालू हो गया जो देश में इस तरह का पहला कारखाना था। उन दिनों देश की विज्ञान अकादमी के उम्मीदवार सदस्य व० येमेल्यानोव, जिनकी गिनती सोवियत उच्च धात्विकी के संस्थापकों में की जाती है, विदेशी विशेषज्ञों के अनुभवों का अध्ययन करने जर्मनी गये थे।

अपने संस्मरणों में येमेल्यानोव एक दिलचस्प वार्तालाप का जिक्र करते हैं: "1933 में मैंने एक जर्मन कारखाने के चीफ इंजीनियर से एक प्रश्न पूछा:

– आप अपने कारखाने का माल किसे बेचते हैं?

चीफ इंजीनियर गिनाने लगा:

– लगभग 5% फेरोक्रोमियम हमसे आस-पास की रसायनिक फैक्टरियां ले लेती हैं, 2% बेकेर फैक्टरी खरीद लेती है, 3% के लगभग...

मैंने उसे रोक दिया:

– और सोवियत संघ कितना माल खरीदता है?

– कोई निश्चित मात्रा नहीं है, अक्सर 75 से 80% तक हमारा फेरोक्रोमियम आपके देश के कारखाने खरीद लेते हैं और मजे की बात यह है कि सारा फेरोक्रोमियम हम यूराल क्रोमियम अयस्कों से प्राप्त करते हैं।"

हाँ, वास्तव में उन दिनों सोवियत संघ क्रोमियम अयस्क का निर्यात कर रहा था। जर्मनी के अलावा यह स्वीडन, इटली और संयुक्त राज्य अमरीका भी भेजा जा रहा था। और ये ही देश सोवियत संघ को फेरोक्रोमियम बेच रहे थे। चेल्याबिन्स्क के बाद जापोरोज्ये व जेस्ताफोनी में 1933 में दो और फेरोऐलॉय कारखाने लगाये गये। इन कारखानों के चालू होते ही सोवियत संघ ने दूसरे देशों से फेरोक्रोमियम तथा अन्य महत्त्वपूर्ण ऐलॉय न केवल खरीदने बंद कर दिये बल्कि उनका निर्यात भी शुरू कर दिया। देश की धात्विकी को अब जरूरत के अनुसार अच्छी किस्म के फेरोऐलाय मिलने लग पड़े थे।

1936 में कजाखस्तान में अक्त्यूबिन्स्क क्षेत्र में क्रोमाइट के विशाल निक्षेप मिले। क्रोमाइट फेरोक्रोमियम के उत्पादन में मुख्य कच्चे माल का कार्य करता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों इन निक्षेपों के पास अक्त्यूबिन्स्क फेरोऐलाय कारखाना लगाया गया जो आगे चल कर फेरोक्रोमियम तथा क्रोमियम के सभी ब्रैंडों का एक बहुत बड़ा उत्पादनस्थल बन गया।

यूराल में क्रोमाइट के विशाल भंडार हैं। विश्व में क्रोमियम अयस्कों के अन्वेषित भंडारों में सोवियत संघ का मुख्य स्थान है। चंद्रमा पर सोवियत स्वचलित गाड़ी (लुनोखोद) की यात्रा के समय वर्षा-सागर के क्षेत्र में क्रोमियम की उपस्थिति का पता चला। परन्तु चंद्रमा का वर्षा-सागर हम लोगों से दूर है जबकि लाल सागर नजदीक है। फ्रांसीसी वैज्ञानिकों ने सूडान के किनारों के निकट लाल सागर की तह में एक गड्ढे का पता लगाया है जिसकी गहराई 2200 मीटर है। इस गड्ढे में जल का तापमान बहुत उच्च है। जल के नमूनों के अध्ययन ने दिखाया है कि गड्ढा गर्म द्रव अयस्क से भरा हुआ है। इसमें क्रोमियम, लौह, स्वर्ण, मैग्नीज और अन्य धातुओं की मात्राएं अति उच्च हैं। हो सकता है कि अगले वर्षों में विशेषज्ञ धातुओं के इस 'पेय' से व्यावहारिक लाभ उठाने की बात सोचने लगेंगे।

अग्नि रोधक उद्योगों में क्रोमाइटों का उपयोग काफी विस्तृत है। अग्निसह ईंटों के निर्माण के लिये मैग्नेसाइट तथा क्रोमियम का संयोजन अति उत्तम रहता है। इन ईंटों का प्रयोग खुली भट्टियों की लाइनिंग तथा अन्य धात्विक उपकरणों में किया जाता है। इनकी बनी चीजों में उच्चतापसह क्षमता होती है तथा बार-बार तापमान में बहुत अधिक परिवर्तन का भी इन पर कोई असर नहीं होता है।

रसायनज्ञ क्रोमाइटों से पोटेशियम और सोडियम के बायोक्रोमेट तथा क्रोमियम ऐलम बना रहे हैं जिनके प्रयोग से चमड़े में बहुत चमक आ जाती है तथा उसकी मजबूती भी बढ़ जाती है। इस प्रकार के चमड़े को "क्रोम चमड़ा" कहते हैं तथा इस चमड़े के बने बूटों को "क्रोम बूट" कहते हैं।

क्रेमलिन की मिनारों पर लगे माणिक्य सितारे रोजाना रात को मास्को के आकाश को बहुत सुंदर बना देते हैं। बहुमूल्य रत्नों

में हीरे के बाद दूसरा स्थान माणिक्य का है। प्राचीन भारतीय दंतकथा के अनुसार माणिक्य देवताओं के बहाये रुधिर के बने हैं। "रुधिर की भारी बूंदें नदी के वक्षस्थल पर सुंदर ताल वृक्षों के प्रतिबिंबों में गिरती हुई गहराई में पहुंच गयी हैं। तब से इस नदी को रावणगंगा कहते हैं और तब से ही ये बूंदें माणिक्य बन कर चमकने लगी हैं। अंधेरा होते ही ये बूंदें एक जादुई आग की तरह जलने लगती हैं। यह आग इन रत्नों के अंदर जलती है और इसके प्रकाश की किरणें नदी के पानी को वेधती हैं।" आज इस अद्वितीय लाल पत्थर को प्राप्त करने की तकनीक काफी सरल हो गयी है। अब देवताओं को अपना पवित्र खून बहाने की जरूरत नहीं है। इस काम के लिये अब ऐलुमिनियम आक्साइड में क्रोमियम आक्साइड की एक निश्चित मात्रा मिलायी जाती है (यही यौगिक ही तो माणिक्य क्रिस्टलों को लाल रंग प्रदान करता है)। कृत्रिम माणिक्य न केवल इसी कारण से ही कीमती होते हैं कि वे बहुत खूबसूरत होते हैं। इनमें एक और भी खूबी है और वह यह कि इनकी सहायता से उत्पन्न लेसर किरण बहुत सारे चमत्कार दिखा सकती है। रूसी लेखक अलेक्सेई टाल्स्टाई के उपन्यास के मुख्य पात्र इंजीनियर गारिन द्वारा बनायी मशीन की तरह लेसर किरण किसी भी धातु को उतनी ही आसानी से काट सकती है जैसे कैंची कागज को। हीरे, कुरंड तथा अन्य "सख्त नट" अपनी सख्ती के लिये मशहूर हैं, परंतु लेसर किरण इनमें बारीक से बारीक सूराख कर सकती है।

क्रोमियम आक्साइड के प्रयोग से ट्रैक्टर निर्माताओं को इंजन की धावी-अवधि कम करने में काफी सफलता मिली है। यह वह आपरेशन है जिसके दौरान इंजन के सभी कार्यगत पुर्जे एक दूसरे के 'आदी' किये जाते हैं। आम तौर पर इस काम में काफी समय लगता था जिससे ट्रैक्टर-कारखानों के इंजीनियर संतुष्ट नहीं थे। इस समस्या का हल तब मिल गया जब एक नया ईंधन योज्य ढूंढ़ लिया गया। इस योज्य में क्रोमियम आक्साइड उपस्थित था। इसके प्रभाव का रहस्य अति सरल है: ईंधन के दहन के दौरान क्रोमियम आक्साइड के अतिसूक्ष्म अपघर्षी कण बन जाते हैं जो सिलिंडर की आंतरिक दीवारों तथा अन्य सतहों पर जमा होकर सभी खुरदुरी जगहों को चिकना कर देते हैं। इसके बाद ये कण पुर्जों की पालिश करके उन्हें एक दूसरे में फिट होने के लायक बना देते हैं। इस योज्य को जब एक नये स्नेहक में मिलाकर इंजन में डाला गया तो इंजन की धावी-अवधि पहले से 30 गुना कम हो गयी।

पिछले कुछ समय से क्रोमियम को एक और नया "काम" मिल गया है। अब ऐसी चुंबकीय टेपें बनायी जा रही हैं जिनमें फेरिक आक्साइड की जगह क्रोमियम आक्साइड का इस्तेमाल किया जा रहा है। इस परि-वर्तन से काफी लाभ हुआ है—ध्वनि के अभिलेखन का घनत्व और उसकी कोटि उत्तम हो गयी है तथा टेपों की विश्वसनीयता बढ़ गयी है। नयी टेपों का उपयोग कंप्यु-टरों के चुम्बकीय स्मरण-यंत्रों में विस्तृत रूप से किया जाता है।

क्रोमियम हर क्षेत्र में बहुत काम का सिद्ध हो रहा है। यह फोटोग्राफी के सामान में, दवाइयों में, रसायनिक प्रतिक्रियाओं के उत्प्रेरकों में, धात्विक लेपन में इस्तेमाल किया जा रहा है। पाठकों की सुविधा तथा

जानकारी के लिये क्रोमियम लेपन का हम यहां सविस्तार वर्णन कर रहे हैं।

बहुत पहले वैज्ञानिकों को यह पता चल गया था कि क्रोमियम बहुत ज्यादा सख्त होने के साथ-साथ वायु में बेहतरीन संक्षारण प्रतिरोधक्षमता रखता है तथा अम्लों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता है (सख्ती में दूसरी कोई भी धातु क्रोमियम का मुकाबला नहीं कर सकती)। इस जानकारी से लाभ उठाने के लिये वैज्ञानिकों ने अन्य धातुओं की बनी चीजों की ऊपरी सतह पर विद्युत अपघटन द्वारा क्रोमियम का पतला लेप चढ़ा कर देखा जिससे वे संक्षारण, खरोंचों तथा अन्य "चोटों" से सुरक्षित रह सकें, परंतु क्रोमियम लेप सरंध्री निकला तथा सरलता से छिल गया। इसने वैज्ञानिकों की आशाओं पर पानी फेर दिया। 75 साल तक लगातार वैज्ञानिक क्रोमियम लेपन की समस्या पर काम करते रहे। केवल हमारी शताब्दी के दूसरे दशक में उन्हें इस कार्य में सफलता मिली। यह पता चला कि विद्युत-अपघट्य में जिस क्रोमियम का इस्तेमाल किया जा रहा था वह त्रिसंयोजक था जिसकी वजह से लेपन बेकार सिद्ध हो रहा था। जबकि इस कार्य के लिये केवल छः संयोजक क्रोमियम उपयुक्त था तब से विद्युत-अपघट्य में क्रोमिक अम्ल का प्रयोग शुरू हो गया क्योंकि इसमें क्रोमियम की संयोजकता 6 के बराबर थी। संरक्षी परत की मोटाई अक्सर 0.1 मिलीमीटर होती है, उदाहरण के लिये कारों, मोटरसाइकिलों तथा साइकिलों के बाहरी पुर्जों पर। परंतु कई बार क्रोमियम का लेप केवल सजावट के लिये भी चढ़ाया जाता है, विशेष रूप से उन चीजों पर जिन्हें संक्षारण का कोई विशेष खतरा नहीं होता है जैसे घड़ियों व दरवाजों के हैंडल पर आदि। इन चीजों पर क्रोमियम की बहुत ही पतली परत चढ़ाई जाती है (0.0002-0.0005 मिलीमीटर)।

सोवियत संघ के एक प्रजातंत्र लिथुआनिया के रसायनज्ञों ने विशेष महत्त्व वाले पुर्जों की सुरक्षा के लिये एक बहुस्तरीय "बकतर" के निर्माण की एक विधि ढूंढ़ निकाली है। इस लेपन की बहुत पतली सतह क्रोमियम की बनी होती है (सूक्ष्मदर्शी में देखने पर वास्तव में यह "बकतर" की याद दिलाती है)। पुर्जे के इस्तेमाल के दौरान आक्सीजन के आक्रमण का मुकाबला सबसे पहले यही सतह करती है, परंतु जब तक क्रोमियम का उपचयन होता है तब तक कई साल बीत जाते हैं और इस दौरान पुर्जा अपना फर्ज निभाता रहता है।

पिछले समय तक क्रोमियम का लेप केवल धातुओं की बनी चीजों पर चढ़ाया जाता था, परंतु हाल ही में सोवियत वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक की चीजों पर भी क्रोमियम चढ़ाना सीख लिया है। विख्यात बहुलक पॉलिस्टाइराल पर क्रोमियम चढ़ाकर जब उसका परीक्षण करके देखा गया तो उसमें पहले से ज्यादा मजबूती पायी गयी। अब इस बहुलक को निर्माण-सामग्रियों के ज्ञात शत्रुओं, जैसे, घिसाई, श्रांति तथा प्रतिघात आदि से कम डर लगने लगा है। स्वाभाविक है कि इसके बने पुर्जों की आयु पहले से ज्यादा हो गयी है।

क्रोमियम 'बकतर' हीरों के लिये भी उपयोगी सिद्ध हुआ है हालांकि हीरे खुद ही सख्ती का मानक समझे जाते हैं। बात यह है कि सभी हीरे औजारों में प्रयोग लायक नहीं होते: सामान्यतः प्राकृतिक हीरों में बहुत सारी छोटी-छोटी दरारें होती हैं जिनकी

वजह से पत्थर कटरों या बरमों लायक नहीं रहते। जैसे ही ऐसे हीरे वाला औजार धातु या कठोर वस्तु के संपर्क में आता है हीरा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। इसके अलावा दूसरी बात यह है कि प्राकृतिक हीरों के क्रिस्टल अक्सर औजार के होल्डर से बाहर निकल जाते हैं। इस कमी को दूर करने के लिये वैज्ञानिकों ने हीरों पर क्रोमियम की पतली परत चढ़ाने की सलाह दी क्योंकि क्रोमियम हीरों तथा कापर होल्डर दोनों पर अच्छी तरह से चढ़ जाता है।

धातु से लेपित हीरे का जब परीक्षण किया गया तो यह देखा गया कि हीरा औजार में तो अच्छी तरह से फिट हो ही गया है पर इसके साथ-साथ उसके क्रिस्टल की आयु भी बहुत बढ़ गयी है। जब इस क्रिस्टल का सूक्ष्मदर्शी से अध्ययन किया गया तो यह देखा गया कि उसके एक फलक में काफी गहरी दरार बनी हुई है। इस दरार को हीरे पर चढ़ी परत ने ढक रखा था। बात यह थी कि क्रोमियम के परमाणुओं ने हीरे के कार्बन के साथ मिलकर उसकी सतह पर कठोर कार्बाइड बना दिये थे। विशेष बात यह थी कि क्रोमियम उस दरार में भी घुस गया था जिसकी दीवारें कार्बाइड बकतर से ढकी थीं। इस बीच होल्डर के संपर्क में आयी शुद्ध क्रोमियम की परत ने कापर के साथ मिलकर एक ऐलॉय बना दिया जिसकी वजह से हीरा औजार के अंदर अच्छी तरह से फिट हो गया। इस प्रकार क्रोमियम की सहायता से एक तीर से दो शिकार करने में सफलता मिल गयी: औजार स्थायी हो गया तथा हीरा... हीरे से भी ज्यादा मजबूत हो गया।

क्रोमियम की कहानी समाप्त करने से पहले हम एक बार फिर वा० येमेल्यानोव को याद करेंगे। 1967 में उन्होंने निम्न शब्द कहे: "दो साल पहले मैंने एक खबर सुनी परंतु अफसोस है कि हमारे देश में इस पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। सोवियत संघ ने इंगलैंड को फेरोक्रोमियम बेचा, उस देश को जिसे हम हमेशा तकनीकी प्रगति का प्रतीक मानते आ रहे हैं। आज इंगलैंड हमारे से फेरोक्रोमियम खरीद रहा है। अंग्रेज लोग जानते हैं कि जो कुछ भी वे कर रहे हैं, ठीक ही कर रहे हैं।"

लोहे का पक्का दोस्त

भूमिगत महल के स्तंभ—जादूई काला पाउडर—कांच धोने वाला साबुन—मैंगनीज पहले किसने खोजा?—गाह्न ने या कैम ने?—शील खोज का काम जारी रखते हैं—'नारकीय' आग—आकाशीयपिंडों की कमी—सेफ तोड़ने का प्रयास करो—क्या जनसभा बुलाने का प्रयास सफल होगा?—प्लैटिनम तथा पैलेडियम की जगह—बचपन से परिचित हैं—क्या कारण है कि कुछ चींटियों का रंग मेंहदी जैसा होता है?—गुलाबी रंग के मोती—शर्क के मुँह में—अनुमान किया जाता है—जीवाणुओं की मदद लेनी पड़ी—अंतर्जलीय केबल की पकड़ में आ गया—गलती से जहाज पर से फेंक दिया गया—एक विचित्र तमगा—अतल में काम करने के लिये—अंतरिक्ष से प्राप्त 'पार्सल'—क्या रूस को मैंगनीज की जरूरत है?—खुली भट्टी मैंगनीज अयस्कों की मुख्य उपभोक्ता है

अगर आपने मास्को की पाताल रेल में कभी सफर किया है तो इसके एक स्टेशन 'मायाकोव्स्काया' की सुंदरता देखकर आप जरूर आश्चर्यचकित हुए होंगे। इस भूमिगत महल के स्तंभों के किनारे गुलाबी रंग के पत्थरों से सजे हुए हैं। इनमें रोडोनाइट लगाया गया है जिसके अंदर मैंगनीज उपस्थित होता है। बढ़िया गुलाबी रंग (यूनानी भाषा में 'रोडोन' शब्द का अर्थ 'गुलाबी' होता है) तथा अन्य गुणों के कारण यह पत्थर सजावट के काम आता है। इसकी बनी चीजें हरमिटेज, पीटर व पाल कैथीड्रल तथा देश के अन्य संग्रहालयों में प्रदर्शन हेतु रखी गयी हैं। रोडोनाइट के विशाल निक्षेप यूराल में पाये जाते हैं। एक बार तो वहां पर 47 टन वजन का एक रोडोनाइट ढेला मिला। हमारे ग्रह पर इस खनिज के इतने अधिक भंडार यूराल के अलावा और कहीं नहीं है। यूराल में पाया रोडोनाइट सबसे सुंदर माना जाता है।

परंतु मैंगनीज का मुख्य स्रोत रोडोनाइट नहीं बल्कि पाइरोलुसाइट या मैंगनीज आक्साइड है। यह काले रंग का एक खनिज है जिससे मानव-जाति प्राचीन काल से परिचित है। प्रथम शताब्दी में प्राचीन रोम के विख्यात इतिहासकार और प्रकृतिवादी प्लीनी ज्योष्ठ ने यह कहा था कि काले पाउडर (पीसा हुआ पाइरोलुसाइट) में शीशे को चमकाने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान है। प्लीनी की मृत्यु वेसूवियस ज्वालामुखी के फट जाने से हुई थी। उनके बाद 1540 में इटली के वैज्ञानिक तथा इंजीनियर वैनोसिओ बिरिंगुसिओ ने खनन तथा धात्विकी के विश्वकोष 'पाइरोटैक्नीया' में निम्न शब्दों में इस पाउडर का वर्णन किया: "...पाइरोलुसाइट गहरे भूरे रंग का होता है... इसमें अगर कांचाभ पदार्थ मिला दिये जायें तो यह अतिसुंदर बैंगनी रंग का हो जाता है। कांच के कारीगर कांच को सुंदर बैंगनी रंग में रंगने के लिये इसका प्रयोग करते हैं तथा कुम्हार लोग मिट्टी के बर्तनों पर बैंगनी रंग के डिजाइन बनाने के लिये। इसके अलावा पाइरोलुसाइट में एक और खूबी है: पिघले कांच के साथ ऐलॉय बनाने पर यह कांच को शुद्ध कर देता है, हरे या पीले रंग की जगह सफेद रंग का बना देता है"।

खनिज का नाम 'पाइरोलुसाइट' बाद में रखा गया। मध्ययुग में कांच का रंग उतारने की क्षमता रखने के कारण इसे 'कांच धोने वाला साबुन' या 'मैंगनीज' (यूनानी भाषा में इसका अर्थ है—शुद्ध करना) कहते थे। इसके अलावा यह खनिज एक और नाम से भी जाना जाता था—'काला मैगनेशिया'। पाइरोलुसाइट मैगनेशिया शहर के आसपास के इलाके से निकाला जाता रहा है। इसी इलाके से सफेद मैगनेशिया (मैगनेशिया ऐल्बा या मैगनेशिया आक्साइड) भी निकाला जाता रहा है।

रसायन का इतिहास यह कहता है कि मैंगनीज की खोज स्वीडिश रसायनज्ञ गाहन (सन् 1774) ने की थी। परंतु कुछ तथ्य ऐसे हैं जो यह बताते हैं कि धात्विक मैंगनीज के पहले दाने जिस व्यक्ति ने प्राप्त किये उसका नाम इगनाटिस कैम था। कैम ने अपनी थीसिस में इस बात का वर्णन किया जो 1770 में वियेना में प्रकाशित हुई। परंतु कैम ने अपना अनुसंधान कार्य अधूरा ही छोड़ दिया जिसकी वजह से उन दिनों अधिकांश रसायनज्ञ उनकी खोज से अपरिचित रहे।

फिर भी एक रसायन निदर्शिका में कैम की खोज का वर्णन किया गया है: "कैम ने पाइरोलुसाइट पाउडर के एक भाग तथा काले गालक के दो भाग के मिश्रण को गर्म करके नीली-सफेद भंगुर क्रिस्टलाकार धातु प्राप्त की। इस क्रिस्टल के असंख्य विभिन्न आकार वाले फलके बड़ी सुंदरता के साथ चमक रहे थे और धातु के टूटने से नीले से लेकर पीले तक सारे रंग निकलते थे"।

मैंगनीज प्राप्त करने का अगला प्रयास करने वाले व्यक्ति थे—स्वीडिश वैज्ञानिक टोरबेन बर्गमैन। "जिस खनिज को लोग 'काला मैगनिशिया' कह रहे हैं, वह बिल्कुल नयी चीज है। उसे भूना चूना या मैगनेशिया ऐल्बा नहीं समझना चाहिये"। यह सब जानते हुए भी बर्गमैन पाइरोलुसाइट से मैंग-नीज नहीं प्राप्त कर पाये।

बर्गमैन के मित्र सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ कार्ल शील ने अब इस खनिज के अध्ययन का बीड़ा उठाया। 1774 में स्टाकहोल्म की विज्ञान अकादमी में उन्होंने पाइरोलुसाइट तथा इसके गुणों के बारे में एक लेख पढ़ा। इस लेख में शील ने एक नये तत्त्व—क्लोरीन के आविष्कार की सूचना दी। इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा कि पाइरोलुसाइट में एक नया तत्त्व विद्यमान है जिसकी प्रकृति सभी ज्ञात तत्त्वों से भिन्न है। परंतु इसको प्राप्त करने में शील असफल रहे।

जो काम बर्गमैन तथा शील न कर सके वह उसी साल 1774 में गाहन ने कर दिखाया। 16 मई 1774 को शील ने गाहन को शुद्ध पाइरोलुसाइट का एक नमूना इस चिट के साथ भेजा: "आप इस शुद्ध पाइरोलुसाइट को अपनी 'नारकीय आग' में डालें और इसका परिणाम मुझे सूचित करने की कृपा करें। मैं बड़ी बेसब्री से आपके जवाब का इंतजार कर रहा हूँ। और हाँ, आशा करता हूँ कि आप प्राप्त धातु का छोटा सा टुकड़ा मुझे शीघ्र से शीघ्र भेज देंगे"। रसायनज्ञ गाहन को एक अच्छा प्रयोगकर्त्ता मानते थे विशेषकर धात्विक प्रयोग-कार्यों में। गाहन ने एक क्रूसिबल लेकर उसकी अंदरूनी दीवारों पर चारकोल की धूल लगा दी। फिर इस क्रूसिबल में पीसे पाइरोलुसाइट तथा तेल का मिश्रण बनाकर ऊपर से चारकोल की धूल छिड़क दी। अब इस मिश्रण को उन्होंने एक घंटे तक तेज आंच पर गर्म किया जिसके परिणामस्वरूप क्रूसिबल में धात्विक मैंगनीज का दाना बन गया। इस आविष्कार ने गाहन का नाम सारे विश्व में प्रसिद्ध कर दिया तथा धातुओं के परिवार में मैंगनीज नामक एक नया सदस्य शामिल हो गया।

नये तत्त्व को धातु की मान्यता एकदम नहीं मिली। बात यह थी कि अठारहवीं सदी के रसायनज्ञ पुराने जमाने के कीमियागरों के विचारों के कब्जे में थे जिन्हें यह विश्वास

था कि "सात धातुएं सात ग्रहों के अनुकूल प्रकृति द्वारा बनी हैं"। ठीक है कि पुराने जमाने में लोगों को केवल सात धातुएं मालूम थीं जो ज्ञात ग्रहों (सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी को छोड़कर अन्य पांच ग्रहों) की संख्या 7 के बराबर थीं। परन्तु आविष्कृत धातुओं की संख्या तेजी से बढ़ती रही जबकि नये ग्रहों का आविष्कार धीमी गति से होता रहा (केवल 1781 में सूर्य-मंडल के नये ग्रह की खोज हुई)। नये आविष्कृत तत्त्वों को धातुओं की मान्यता इसलिये नहीं दी जाती थी क्योंकि इससे सूर्य-मंडल के सुडौल सिद्धांत को हानि पहुंचने का डर था। उनको अर्द्धधातुएं कहा जाता था।

यह अवधारणा विज्ञान में लंबे अर्से तक चलती रही। कई वैज्ञानिक अगले सालों में भी उन पिंडों को अर्द्ध धातु कहते थे जो घनत्व, रंग या आकार की दृष्टि से धातुएं लगते थे, बल्कि सोना, रजत, ताम्र, लौह और लेड जैसे लचीले नहीं थे। उदाहरण के लिये, पारा, ऐन्टीमनी, कांसा (विस्मथ), जिंक, कोबाल्ट – अर्द्धधातुएं समझे जाते थे। मैंगनीज इनमें अन्तिम तत्त्व था जो धातुओं के ग्रुप में एकदम नहीं शामिल किया गया। जून के अंत में गाहन के नाम शील द्वारा लिखा गया पत्र यह बात बताता है जिसमें उन्होंने मैंगनीज भेजने के लिये गाहन का धन्यवाद किया। शील ने लिखा: "मैं समझता हूँ कि पाइरोलुसाइट से प्राप्त धातु का दाना वास्तव में एक अर्धधातु है जो अन्य सभी अर्धधातुओं से भिन्न है। यह लोहे के काफी नजदीक है"। परन्तु रसायनज्ञों ने आखिरकार अर्धधातु अवधारणा से इन्कार कर दिया और मैंगनीज को धातुओं की कतार में उसका स्थान दे दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश में रूस में मैंगनीज लौह का एक ऐलॉय फेरो-मैंगनीज के रूप में प्राप्त किया जाने लगा। 1825 में 'खनन पत्रिका' में मैंगनीज की सहायता से स्टील के प्रगलन की खबर छपी। तब से इस तत्त्व का भाग्य हमेशा के लिये धात्विकी के साथ जुड़ गया। आज धात्विकी मैंगनीज अयस्कों की मुख्य उपभोक्ता है।

महान रूसी धातुविज्ञानी पा० आनोसोव ने 1841 में प्रकाशित अपने क्लासिक शोधकार्य 'दमिश्की स्टील के कुछ गुण' में मैंगनीज की विभिन्न मात्रा वाले स्टीलों पर किये गये अपने प्रयोगों का वर्णन किया। उन्होंने स्टील में मैंगनीज मिलाने के लिये क्रूसिबलों में प्राप्त फेरोमैंगनीज का प्रयोग किया। 1876 से नीजनी-तागिल्स्क कारखाने में वात्या-भट्टियों में फेरोमैंगनीज का औद्योगिक प्रगलन शुरू हो गया।

मैंगनीज के इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 1882 में घटी जब एक अंग्रेज धातुविज्ञानी राबर्ट हैडफील्ड ने इस तत्त्व की उच्च मात्रा (13% के लगभग) वाला स्टील प्राप्त कर लिया।

1878 में हैडफील्ड ने अन्य तत्त्वों के साथ लौह के ऐलॉयों का अध्ययन शुरू कर दिया। इनमें मैंगनीज ऐलॉय भी शामिल था। चार साल बाद इस शेफील्डवासी युवा धातुविज्ञानी ने अपनी लाग-बुक में निम्न शब्द लिखे: "मैंने ये प्रयोग एक ऐसा स्टील बनाने के उद्देश्य से शुरू किये थे जो सख्त होने के साथ आधातवर्धनीय भी हो। इन प्रयोगों से काफी मजेदार परिणाम मिले हैं जो काफी महत्त्व रखते हैं तथा लौह-ऐलॉयों के बारे में धातुविज्ञानियों की वर्तमान धारणा को बदलने की क्षमता रखते हैं"।

1883 में इंगलैंड में हैडफील्ड को फेरो-मैंगनीज मिलाकर मैंगनीज स्टील बनाने का सर्वप्रथम पेटेंट दे दिया गया। आने वाले सालों में हैडफील्ड ने मैंगनीज स्टील की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन जारी रखा। 1883 में उनके 3 लेख छपे जिनके शीर्षक निम्न थे: 'मैंगनीज तथा धात्विकी में इसका उपयोग', 'लौह तथा मैंगनीज के कुछ नये गुणों की खोज', 'मैंगनीज स्टील'। उनके अनुसंधान कार्यों ने यह सिद्ध किया कि जल में सख्त करने से मैंगनीज स्टील में कुछ नये अद्वितीय गुण आ जाते हैं। इसके बाद हैडफील्ड को मैंगनीज स्टील की तापीय अभि-क्रिया संबंधी कई पेटेंट मिल गये और 1901 में उन्होंने उस भट्टी के डिजाइन का पेटेंट ले लिया जिसमें सख्त करने से पहले इस स्टील को गर्म करते हैं।

हैडफील्ड के स्टील को शीघ्र ही विश्व के धातुविज्ञानियों तथा मशीन-निर्माताओं की मान्यता मिल गयी। उच्च जीर्णप्रतिरोधता के कारण इसका प्रयोग उन पुर्जों के निर्माण में किया जाने लगा जो उच्च दाब पर बहुत ज्यादा घिस जाते थे – रेलों की पटरियों के क्रासबांड, क्रशर के जबड़े, गोला मिल के गोले, हल्की ट्रेक आदि। सबसे ज्यादा आश्चर्य की बात यह थी कि बोझ पड़ते-पड़ते इन पुर्जों के स्टील की मजबूती लगातार बढ़ती जाती थी। जब इस अजीब बात का कारण ढूंढ़ा गया तो पता चला कि ढलाई के बाद स्टील के दानों की सीमाओं पर कार्बाइड की अतिरिक्त मात्रा जमा हो जाती है जो उसकी मजबूती कम कर देती है। घिसने तथा बोझ पड़ने से ये कार्बाइड धातु में विलयित हो जाते हैं। इस्तेमाल होते समय बोझ पड़ने से स्टील की ऊपरी सतह से कार्बन निकलता रहता है जिससे उसकी मजबूती बढ़ती जाती है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि हैडफील्ड के स्टील में तालों व सेफों की फैक्ट्रियों ने बहुत रुचि दिखायी।

मैंगनीज ढलवां लोहा भी अपने आप मजबूत होने की क्षमता रखता है। उदाहरण

के लिये, जिन उत्खनित्रों में इस प्रकार के ढलवां लोहे के बने बॉल-बेयरिंग लगाये गये वे कांसे बाल-बेयरिंगों के मुकाबले दुगुना ज्यादा अवधि तक कार्य करते रहे और इस दौरान उन्हें एक भी बार मरम्मत की जरूरत नहीं पड़ी।

धात्विकी में स्टील के विआक्सीकरण तथा विगंधकन के लिये प्रायः मैंगनीज प्रयुक्त किया जाता है। स्प्रिंगों के स्टील में, पैट्रोल तथा गैस की पाइप-लाइनों के स्टील में, अचुंबकीय स्टील में यह एक ऐलॉय तत्त्व के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। मैंगनीज युक्त स्टील की किस्मों की गिनती कराने की शायद जरूरत नहीं है क्योंकि गाहन द्वारा आविष्कृत तत्त्व स्टील तथा ढलवां लोहे की हर किस्म में कम या अधिक मात्रा में उपस्थित जरूर होता है। इसी कारण मैंगनीज को लोहे का पक्का दोस्त कहते हैं। आवर्त सारणी में भी तो दोनों तत्त्व एक दूसरे के पड़ोसी हैं – 25-वें तथा 26-वें स्थान पर। आगे चलकर हम बतायेंगे कि लोहे के पीछे-पीछे मैंगनीज शार्क के दाँतों में भी मिला।

1917 में रूसी वैज्ञानिकों झेम्चूझनी तथा पीत्राशेविच ने यह सिद्ध किया कि मैंगनीज में थोड़ा सा भी ताम्र मिलाने से उसकी तन्यता बढ़ जाती है। इस जानकारी से धातुविज्ञानियों ने अब मैंगनीज ऐलॉयों पर भी ध्यान देना शुरू कर दिया।

मैंगनीज के बहुत सारे ऐलॉय – मैंगनिन आधुनिक तकनीक में प्रयुक्त किये जाते हैं। मैंगनीज के ताम्र व निकैल ऐलॉय उच्च विद्युतप्रतिरोधकता रखते हैं जिस पर ताप का लगभग न के बराबर असर होता है। मैंगनिन में दाब के अनुसार प्रतिरोध बदलने

के गुण के सिद्धांत पर विद्युत मैनोमीटर का निर्माण किया गया है। साधारण मैनोमीटर से बहुत अधिक उच्च दाब नहीं मापा जा सकता, उदाहरण के लिये कई हजार ऐटमोस्फियर। इस अवस्था में मैनोमीटर ट्यूब के अंदर भरा द्रव या गैस उसकी दीवारों को तोड़ देती है चाहे वे कितनी भी मजबूत चीज से क्यों न बनी हों। विद्युत मैनोमीटर यह काम सफलतापूर्वक कर देता है : निश्चित दाब पर मैंगनिन का विद्युत प्रतिरोध माप कर एक विशेष सूत्र द्वारा हर तरह का दाब शुद्ध रूप से परिकलित किया जा सकता है।

मैंगनिनों में एक और बहुमूल्य गुण विद्यमान होता है – मंदन (डैंपिंग), अर्थात् इनमें दोलनों की ऊर्जा का अवशोषण करने की क्षमता होती है। अगर कोई आदमी मैंगनिन का घंटा बनाये तो यह घंटा किसी भी काम का नहीं निकलेगा। इसे बजाने पर जोरदार आवाज की जगह बहुत मंद सी ध्वनि निकलेगी।

परंतु घंटे के लिये अगर मंदन एक बहुत खराब बात है तो रेल या ट्राम की पटरियों व पहियों तथा इसी तरह की आवाज करने

वाले अन्य पुर्जों के लिये यह बहुत काम की चीज है क्योंकि इसकी वजह से शोर नहीं पैदा हो पायेगा। फोर्जन तथा स्टैम्पिंग वर्कशापों में इन 'गूंगे' ऐलॉयों की सहायता से धातुओं का शोर बहुत ज्यादा घटाया जा सकता है। शोर न करने की सबसे अधिक क्षमता उन ऐलॉयों में होती है जिनमें 70% मैंगनीज तथा 30% ताम्र मिला होता है। इनमें से कुछ की मजबूती लोहे से कम नहीं होती है।

एक मजेदार बात यह है कि मैंगनीज कांस्य – मैंगनीज का ताम्र के साथ बना ऐलॉय चुंबकित हो सकता है हालांकि दोनों धातुओं में से कोई भी चुंबकीय गुण नहीं रखती है।

पिछले कुछ सालों से 'स्मृति' रखने वाले ऐलॉय काफी प्रसिद्ध हो रहे हैं (इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध ऐलॉय नाइटोनाल का वर्णन 'ताम्र राक्षस' अध्याय में किया गया है)। इस प्रकार के ऐलॉयों की संख्या हर साल बढ़ती जा रही है। हाल ही में वैज्ञानिकों ने मैंगनीज के आधार पर (ताम्र मिलाकर) एक ऐसा ऐलॉय बनाने में सफलता प्राप्त की है जिसमें अपना पहला रूप याद रखने की क्षमता नाइटोनाल से कम नहीं है। इसका उत्पादन तथा प्रयोग सरल है और इस बात में कोई शक नहीं कि इसका विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जायेगा।

मैंगनीज ऐलॉयों ने अन्तरिक्ष यात्रा भी की है। 1976 में सोवियत कक्षीय-स्टेशन 'साल्यूत-5' की उड़ान के दौरान सोवियत अन्तरिक्ष-यात्रियों बोरीस वोलीनोव और विताली जोलोबोव ने जंगरोधी स्टील से बनी पाइपों के टुकड़े अन्तरिक्ष में मैंगनीज-निकैल ऐलॉय की सहायता से वेल्डिंग किये। पृथ्वी पर लौटने पर इस तरह जुड़े हुए पाइपों की आजमाइश की गयी जिससे पता चला कि वेल्डिंग सफल रहा और पाइपों के जोड़ने का स्थान 500 ऐटमोस्फियर का दाब सह सका। इस प्रयोग का परिणाम बड़ा महत्त्व रखता है क्योंकि निकट भविष्य में अन्तरिक्ष में पुर्जों को जोड़ने का काम किया जायेगा।

बहुत दिनों तक अतिशुद्ध नाइट्रोजन के उत्पादन के लिये उत्प्रेरक के रूप में बहुमूल्य धातुओं जैसे पैलेडियम तथा प्लैटिनम का इस्तेमाल चलता रहा। जार्जिया की विज्ञान अकादमी के अकार्बनिक रसायन व विद्युत रसायन संस्थान में कुछ समय पहले एक विधि ढूंढ़ी गयी है जिसके अनुसार इस कार्य में उत्प्रेरक की भूमिका मैंगनीज निभाता है। रूस्तावी संश्लिष्ट तंतु फैक्टरी में वायु से आदर्श नाइट्रोजन प्राप्त करने के लिये एक अनोखा औद्योगिक प्लांट लगाया गया है। ऐसी नाइट्रोजन की आवश्यकता काप्रोन के उत्पादन में पड़ती है।

मैंगनीज के एक यौगिक पोटेशियम परमेंगनेट को हम सब बचपन से जानते हैं। इसका प्रयोग जख्म धोने के लिये, गरारे करने के लिये या जलन जख्म का इलाज करने के लिये किया जाता है। रसायनिक प्रयोगशालाओं में परमैंगनेटोमिति अर्थात् गुणात्मक विश्लेषण में इसका प्रयोग विस्तृत है।

अन्य कई तत्त्वों की तरह मैंगनीज भी जीवजंतुओं तथा वनस्पतियों के सामान्य विकास के लिये आवश्यक होता है। आम तौर पर उनके अंदर इसकी मात्रा 1 प्रतिशत का कई हजारवां हिस्सा होती है परंतु कुछ जीव तथा वनस्पति इस तत्त्व में हद से ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। उदाहरण के लिये, मेंहदी रंग की चींटियों के अन्दर इसकी

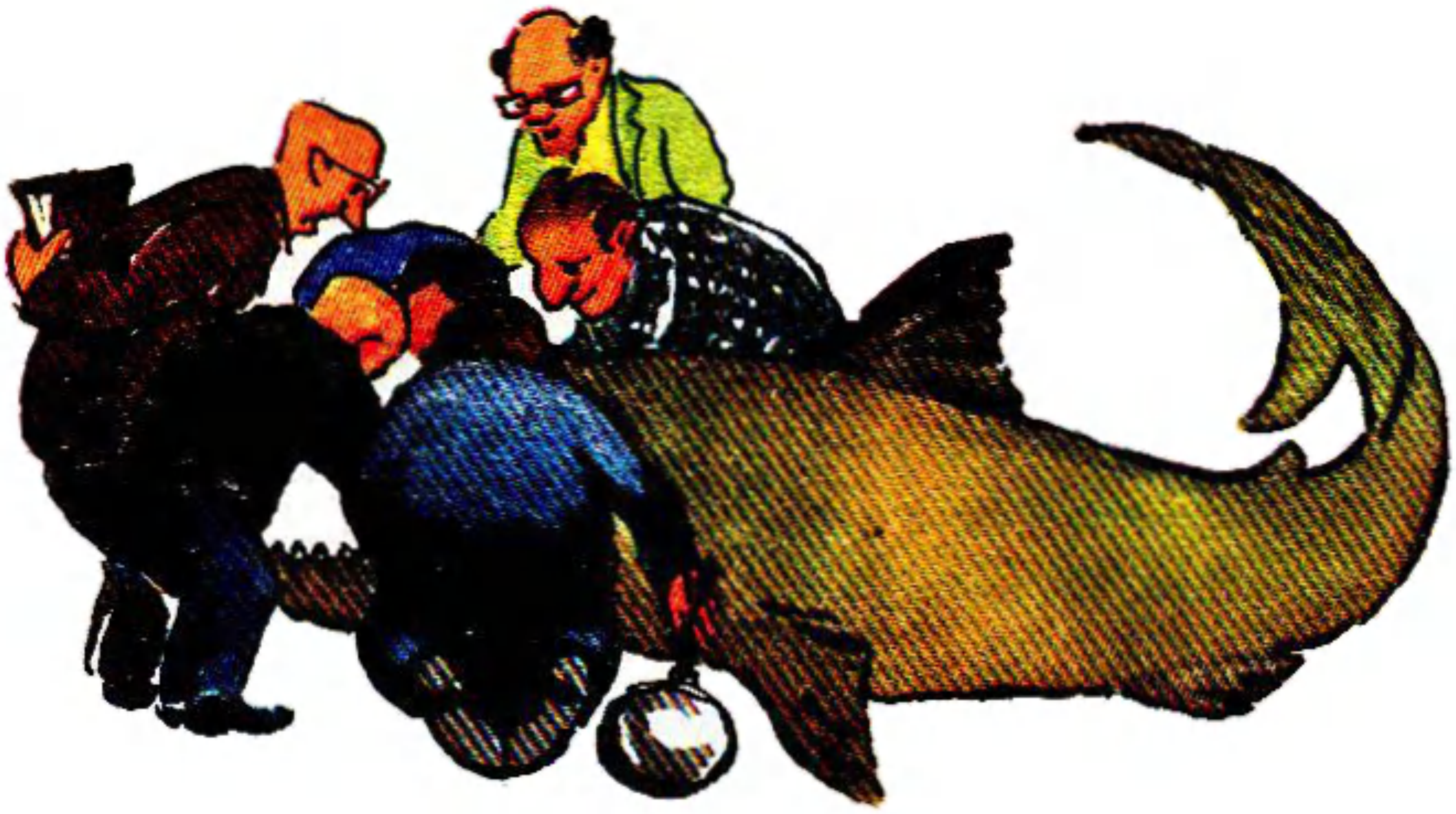

मात्रा 0.05% तक पहुंच जाती है। किट-फफूंदी, समुद्री घास तथा जल नटों में इससे ज्यादा मात्रा में मैंगनीज उपस्थित होता है। जीवाणुओं की कुछ किस्मों में मैंगनीज की मात्रा कई प्रतिशत तक पहुँच जाती है। मनुष्य के रुधिर में 0.002-0.003% मैंगनीज उपस्थित होता है। 24 घंटों में मनुष्य को 3-8 मिलीग्राम मैंगनीज की जरूरत पड़ती है। जब प्रयोगाधीन चूहों के खाने में मैंगनीज नहीं होता था तब उनकी जनन-क्षमता बंद हो जाती थी। उनके खाने में मैंगनीज क्लोराइड शामिल किये जाने पर जनन-क्षमता पुन:स्थापित हो जाती है।

अगर हम यहां वनस्पतियों तथा जीव-जंतुओं की चर्चा कर रहे हैं तो हमें मछलियों की भी बात करनी चाहिये। हमारा मतलब उस शार्क से है जिसका नाम ऊपर लिया गया है। वैज्ञानिकों ने महासागर के तल पर हजारों साल तक पड़ी एक शार्क के दांतों का अध्ययन किया। पता चला कि उसके दांत बिल्कुल सही सलामत थे। हां, उन पर लौह तथा मैंगनीज के बहुत सारे ऐलॉय जरूर जमा हो गये थे। ये ऐलॉय उस शार्क के मुंह में कैसे पहुंच गये?

पिछली शताब्दी में सन् 1876 में इंगलैंड का तीन पालों वाला एक जहाज 'चेलेंजर' 3 साल तक अनुसंधान के उद्देश्य से विभिन्न सागरों तथा महासागरों में घूमता रहा। इस जहाज द्वारा इंगलैंड लायी गयी चीजों में गहरे रंग के अजीब से शंकु आकार के कुछ ढेले भी थे जिन्हें अलग-अलग जगहों पर समुद्र के तल से उठाया गया था। ये शंकु मुख्यत: मैंगनीज के बने थे इसलिये इनका नाम 'मैंगनीज नीडल' रख दिया गया। कुछ अन्य लोगों ने इन्हें एक वैज्ञानिक नाम दे दिया–लौह-मैंगनीज कंकड़। अगले अभियानों से यह पता चला कि समुद्र के तल पर बहुत सारी जगहों पर इन 'मैंगनीज नीडलों' के भंडार बिखरे पड़े हैं। परंतु बीसवीं शताब्दी के मध्य तक किसी ने भी इनमें रुचि नहीं दिखायी। पिछले सालों जब मैंगनीज अयस्कों की कमी महसूस होने लगी तब वैज्ञानिकों ने समुद्र के इस अंतर्जलीय खजाने पर ध्यान दिया। इन कंकड़ों के क्षेत्रों का बड़े ध्यान

से अध्ययन किया गया। प्राप्त परिणाम चौंका देने वाले थे। प्राथमिक आंकड़ों के अनुसार केवल प्रशांत महासागर में ही लगभग सैकड़ों करोड़ों टन बढ़िया किस्म के लौह-मैंगनीज अयस्क बिखरे पड़े हैं। जी हां, अयस्क, क्योंकि इसमें मैंगनीज की मात्रा 50% तक पहुंच जाती है और लौह की 27% तक। (कुछ कंकड़ों में मैंगनीज डाइ-आक्साइड की मात्रा 98% तक पहुंच जाती है तथा इन्हें शुद्ध किये बिना ही इस्तेमाल में लाया जा सकता है, उदाहरण के लिये, बिजली की बैटरियों के उत्पादन में)।

अटलांटिक महासागर भी कोई कम अमीर नहीं है। अभी हाल ही में सोवियत वैज्ञानिकों का एक दल 'वित्याज' जहाज पर हिंद महासागर के अभियान से लौटा है। यहां भी समुद्र के तल से लौह-मैंगनीज कंकड़ प्राप्त हुए हैं। आंकड़े कहते हैं कि यह महासागर भी अपने 'साथियों' से गरीब नहीं है।

समुद्रवैज्ञानिकों का अनुमान है कि जल में विलीन खनिजों के किसी पिंड के चारों ओर एकत्रित हो जाने से इस तरह के कंकड़ बन गये हैं। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि इसमें कुछ समुद्री जीवाणुओं का हाथ है। लेनिनग्राद के जीवविज्ञानियों ने धातुजननिक जीवाणुओं की कुछ ऐसी किस्में ढूंढी हैं जो जल से मैंगनीज निकाल कर इसे एकत्रित करने की क्षमता रखते हैं। प्रयोगशाला की परिस्थितियों में इन अतर्जलीय 'धातुकर्मियों' ने ईर्ष्या करने लायक कार्यक्षमता दिखायी: दो-तीन हफ्तों के अंदर इन्होंने माचिस की तीली के सिर जितने बड़े मैंगनीज कंकड़ बना डाले। अगर इस बात पर ध्यान दिया जाये कि ये 'कारीगर' खुद इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शी में भी मुश्किल से दिखायी पड़ते हैं तो इनकी उत्पादनक्षमता की तारीफ जरूर करनी पड़ेगी। बहुत ही अप्रत्याशित परिणाम हैवाई (Hawaiian) द्वीपों के विश्व-विद्यालय को प्राप्त हुए, जो तटवर्ती पानी में मत्स्य-पालन का काम कर रहे थे। वहां लोगों ने मछलियों के रहने के लिये सैकड़ों पुरानी मोटर गाड़ियां डुबा कर कृत्रिम प्रवाल-भित्तियां बना दीं। मत्स्यविज्ञानियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वे छः महीने बाद मछलियों की बस्ती का परीक्षण करने लगे। पता चला कि सभी गाड़ियों पर मैंगनीज के उत्तम ढेले मालाओं की तरह जमे हुए थे। तो क्या वैज्ञानिकों को समुद्री पानी से मैंगेनीज उपजाना शुरू कर देना चाहिये?

सागर से प्राप्त इन ढेलों का आकार आलू के कंद से मिलता जुलता है। इनका रंग भूरे और काले रंग के बीच होता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि ढेले में किस चीज की मात्रा अधिक है – लौह की या मैंगनीज की। मैंगनीज की मात्रा बहुत अधिक होने पर ढेला पूर्णतया काले रंग का होता है।

इन ढेलों का आकार प्रायः 1 मिलीमीटर के कुछ हिस्सों से लेकर 10-15 सेंटीमीटर तक होता है। परंतु कभी-कभी बहुत बड़े आकार के ढेले भी मिलते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के स्क्रीप्स समुद्रविज्ञान संस्थान के संग्रहालय में एक नमूना रखा हुआ है जिसका वजन 57 किलोग्राम है। यह हैवाई द्वीप के पास सागर में मिला है। अंतर्जलीय टेली-ग्राफ केबल की मरम्मत करते समय इंजीनियरों को उसके हुक में फंसा एक बड़ा ढेला मिला जिसका वजन 136 किलोग्राम था। परंतु इस अद्वितीय नमूने की किस्मत में संग्रहालय की शोभा बढ़ाना नहीं लिखा था। इसके अध्ययन

तथा ड्राइंग बनाने के बाद गलती से इसे समुद्र में फेंक दिया गया। परंतु फिर भी 'वित्याज' जहाज ने प्रशांत महासागर के अभियान के दौरान डेढ़ मीटर लंबा लौह-मैंगनीज ढेला उठा कर पिछले सारे रिकार्ड तोड़ दिये। इसका वजन एक टन के आसपास था।

बहुत सारे देश अब इन समुद्री खजानों में बहुत दिलचस्पी दिखा रहे हैं। ऐसी विशेष पनडुब्बियों, जलस्थली ट्रैक्टरों का निर्माण किया जा रहा है तथा नावों पर ऐसे उत्खनित्र लगाये जा रहे हैं जो समुद्र के तल से इस खजाने को उठा कर लायेंगे। निस्संदेह 'समुद्री-खनन' पृथ्वी-खनन से ज्यादा सुलभ होगा क्योंकि इसके विकास के लिये न तो सड़कें बनानी पड़ेंगी और न ही अन्य प्रकार के संचार साधनों की जरूरत पड़ेगी जो पृथ्वी पर परम आवश्यक हैं। समुद्री जहाज इंजीनियरों तथा मशीनरी को महासागर में किसी भी जगह तक आसानी से पहुंचा सकते हैं तथा ढूंढ़े गये खनिजों को इच्छित मार्ग से ढोकर ले जा सकते हैं। होलैंड के इंजीनियरों ने एक अंतर्जलीय स्वचालित उत्खनित्र बनाया है जो समुद्र तल से मैंगनीज तथा अन्य अयस्क इकट्ठा कर सकता है। यह स्वचालित 'खनिक' 5 किलोमीटर की गहराई में काम करने की क्षमता रखता है। इसके सभी पुर्जे बिजली से चलेंगे। एक टेलीविजन कैमरा इसमें 'ड्राइवर' का काम करेगा। इस कैमरे की सहायता से समुद्री अयस्क कैरियर पर खड़ा आपरेटर जल में आवश्यक खनिज ढूंढ़ सकेगा। उसके आदेश पर उत्खनित्र का सर्पिल रोटर अयस्क की निश्चित मात्रा उठा कर मशीन के अंदर फेंकता जायेगा।

सोवियत सघं में भी अंतर्जलीय खजानों को ढूंढ़ने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं। हर साल सैकड़ों अभियान-दल महासागरों तथा सागरों की यात्रा करते हैं। वह दिन दूर नहीं है जब समुद्रों का औद्योगिक उपयोग शुरू हो जायेगा। फिलहाल भूविज्ञानी तथा धातुविज्ञानी पृथ्वी के भंडारों का उपयोग कर रहे हैं।

भू-पर्पटी में उपस्थित खनिजों में मैंगनीज का स्थान तीछे नहीं है (0.09%)। भूविज्ञानियों का विचार है कि मैंगनीज के सभी निक्षेप लगभग 'समकालीन' हैं। इस तथ्य के आधार पर कुछ वैज्ञानिकों ने मैंगनीज भंडारों की अंतरिक्षीय उत्पत्ति की बात कही है। उनकी परिकल्पना के अनुसार लगभग 2 अरब साल पहले पृथ्वी की सतह पर मैंगनीज से भरपूर उल्कामय धूल गिरी जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी तथा सागरों व महासागरों के तल पर मैंगनीज के निक्षेप जमा हो गये।

मैंगनीज के अयस्क बहुत देशों में मिलते हैं परंतु इनमें से कोई भी देश सोवियत संघ का मुकाबला नहीं कर सकता। सोवियत जार्जिया में विश्व के सबसे विशाल मैंगनीज निक्षेप चिआतुरा में हैं। विशेष बात यह है कि इस इलाके में बहने वाली एक छोटी सी नदी क्विरीला रिओनी नदी से मिलकर उसके जल द्वारा हर साल काला सागर में एक लाख टन मैंगनीज पहुंचाती है।

चिआतुरा में मैंगनीज का उत्पादन 1879 में ही शुरू हो गया था। इसके कुछ सालों बाद रूस में एक अन्य जगह – निकोपोल के पास मैंगनीज के विशाल निक्षेपों पर कार्य शुरू हो गया। परंतु दुख की बात तो यह है कि जार के रूस को मैंगनीज की 'जरूरत' ही नहीं थी। 1913 में प्राप्त सारा मैंगनीज अयस्क विदेश भेज दिया गया। द्वितीय विश्व

युद्ध के दौरान यूराल, कजाखस्तान तथा साइबेरिया के मैंगनीज निक्षेपों का बड़ी तेजी से उपयोग होने लगा। आज सोवियत संघ इस मूल्यवान अयस्क के उत्पादन की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पर है।

मैंगनीज अयस्कों के मुख्य उपभोक्ता फेरो-ऐलॉय कारखाने हैं। यहां विभिन्न तकनीकी प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप मैंगनीज के ऐलॉय (लौह के साथ, सिलिकन के साथ) प्राप्त होते हैं या शुद्ध धातु प्राप्त होती है। इसके बाद मैंगनीज स्टील बनाने वाले कारखानों में ले जाया जाता है।

महान कर्मयोगी

क्या लोहे की कमी का खतरा बना हुआ है? – प्यार बलिदान मांगता है – लोहे का चूरन खा कर देखिये – पेड़ों पर कीलें उगती हैं? – पोलीनीशिया के निवासियों का लोहे से बहुत ज्यादा लगाव – बादशाह सुलेमान की दावत – अफ्रीकी महाद्वीप में पाया हुआ एक विराट उल्का – अरिजोना रेगिस्तान में एक बहुत बड़ा गर्त बन गया – अफ्रीकी महाद्वीप में पाया हुआ एक विराट उल्का – कांस्य युग खत्म हो गया – कपिमानव से भी पहले – जादूई बेंत – सूइयों की धड़कन का कारण – अफसल तलाशें – देमीदोव यारत्सेव के पीछे सिपाही लगा देता है – अद्भुत जलयान – लोग ऐफिल की बात पर विश्वास नहीं करते – कोणार्क का सूर्य मंदिर – चमड़े जैसा स्टील – लोहे का कोई दोष नहीं है – क्या लोहे के रिटायर होने का समय आ गया है? – चंद्र-इस्पात – मानो कुछ हुआ ही न हो! – ब्रुसेल्स में 'एटोमियम' भवन का उद्घाटन

1910 में स्टाकहोल्म में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय भूविज्ञानी कांग्रेस के कार्यक्रम का मुख्य विषय यह था कि लोहे की कमी कैसे पूरी होगी। जिस विशेष समिति को विश्व के लौह-भंडारों की गिनती करने का काम सौंपा गया था उसने कांग्रेस के सामने अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट में यह बताया गया कि 60 साल बाद अर्थात् 1970 में विश्व के लौह-भंडार पूर्णतया समाप्त हो जायेंगे।

भाग्यवश इस समिति के वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी गलत निकली और आज लोहे के इस्तेमाल पर किसी भी तरह का प्रतिबंध नहीं है। अगर उनकी बात सही निकलती और लौह अयस्कों के भंडार बिल्कुल खत्म हो जाते, तब क्या होता? अगर पृथ्वी पर लोहे की एक भी ग्राम मात्रा न रहती, तब क्या होता?

सुप्रसिद्ध सोवियत खनिजवैज्ञानिक अकादमीशियन अ० फेर्समान ने इस संबंध में निम्न शब्द कहे: "...सड़कों पर सर्वनाश दिखाई देता: न पटरियां, न डिब्बे, न इंजन और न ही मोटर-कारें रहतीं, कोई भी चीज

दिखाई नहीं देती, सड़कों के पत्थर ढह कर मिट्टी के ढेर में बदल जाते, पेड़-पौधे पीले पड़ने लगते और इस प्राणाधार धातु के अभाव में मर जाते।

"सारा संसार बड़ी तेजी से नष्ट हो जाता और मानव-जाति का अवश्य ही अंत हो जाता।

"वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य इस दिन तक जीवित ही नहीं रहता क्योंकि जैसे ही उसके शरीर तथा रक्त से 3 ग्राम लोहा निकल जाता वैसे ही उसका अस्तित्त्व मिट जाता और ऊपर लिखी घटनाएं देखने का उसे मौका ही नहीं मिलता। सारा लोहा खोने अर्थात् अपने वजन का 0.005 प्रतिशत हिस्सा खोने का मतलब उसकी मृत्यु है।"

इन शब्दों द्वारा महान वैज्ञानिक ने यह समझाने का प्रयास किया कि हमारे जीवन में लोहा कितना अधिक महत्त्व रखता है। लोहा न होता तो पृथ्वी पर किसी भी चीज का अस्तित्व न रहता। इसका कारण यह है कि हमारे ग्रह के सभी प्राणियों के रक्त में यह रसायनिक तत्त्व उपस्थित है। द्विसंयोजक लौह हीमोग्लोबिन में विद्यमान है जो सजीव प्राणियों के ऊतकों को आक्सीजन पहुंचाता है। लोहे की वजह से ही तो रक्त का रंग लाल होता है।

पिछली शताब्दी में वैज्ञानिकों ने मनुष्य के रक्त में लोहे की उपस्थिति सिद्ध की थी। कहते हैं कि रसायनशास्त्र के एक विद्यार्थी को जब इस बात का पता चला, उसने अपनी प्रेमिका को अपने रक्त के लोहे से एक अंगूठी बनाकर भेंट करने का निश्चय किया। वह युवक अपने शरीर से समय-समय पर कुछ रक्त निकाल कर उससे एक यौगिक प्राप्त करता था और फिर रसायनिक

विधि द्वारा इस यौगिक से लोहा अलग करता था। परंतु इस दौरान अरक्तता के कारण उस बेचारे की मृत्यु हो गयी और वह अंगूठी के लिये लोहा इकट्ठा न कर सका। इतना सारा लोहा आता भी कहां से? मनुष्य के रक्त के अंदर सिर्फ कुछ ही तो ग्राम लोहा होता है।

शरीर में लोहे की कमी होने से मनुष्य जल्दी थक जाता है, उसके सिर में दर्द होने लगती है तथा उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। पुराने जमाने में भी "लोहे की दवाइयों" के बहुत सारे नुस्खे ज्ञात थे। 1783 में "आर्थिक जर्नल" ने निम्न बात छापी: "कई हालतों में लोहा खुद भी एक अच्छी दवा का काम करता है। लोहे का बारीक चूरन सादा या चीनी मिलाकर खाने से बहुत फायदा होता है।" इसी लेख ने कुछ और दवाइयों की भी प्रशंसा की और उनके प्रयोग की सलाह दी: "लौहबर्फ", "लौह जल", "लौहमदिरा" आदि ("अंगूर की खट्टी मदिरा प्राप्त होती है जो एक बेहत-रीन दवाई होती है")।

यह बताने की जरूरत नहीं है कि बीसवीं शताब्दी में रोगी लोहे का चूरन नहीं खाते हैं, परंतु लौह के बहुत सारे यौगिकों का प्रयोग आधुनिक चिकित्सा में भी प्रचलित है। कई खनिज जलों में लौह काफी मात्रा में उपस्थित है। रूस में प्रथम लौह खनिज जल की खोज की कहानी इस प्रकार से है – 1714 में कोन्चेजेर्स्कं ताम्र प्रगलन-कारखाने (कारेली में) का एक कर्मचारी इवान रेबोयेव हृदय में तीव्र दर्द से पीड़ित था। वह चल भी बड़ी मुश्किल से पाता था। एक दिन उसने लादोज्स्कोये झील से कुछ दूर एक झरना देखा जिसका जल एक विशेष स्वाद वाला था। रेबोयेव ने उस जल को पीना शुरू कर दिया। तीन दिन तक लगातार वह इस जल को पीता रहा और पूर्णतया स्वस्थ हो गया। जार पीटर प्रथम को इस बात की सूचना दे दी गयी और शीघ्र ही उसके आदेश पर 'ओलोनेत्स के मंगल जल की डिग्री' प्रकाशित हो गयी। यहां 'मंगल' शब्द से अभिप्राय युद्ध तथा लोहे के देवता 'मंगल' से था। जार खुद अपने परिवार के सदस्यों के साथ वहां आया और सबने इस आरोग्यकर जल को पिया।

मेंडेलीफ की आवर्त सारणी में ऐसा कोई दूसरा तत्त्व ढूँढ़ना मुश्किल है जिसके साथ सभ्यता का इतिहास इतना ज्यादा संबंधित रहा हो। प्राचीन काल में कुछ जातियों के लोग लोहे को सोने से भी ज्यादा कीमती मानते थे। केवल बहुत अमीर तथा कुलीन घराने के लोग लोहे के आभूषण पहन सकते थे। ये आभूषण अक्सर सोने में जड़े होते थे। प्राचीन रोम में तो शादी की अंगूठी भी लोहे की बनी होती थी। होमर अपने 'इलियाड' में बताते हैं कि ट्राय-युद्ध के नायक अहिल्ला ने डिस्कोबोल (discobolus) के खेल में जीतने वाले को लोहे का गेंद पुरस्कार में दिया था। मिस्र के मकबरों में अन्य कीमती वस्तुओं के साथ-साथ एक माला भी मिली थी, जिसमें लोहे और सोने के मोती लगे थे।

प्राप्त दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि एक मिस्री फिराउन ने हित्ती राजा से लोहा भेजने का अनुरोध किया था, बदले में वे जितना चाहो, सोना देने के लिये तैयार थे (ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के हित्ती लोहा प्राप्त करने के लिये मशहूर थे)। फिराउन के कथनानुसार उनके पास इतना सोना था,

जितना मरूभूमि में रेत थी। लेकिन लोहे की उनके यहां निश्चय ही कमी थी। प्राचीन एसीरिया की राजधानी नीनेवी में आठवीं शती ई० पू० के शक्तिशाली राजा सारगोन द्वितीय के महल की खुदाई में पुरावेत्ताओं को लोहे का एक सच्चा खजाना मिला: एक घर में करीब 200 टन लोहे की वस्तुएं (शिरस्त्राण, आरी, लोहारी के औजार आदि) मिलीं। वहां इस धातु के बड़े-बड़े गोले भी थे; शायद राजा ने उन्हें बुरे दिनों के लिये छिपा रखा था।

धात्विकी के विकास के साथ-साथ यह धातु सस्ती होती गयी तथा इसका प्रयोग आम बात हो गयी। परंतु फिर भी कुछ समय पहले तक बहुत सी पिछड़ी जातियां लोहे से अपरिचित थीं।

अठारहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध अंग्रेज नाविक जेम्स कूक ने प्रशांत महासागर में स्थित द्वीपों के निवासियों से मुलाकातों का दिलचस्प वर्णन किया। कूक ने उन्हें मुट्ठी भर लोहे की कीलें भेंट कीं। आदिवासियों को ऐसे विचित्र धातुई कीलों के उपयोग का शायद पहले कभी मौका नहीं मिला था। द्वीपवासियों को कुछ समझाने के सभी प्रयत्न बेकार रहे।

अंत में उनके पुजारी ने सहायता की जो शायद हर समस्या का भारी विशेषज्ञ माना जाता था। उसने गौरव भरी मुद्रा में अपने आदमियों को कुछ वाक्य कहे और वे कीलों को जमीन में रोपने लगे। अब मेहमानों के आश्चर्य करने की बारी थी। उनकी नासमझी देख कर द्वीपवासी इशारों से समझाने लगे कि इनसे वृक्ष उत्पन्न होंगे, जिनपर कीलों के पौद फला करेंगे। यदि इन धातुई 'फलों' की फसल अच्छी होगी, तो यह जनजाति अपने सारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकेगी।

लेकिन पोलीनेशियन द्वीपों की अनेक जनजातियां उस समय तक लोहे के लाभों से परिचित हो चुकी थीं। "हमारे जहाजों पर आने वाले मेहमानों को और किसी चीज से इतना अधिक आश्चर्य नहीं होता था जितना इस धातु से। लोहा उनके लिये हमेशा सबसे कीमती तथा मनपसंद चीज होती थी।" एक बार कप्तान कूक के नाविकों को जंग लगी कील के बदले एक सूअर मिल गया। दूसरी बार कुछ पुराने बेकार चाकुओं के बदले द्वीपवासियों ने उन्हें इतनी सारी मछलियां दे दीं कि जहाज के सारे लोगों के भोजन के लिये वे कई दिनों तक पर्याप्त रहीं।

हर युग में लौहार का पेशा हमेशा इज्जतदार पेशों में गिना जाता रहा है। लगभग

3000 साल प्राचीन दंतकथा इस बात की पुष्टि करती है।

जब येरूसलीम का मंदिर बन गया तो बादशाह सुलेमान ने एक दावत का आयोजन किया जिसमें उन सभी कारीगरों को बुलाया जिन्होंने मंदिर के निर्माण में हिस्सा लिया था। जैसे ही मेहमान लोग खाना शुरू करने वाले थे बादशाह ने उनसे एक प्रश्न पूछा:

– यह बताओ कि इस मंदिर के निर्माण में सबसे ज्यादा योग किसने दिया है?

एक राज खड़ा हो गया और बोला:

– इस बात में कोई शक नहीं कि यह मंदिर हमारे हाथों से बना है। हम राज लोगों ने ईंट पर ईंट रखकर इसका निर्माण किया है। आप देख ही रहे हैं कि इसकी दीवारें और मेहराब कितने मजबूत हैं। शताब्दियों तक यह मंदिर बादशाह सुलेमान का नाम ऊंचा करता रहेगा।

– इस बात में कोई शक नहीं कि मंदिर की नींव पत्थरों की बनी है – बढ़ई ने राज की बात काटी, – परंतु आदरणीय मेहमानगण, आप खुद ही फैसला करें, क्या यह मंदिर इतना ही सुंदर होता अगर हम बढ़ई लोग अपना पसीना न बहाते? क्या आप लोगों को इसकी खाली दीवारें अच्छी लगतीं, जिन्हें हमने लाल लकड़ी तथा लेबनानी देवदार से सजाया है? हमारा बनाया लकड़ी का फर्श कितना आकर्षक लग रहा है, इसे हमने सबसे बढ़िया किस्म की कामिनी से बनाया है। हम बढ़ई लोगों को इस मंदिर का असली निर्माता समझा जाना चाहिये।

जमीन खोदने वाले मजदूर ने बढ़ई को टोका और कहा:

– आप लोग इसकी जड़ तक जायें। मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या ये शेखचिल्ली (उसने राज तथा बढ़ई की ओर इशारा किया) इस मंदिर को बना सकते अगर हम लोग इसकी नींव न खोदते? इनकी बनायी दीवारें तथा लकड़ी की सुंदर चीजें हवा के पहले झोंके से ऐसे ढह जातीं जैसे कि गत्ते का बना घर।

परंतु बादशाह को वैसे ही विद्वान नहीं

समझा जाता था। उसने राज को अपने पास बुलाया और पूछा:

– तुम्हारे औजार किसने बनाये हैं?

– लौहार ने, – राज ने आश्चर्य में भर कर उत्तर दिया।

– और तुम्हारे? – बादशाह ने बढ़ई से पूछा।

– लौहार ने, और किसने, – उसने बिना सोचे उत्तर दिया।

– और तुम्हारे फावड़े और कुंदालियां? – सुलेमान ने जमीन खोदने वाले से पूछा।

– आप तो जानते ही हैं उन्हें केवल लौहार ही बना सकता है। – उत्तर सुनाई दिया।

अब बादशाह खड़ा हो गया और फिर एक आदमी के पास जाकर उसे हाल के बीच में ले आया। इस आदमी का चेहरा धुएं से काला पड़ा हुआ था। यह लौहार था।

– मंदिर का असली निर्माता यह आदमी है, – सबसे बुद्धिमान बादशाह बोला। उसने लौहार को सिंहासन पर अपने पास बिठा दिया और फिर उसे बढ़िया शराब का जाम पेश किया।

हम इन घटनाओं की सत्यता सिद्ध नहीं कर सकते, यह एक दंतकथा है। परंतु इससे यह बात जरूर पता चलती है कि पुराने जमाने में मनुष्य लोहे को कितना ज्यादा महत्त्व देता था।

ऐसा समझा जाता है कि बहुत पुराने जमाने में मनुष्य के हाथ में पहला जो लोहा आया वह उसे जमीन पर नहीं मिला था बल्कि अंतरिक्ष से आया था। हमारे ग्रह पर गिरने वाले उल्कापिंडों में लोहा उपस्थित होता है। शायद यही कारण है कि कुछ प्राचीन भाषाओं में लोहे को 'दिव्य पत्थर' कहा गया है। परंतु अठारहवीं शताब्दी के अंत तक बहुत सारे महान वैज्ञानिक इस बात को नहीं मानते थे कि ब्रह्माण्ड पृथ्वी को लोहा दे सकता है। 1751 में जर्मन शहर वाग्राम के पास एक उल्कापिंड गिरा। इस घटना के 40 साल बाद वियेना के एक प्रोफेसर ने निम्न बात कही: "आप अंदाजा लगा सकते हैं कि 1751 में जर्मनी के सबसे विद्वान लोग इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि लोहा आकाश से गिरता है। उनका प्रकृति विज्ञान का ज्ञान अल्प था... परंतु हमारे दिनों में इन किस्सों में विश्वास करने वालों को माफ नहीं किया जा सकता।"

सुप्रसिद्ध फ्रेंच रसायनज्ञ लेवूजिये का भी यही मत था। 1772 में वे अपने बहुत सारे वैज्ञानिक साथियों के इस विचार से सहमत हो गये कि "आकाश से पत्थर गिरना असंभव बात है।" 1790 में फ्रेंच विज्ञान अकादमी ने भविष्य में आसमान से पत्थर गिरने की रिपोर्टों पर विचार न करने का निर्णय कर लिया। वैज्ञानिकों के लिये यह बात एक

बकवास से ज्यादा महत्त्व न रखती थी। परंतु उल्कापिंडों पर फ्रेंच अकादमीशियनों के इस सख्त फैसले का कोई असर नहीं पड़ा, वे समय-समय पर हमारे ग्रह पर आते रहे और वैज्ञानिकों का दिमाग खराब करते रहे। इस बात की पुष्टि करने वाले नये-नये तथ्य इकट्ठे होते गये और जैसा कि कहा जाता है कि वास्तविकता हठधर्मी होती है, 1803 में फ्रेंच विज्ञान अकादमी को मजबूर होकर इन 'दिव्य पत्थरों' को मान्यता देनी पड़ी और अब इन्हें पृथ्वी पर गिरने की "आज्ञा मिल गयी"।

पृथ्वी की सतह पर हर साल लाखों टन वजन के उल्कापिंड गिरते हैं जिनके अंदर लोहे की मात्रा 90% तक होती है। सन् 1920 में अफ्रीका के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र में सबसे बड़ा उल्कापिंड मिला। इस उल्कापिंड "गोबा" का वजन 60 टन के लगभग था। 1895 में प्रसिद्ध ध्रुव अन्वेषक राबर्ट पैरी को ग्रीनलैंड की बर्फ में एक उल्कापिंड मिला जिसका भार 34 टन था। उसको न्यूयार्क तक पहुंचाने में बड़ी दिक्कतें आयीं। यह उल्कापिंड अभी भी न्यूयार्क में सुरक्षित रखा हुआ है।

इतिहास बताता है कि कई बार पृथ्वी पर गिरने वाले उल्कापिंड इससे भी बहुत ज्यादा भारी होते थे। पिछली शताब्दी के अंत में अरिजोना के रेगिस्तान में 175 मीटर गहरा और 1200 मीटर व्यास वाला एक गर्त मिला। यह एक अतिविशाल लौह उल्कापिंड से बन गया था जो प्रागैतिहासिक काल में पृथ्वी पर आ गिरा था। अमरीकी लोगों ने उल्कापिंडों में और भी ज्यादा रुचि दिखाई क्योंकि कुछ ऐसी अफवाह फैल गयी थी कि उल्कापिंड की किरचों में हीरे और प्लैटिनम

मिले हैं। एक साझेदार कंपनी खोली गयी जिसका काम उल्कापिंडों का औद्योगिक उपयोग कराना था। परंतु "आकाशीय उपहार" से पैसा कमाना बहुत मुश्किल साबित हुआ। जैसे ही बरमा 420 मीटर गहराई पर स्थित उल्कापिंड के अंदर तक पहुंचा, वह टूट गया। उल्कापिंड के व्यापारियों को जब खोदे गये नमूनों में प्लैटिनम नहीं मिला, उन्होंने अपना व्यापार बंद कर दिया। वैज्ञानिकों का विचार है कि अरिजोना के उल्कापिंड का वजन कई हजार टन था। संभव है कि धातुविज्ञानियों के मन में एक बार फिर इस उल्कापिंड के प्रति दिलचस्पी पैदा हो जाये।

उल्कापिंडों का लोहा आसानी से कार्ययोग्य बनाया जा सकता था, अतः मनुष्य ने उससे साधारण औजार बनाने शुरू कर दिये। परंतु अफसोस की बात यह थी कि उल्कापिंड मनुष्य की इच्छानुसार पृथ्वी पर नहीं गिरते थे जबकि लोहे की आवश्यकता हर वक्त पड़ती थी। इसी वजह से मनुष्य ने अयस्कों से लोहा निकालने का प्रयास शुरू कर दिया।

और आखिरकार वह दिन आ ही गया जब मनुष्य आकाशीय लोहे के साथ-साथ खुद के ढूंढ़े लोहे – पृथ्वी के लोहे का भी इस्ते-माल करने योग्य हो गया। कांस्य-युग खत्म हो गया और लौह युग आ गया।

यह घटना करीब तीन हजार वर्ष पूर्व घटी थी। इतिहासज्ञ लोगों का भी ऐसे आश्चर्यजनक तथ्यों से वास्ता पड़ता है, जो (यदि सत्य हों) यह निर्देश करते हैं कि हमारी सभ्यता के पहले भी ऐसी विकसित सभ्यताएं थीं, जो लोहे से परिचित थीं। उदाहरणार्थ, इस तरह के वर्णन मिलते हैं कि सोलहवीं शती में दक्षिण अमरीका आये हुए स्पेनियों को पेरू स्थित चांदी की खान में लोहे की करीब 18 सेंटीमीटर लंबी एक कील मिली थी। इस पर शायद ही किसी ने ध्यान दिया होता, यदि एक बात नहीं नजर आती: कील का अधिकांश भाग पथरीले आवरण से ढका था। यह काम सिर्फ प्रकृति के वश का है और इसका मतलब है कि कील जमीन में करीब दसियों हजार वर्ष गड़ी पड़ी थी। एक समय यह रहस्यमय कील पेरू के उपराष्ट्रपति फ्रांसिस्को दे तोलेदो के कैबिनेट में रखी हुई थी ; वे अपने मेहमानों को दिखाया करते थे।

अन्य खोजों के भी वर्णन मिलते हैं। यथा, आस्ट्रेलिया की कोयले-परतों में, जो तृतीय भूवैज्ञानिक काल में उत्पन्न हुई थीं, एक लौह-उल्का मिली थी, जिस पर किन्हीं औजारों से काम करने के चिन्ह थे। लेकिन आज से करोड़ों वर्ष पहले किसने ऐसा किया होगा? आदमी के कपिमानव जैसे पूर्वज भी कुल पाँच लाख वर्ष पूर्व हुए थे।

और यह कील और उल्का अब कहां हैं? विश्लेषण की आधुनिक विधियों से उनकी प्रकृति और उम्र पर प्रकाश पड़ सकता था और इससे उनका रहस्य खुल जाता। पर अफसोस कि इन दो वस्तुओं का अब कोई पता नहीं है। वे सचमुच में थीं भी, या नहीं, इसमें भी शक ही है।

लोहा भूमि पर सर्वाधिक मात्रा में पाया जाने वाला तत्त्व है। भू-पर्पटी में इसकी मात्रा 5% के लगभग है। परंतु इस मात्रा का केवल चालीसवां हिस्सा मनुष्य के काम लायक है जो निक्षेपों के रूप में है। लोहे के मुख्य खनिज निम्नलिखित हैं – मैग्नेटाइट, हेमाटा-इट, भूरा लौह अयस्क तथा सिडेराइट। मैग्नेटाइट में लोहे की मात्रा 72% तक हो सकती है तथा जैसाकि इसका नाम कहता है इसमें चुम्बकीय गुण विद्यमान होते हैं। हेमाटाइट या लाल लौह में 70% तक लोहा हो सकता है। इस खनिज का नाम यूनानी शब्द 'हेमा' से बना है जिसका अर्थ है रक्त। रूसी भाषा में लोहे को 'झेलेजो' कहते हैं।

पुराने जमाने में लौह अयस्कों को ढूंढ़ने का एक बड़ा अजीब तरीका था। इस काम के लिये विशेष 'जादुई' बेंतों का इस्तेमाल किया जाता था। ये बेंतें अखरोट की टहनियों की बनी होती थीं तथा इनका एक सिरा द्विशाखित होता था। 'भूविज्ञानी' इस बेंत के द्विशाखित सिरे को मुट्ठी में पकड़कर लोहा ढूंढ़ने निकल पड़ता था। उसे खोज में सफलता तभी मिलती थी जब वह एक 'तकनीकी हिदायत' का सख्ती से पालन करता था। हिदायत यह कहती थी कि भूविज्ञानी की उंगलियां हमेशा आसमान की तरफ रहनी चाहियें। लगता है कि उन दिनों के अयस्क-खोजियों की सभी असफलताओं का कारण इस हिदायत का उल्लंघन समझा जाता था

(दुर्भाग्यवश सफलताओं के मुकाबले असफलताओं की संख्या बहुत ज्यादा होती थी)। अगर सभी आवश्यक शर्तों का पूर्णतया पालन किया जाता था तो जैसे ही भूविज्ञानी लोहे के स्रोत के पास पहुंचता था, बेंत तुरंत झुक जाती थी तथा उस जगह की ओर इशारा करती थी जहां अयस्क छिपा होता था।

उन दिनों ही बहुत सारे लोग यह समझ रहे थे कि इस तरह के तरीके अपरिष्कृत थे। धात्विकी पर प्रथम निबंध के लेखक 16-वीं शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक जार्ज एगरिकोला ने निम्न बात कही: "असली खनिक, जिसे हम गंभीर प्रकृति का व्यक्ति समझते हैं, जादूई बेंत का इस्तेमाल नहीं करेगा क्योंकि प्रकृति को थोड़ा-बहुत जानने वाला आदमी भी यह जानता है कि ऐसी बेंत उसके किसी काम की नहीं है। उसे यह पता है कि केवल अयस्कों के प्राकृतिक लक्षणों के बल पर वह उन्हें ढूंढ़ने में सफल हो सकता है।" परंतु फिर भी बहुत सालों तक बेंतों की सहायता से लौह-अयस्कों की खोज होती रही, उदाहरण के लिये, यूराल में।

वर्तमान समय में भूवैज्ञानिकों के पास अधिक विकसित उपकरण हैं, जिनकी सहायता से वे पृथ्वी का चप्पा-चप्पा टटोल चुके हैं। लगता है कि उस पर कोई अज्ञात स्थल नहीं हो सकता। फिर भी प्रकृति समय-समय पर लोगों को लोहे और अन्य खनिजों के नये-नये खान भेंट कर ही देती है।

उदाहरणार्थ, ब्राजील में काराजास नामक पर्वत-श्रृंखला है। यहां घनघोर जंगल था और हाल तक किसी का कोई ध्यान इसकी तरफ नहीं जाता था। लेकिन एक बार वहां एक हवाई जहाज को घने बादलों से बचने के लिये कुछ नीचे उतरना पड़ा। अचानक चालक ने ध्यान दिया कि मोटर में कुछ गड़बड़ी हो गयी है। उसने विमान को जंगलों के बीच एक छोटे से हरे मैदान में उतारने का निश्चय किया। और नीचे उतरने पर उसने देखा कि उपकरणों की चुम्बकीय सूइयां अचानक थिरकने लगी हैं। चालक ने विमान सही-सलामत उतार लिया। जब भूवैज्ञानिकों को इस घटना का पता चला, तब उन्होंने सूइयों की थिरकन का रहस्य खोला: काराजास के नीचे भूगर्भ में लोहे का विशाल भंडार जमा था।

सत्तरहवीं शताब्दी में मास्को को लोहे की बहुत सख्त जरूरत महसूस हो रही थी। जार अलेक्सेई मिखाइलोविच नये लौह अयस्कों के स्रोतों की खोज के उद्देश्य से एक के बाद दूसरा अभियान-दल भेजता रहा। इन दलों के खनिकों को यह पता करना था कि "कहां पर किस तरह का अयस्क छिपा हुआ है" तथा यह निश्चित करना था कि "अयस्क है कितना, किस अवस्था में है तथा क्या वह स्थायी है"। परंतु सभी अभियान-दल असफल रहे।

पीटर प्रथम ने जार बनते ही एक आदेश जारी किया: "पिटवां तथा ढलवां लोहे की हर प्रकार से वृद्धि की जाये, और रूसी लोग इसकी कला सीख लें... ताकि मास्को के राज्य में यह उद्योग पूर्णतया विकसित हो जाये।" इस आदेश में यह भी कहा गया था कि जो लोग लौह अयस्कों की खोज गुप्त रखने का प्रयास करेंगे, उन्हें बड़ी सख्त सजा दी जायेगी। उन्हें कोड़ों की सजा से लेकर मौत तक की सजा दी जा सकती है।

शीघ्र ही यूराल से यह खबर आयी कि विसोकाया पहाड़ पर 'चुम्बकीय पत्थर' के विपुल भंडार मिले हैं: "...पहाड़ के बीच में शुद्ध चुम्बक का एक टीला है जिसके चारों ओर घने जंगल तथा पहाड़ी चट्टानें हैं"। इस अयस्क का नमूना मास्को भेजा गया जहां विशेषज्ञों ने इसकी बहुत तारीफ की। इसका परिणाम यह हुआ कि जार ने धातु-कारखाने लगाने का आदेश दे दिया। यूराल का सबसे बड़ा कारखाना – नेव्यान्स्की – पीटर प्रथम ने तूला शहर के प्रसिद्ध कारीगर तथा लौह-कारखाने के मालिक निकीता अन्तूफ्येव (आगे चलकर उसने अपना कुलनाम देमीदोव रख लिया) को दे दिया तथा लोहे का इतना अधिक उत्पादन करने को कहा कि रूस विदेश से लोहा खरीदना ही बंद कर दे। इस कारखाने को तोपें, मार्टरें, तलवारें, बंदूकें, बल्लम, बकतर, टोप, तार आदि बनाने का काम सौंपा गया।

निकीता देमीदोव तथा आगे चलकर उसके पुत्र अकीन्फी देमीदोव ने रूस की धात्विकी के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण काम किये। यूराल का लोहा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बहुत कीमती समझा जाने लगा। पिछली शताब्दी के मध्य में इंगलैंड के समाचार-पत्र "मोर्निंग पोस्ट" ने यह लिखा: "देमीदोव का लोहा हमारे देश के औद्योगिक इतिहास में बहुत महत्त्व रखता है। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में पहली बार यह लोहा स्टील बनाने के लिये इंगलैंड लाया गया जब हमारा स्टील उद्योग अभी अच्छी तरह से शुरू भी नहीं हुआ था। शेफिल्ड की चीजों को देमीदोव के लोहे के कारण ही इतनी ख्याति मिल रही है"।

1735 में मान्सी जाति के एक व्यक्ति स्तेपान चुमपीन को यूराल में ब्लागोदात पहाड़ पर चुम्बकीय लोहे का एक बहुत बड़ा टुकड़ा मिला। उसने यह लोहा खनिज टेक्नीशियन यार्त्सेव को दिखाया जिसने उसमें काफी रुचि दिखाई। यार्त्सेव ने इस लोहे के निक्षेप का अध्ययन किया और इस बात की सूचना देने कैथरीनबर्ग चला गया। जब इस बात का पता देमीदोव को लगा, जो उस वक्त यूराल का बेताज बादशाह बन चुका था, उसने यार्त्सेव का पीछा करने के लिये सिपाहियों को भेज दिया क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि पहाड़ ब्लागोदात पर मिला लौह अयस्क का नया खजाना सरकार के हाथ लग जाये। वह खुद इसका मालिक बनना चाहता था। परंतु यार्त्सेव सिपाहियों की पकड़ से बच गया। खनन विभाग ने निक्षेप के अन्वेषक को इनाम दिया परन्तु शीघ्र ही रहस्यमय परिस्थितियों में स्तेपान चुमपीन का कतल हो गया। उसके कातिल का कोई पता नहीं चला। यूराल के खजानों की ओर रास्ते पर जो लोग खड़े होते थे, देमीदोव परिवार इस तरह उनसे बदला देता था।

अठारहवीं शताब्दी के अंत तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में लोहा सही अर्थों में तकनीक की दुनिया में घुस गया। 1778 में लोहे का बना सबसे पहला पुल खुल गया, 1788 में लोहे की पाइप-लाइन चालू हो गयी। 1818 में लोहे का बना सर्वप्रथम जहाज पानी में उतर गया। इस घटना के 50 साल बाद सन् 1868 में लंदन के एक जर्नल "समुद्री जीवन की खबरें" में निम्न बात छपी: "ग्रीनकोक में लोहे के बने दुनिया के सबसे पहले जहाज की मरम्मत की जा रही है जिसे 1818 में बनाया गया था।

50 साल पहले जब यह जहाज पानी में छोड़ा गया तो आसपास के इलाकों के सारे लोग इस करिश्मे को देखने के लिये इकट्ठे हो गये कि क्या वास्तव में लोहे का बना जहाज पानी में टिक सकता है?" चार साल बाद 1822 में इंगलैंड में बना लोहे का पहला स्टीमर लंदन तथा पेरिस के बीच चलने लगा। रेलवे-लाइनें लोहे की मुख्य उपभोक्ता बन गयीं। 1825 में इंगलैंड में प्रथम रेलवे-लाइन चालू हो गयी।

1889 में पेरिस में अद्वितीय फ्रेंच इंजीनियर गुस्ताव ऐफिल द्वारा लोहे की बनायी टावर पूरी हो गयी। ऐफिल के बहुत सारे साथी यह समझते थे कि 300 मीटर ऊंची जालीदार टावर कच्ची निकलेगी और उसकी मजबूती अविश्वसनीय रहेगी। परंतु ऐफिल का कहना था कि उनकी बनायी टावर कम से कम 25 साल तक जरूर खड़ी रहेगी। ऐफिल टावर, जो पेरिस की शान है, आज भी ठीक-ठाक खड़ी हुई है। हां, यह बात जरूर सच है कि हमारी शताब्दी के शुरू में कुछ-कुछ विदेशी अखबारों ने यह खबर छाप दी थी कि इस टावर को बुरी तरह से जंग लग गया है और यह गिर सकती है। परंतु जब फ्रेंच वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों ने टावर के ढांचों का अध्ययन किया तो वे समझ गये कि यह खबर अखबारवालों ने सनसनी मचाने के लिये छापी थी। पेंट हुआ लोहा बिल्कुल भी खराब नहीं हुआ है।

फिर भी जंग का खतरा लोहे की चीजों के ऊपर हर समय एक तलवार की तरह लटका रहता है। जंग या संक्षारण लोहे का सबसे खतरनाक दुश्मन होता है। यह कहना काफी होगा। आप पाठकगण जब यह पन्ना पढ़ते रहेंगे दुनिया में उस क्षण

संक्षारण के कारण हजारों टन इस्पात और ढलवां लोहा नष्ट हो जायेंगे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पुराने जमाने में भी मनुष्य लोहे को जंग से सुरक्षित रखने के रास्ते ढूंढ़ता रहा है। यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस (ईसा से पांचवीं शताब्दी पूर्व) की किताबों से हमें यह पता चलता है कि उन दिनों लोहे को जंग से बचाने के लिये उस पर टिन चढ़ाया जाता था। भारत में 1500 साल से एक सोसाइटी बनी हुई है जिसका काम संक्षारण का मुकाबला करना है। तेरहवीं शताब्दी में इस सोसाइटी ने बंगाल की खाड़ी के किनारे कोणार्क के सूर्य मंदिर के निर्माण में भाग लिया। शताब्दियों के दौरान सागर के पानी और हवा का शिकार होने के कारण इस मंदिर के खंड ही रह गये हैं, परंतु इसमें लगे लोहे के हिस्से सही सलामत रहे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इतने साल पहले भी भारतीय कारीगर यह जानते थे कि लोहे को संक्षारण से कैसे बचाया जा सकता है। इस बात का साक्षात प्रमाण विख्यात लौह स्तंभ है जो भारत की राजधानी का मुख्य भ्रमण केंद्र है। श्री जवाहर लाल नेहरू अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में ये शब्द लिखते हैं: "स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में लोहे के काम में काफी तरक्की हो चुकी थी। दिल्ली के पास खड़े विशाल लौह स्तंभ ने आधुनिक वैज्ञानिकों को चक्कर में डाल रखा है। वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आ रहा है कि इस स्तंभ का लोहा संक्षारण तथा अन्य वायुमंडलीय खतरों से अब तक कैसे बचा रहा?"

इस स्तंभ का निर्माण सन् 415 में सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के सम्मान में किया गया। आरंभ में इसे देश के पूर्व में एक मंदिर के सामने लगाया गया परंतु राजा अनंगपाल इसे उठा कर दिल्ली ले आया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस स्तंभ के साथ पीठ लगाकर दोनों हाथ पीछे करके इसका आलिंगन करने पर अगर दोनों हाथों की उंगलियां आपस में छूने लगें तो मनुष्य के मन की इच्छा पूरी हो जाती है। पुराने जमाने से लोगों की भीड़ की भीड़ आ-आकर ऐसा प्रयास करती आ रही है, परंतु आज तक शायद कोई भी व्यक्ति इसमें सफल नहीं रहा है। इस स्तंभ का वजन लगभग 6.5 टन, ऊंचाई 7.3 मीटर, निचले सिरे का व्यास 42 सेंटीमीटर और ऊपरी सिरे का 30 सेंटीमीटर है। यह करीब-करीब शुद्ध लोहे (99.72%) का बना है क्योंकि तभी तो यह इतने लंबे अर्से तक 'जीवित' रह सका है। इस बात में कोई शक नहीं कि इससे कम शुद्ध लोहा 15 शताब्दियों के अंदर कबका राख में बदल चुका होता।

प्राचीन धातुकर्मियों ने इस अद्वितीय स्तंभ को कैसे बनाया, जिस पर समय का कोई असर ही नहीं हो रहा है? काल्पनिक कथाओं

के कुछ लेखकों का यह कहना है कि इस स्तंभ का निर्माण किसी और ग्रह पर हुआ था और जब वहां के वासी नक्षत्रयान पर बैठकर हमारी पृथ्वी की सैर करने आये तब या तो यह स्तंभ उनके झंडे का एक अंग था या वे इसे पृथ्वीवासियों को उपहार में देने के लिये अपने साथ उठा लाये। कुछ अन्य लोगों का विचार है कि इसे किसी विशाल लौह उल्कापिंड से बनाया गया है। परंतु लगता है कि वे वैज्ञानिक सच हैं जो प्राचीन भारत के धातुकर्मियों के कौशल का परिणाम मानते हैं। उन दिनों भारत में बनी स्टील की चीजें सारी दुनिया में प्रसिद्ध थीं। इसी वजह से फारस के लोगों में एक कहावट प्रसिद्ध थी: "स्टील लेकर भारत कौन जाता है?"

आज साधारण जंगरोधी स्टील को देखकर किसी को भी आश्चर्य नहीं होता। कुछ दिनों पहले संयुक्त राज्य अमरीका में पारदर्शी जंगरोधी स्टील का पेटेंट दिया गया। इस नयी धातु को विद्युरसायनिक विधि से प्राप्त किया जाता है जिसके दौरान क्रिस्टलों के अंदर अति बारीक रंध्र बन जाते हैं जो स्टील को पारदर्शी बना देते हैं।

आज स्टील-निर्माता विभिन्न प्रकार की धातुओं के प्रगलन में दक्ष हो चुके हैं जिन्हें तरह-तरह के कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। आधुनिक धातु-कारखाने कितनी सारी किस्मों का स्टील बना रहे हैं – जंगरोधी तथा तीव्रगति से काटने वाला स्टील, बाल बेयरिंग स्टील, स्प्रिंग स्टील, चुम्बकीय तथा अचुम्बकीय स्टील, तापरोधी तथा शीतरोधी स्टील आदि। स्टील की सभी किस्मों की जरूरत पड़ेगी।

बेल्जियम के एक धातु-कारखाने में कुछ साल पहले एक मशीन चालू की गयी है जो स्टील की पट्टियों पर विभिन्न प्रकार के डिजाइन बना देती है। इस मशीन की सहायता से स्टील को लकड़ी, चमड़े, कपड़े तथा अन्य चीजों का रूप दिया जा सकता है। मोटर-कारों के निर्माताओं, वास्तुकारों तथा घरेलू चीजों के निर्माताओं को यह स्टील बहुत पसंद आया है।

लोहे की मांग बहुत ही ज्यादा है। यहां इतना कहना ही काफी होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक उद्योगों तथा खेतीबारी में प्रयुक्त की जा रही हर 100 किलोग्राम धातु में 95% हिस्सा लोहे का होता था।

शहरों का निर्माण, नयी रेल-लाइनों का बिछाना, समुद्री जहाजों का जलावतरण, वात्या भट्टियों का लगाना, शक्तिशाली सिन्क्रो-फाजोट्रोन की रचना, अंतरिक्ष यानों की उड़ान – इनमें से एक भी चीज लोहे के बिना संभव नहीं है।

परंतु लोहा केवल सृजन के काम में ही प्रयुक्त नहीं किया जाता रहा है। मानव-जाति के इतिहास की बहुत सारी खूनी घटनाएं इस धातु के साथ संबंधित रही हैं। प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लोहे के बने लाखों बमों ने लोगों पर कहर ढाया। लोहे ने खुद ही वह सब मिटा दिया जिसे मनुष्य ने शताब्दियों में लोहे की सहायता से बनाया था।

लगभग 2000 साल पहले प्राचीन रोमन लेखक तथा वैज्ञानिक प्लीनी ज्येष्ठ ने लोहे के बारे में निम्न बात कही: "लोहे की खानें मनुष्य को एक शानदार तथा बहुत हानिकारक औजार देती आ रही हैं। इस औजार से हम जमीन की खुदाई करते हैं, पौधे बोते हैं, हरे भरे बाग लगाते हैं, अंगूर की बेलों

को हमेशा जवान बनाये रखते हैं। इसी औज़ार से मकान बनाते हैं, पत्थर तोड़ते हैं। ऐसे हर काम में हम लौह का इस्तेमाल करते हैं। परंतु इसके साथ-साथ लोहे की सहायता से हम झगड़ते हैं, युद्ध करते हैं, डाके डालते हैं। इसका प्रयोग केवल पास से नहीं, दूर से भी करते हैं कभी तोपें चलाते हैं और कभी बरछे फेंकते हैं। मेरे विचार से लोहा इंसान के दिमाग की सबसे घृणित खोज है। मौत को डैने दे दिये गये हैं और लोहे को परदार बना दिया गया है जिससे कि मौत इंसान को जल्दी पकड़ सके। इसका दोषी इंसान है, न कि प्रकृति"। हम भी लोहे को अपने गुनाहों का जिम्मेदार नहीं ठहरायेंगे।

पिछले कुछ दशकों में लोहे के कई प्रतिद्वंदी सामने आ गये हैं: ऐलुमिनियम, टाइटेनियम, वैनेडियम, बेरीलियम, जिर्कोनियम तथा अन्य कई धातु मिलकर लोहे की स्थिति बिगाड़ने का खूब प्रयास कर रही हैं। परंतु लोहे की 'पेंशन लेने' लायक उम्र (5000 साल से ऊपर) होते हुए भी वह अपनी जगह पर डटा हुआ है। इस के बारे में अकादमीशियन अ० फेर्समान ने ये शब्द लिखे: "भविष्य अन्य धातुओं के साथ है। लोहे की एक पुराने, बुजुर्ग तथा योग्य पदार्थ के रूप में इज्जत की जायेगी। परंतु फिलहाल यह भविष्य बहुत दूर है।... अभी लोहा धात्विकी, मशीनरी, रेलों, जलयानों, पुलों तथा यातायात साधनों की जान है"।

चांद पर लोहा प्राप्त करने की अनेक विधियां विकसित की गयी हैं। एक विधि के अनुसार वहां धातु को पिघलाया नहीं, बल्कि आसवित किया जायेगा – उसे गैसीय अवस्था में ला कर कार्बन से संतृप्त किया जायेगा, फिर अति लंबे कनवेयर की सतह पर संघनित किया जायेगा। उस पर बैठ कर कार्बनित लोहे का वाष्प चांद पर निर्वात होने के कारण ऐसे इस्पात में परिणत होगा, जिसकी कोटि पृथ्वी पर प्राप्त इस्पात से कई गुनी ऊँची होगी।

अमरीकी विशेषज्ञों ने एक प्रयोगाधीन

उपकरण बनाया है, जो चंद्र-अयस्क से लोहा अलग करेगा। परवलयाकार दर्पणों द्वारा संकेंद्रित सौर किरणों की सहायता से चांद की मिट्टी पिघलायी जायेगी, फिर विद्युत अपघटित्र धातु को अन्य अवयवों से अलग कर देंगे। ये अपघटित्र सौर बैटरी से ऊर्जा लेंगे। वैज्ञानिकों की गणनानुसार एक मेज जितना बड़ा यह उपकरण 24 घंटे में 1 टन के लगभग लोहा अलग करेगा।

जब 1970 में सोवियत स्वचलित स्टेशन "लूना-16" पृथ्वी पर चंद्रमा की मृदा के नमूने लाया, सोवियत विज्ञान अकादमी ने देश के विभिन्न संस्थानों को इस कीमती चीज के अध्ययन का काम सौंपा। वैज्ञानिकों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि चंद्रमा से लायी इस मृदा में शुद्ध लोहे के कण उपस्थित थे जिन पर जरा सा भी जंग नहीं लगा था। खास बात यह थी कि महीनों बाद भी इस लोहे पर संक्षारण का कोई असर नहीं पड़ा। वैज्ञानिकों ने असंख्य प्रयोगों के आधार पर यह स्थापित किया है कि लोहे की इस अद्वितीय संक्षारण प्रतिरोधक्षमता का श्रेय सौर वायु (इलैक्ट्रोनों, प्रोटोनों) को है।

शांति की तोपों का आवेश

पारासेल्स की चालाकी – नीले रंग की चीनी मिट्टी – मुरानो द्वीप का रहस्य – सैक्सोनी चट्टानों के विचित्र अयस्क – ब्रांड का शोध-प्रबंध – एक पशुचिकित्सक का शौक – हर बुराई में अच्छाई भी होती है – सितारों के समान – जापानी स्टील – जोखिमभरे खिलौने – इंगलैंड के समुद्री बेड़े को बहुत हानि होती है – पुराने ढेर अचंभे में डाल देते हैं – प्लैटिनम के साथ संधि – कील कैसे निकाली जाये ? – मजबूत और सस्ता – रक्ताल्पता से संघर्ष – पुरानी यादगार के नाम पर – पति-पत्नी की खोज – परिकथा के जिन्न की तरह – "बर्तनों" की परीक्षा – विघटनाभिक कोबाल्ट के पेशे – फिराउन का मुखौटा – नीले रंग के हीरे – आसमानी बिजली को कैसे पकड़ सकते हैं ? – चिकित्सकों का सहायक

पुनरुत्थान काल के प्रसिद्ध चिकित्सक तथा प्रकृतिविज्ञानी पारासेल्स को एक जादू दिखाने का बहुत शौक था जिसे दर्शक भी बहुत पसंद करते थे। वैज्ञानिक लोगों को एक तस्वीर दिखाते थे जिस पर जाड़े का दृश्य बना होता था – पेड़ों तथा पहाड़ियों पर बर्फ जमी दिखाई देती थी। लोगों को यह तस्वीर अच्छी तरह से दिखाकर पारासेल्स उनके देखते-देखते सर्दी को गर्मी में बदल देते थे: पेड़ों पर पत्तियां उग आती थीं तथा पहाड़ियों पर हरी घास दिखाई देने लगती थी।

क्या वह एक जादू था? परंतु हम जानते हैं कि दुनिया में जादू नाम की कोई चीज नहीं है। इस प्रयोग में जादूगर का काम रसायन कर रहा था। कोबाल्ट क्लोराइड का विलयन, जिसमें थोड़ा सा निकैल या लौह क्लोराइड मिला हुआ होता है, साधारण ताप पर रंगहीन होता है। परन्तु इससे कोई ड्राइंग बनाकर सूखने के बाद अगर उसे थोड़ा-सा भी गर्म किया जाये तो यह घोल अतिसुंदर हरे रंग में बदल जाता है। पारासेल्स इसी विलयन की सहायता से जादूई तस्वीर दिखा रहे थे। एक निश्चित समय पर वे दर्शकों की निगाह से छिपाकर तस्वीर की दूसरी ओर रखी एक मोमबती जला देते थे जिसके फलस्वरूप लोगों के देखते-देखते मौसम बदल जाता था।

यह बात जरूर सच है कि पारासेल्स को खुद भी अपने रंगों की रसायनिक संरचना मालूम नहीं थी क्योंकि उन दिनों विज्ञान जगत कोबाल्ट और निकैल दोनों ही धातुओं से बिल्कुल अपरिचित था। हालांकि कोबाल्ट यौगिक कई शताब्दियों से रंजकों के रूप में प्रयोग हो रहे थे। 5000 साल पहले चीनी मिट्टी तथा कांच के उत्पादन में नीले रंग का कोबाल्ट रंजक प्रयुक्त किया जाता था। उन दिनों चीन के लोग सारे विश्व में प्रसिद्ध अपनी नीली चीनी मिट्टी के उत्पादन में कोबाल्ट इस्तेमाल करते थे। प्राचीन मिस्र के लोग मिट्टी के घड़ों पर नीले रंग की पालिश करते थे जिसमें कोबाल्ट मिला होता था। पुरातत्त्वज्ञों को फिराउन टूटनखामोन की कब्र में नीले रंग के काँच मिले हैं जो इस तत्त्व के लवणों से रंगे हुए हैं। प्राचीन आसीरी तथा बाबिलन के स्थान में भी पुरातत्त्वज्ञों को खुदाई करने पर ऐसे काँच मिले हैं।

ऐसा लगता है कि हमारे युग के आरंभ में कोबाल्ट रंजकों का रहस्य खो गया क्योंकि विजान्ती, यूनान, रोम तथा अन्य देशों के कारीगरों ने उन दिनों जितना भी नीला काँच बनाया उस में कोबाल्ट बिल्कुल नहीं था। उन्होंने नीला रंजक बनाने के लिये ताम्र का प्रयोग किया। उनका नीला रंग स्पष्टतया प्राचीन रंग से घटिया था।

काँच और कोबाल्ट की जादूई काफी लंबी रही। केवल मध्य युग में वेनिस के कारीगरों ने अद्भुत नीले काँच का उत्पादन फिर शुरू किया। ऐसे काँच की प्रसिद्धि कोबाल्ट के उपयोग से संबंधित थी।

वेनिस के लोगों ने इस लाजवाब काँच के बनाने का फार्मूला गुप्त रखा। कहीं यह रहस्य खुल न जाये, इस खयाल से तेरहवीं शताब्दी में वेनिस सरकार ने काँच की सारी फैक्टरियां एक छोटे से द्वीप मुरानो पर स्थानान्तरित कर दीं। किसी भी बाहरी व्यक्ति को इस द्वीप पर जाने की आज्ञा नहीं थी। इसके साथ-साथ कोई भी कारीगर अधिकारियों की आज्ञा के बिना द्वीप से बाहर नहीं जा सकता था। परंतु पता नहीं कैसे एक शिक्षार्थी जार्जियो बेलेरिनो को वहां से निकलने में सफलता मिल गयी। वह जर्मनी पहुंच गया और वहां एक शहर में उसने काँच की एक कर्मशाला खोल ली। परंतु यह कर्मशाला ज्यादा दिनों तक नहीं खुली रही। एक दिन उसमें 'आग लग गयी' और वह स्वाहा हो गया। कर्मशाला का भगोड़ा मालिक भी कटार से मरा पाया गया।

सत्तरहवीं शताब्दी की दस्तावेजें यह बताती हैं कि उन दिनों रूस में एक महंगे परंतु स्थायी तथा गाढ़े कोबाल्ट रंजक 'गोलुबेत्स' (रूसी भाषा में गोलुबोइ का अर्थ होता है—नीला) की बहुत मांग थी। क्रेमलिन के आमोद-प्रमोद भवन, शस्त्रागार, अर्खान्गेल और उस्पेन्ये कैथीड्रल की दीवारें तथा उस जमाने की बहुत सारी अद्वितीय इमारतें इसी रंजक से सजायी गयी हैं।

कोबाल्ट रंजकों के महंगा होने का कारण यह था कि इस धातु के अयस्क बहुत कम मात्रा में प्राप्त किये जाते थे। असल में बात यह थी कि उन दिनों औद्योगिक जगत कोबाल्ट अयस्कों के बारे में कोई जानकारी ही नहीं रखता था क्योंकि इस धातु के बड़े निक्षेप प्रकृति में उपस्थित ही नहीं हैं। यह केवल कुछ धातुओं के थोड़े-थोड़े सम्मिश्रों के रूप में मिलता है जैसे आर्सेनिक, ताम्र, बिस्मथ आदि। यही वजह थी कि मध्य युग में सैक्सोनी पहाड़ों के खनिकों को इस बात की भनक तक नहीं थी कि उनके पहाड़ों में एक अज्ञात धातु छिपी हुई है।

परन्तु समय-समय पर यहां के लोगों को एक विचित्र अयस्क मिलता रहा जिसके बाह्य गुण रजत अयस्क से मिलते जुलते थे। उन्होंने इससे रजत प्राप्त करने की काफी कोशिश की परंतु सफलता नहीं मिली। इसके अलावा एक बात और भी थी और वह यह कि भर्जन के दौरान अयस्क में से जहरीली गैसें निकलती थीं जिनसे खनिकों को बहुत परेशानी होती थी। धीरे-धीरे सैक्सोनी के लोगों को वास्तविक रजत तथा नकली रजत में फर्क पता चल गया। उन्होंने इसका नाम "कोबाल्ट" रखने का फैसला किया। यह नाम इसके अंदर "घुसी" पहाड़ी आत्मा के नाम पर रखा गया था।

1735 में स्वीडिश रसायनज्ञ ग० ब्रांड ने सैक्सोनी में मिले कुछ अयस्कों का विश्लेषण किया। इनमें बदमाश 'कोबाल्ट' भी शामिल

था। इन प्रयोगों के आधार पर उन्होंने 'अर्द्ध-धातुओं' के विषय पर अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि इन अयस्कों में एक अज्ञात धातु उपस्थित है जिसको 'कोबाल्ट' नाम दिया गया। अगर यह आविष्कार आज हुआ होता तो यह खबर क्षण भर में सारी दुनिया में फैल जाती, परंतु अठारहवीं शताब्दी में संचार के इतने बढ़िया साधन उपलब्ध नहीं थे जिसकी वजह से स्वीडिश रसायनज्ञ की खोज की जानकारी केवल कुछ लोगों तक ही सीमित रही। बहुत कम विज्ञानी कोबाल्ट की 'नागरिकता' का हक मानते थे। वे उसे 'खास मिट्टी' के साथ कुछ तत्त्वों के मिश्रण का परिणाम समझते थे।

केवल 1781 में फ्रांसीसी रसायनज्ञ प्येर जोसेफ माकेर विश्व को इसमें विश्वास दिलाने में सफल हुए कि कोबाल्ट कोबाल्ट ही है और कुछ नहीं।

इस वक्त तक कोबाल्ट के सबसे नजदीकी रसायनिक संबंधी निकैल की खोज हो चुकी थी। ये दोनों धातुएं प्रकृति में प्राय: एक-दूसरे के साथ मिलती थीं। वैज्ञानिकों के सामने एक कठिन प्रश्न था: इन दोनों धातुओं को एक दूसरे से अलग कर शुद्ध रूप में कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर अचानक ही मिल गया। एक पशुचिकित्सक शार्ल आस्कीन ने इस कठिन रसायनिक समस्या का हल ढूंढ़ लिया। यह घटना इस प्रकार घटी: शार्ल आस्कीन को धात्विकी का बहुत शौक था। अपना सारा खाली वक्त वे इसके अध्ययन में बिताते थे। 1834 में उन्हें निकैल तथा इसके ऐलॉयों में दिलचस्पी हो गयी। आस्कीन ने एक अयस्क से निकैल प्राप्त करने की

कोशिश की, परंतु अभाग्यवश (बेहतर होगा कि इसे भाग्यवश कहा जाये) उनके अयस्क में कोबाल्ट भी उपस्थित था। अब क्या किया जाये? आस्कीन ने शहर की रसायनिक फैक्टरी के मालिक बैन्सन से सहायता मांगी। उन्हें पता चला कि उस वक्त बैन्सन को चीनी मिट्टी के उत्पादन के लिये कोबाल्ट की सख्त जरूरत थी। परंतु बैन्सन को भी दोनों धातुओं को एक दूसरे से अलग करने की तरकीब पता नहीं थी। काफी सोच-विचार के बाद दोनों ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये क्लोराइड चूना प्रयुक्त करने का फैसला किया। यह हिसाब लगाकर कि इस काम में कितने चूने की आवश्यकता पड़ेगी वे प्रयोग में जुट गये।

बैन्सन के पास क्लोराइड चूने की पर्याप्त मात्रा थी। उन्होंने हिसाब के अनुसार इसकी आवश्यक मात्रा लेकर काम शुरू कर दिया, परंतु प्रयोग से कुछ भी नहीं मिला: विलयन में दोनों धातुओं के आक्साइड जमा हो गये थे।

उधर आस्कीन को प्रयोग शुरू करते

समय पता चला कि उनके पास क्लोराइड चूना कम है। प्रयोग के लिये जितना चूना चाहिये था, उनके पास केवल उसकी आधी मात्रा थी। उन्होंने सोचा: "मेरी किस्मत ही खराब है"। फिर भी उन्होंने प्रयोग जारी रखने का फैसला किया। यह कहावत ठीक ही है कि हर बुराई में अच्छाई भी होती है। उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य तथा प्रसन्नता हुई कि जिस प्रयोग से उन्हें किसी तरह की उम्मीद ही नहीं थी, उसने आशातीत परिणाम दे दिये: कोबाल्ट आक्साइड के रूप में नीचे बैठ गया तथा निकैल क्लोराइड चूने की आवश्यक मात्रा न मिलने के कारण विलयन में घुला रहा। आगे चलकर इस विधि में थोड़ा सा सुधार लाया गया और आज भी उद्योग में दोनों संबंधियों को एक दूसरे से अलग करने के लिये यही विधि प्रयुक्त की जाती है।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक कोबाल्ट की गतिविधियां सीमित थीं। उदाहरण के लिये, धातुविज्ञानी, जो आज कोबाल्ट को बहुत मान देते हैं, उस वक्त इसके गुणों की बहुत थोड़ी जानकारी रखते थे। 1912 में धात्विकी पर एक किताब छपी "अलौह धातुओं की धात्विकी"। इस पुस्तक में निम्न शब्द लिखे गये हैं: "...आज भी धात्विक कोबाल्ट किसी कार्य का नहीं है।... कुछ लोगों ने लोहे में कोबाल्ट मिलाकर एक विशेष किस्म का स्टील बनाने का प्रयास किया है, परंतु यह स्टील किसी काम का नहीं निकला"।

परंतु यह किताब प्रकाशित होने से 5 साल पहले एक अमरीकी धातुकर्मी हेइन्स ने क्रोमाइट, टंग्स्टन और कोबाल्ट के कुछ विचित्र ऐलॉय बनाये थे जो हद से ज्यादा

मजबूत थे तथा जिनपर संक्षारण और घिसाई का कम असर पड़ता था। अपनी चमक के लिये इन ऐलॉयों को स्टेलाइट कहते थे ("स्टेला" शब्द का अर्थ है – नक्षत्र)। इन ऐलॉयों की एक बेहतरीन किस्म के अंदर 50% कोबाल्ट उपस्थित था।

मजबूत ऐलॉयों का उत्पादन बढ़ता रहा और इस कार्य में कोबाल्ट बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। सोवियत वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों ने 50 साल पहले ही एक बहुत ही मजबूत ऐलॉय 'पोबेडिट' बनाया है जिस में टंग्स्टन कार्बाइड के अलावा कोबाल्ट भी उपस्थित है।

1917 में जापानी वैज्ञानिकों होंडा तथा ताकागी को अपने स्टील का पेटेंट मिल गया। इस स्टील में कोबाल्ट की मात्रा 20 से 60% तक थी तथा इसमें बेहतरीन चुम्बकीय गुण विद्यमान थे। उद्योग जगत को ऐसे स्टील की बड़ी सख्त जरूरत थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ में चुम्बकों ने उद्योग जगत पर कब्जा सा कर लिया जिसकी वजह से चुम्बकीय स्टील की 'भूख' बढ़ गयी।

तीनों मुख्य लौह चुम्बकीय धातुओं – लौह, निकैल तथा कोबाल्ट में से केवल कोबाल्ट ऐसी धातु है जिसका क्यूरी तापांक अर्थात् वह तापमान जिस पर धातु अपना चुम्बकीय गुण खो देती है, काफी उच्च है। निकैल का क्यूरी तापमान 358°C तथा लौह का 769°C है परंतु कोबाल्ट का 1121°C है। चुम्बकों को अक्सर विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। उन्हें काफी उच्च ताप का भी सामना करना पड़ता है इसी कारण कोबाल्ट चुम्बकीय स्टीलों का मुख्य घटक बन गया।

कोबाल्ट स्टील का निर्माण शुरू ही हुआ था कि सेना के अफसरों तथा उद्योगपतियों ने उसकी ओर ध्यान दिया। वे तुरंत समझ गये कि उसके विशिष्ट गुण उनके लिये बहुत काम के सिद्ध होंगे। उन्होंने इसे विनाशकारी कार्यों (युद्ध सामग्री के उत्पादन) में प्रयुक्त करना शुरू कर दिया। रूस में गृहयुद्ध के दौरान (1918-1920) देश के उत्तर में अंग्रेजों के साथ युद्ध करते समय रूसी नौसैनिकों तथा लाल सेना के सिपाहियों का विचित्र माइनों से वास्ता पड़ा। इन माइनों के पास गये जहाज बिना टकराये भी फट जाते थे। काफी प्रयासों के बाद गोताखोरों ने एक ऐसा जोखिमभरा "खिलौना" काबू में कर लिया। उसका फ्यूज निकाल कर जब अध्ययन किया गया तो पता चला कि वह चुंबकित था। इसके कार्य का सिद्धांत यह था कि जैसे ही (स्टील का बना) जहाज इस सुरंग के चुंबकीय क्षेत्र में आता था, सुरंग फट जाती थी जिससे जहाज डूब जाता था।

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले फासिस्ट जर्मनी में कोबाल्ट स्टील का उत्पादन बहुत ज्यादा बढ़ गया। इसे चुंबकीय सुरंगों के निर्माण में इस्तेमाल किया जाता था। नाजी प्रचारकों ने यह अफवाह फैला रखी थी कि परिशुद्धता, सुग्राहिता तथा प्रतिक्रिया गति में "जर्मन सुरंगें भगवान के बनाये कई प्राणियों के तंत्रिका तंत्र से भी श्रेष्ठ हैं"। वास्तव में जर्मन लोगों ने इंगलैंड के समुद्री किनारे, टेम्स तथा अन्य महत्त्वपूर्ण नदियों में सुरंगें बिछाकर इंगलैंड के बेड़े को बहुत हानि पहुंचाई। परंतु जैसाकि कहा जाता है हर जहर की दवाई होती है। जर्मन सेना के सोवियत संघ पर हमले के लगभग 2 सप्ताह

बाद ही सोवियत सेना के इंजीनियरों ने काले सागर में ओचाकोव के पास जर्मनों की पहली चुंबकीय सुरंग को बेकार कर दिया।

युद्ध के दिनों यूराल में निम्न घटना घटी। एक फैक्टरी में, जो कई सालों से ताम्र अयस्क पर काम कर रही थी, इंजीनियरों को पुराने माल के ढेर में कोबाल्ट मिला। इस बात की किसी ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। बहुत थोड़े समय में कोबाल्ट प्राप्त करने की तकनीक ढूंढ़ ली गयी और शीघ्र ही सोवियत सुरक्षा उत्पादन-मंत्रालय को 'कबाड़' से एक बहुत ही कीमती धातु मिलने लगी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान कोबाल्ट उच्चतापसह स्टील तथा ऐलॉयों के उत्पादन में प्रयुक्त होने लगा जिनका प्रयोग हवाई जहाजों के इंजनों के पुर्जों, अंतरिक्ष राकेटों, उच्चदाब भापीय बायलरों; टर्बोसंपीडित्रों तथा गैस टरबाइनों के ब्लेडों में किया जाता था। इस तरह का एक ऐलॉय 'विटालियम' है जिसमें 65% कोबाल्ट होता है। परंतु महंगा तथा विरल होने के कारण कोबाल्ट का धात्विकी में उपयोग सीमित है।

परंतु कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां कोबाल्ट अपने से भी महंगी एक धातु की जगह सफलतापूर्वक ले लेता है। यह धातु प्लैटिनम है जिसका वार्षिक उत्पादन बड़ी आसानी से एक ट्रक में ढोया जा सकता है। विद्युत अपघटन क्रिया में ऐसे अविलेय ऐनोडों की जरूरत पड़ती है जो द्रव के साथ किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया न करें। इस काम के लिये प्लैटिनम एक बेहतरीन चीज है, परंतु यह बहुत महंगी पड़ती है। इसी वजह से बहुत दिनों से वैज्ञानिक लोग सस्ते ऐनोडों की खोज में व्यस्त रहे हैं। काफी प्रयासों के बाद उन्हें एक ऐसा ऐलॉय बनाने में सफलता मिल गयी जिसकी अम्लरोधता प्लैटिनम से भी उत्तम थी। इस ऐलॉय में कोबाल्ट की मात्रा 75% तक थी।

कई बार कोबाल्ट प्लैटिनम के साथ मिल कर भी काम करता है। उदाहरणतया, इंगलैंड की एक फर्म ने इन दोनों धातुओं से एक चुम्बकीय ऐलॉय "प्लैटिनैक्स" बनाया है। इस ऐलॉय में उच्च संक्षारण-प्रतिरोध-क्षमता है तथा मशीनरी में इसका प्रयोग भी बहुत सरल है। यह बिजली की घड़ियों, श्रवणसहाय यंत्रों तथा डेटा यूनिटों के सूक्ष्म चुम्बकीय पुर्जों के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है।

कोबाल्ट तथा क्रोमियम का ऐलॉय नकली दांत बनाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह सोने से दुगुना मजबूत रहता है तथा काफी सस्ता भी पड़ता है।

चिकित्सा में कोबाल्ट के एक और गुण का उपयोग होता है। गुण यह है कि वह B_{12} विटामिन का एक महत्त्वपूर्ण अंश होते हुए मानव के शरीर में लाल रक्त-कणों के निर्माण में सहायक है। रक्त-क्षीणता के रोग के विरुद्ध संघर्ष में यह लाभकर साधन है। इसके आविष्कार के लिये अंग्रेजी रसायनज्ञ और जीवरसायनज्ञ डोरोटी क्रौफुट-हजकीन 1964 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हुईं।

प्राचीन काल से ही चीन में बनाया जाने वाला मिट्टी का बहुरंगी शानदार बर्तन दुनिया भर में प्रसिद्ध है। बर्तनों का नीला रंग कोबाल्ट के यौगिकों की बदौलत बनता है।

अभी तक हमने साधारण कोबाल्ट की बातें बतायी हैं, परंतु जैसे ही 1934 में विख्यात फ्रेंच वैज्ञानिकों फ्रेडेरीख तथा इरेन जूलियो-क्यूरी ने कृत्रिम विघटनाभिकता की

खोज कर डाली, विज्ञान तथा तकनीक ने विभिन्न तत्त्वों के विघटनाभिक समस्थानिकों में बहुत दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। कोबाल्ट भी इन तत्त्वों में शामिल था। इस धातु के 12 विघटनाभिक समस्थानिकों में से कोबाल्ट-60 सबसे अधिक काम का साबित हुआ।

इसकी किरणों में उच्च वेधन-क्षमता होती है। 17 ग्राम विघटनाभिक कोबाल्ट की विकिरण शक्ति सबसे शक्तिशाली विकिरण स्रोत रेडियम (1 किलोग्राम) की विकिरण शक्ति के बराबर होती है। यही कारण है कि जब यह समस्थानिक प्राप्त किया जाता है या इसका स्टाक किया जाता है या कहीं भेजा जाता है तब सुरक्षा नियमों का बड़ी सख्ती से पालन किया जाता है ताकि लोग मौत की किरणों से सुरक्षित रहें।

नाभिकीय रिऐक्टर के अंदर साधारण धात्विक कोबाल्ट के विघटनाभिक कोबाल्ट में परिवर्तित हो जाने के तुरंत बाद उसे एक कहानी के जिन्न की तरह विशेष बर्तनों में बंद कर दिया जाता है जिनका आकार दूध के बड़े बर्तनों जैसा होता है। इन बर्तनों की ऊपरी सतहों पर लेड की परत चढ़ायी जाती है। कोबाल्ट-60 को काम की जगह तक पहुंचाने के लिये विशेष गाड़ियों का इस्तेमाल होता है। आप पूछेंगे, अगर गाड़ी अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो जाये, तब क्या होगा? क्या बर्तन टूट जायेगा और उसके अंदर रखा कोबाल्ट लोगों की जान के लिये खतरा पैदा कर देगा? जी नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। यह बात जरूर सच है कि गाड़ी के साथ कभी भी दुर्घटना घट सकती है, परंतु अगर ऐसा हो जाता है तो 'बर्तनों' का कुछ नहीं बिगड़ता, वे सही सलामत

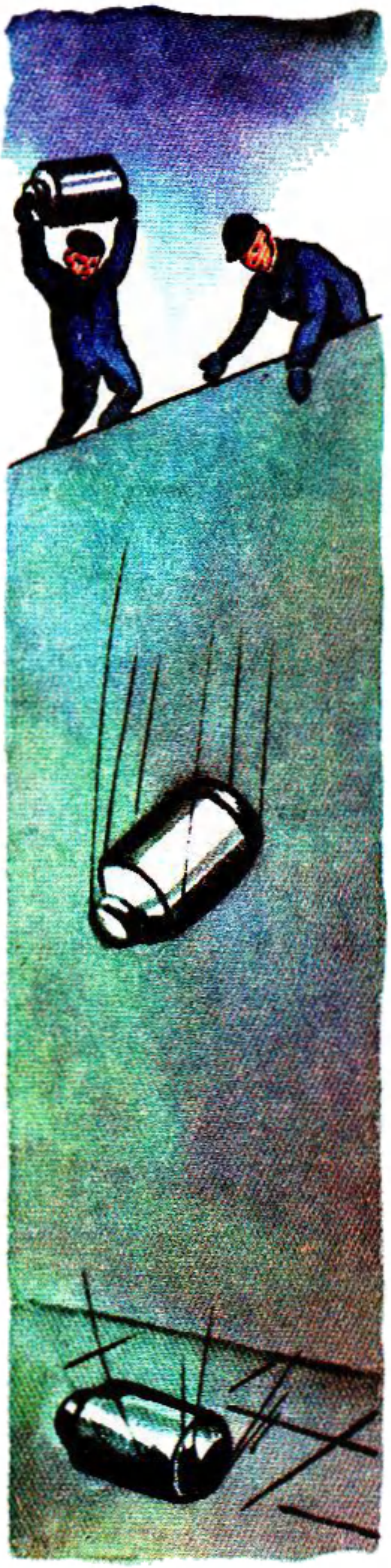

रहते हैं। बात यह है कि विघटनाभिक समस्थानिक रखने से पहले इन बर्तनों की कड़ी जांच की जाती है। इन्हें पांच मीटर की ऊंचाई से कंक्रीट स्लैबों पर फेंका जाता है, तापीय चैम्बरों में रखा जाता है तथा और कई तरह की परिक्षाओं से गुजारा जाता है। इन सब परिक्षाओं के बाद ही बर्तन विघटनाभिक समस्थानिक से भरे छोटे एम्प्यूल को लादने के अधिकारी बनते हैं। ये सारे उपाय विकिरण स्रोतों पर काम करने वाले लोगों का जीवन पूर्णतया सुरक्षित कर देते हैं।

विघटनाभिक कोबाल्ट के बहुत सारे पेशे हैं। उदाहरण के लिये, उद्योग में त्रुटि-अन्वेषण के काम में गामा किरणों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है अर्थात् गामा-रेडियोग्राफी की सहायता से उत्पादन की कोटि पर नियंत्रण रखा जा रहा है। यहां कोबाल्ट-60 विकिरण स्रोत का काम करता है। इस विधि से एक सस्ते तथा सघन उपकरण की सहायता से स्थूल संचकों, संधान संस्तरों, यूनिटों तथा अन्य हिस्सों (जहां पहुंचना बहुत मुश्किल होता है) में पैदा हुई दरारों, सूराखों, वायुरंध्रों तथा अन्य आंतरिक त्रुटियों का आसानी से पता चल सकता है। गामा किरणों में यह विशेषता होती है कि वे चारों ओर एक समान रूप से फैलती हैं। इस कारण उक्त विधि द्वारा एक ही समय में बहुत सारी चीजों पर नियंत्रण रखा जा सकता है। इसके अलावा जो चीजें बेलनाकार होती हैं उनकी सारी परिमाप की एक साथ जांच भी की जा सकती है।

गामा-किरणों की सहायता से मिस्र का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों को फिराउन टूटनखामोन की कब्र के अध्ययन में सफलता मिल गयी जो बहुत लंबे अर्से तक उनके लिये एक रहस्य बना हुआ था। कुछ वैज्ञानिकों का कहना था कि यह कब्र सोने के एक टुकड़े से बनायी गयी है जबकि दूसरों के विचारानुसार इसे अनेक टुकड़े जोड़कर बनाया गया है। वास्तविकता जानने के लिये कोबाल्ट-गन इस्तेमाल करने का फैसला किया गया। यह एक विशेष प्रकार का उपकरण होता है जिसे कोबाल्ट समस्थानिक से आवेशित किया जाता है। प्रयोग से पता चला कि वास्तव में नकाब कई टुकड़ों से बना है, परंतु ये टुकड़े इतनी सफाई के साथ लगाये गये हैं कि इनके जोड़ ढूंढ़ना पूर्णतया असंभव है।

प्रगलन भट्टियों में गलित धातु के स्तर तथा वात्या भट्टियों व बंकरों में आवेश सामग्री के स्तर पर नियंत्रण रखने के लिये विघटनाभिक कोबाल्ट इस्तेमाल में लाया जाता है। इसके अलावा सतत बहाव अधिष्ठानों के क्रिस्टलित्र में द्रवित स्टील का स्तर भी इसी कोबाल्ट द्वारा नियंत्रण में रखा जाता है।

समुद्री जहाजों के पेटों, पाइपों की दीवारों, वाष्प बायलरों आदि की मोटाई नापने के लिये एक विशेष उपकरण होता है जिसे गामा मुटाई मापक कहते हैं। इन चीजों की आंतरिक सतह पर पहुंचना असंभव होता है जिसकी वजह से साधारण उपकरण इस काम को नहीं कर सकता।

विभिन्न उपकरणों की तकनीकी प्रक्रियाओं तथा प्रचालन दशाओं के अध्ययन में विघटनाभिक परमाणुओं अर्थात् कई सारी धातुओं (इनमें कोबाल्ट भी शामिल है) के समस्थानिकों का प्रयोग विस्तृत होता जा रहा है।

विश्व में सोवियत संघ पहला देश है जहां औद्योगिक स्तर पर एक विकिरण-रसायनिक रिऐक्टर लगाया गया है। इस रिऐक्टर में

गामा किरणों का स्रोत कोबाल्ट का समस्थानिक ही है।

विभिन्न पदार्थों के विवेचन की आधुनिक विधियों, जैसे, अति उच्च दाब, पराध्वनि, लेसर विकिरण, प्लैज्मा प्रोसेसिंग आदि के साथ-साथ विघटनाभिक विकिरण भी उद्योगों में विस्तृत रूप से प्रयुक्त किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप बहुत सारे पदार्थों के गुण उत्तम हो जाते हैं। उदाहरणतया, मोटरों के विकिरण वल्कनित टायरों की आयु आम टायरों की आयु से 10-15% अधिक होती है। स्कूली बच्चों की ड्रैस के धागों में अगर विकिरण द्वारा पालिस्टाइराल के अणु मिला दिये जायें तो उसकी मजबूती दुगुनी हो जाती है। यहां तक कि रत्न भी विकिरण 'उपचार' के बाद और भी ज्यादा सुंदर हो जाते हैं, जैसे, तीव्र न्यूट्रानों द्वारा किरणित होने पर हीरा का रंग नीला हो जाता है, क्षिप्र न्यूट्रानों द्वारा हरा तथा कोबाल्ट-60 की किरणों द्वारा सुहावना नीला-हरा हो जाता है।

विघटनाभिक कोबाल्ट खेतीबारी में भी काम में आ रहा है। यहां इसका प्रयोग भूमि की आर्द्रता के अध्ययन में, खेतों पर बर्फ की सतह में जल के भंडारों का पता लगाने में, बोने से पहले बीजों के किरणन में तथा अन्य कार्यों में किया जाता है।

हाल ही में फ्रेंच वैज्ञानिकों ने एक नयी खोज की है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि विघटनाभिक कोबाल्ट आसमानी बिजली पकड़ने के काम आ सकता है। अगर एक तड़ित छड़ बनाते समय उसके ऊपरी सिरे में थोड़ा सा इसका समस्थानिक मिला दिया जाये तो गामा विकिरण के फलस्वरूप उस छड़ के आसपास की वायु आयनित हो जायेगी जिससे वायुमंडल में उत्पन्न विद्युत आवेश एक चुंबक

की तरह उस छड़ की ओर खिंच जायेगा। इस नयी छड़ की सहायता से सैकड़ों मीटर के परास में आसमानी बिजली इकट्ठी की जा सकती है।

अध्याय के अंत में हम विघटनाभिक कोबाल्ट के सबसे महत्त्वपूर्ण पेशे की चर्चा करनी चाहेंगे। यह लोगों की जान बचाने के काम में डाक्टरों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। चिकित्सा 'गनों' में भरे समस्थानिक कोबाल्ट-60 के दाने गामा किरणों द्वारा मनुष्य को बिना कोई हानि पहुंचाये उसके शरीर के अंदर बढ़ती रोगी कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं और मनुष्य का खतरनाक बीमारी से पीछा छुड़ा देते हैं।

सोवियत संघ की समस्थानिक संस्था 'इजोटोप' के भूमिगत भंडारों में छोटे-बड़े दसियों वर्तन हैं जिनके अंदर विघटनाभिक कोबाल्ट, स्ट्रॉन्शियम, सीजियम तथा अन्य विघटनाभिक पदार्थ रखे हुए हैं। जरूरत पड़ते ही उन्हें अस्पतालों, क्लिनिकों, फैक्ट-रियों तथा अनुसंधान संस्थानों में ले आया जाता है जहां शांतिपूर्ण कार्यों में परमाणु की मांग पड़ती है।

"ताम्र राक्षस"

परदादियों के आभूषण – चीन का एक प्राचीन ऐलाय – दुष्ट आत्मा का षड्यंत्र – महान रसायनज्ञ की भविष्यवाणी – उत्साही फ्रांसीसी – कनाडा में निकैल अयस्क मिलते हैं – रजेशोतारस्की को स्वर्ण पदक मिलता है – "महामारी" और उसका "विषाणु" – सम्राट की मृत्यु का कौन जिम्मेदार है ? – एक आकस्मिकता की वजह से – समुद्री बेड़े पर तोड़-फोड़ की कारवाही – निकैल अयस्कों की संख्या 3000 से भी ज्यादा है – एक धातुकर्मी का रहस्य – हीरे का ऐलाय – अपना अतीत नहीं भूलता – निकैल पालिश बहुत चमकदार होती है– "सैंडविच"-सिक्का – मुसीबत से बचना संभव है – अचानक ! – "कुनबापरस्ती" और परेशानियां – नजदीकी संबंध – अगर ग्रह पर निकैल की पालिश की जाये – कुत्ता अयस्क ढूंढ़ता है – "मैमथ विस्फोट" – आकाश से तारा लेकर आओ – साहसभरी योजनाएं – इन्साफ कब होगा ?

सब औरतें शायद यह नहीं जानतीं कि पुराने जमाने में उनकी परदादियों को, जो उन दिनों जवान तथा सुंदर थीं, निकैल का बहुत शौक था। कोई इसका हार गले में पहनती थी, कोई इसकी चूड़ियां बाहों में खनखनाती थी और कोई इससे बाल सजाती थी।

जी हां, आप ताज्जुब न करें। पिछली शताब्दी के आरंभ में निकैल बहुत कीमती समझा जाता था। इसको प्राप्त करना बहुत कठिन काम था और इसकी जितनी भी मात्रा प्राप्त होती थी वह जौहरियों के काम आ जाती थी। इंजीनियरों ने इस धातु में कोई रुचि ही नहीं ली क्योंकि उन्हें इसका कोई उपयोग दिखाई नहीं दे रहा था।

लगता है कि मनुष्य निकैल से हजारों साल पहले परिचित हो चुका था। उदाहरण के लिये, प्राचीन चीनवासियों ने ईसा से दो शताब्दी पूर्व ताम्र और जिंक के साथ निकैल का एक ऐलॉय बनाया था जिसका नाम 'पाक्फोंग' था। कई देशों में इस ऐलॉय की बहुत मांग थी। यह ऐलॉय बाक्टरी (आज इस जगह पर मध्य एशियाई जनतंत्र

बसे हुए हैं) भी पहुंचा, जहां के वासियों ने इसका इस्तेमाल सिक्कों के निर्माण में किया। ईसा से 235 साल पहले निर्मित एक ऐसा सिक्का आज लंदन के ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित रखा हुआ है।

एक तत्त्व के रूप में निकैल की खोज सन् 1751 में एक स्वीडिश रसायनज्ञ क्रोन्स्टेड ने की। उन्होंने यह धातु एक खनिज कुप्फेर-निकैल (ताम्र राक्षस) से प्राप्त की। इस नाम की एक अपनी कहानी है। मध्य युग में सैक्सोनी के खनकों को अक्सर लाल रंग का एक खनिज दिखाई देता था। लाल रंग का होने की वजह से भ्रमवश वे उसे ताम्र खनिज समझते थे। उन्होंने इस खनिज से ताम्र प्राप्त करने की काफी कोशिशें कीं, जैसे कीमियागरों ने पारस-मणि द्वारा जानवरों के मूत्र से स्वर्ण प्राप्त करना चाहा था, परंतु उनके हाथ कुछ नहीं लगा।

उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि उनकी असफलता का कारण क्या है। आखिरकार किसी के दिमाग में यह बात आयी कि ये सब शरारतें पहाड़ों पर रह रही दुष्ट आत्मा निक की हैं। वह इस राक्षसी पत्थर के अंदर घुस गयी है और लोगों को जरा सा भी ताम्र नहीं देना चाहती।

हो सकता है कि मध्य-युग के वैज्ञानिकों ने आगे चलकर इस परिकल्पना का वैज्ञानिक आधार ढूंढ़ लिया हो। कुछ भी हो, इसके बाद लोगों ने लाल खनिज से ताम्र प्राप्त करने की कोशिशें बंद कर दीं। यह सोचकर कि भविष्य में भी किसी को ऐसा लालच न हो, इस खनिज का नाम 'ताम्र राक्षस' रखने का फैसला किया गया।

ऐसा लगता है कि क्रोन्स्टेड अंधविश्वासी नहीं थे। उन्होंने राक्षस की जरा भी परवाह

नहीं की और कुप्फेरनिकैल से एक धातु प्राप्त कर ही ली। परंतु यह ताम्र नहीं था। यह एक नया तत्त्व था जिसका नाम उन्होंने निकैल रख दिया।

परंतु विज्ञान-जगत निकैल को नये तत्त्व की मान्यता देना नहीं चाहता था। केवल 1775 में यानी क्रोन्स्टेड की मृत्यु के 10 वर्ष बाद स्वीडन के दूसरे वैज्ञानिक बेर्गमैन ने अपने अनुसंधान-कार्य के परिणामों को प्रकाशित करके विश्वसनीय रूप से साबित कर दिया कि निकैल कई तत्त्वों का मिश्रण नहीं (इनके विरोधी यह मानते थे) , बल्कि एक अलग धातु है।

फिर भी इस सवाल पर बहस अर्से तक जारी रही। जर्मन रसायनज्ञ रिख्तर ने करीब तीन दशक के बाद इसका अन्त कर दिया। 1804 में रिख्तर ने उसी कुप्फेरनिकैल से शुद्ध निकैल प्राप्त किया। लेकिन इसकी प्राप्ति के लिये उनको 32 बार निकैल विट्रिओल का क्रिस्टलीकरण करना पड़ा। निकैल का वर्णन करने वाले अपने लेख को उन्होंने ऐसा शीर्षक दिया: "अतिशुद्ध निकैल, उसकी प्राप्ति और उसके गुणों के बारे में"। साफ था कि इतनी मेहनत के साथ निकाली गयी धातु केवल जौहरियों के योग्य थी। निकैल के औद्योगिक उत्पादन की बात उस वक्त किसी ने सोची भी नहीं थी।

इसके बाद और 50 से ज्यादा साल गुजर चुके जब महान मेंडेलीफ अपनी भविष्यवाणी कर सके। पीटर्सबर्ग में 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "रसायन के आधार" में उन्होंने लिखा: "अगर निकैल के समृद्ध भंडारों का पता लगाया जायेगा तो इस धातु का विस्तृत व्यावहारिक उपयोग किया जायेगा –शुद्ध रूप में अथवा ऐलॉयों के रूप में"।

1865 में न्यू कैलीडोनिया में निकैल अयस्कों के विशाल निक्षेप मिले। इन घटनाओं से कुछ समय पहले इस फ्रेंच उपनिवेश के खनन विभाग के अध्यक्ष पद पर एक नये व्यक्ति की नियुक्ति की गयी थी जिनका नाम जूल गारने था। वह बहुत उत्साही तथा जानकार व्यक्ति थे। द्वीप पर खनिज की प्राप्ति की आशा से उन्होंने बड़ी तेजी से खुदाई का काम शुरू करवा दिया और शीघ्र ही उनको इस कार्य में सफलता मिल गयी। द्वीप की भूमि में निकैल भरा पड़ा था। इस उत्साही फ़्रांसीसी के सम्मान में न्यू कैलीडोनिया में मिले निकैल अयस्क का नाम 'गाइरेनीयेरीट' रखा गया।

इसके लगभग बीस साल बाद कनाडा में पैसिफिक रेलवे की लाइनें बिछाते समय ताम्र-निकैल अयस्कों के विशाल भंडार इंजीनियरों के हाथ लगे।

उपरोक्त घटनाओं से निकैल के औद्योगिक उत्पादन को काफी सहारा मिला। लगभग इन्हीं वर्षों में इस तत्त्व के सबसे महत्त्वपूर्ण गुण की भी खोज हो गयी। पता चल गया कि निकैल स्टील की कोटि उत्तम करने की क्षमता रखता है। यह बात सच है कि इससे काफी पहले 1820 में सुप्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक माइकेल फैराडे ने निकैलयुक्त स्टील के प्रगलन पर कुछ प्रयोग किये थे, परंतु उस वक्त धातुविज्ञानियों ने उनमें कोई रुचि नहीं दिखाई थी।

पिछली शताब्दी के अंत में रूस के नौसेना मंत्रालय ने पीटर्सबुर्ग के ओबूखोव कारखाने को एक महत्त्वपूर्ण काम सौंपा – बहुत बढ़िया किस्म की कोवच्ल्ट चद्दरों का उत्पादन करना था। उस वक्त ब्रिटेन तथा फ्रांस की नौसेना में निकैल स्टील की नयी चद्दरों का इस्तेमाल

शुरू हो चुका था और विशेषज्ञों ने इस स्टील की बहुत प्रशंसा की थी।

अद्वितीय रूसी धातुविज्ञानी अ० र्जेशोतारस्की ने नये स्टील के उत्पादन का जिम्मा लिया। वे दिन रात प्रयोग करते रहे और शीघ्र ही उन्हें अपनी मेहनत का फल भी मिल गया। ओबूखोव कारखाने में 10 इंच मोटे बढ़िया निकैल स्टील की चद्दरों का उत्पादन शुरू हो गया। यह स्टील विदेशी स्टील से घटिया नहीं था, परंतु र्जेशोतारस्की इसे और भी बढ़िया बनाना चाहते थे। शीघ्र ही उन्होंने एक नयी तकनीक ढूंढ़ ली। उन्होंने धातु की ऊपरी सतह को कार्बन से संतृप्त कर दिया। इस विधि से प्राप्त धातु बहुत ज्यादा मजबूत तथा तन्य निकली। इसकी ऊपरी सतह विशेष रूप से मजबूत थी। फ्रेंच कन्सर्न 'शनेईदर क्रेजो', जिसका स्टील उस वक्त सबसे बढ़िया माना जाता था, भी र्जेशोतारस्की के स्टील का मुकाबला न कर सकी।

रूस के नौसेना मंत्रालय ने इस कार्य के उपलक्ष में विद्वान इंजीनियर र्जेशोतारस्की को सोने का पदक भेंट किया। देश के अन्य कारखानों में भी इस तकनीक के आधार पर स्टील का उत्पादन शुरू हो गया।

हमारे जमाने में निकैल स्टील का उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों में किया जा रहा है। इस स्टील से शल्य-चिकित्सा के यंत्र, रसायनिक उपकरण तथा घर की चीजें बनाई जा रही हैं।

अन्य धातुओं के साथ विभिन्न प्रकार के ऐलॉयों के निर्माण में भी निकैल का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही धातुविज्ञानी तथा रसायनज्ञ एक नयी 'महामारी' के शिकार हो गये थे। वे एक ऐसा ऐलॉय खोज रहे थे जो बर्तन और छूरी-काँटे के निर्माण में रजत की जगह इस्तेमाल किया जा सके। इस 'महामारी' में विषाणु की भूमिका एक बहुत बड़ा इनाम निभा रहा था। यह इनाम उस व्यक्ति को मिलना था जो ऐसा ऐलॉय बनायेगा। तभी लोगों को उस प्राचीन चीनी ऐलॉय की याद आयी। एक ही समय में विभिन्न वैज्ञानिकों ने चीनी ऐलॉय पैक्फोंग के आधार पर कई सारे ताम्र-निकैल ऐलॉय बना डाले, जो रजत से काफी मिलते-जुलते थे। इनमें से एक ऐलॉय का नाम 'इर्जेन्टान' (रजत जैसा) रखा गया और दूसरे का – नेइजिल्बेर (नया रजत)। इनके पीछे-पीछे जर्मन सिल्वर, आल्फेनिड तथा कई अन्य ऐलॉयों का निर्माण हुआ जिन्हें रजत की जगह इस्तेमाल किया जा सकता था। इन सब ऐलॉयों में निकैल जरूर उपस्थित था।

निकैल ऐलॉय बहुत जल्दी प्रसिद्ध हो गये और इनका खूब इस्तेमाल होने लगा। परंतु 1916 में एक ऐलॉय 'नेइजिल्बेर' को काफी परेशानी का सामना करना पड़ा। हुआ यह कि आस्ट्रिया के सम्राट फ्रेंस-जोजेफ अचानक बीमार पड़ गये और मर गये। वह इस ऐलॉय के बर्तनों का इस्तेमाल करते थे। उनकी अचानक मौत कैसे हो गयी? लोगों को शक हुआ कि यह सब 'नेइजिल्बेर' की वजह से हुआ है। बस फिर क्या था? इसके बने बर्तनों पर पाबंदी लगा दी गयी। बहुत बारीकी से छानबीन करने पर यह सिद्ध हो गया कि ऐलॉय का सम्राट की मौत से कोई संबंध नहीं है। सम्राट अचानक नहीं मरे थे, उनकी आयु भी तो 86 साल हो चुकी थी।

अक्सर नया ऐलॉय बनाने से पहले दीर्घ-कालीन खोजों, प्रयोगों और परीक्षणों को संपन्न करना पड़ता है। लेकिन ऐसा भी होता है कि ऐलॉय का जन्म संयोगवश हो जाता है। ऐसी एक घटना हमारी शती के आरंभ में कनाडा के खानों में हुई थी, जहां निकैल के सांद्रित अयस्क प्राप्त किये जाते थे। अयस्क संसाधित करते वक्त हर बार एक कठिन समस्या उठ जाती थी: निकैल से तांबे को कैसे अलग किया जाये, जो अयस्क में स्वयं भी बड़ी मात्रा में उपस्थित रहता था? और यदि इन धातुओं को अलग न किया जाये, उन्हें एक साथ पिघला कर अपने ढंग का एक प्राकृतिक ताम्र-निकैल धातुमिश्रण प्राप्त किया जाये, तो? यह मौलिक विचार कर्नल आंब्रोजू मोनेल के मन में उठा, वे अंतर्राष्ट्रीय निकैल कंपनी के अध्यक्ष थे। 1905 में जब इस विचार को कार्यान्वित किया गया, तब पता चला कि इस ऐलॉय में अनेक अच्छे गुण हैं: उच्च रसायनिक स्थायित्व, मजबूती, सुनम्यता और बाह्य सुंदरता। इसके अतिरिक्त वह अपेक्षाकृत कम महंगा था और यह बात तकनीक में सबसे अधिक महत्त्व रखती है। नये ऐलॉय को मोनेल-धातु का नाम दिया गया; इसने जल्द ही रसायनिक मशीन-निर्माण, जहाज-निर्माण, विद्युत-तकनीक, पेट्रोलियम, चिकित्सा और वस्त्र-उद्योगों में अपना एक मजबूत स्थान बना लिया।

निकैल ऐलॉयों को नये-नये काम मिलते गये। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान यह देखा गया कि कई बार समुद्री जहाज लड़ाई में भाग लिये बिना भी मरम्मत के लिये डाकयार्ड भेजने पड़ते थे। यह समुद्री जल की 'तोड़-फोड़ की कारवाही' का नतीजा होता था। बात यह थी कि समुद्र का जल बायलरों के संघनित्रों की ट्यूबें खा जाता था जो ताम्र और जिंक की बनी होती थीं। इन ट्यूबों के निर्माण के लिये तुरंत कोई दूसरा पदार्थ ढूंढ़ना था।

वैज्ञानिक लोग अभी इस काम में व्यस्त ही थे कि युद्ध समाप्त हो गया। परंतु उन्होंने अनुसंधान बंद नहीं किये। 1926 में उन्हें ताम्र-निकैल ऐलॉय बनाने में सफलता मिल गयी जिस पर समुद्री जल का कोई असर नहीं होता था। इसके 3 साल बाद फ्रांस की नौसेना के सारे जहाजों और उसके पीछे अन्य ताकतों के जहाजों में भी नयी संघनित्र ट्यूबें लग गयीं। अब नौसैनिकों को इस बात का पूरा विश्वास था कि मुसीबत में ये ट्यूबें उनका साथ नहीं छोड़ेंगे।

आज निकैल ऐलॉयों की संख्या 3000 से भी ऊपर पहुंच चुकी है। उदाहरणतया, संक्षारणरोधक ऐलॉयों में मोनल धातु के साथ-साथ हस्टेलाई ढग के ऐलॉयों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा रहा है। बिजली के हीटरों तथा वैद्युत प्रतिरोधक भट्टियों में निक्रोमियम कुंडली प्रयुक्त की जा रही है; नेइजिल्वेर का विभिन्न यंत्रों तथा उपकरणों में प्रयोग हो रहा है; इन्वार, जो एक प्रसार का अतिनिम्न गुणांक वाला ऐलॉय है (0°C से 40°C तक गर्म करने पर इसका आयतन केवल 1/10 लाख बढ़ता है), विभिन्न मानकों के निर्माण में काम आ रहा है। जहां धातु को कांच में जड़ना होता है (सीरिंज, बिजली के बल्ब आदि) वहां महंगी धातु प्लैटिनम की जगह प्लेटिनाइट इस्तेमाल किया जा रहा है (इस धातु के तापीय प्रसार का गुणक ऐसा ही है जैसा कांच और प्लैटिनम का), लचीलेदार ऐलॉय एलिनवार स्प्रिंगों

में, विशेष रूप से घड़ियों के स्प्रिंगों में बहुत काम का सिद्ध हो रहा है; ऐल्निको तथा एल्नी जैसे ऐलॉयों में उत्तम चुम्बकीय गुण होते हैं। विशेष तापयांत्रिक प्रक्रिया के बाद परमालेय की चुम्बकशीलता बहुत बढ़ जाती है, कमजोर चुम्बकीय क्षेत्रों में भी यह बड़ी आसानी से चुम्बकीय और अचुम्बकीय हो जाता है। इस ऐलॉय का प्रयोग टेलीफोन तथा रेडियो तकनीक में किया जाता है। ताप-वैद्युत युग्मों का निर्माण क्रोमेल तथा ऐलुमेल से किया जाता है।

छठे दशक के अंत में सोवियत वैज्ञानिकों ने एक नया ध्वनिक ऐलॉय बनाया, जिसका नाम निकोसी रखा गया। यह नाम इस ऐलॉय में उपस्थित तीन धातुओं के नाम के पहले अक्षर के आधार पर रखा गया – 94% निकैल, 4% कोबाल्ट तथा 2% सिलिकन। परीक्षणों से यह पता चला है कि शक्तिशाली पराध्वनि स्रोतों के निर्माण में निकोसी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

परन्तु वैज्ञानिक तथा औद्योगिक जगत ने सबसे ज्यादा दिलचस्पी एक अन्य ऐलॉय – निटिनोल में दिखाई। इस ऐलॉय में निकैल (55%) के साथ टाइटेनियम मिलाया गया था। इसका निर्माण हमारी शताब्दी के छठे दशक के आरंभ में अमरीका की एक प्रयोगशाला में किया गया परन्तु इसने अपने गुण तुरंत जाहिर नहीं किये। काफी हलका, मजबूत, तन्य तथा संक्षारणरोधी होने के कारण इसे केवल एक अच्छा ऐलॉय समझा जाता था। इससे ज्यादा नहीं। परंतु निर्माणकर्त्ताओं ने इसके साथ विभिन्न प्रयोग जारी रखे। एक प्रयोग के दौरान इस ऐलॉय ने एक अद्वितीय क्षमता दिखाई – यह अपना अतीत याद रहता था। यह प्रयोग इस प्रकार का था: विशेष प्रक्रिया के बाद एक निटिनोल कुंडली को 150°C तक गर्म करके ठंडा किया गया और फिर इसके एक सिरे पर वजन लटका दिया गया। कुंडली बिल्कुल सीधे तार में परिवर्तित हो गयी। चमत्कार तब हुआ जब दोबारा गर्म करने पर (95°C तक) देखते ही देखते तार कुंडली में बदल गया।

प्रयोग बार-बार दोहराया गया था, हर बार ऐलॉय को जटिल से जटिल रूप दिये गये, परंतु उसकी 'स्मरणशक्ति' पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। वह आरंभिक रूप में बदलता रहा। उदाहरणतया, तार को इस

प्रकार मोड़ा गया कि वह 'निटिनोल' शब्द का रूप ले ले। इसके बाद उसे गर्म करके ठंडा किया गया और फिर बहुत बुरी तरह से मरोड़ दिया गया। जैसे ही इस तार को विद्युत आवेश द्वारा गर्म किया गया, ऐलॉय का नाम फिर सामने आ गया।

इंजीनियरों ने निटिनोल के उपयोग के बहुत सुझाव दिये हैं। एक सुझाव के अनुसार निटिनोल से ऐसी संरचनाओं के रिवेट बनाये जा सकते हैं जहां केवल एक तरफ से पहुंचा जा सकता है। इस कार्य में धातु को एक साधारण रिवेट का आकार 'याद' रखने का काम सौंपा जाता है। फिर इसके काम वाले सिरे को गोल खूंटी में परिवर्तित करके निम्न ताप पर दरार में घुसा देते हैं। अब अगर रिवेट के सिरे को हलका सा गर्म किया जाये तो उसे याद आ जाता है कि दूसरी तरफ से वह मोटा था। इस तरह का रिवेट पुर्जों को हमेशा के लिये जोड़ देता है।

अंतरिक्ष अनुसंधान में व्यस्त एक अमरीकी फ़र्म ने निटिनोल के एक ऐन्टेना का प्रदर्शन किया है जिसे पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रहों पर लगाया जा सकता है। एक गोले में कसा तथा विशेष गड्ढे में छिपा यह ऐन्टेना उपग्रह पर ज्यादा जगह नहीं घेरेगा, परंतु जैसे ही उपग्रह अंतरिक्ष में पहुंचेगा यह ऐन्टेना सूर्य की किरणों से गर्म होकर आवश्यक रूप ले लेगा। इसी सिद्धांत पर एक रेडियोटेलीस्कोप बनाने का सुझाव मिला है जिसके ऐन्टेने का व्यास एक किलोमीटर से भी ज्यादा होगा।

निकैल धातुओं की संक्षारण से रक्षा करता है और उनकी बनी चीजों को आकर्षक रूप भी देता है। पतीलों और चाय की केतलियों आदि की चमक निकैल की ही करामात है।

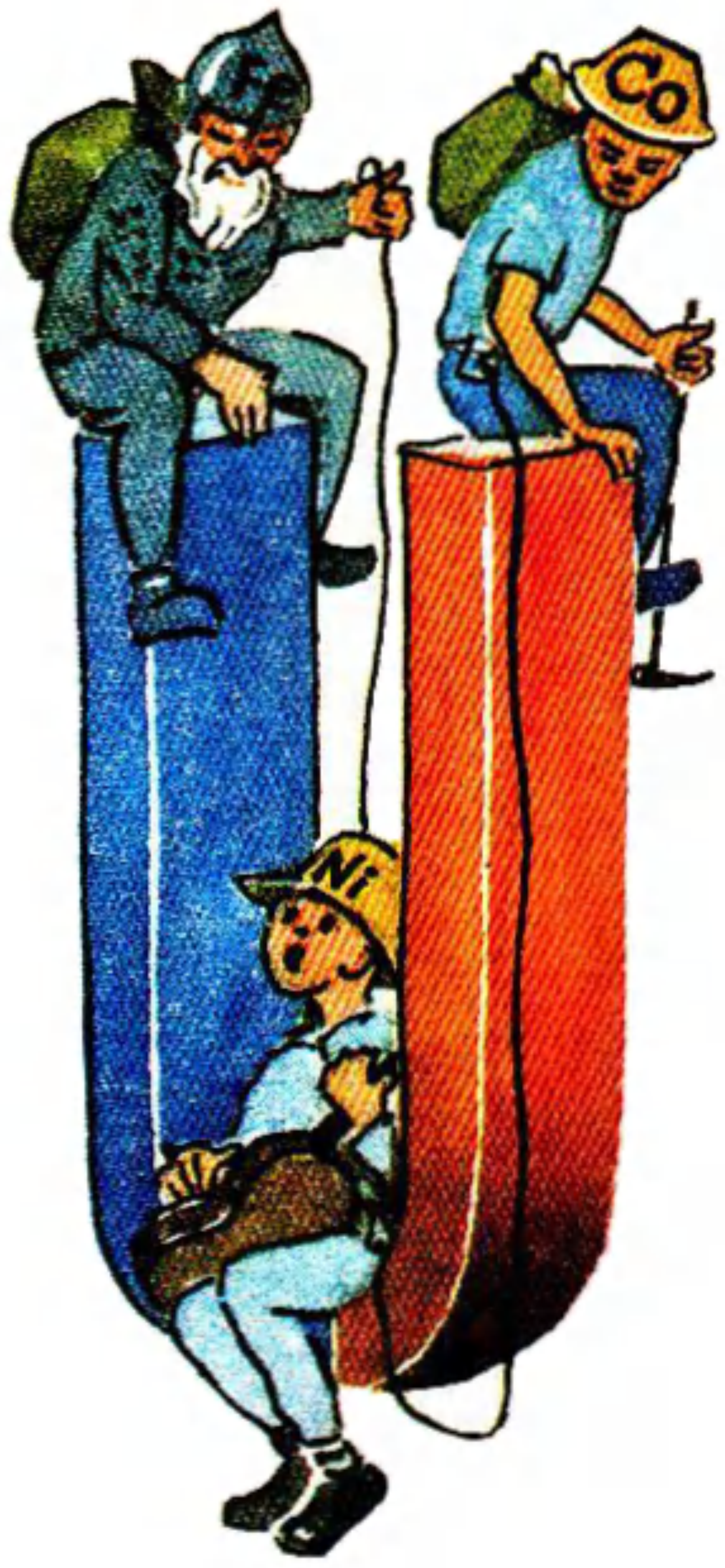

घर के काम की बहुत सारी चीजों पर निकैल की हलकी पालिश हुई होती है।

पालिश के लिये निकैल इस्तेमाल करने का सर्वप्रथम प्रयास 1842 में एक जर्मन वैज्ञानिक बैटगर ने किया, परंतु वे असफल रहे। इसका कारण यह था कि उन दिनों जो निकैल उपलब्ध था उसमें अशुद्धियां होती थीं जो विद्युत अपघटन में बाधा डालती थीं। परन्तु अब विद्युत-अपघटन तकनीक में बहुत ज्यादा उन्नति हो चुकी है और आज निकैल की बहुत पतली परत लोहे की संक्षारण से सफलतापूर्वक रक्षा कर रही है जिसके परिणामस्वरूप लोहे की विशाल मात्रा की बचत हो रही है।

निकैल जाली सिक्कों का चलन बंद करने में भी सहायक सिद्ध हो रहा है। हाल ही में फ्रांस में 5 फ्रेंक का एक नया सिक्का चलाया गया है। अन्य सिक्कों की तुलना में इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सिक्का एक 'सैंड-विच' की तरह है अर्थात् कई तह वाला है। इसका मध्य भाग अचुंबकीय जर्मन सिल्वर का बना है तथा बाहरी परतें निकैल की हैं। स्लाट-मशीनों के मालिकों को अब किसी बात का डर नहीं है: नये सिक्के में ऐसे विद्युत-चुम्बकीय गुण हैं कि कोई भी जाली सिक्का इसकी जगह नहीं रखा जा सकता।

वैज्ञानिकों की बहुत पहले से ही निकैल के उत्प्रेरक गुणों पर नजर लगी हुई थी। पिछली शताब्दी के नौवें दशक में दो फ्रेंच रसायनज्ञ साबाटे तथा सेनेडरन द्रव तेल से 'दृढ़' वसा प्राप्त करने की समस्या में काफी रुचि ले रहे थे। उन्होंने यह कहा कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये तेल का एक अणु हाइड्रोजन अणुओं की निश्चित संख्या के साथ मिलाना चाहिये। परंतु एक गड़बड़ी थी: उन्होंने यह बात कह तो दी थी पर इसे करके दिखाना असंभव लग रहा था। शुरू में उन्होंने हाइड्रोजन को तेल में से गुजार कर देखा, परंतु गैस ने तेल के साथ कोई प्रतिक्रिया नहीं की। अब उन्होंने विभिन्न चीजें मिलाकर ऐसा करने की कोशिश की, परंतु हर बार असफलता मिली। परंतु जैसे ही उन्होंने निकैल का थोड़ा सा पाउडर उत्प्रेरक के रूप में इस्तेमाल किया, उनका काम बन गया। इस प्रकार जो 'दृढ़' वसा प्राप्त हुई उसका उपयोग मारगरीन के उत्पादन में किया गया। आज रसायन की उत्प्रेरक प्रक्रियाओं में निकैल को एक मुख्य भूमिका प्राप्त है।

निकैल के दूसरे यौगिकों में निकैल आक्साइड महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका उपयोग निकैल-लौह क्षारीय बैटरियों के निर्माण में किया जाता है जिसका आविष्कार प्रसिद्ध अमरीकी एडिसोन ने किया था। विद्युतवाहक बल में ये बैटरियां लैड बैटरियों से कुछ निम्न होती है, परंतु कुछ बातों में ये उनसे श्रेष्ठ भी होती हैं—इनका वजन कम होता है, ज्यादा अर्से तक कार्ययोग्य रहती हैं तथा इनका प्रयोग भी सरल होता है।

आवर्त सारणी में निकैल लौह तथा कोबाल्ट का साथी है। ये तत्त्व एक दूसरे से काफी मिलते जुलते होने के कारण एक त्रिक बनाते हैं। विचित्र बात है कि वर्तमान समय तक ज्ञात तत्त्वों में से लौह त्रिक के केवल ये तीन तत्त्व और विरल धातु गाडोलीनी साधारण परिस्थितियों में लौहचुंबकीय गुण रखते हैं। यह 'कुनबापरस्ती' धातुविज्ञानियों को बहुत परेशान कर रही है। निकैल से कोबाल्ट अलग करना बहुत कठिन काम है। इसके अलावा आवर्त सारणी में निकैल का एक और भी पड़ोसी है—ताम्र। यह तत्त्व भी इससे आसानी से जुदा नहीं होना चाहता। प्रकृति में कोबाल्ट तथा ताम्र निकैल के साथ ही मिलते हैं। इन धातुओं का एक दूसरे से अलग करना काफी जटिल तथा लंबा काम है। यही वजह है कि औद्योगिक धातुओं में निकैल सबसे महंगा तथा विरल समझा जाता है।

भू-पर्पटी में निकैल की मात्रा 0.01% से कम है। आप कहेंगे कि यह तो बहुत कम है। जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। कल्पना करें कि किसी ने हमारे ग्रह पर निकैल की पालिश करने की बात सोची। क्या इसके भंडार इस काम के लिये काफी रहेंगे?

साधारण सी गणना ही यह बता देती है कि केवल काफी ही नहीं रहेंगे बल्कि इतना निकैल भी बच जायेगा कि ऐसे हजारों ग्रहों पर पालिश करने के लिये पर्याप्त रहेगा। भू-पर्पटी केवल एक आवरण ही तो है। इस आवरण के नीचे घनी सतहें हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि इन सतहों के अंदर निकैल की मात्रा और भी ज्यादा है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कई बार भूविज्ञानी खनिजों की खोज में कुत्तों की भी सहायता लेते हैं। कई सालों से सोवियत विज्ञान अकादमी के एक भूविज्ञान संस्थान के वैज्ञानिक कुत्तों को अयस्क ढूंढ़ने का काम सिखा रहे हैं। अलग-अलग किस्मों के चार कुत्ते कई मीटरों की गहराई पर छिपे अयस्कों को बड़ी तेजी से सूंघ लेते हैं (इनमें निकैल भी शामिल है)।

कोई पाठक यह कह सकता है कि बीसवीं शताब्दी में ऐसा तरीका अपनाने की बात बड़ी अजीब भी लगती है। वह गलती पर है। हम यही कहेंगे कि किसी नतीजे पर पहुंचने में जल्दी न करें। बात यह है कि उत्तरी इलाके इतने दलदली हैं कि वहां खनिज ढूंढ़ने का काम महंगा होने के साथ-साथ मुश्किल भी है। परंतु जिस जगह मनुष्य का पहुंचना असंभव है वहां कुत्ते आसानी से पहुंच जाते हैं। इसके साथ-साथ भौतिक उपकरणों के मुकाबले ये 'जीवित' उपकरण दस गुना ज्यादा जगह का सर्वेक्षण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुत्तों में एक और भी खूबी होती है – खनिजों के नमूनों के बीस बक्से 'देखने' में उन्हें केवल कुछ सेकंड लगते हैं जबकि भूविज्ञानी को इस काम के लिये कई दिन चाहियें।

कनाडा के विशेषज्ञों ने सोवियत वैज्ञानिकों

के तर्जुबे का लाभ उठाया। वैन्कुवेर शहर के पुलिस विभाग ने तीन जर्मन कुत्ते चुने और उन्हें यह 'धंधा' सिखाया। अनुभवी भूविज्ञानियों के नेतृत्व में इन कुत्तों ने छोटी सी अवधि में निकैल तथा ताम्र के कई निक्षेप ढूंढ़ डाले।

निकैल अयस्कों के खनन में पूंजीपति देशों में कनाडा का प्रथम स्थान है। निकैल अयस्कों के मुख्य निक्षेप अन्टारियो झील के पास स्थित हैं। कुछ वर्ष पहले यहां इस जमाने का सबसे बड़ा औद्योगिक विस्फोट किया गया। इसकी तैयारी में एक साल से ज्यादा समय लगा। चट्टानों में 17 हजार बारूदी सूराख किये गये जिनकी कुल लंबाई कई दर्जन किलोमीटर थी। इन सूराखों में इतना बारूद भरा गया जितना रेल के 30 डिब्बों में आ सकता था। कनाडा के लोगों ने इसका नाम 'मैमथ विस्फोट' रखा। इस विस्फोट से 15 लाख टन पहाड़ी चट्टान तथा 35 लाख टन निकैल अयस्क हवा में बिखर गया। हाल ही में कनाडा की मैनीटोबा झील के पास निकैल के विशाल निक्षेप मिले हैं। इसका

पता पृथ्वी के एक कृत्रिम उपग्रह पर रखे उपकरणों ने लगाया है।

1969 के अंत में लंदन के शेयर बाजार में बड़ा तहलका मचा हुआ था। आस्ट्रेलिया से मिली खबरों के आधार पर 'पोसिडोन' कंपनी के निकैल शेयरों के भाव कभी बहुत ऊंचे जा रहे थे और कभी बहुत नीचे। यह कंपनी तब शुरू की गयी थी जब आस्ट्रेलिया के समुद्री तट पर रेत में काफी निकैल मिला था। खुदाई के परिणाम भी हर खबर के मिलते ही शेयरों के भाव बढ़ गये। परंतु बाद में सूचना मिली कि पहली खबर ठीक नहीं थी। गलती से निकैल की मात्रा 10 गुना ज्यादा बता दी गयी थी। बस फिर क्या था, कुछ मिनटों बाद शेयरों के भाव बिल्कुल गिर गये। अब फिर एक नयी खबर आयी: पहली खबर ठीक थी, निकैल की मात्रा बहुत ज्यादा है। शेयरों के भाव तुरंत चढ़ गये। किसी न किसी ने इस गड़बड़ी से जरूर फायदा उठाया होगा और खूब पैसे बनाये होंगे। अब निकैल का शेयर बाजार लंदन से आस्ट्रेलिया आ गया है जहां दसियों खनन कंपनियों में निकैल अयस्कों की खुदाई के अधिकार पर आपस में होड़ लगी हुई है।

पृथ्वी पर निकैल केवल अन्य तत्त्वों के साथ मिलता है, परंतु बहुत सारे आकाशीय पिंडों में यह शुद्ध रूप से विद्यमान है। हमारे ग्रह को अंतरिक्ष से काफी निकैल मिलता है। सोवियत वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार हर साल पृथ्वी के महासागर के प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को उल्कापिंडों के रूप में 250 ग्राम तक निकैल मिलता है। यह संख्या बहुत छोटी लगती है। परंतु पृथ्वी के महासागर की उम्र कितनी लंबी है, आकार कितना बड़ा है, अर्थात् माल काफी जमा हो गया होगा। कृत्रिम उपग्रहों से प्राप्त पिछले आंकड़ों से यह पता चला है कि पृथ्वी का वायुमंडल हर साल 10 लाख टन से अधिक अंतर्ग्रहीय धूल चाट जाता है (उल्का-पिंडों की बारिश के वक्त 'धूल की मात्रा' सैकड़ों गुना बढ़ जाती है)।

पृथ्वी के निकैल भंडारों की आकाशीय पिंडों के माल से पूर्त्ति की योजनाएं काफी दिलचस्प हैं। अंतर्ग्रहीय अंतरिक्ष में हजारों छोटे-छोटे ग्रह घूम रहे हैं जिन्हें ऐस्टराइड कहते हैं। ये मुख्यतः लोहे तथा निकैल के बने होते हैं। इनमें से कुछ के कक्षक हमारी पृथ्वी के कक्षक से ज्यादा दूर नहीं होते हैं और कई बार तो कुछ ऐस्टराइड पृथ्वी के बहुत ही समीप होते हैं। कुछ वैज्ञानिकों के विचार से सिद्धांततः राकेटों द्वारा ये ऐस्टराइड पृथ्वी के पास वाले कक्षक में लाये जा सकते हैं और फिर इनके बल पर निकैल तथा लोहे का उत्पादन शुरू किया जा सकता है। एक योजना के अनुसार ऐस्टराइड पर विशेष स्वचालित उपकरण भेजे जायेंगे जो सौर-भट्टियों की सहायता से ऐस्टराइड को प्रगलित कर लाखों टन वजन की सिल्लियों में परिवर्तित कर देंगे। राकेट ये सिल्लियां पृथ्वी के कक्षक में ले आयेंगे और फिर केवल पृथ्वी पर धातु लाने का काम बाकी रह जायेगा। परंतु कैसे? एक प्रस्ताव यह है कि धातु को पहले कक्षक में ही प्रगलित कर दिया जाये, फिर इसमें गैस गुजारी जाये और इस प्रकार प्राप्त धातु के फोमब्लाक समुद्र में गिरा दिये जायें। यहां वे पानी में तब तक तैरते रहेंगे जब तक कि माल के जहाज उन्हें उठा नहीं लेंगे। ये जहाज उन्हें किनारे पर ले आयेंगे और वहां से वे तटवर्ती धातु-कारखानों में पहुंचा दिये जायेंगे। जिस हिसाब से आज निकैल की खपत हो रही है, अनुमान है कि इस हिसाब से एक घन किलोमीटर ऐस्टराइड द्रव्य के सहारे 1250 साल की अवधि तक पृथ्वी की निकैल की जरूरत पूरी हो सकेगी।

आप इन्हें बड़ी साहसी योजनाएं कहकर हंसी उड़ायेंगे। परंतु यह न भूलें कि कुछ साल पहले चंद्रमा पर मानव का पहुंचना भी एक असंभव बात समझी जाती थी।

निकैल की कहानी खत्म होने जा रही है। इस बेचारी धातु को यह नाम दुष्ट आत्मा के सम्मान में दिया गया। परंतु हम आशा करते हैं कि एक दिन सच्चाई की जीत होगी और तब इस धातु को 'दयालु जादूगर' के नाम से पुकारा जायेगा। चलिये, छोड़िये, नाम में ही सारी बात नहीं होती है। जो सच्चाई है, वह सबके सामने है। निकैल मानव-जाति की बहुत सेवा कर रहा है।

बहुत प्राचीन और यशस्वी

पुरातन यूराल का खजाना – सिनांथ्रोपों की विरासत – "अद्भुत सात" का गुट – पाषाण युग – पिरामिड खूफू के निर्माणस्थल पर – स्त्री के लिये सर्वोत्तम उपहार – मिश्र के पुजारी कीमियागर थे – झाड़-फूंक द्वारा नासूर का इलाज – आचिलस की अजेयी ढाल – कूड़े में दुनिया का एक अचंभा – मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना है – बकरी के दूध का पनीर ले लो – आंखों के नीचे गोले – ताप-उत्पादन घर – बासिल कैथीड्रल का गुंबद – सफल व्यापार-यात्रा – गिरजाघरों से घंटे उतरवाये गये – एक चालाकी – ताम्र की वजह से दंगे हो जाते हैं – विचित्र नीलामी – ताम्र अयस्क की चुतराई – नीले रंग का रक्त – कार्पों की रक्षा करनी चाहिये – शार्कनाशक औषधि – बौने काम कर रहे हैं – नीलपुष्प जिंक को प्राथमिकता देता है

पुरातन यूराल की भूमि अपने गर्भ में सुंदर से सुंदर रत्न छिपाये बैठी है। परंतु जितनी कहानियां तथा किवदंतियां मैलेकाइट के बारे में प्रसिद्ध हैं उतनी शायद किसी दूसरे पत्थर की नहीं हैं। प्रसिद्ध रूसी कहानीकार बाजोव ने अपनी पुस्तक "यूराल की लोककथायें" में इस पत्थर के गुण गाये हैं। हरे रंग का यह अद्‌भुत पत्थर कारीगरों के हाथ में पड़कर एक बेमिसाल चीज में बदलता रहा है। सदियों से रूसी तथा विदेशी व्यापारी बड़े चाव से इसे दूसरे देशों में ले जाते रहे हैं।

शायद सब लोग यह नहीं जानते कि मैलेकाइट ताम्र का एक खनिज है। ताम्र वह धातु है जिसके साथ सभ्यता का इतिहास हमेशा जुड़ा रहा है।

आपको याद ही होगा कि अकादमीशियन फेर्समान ने बताया था कि अगर पृथ्वी पर लोहा न होता तो मनुष्य का कितना बुरा हाल होता। और अगर कल पृथ्वी पर ताम्र खत्म हो जाये, तब क्या होगा? लोहे की तरह ताम्र भी तो कदम-कदम पर इस्तेमाल किया जा रहा है, यह भी लोहे से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

विश्व में धातुओं के उत्पादन तथा उनकी खपत में लोहे तथा ऐलुमिनियम के बाद ताम्र का स्थान है। संभव है कि आज का व्यक्ति ताम्र के बिना काम चला सकता है क्योंकि बीसवीं शताब्दी ने मानव-जाति को बहुत सारी धातुएं दे दी हैं जिनमें विविध प्रकार के गुण हैं। परंतु हमारे पूर्वजों का ताम्र के बिना बुरा हाल होता क्योंकि उनके लिये ताम्र ही एकमात्र धातु थी जो सरलता से उपलब्ध थी तथा जिससे वे अपने सीधे-सादे औजार और घर की छोटी-मोटी चीजें

बनाते थे। हालांकि उनके पास इस काम के लिये एक और चीज भी थी – पत्थर। परंतु उस वक्त मानव यह समझ गया था कि पत्थर धातु का मुकाबला नहीं कर सकता। सिनांथ्रोपों तथा निआन्दरथालों से विरासत में मिली पत्थर की चीजें किसी काम की नहीं रही थीं।

स्वर्ण, रजत, लोहे, टिन, लैड तथा पारद के साथ मिलकर ताम्र "सात अद्‌भुत धातुओं" का गुट बनाता है जिनसे मनुष्य अतिप्राचीन काल से परिचित है। अनुमान है कि ताम्र के साथ मनुष्य लगभग दस सहस्त्रों से परिचित है। अगर आरंभ में यह परिचय साधारण सा था तो 2-3 सहस्त्रों बाद ताम्र आदिम जाति के जीवन का अंग बन गया। उन्होंने पत्थर की जगह ताम्र अपना लिया। पाषाण युग ने बागडोर ताम्र युग को सौंप दी।

क्या कारण है कि मनुष्य के हाथों में आयी सर्वप्रथम धातु ताम्र थी? इस धातु के भाग्य में मानवजाति के विकास में इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना क्यों लिखा था?

सात प्रागैतिहासिक धातुओं में से केवल तीन धातुएं – स्वर्ण, रजत तथा ताम्र पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप में पायी जाती हैं अर्थात् डलों के रूप में। कई बार इनका आकार बहुत ही बड़ा होता है (अब तक मिले सबसे बड़े ताम्र के डले का वजन 420 टन था)। हमारे पूर्वजों को स्वर्ण तथा रजत इतनी कम मात्रा में मिलते थे कि वे इनके विस्तृत प्रयोग की बात ही नहीं सोच पाये। जबकि ताम्र प्रकृति में विपुल मात्रा में मिलता है। इसके अलावा यह अति तन्य होता है तथा इसे काम में लाना भी बहुत आसान होता है। यही वजह थी कि मनुष्य ने औजारों तथा अन्य चीजों के निर्माण के लिये ताम्र का ही चुनाव किया। हालांकि ये औजार पत्थर के औजारों जितने मजबूत नहीं थे परंतु इनकी उम्र उनसे लंबी थी क्योंकि

औजारों की घिसी नौकें फिर से तेज की जा सकती थीं और उन्हें बार-बार इस्तेमाल लायक बनाया जा सकता था।

ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व मिश्र में पिरामिड खूफू का निर्माण हुआ जो दुनिया के सात अचंभों में एक गिना जाता है। फिराउन की इस विशाल कब्र के निर्माण में 23 लाख शिलाखण्डों का इस्तेमाल किया गया था तथा हर शिला का वजन 2.5 टन था। इन शिलाखण्डों की कटाई तथा सजावट में ताम्र औजारों का प्रयोग किया गया था।

धीरे-धीरे मनुष्य यह सीख गया कि अयस्क से ताम्र कैसे प्राप्त किया जाता है। साइप्रस में मिले ताम्र अयस्क विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। ऐसा समझा जाता है कि इस धातु का लातीनी नाम कूप्रूम (Cuprum) इसी द्वीप के नाम पर रखा गया है। रूसी में ताम्र को 'मेद' कहते हैं। कुछ शोधकर्त्ताओं का मत है कि यह नाम शब्द 'समीदा' से लिया गया है। रूस के यूरोपीय भाग में बसी प्राचीन जातियां हर धातु को इस शब्द से पुकारती थीं।

ताम्र के इतिहास की अगली महत्त्वपूर्ण घटना थी – जिंक के साथ इसके ऐलॉय-कांसे का निर्माण। ताम्र-युग के पीछे कांस्य-युग आया जिसके दौरान विश्व में कला का बहुत विकास हुआ। परंतु बहुत अर्से तक कांसे से केवल ठाठबाठ की चीजें और गहने बनाये जाते रहे। अगर प्राचीन मिश्र में विज्ञापन की कला विकसित होती तो व्यापारी लोग हर चौराहे पर पपीरसी कागजों के पोस्टर टंगवा देते जिन पर यह लिखा होता कि कांसे का दर्पण स्त्री के लिये सर्वोत्तम उपहार है।

शब्द "ब्रोंज़" (Bronze) इटली के एक

छोटे से नगर तथा बंदरगाह ब्रीन्डीसी से लिया गया है। यह शहर काँसे की बनी चीजों के लिये हमेशा प्रसिद्ध रहा है। यहां की चीजों को लातीनी भाषा में "Es Brundusium" कहते हैं जिसका मतलब होता है – "ब्रीन्डीसी का"। इसी पर आगे चलकर ऐलाय का नाम ब्रोंज पड़ गया।

मिस्र के पुजारी शायद विश्व के सर्वप्रथम कीमियागर थे। फीवा में मिली कब्रों की खुदाई के दौरान उस जमाने की कुछ हस्त-लिपियां हाथ लगी हैं जिनमें ताम्र से स्वर्ण बनाने के रहस्य लिखे हुए हैं। लिखा है कि ताम्र में जैसे ही जिंक मिलाया जाता है वह तुरंत स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है (इन तत्त्वों का ऐलॉय – पीतल वास्तव में स्वर्ण से मिलता-जुलता है)। यह जरूर सच था कि इस स्वर्ण में एक खराबी थी: उसकी सतह पर हरे रंग के "नासूर" पैदा हो जाते थे (स्वर्ण के साथ ऐसा नहीं होता है)। पुजारियों का कथन था कि अगर सच्चे दिल से प्रार्थना की जाये और बढ़िया किस्म का जादू-टोना किया जाये तो इस खराबी को दूर किया जा सकता था।

ताम्र और काँसे से केवल मिस्रवासी ही नहीं बल्कि भारत, आसीरिया, रोम तथा यूनान के वासी भी परिचित थे। प्राचीन यूनानी कवि होमेर ने "इलिआड" में अग्नि तथा धातु के देवता हैफेस्टेस का वर्णन करते हुए बताया है कि किस प्रकार इस देवता ने ट्रोय की लड़ाई के नायक आचिलस के लिये ताम्र की एक अजेयी ढाल तैयार की: "उसने खुद उस धधकती आग की लपटों में इस ताम्र को ढाला"।

ताम्र और काँसे ने प्राचीन काल से मूर्त्तिकारों तथा नक्काशों को मोहे रखा है। ईसा से पांच शताब्दी पूर्व ही लोग काँसे की मूर्तियां बनाना सीख चुके थे। उस जमाने की कुछ मुर्तियां तो बहुत ही बड़े आकार की थीं। उदाहरणतया, ईसा से तीन शताब्दी पूर्व रोडोस द्वीप के एक छोटे से बंदरगाह पर सूर्य देवता (अपोलो) की 32 मीटर ऊंची विशालकाय प्रतिमा स्थापित की गयी। मिस्र के पिरामिड की तरह इस प्रतिमा की गिनती दुनिया के सात अचंभों में की जाती थी। कहा जाता है कि यह प्रतिमा इतनी ऊंची थी कि बड़े से बड़े जहाजों के पाल इसके नीचे से गुजर जाते थे। परंतु दुर्भाग्यवश इस विशाल प्रतिमा की आयु केवल आधी शताब्दी से कुछ ज्यादा थी। भूचाल से यह मूर्त्ति नष्ट हो गयी और बाद में इसे रद्दी धातु के रूप में सीरियावालों को बेच दिया गया। अब ऐसा सुनने को आया है कि रोडोस द्वीप की सरकार ने टूरिस्टों को आकर्षित करने के लिये इस प्रतिमा के पुनरुद्धार की योजना बनायी है। परंतु इस बार यह ऐलुमि-नियम से बनायी जायेगी और इसके सिर वाले हिस्से में एक बियर-बार खोला जायेगा।

जापानी लोग काँसे की मूतियों की ढलाई के काम में बहुत निपुण रहे हैं। आठवीं शताब्दी में टोदाइदजी मंदिर में बुद्ध की एक अद्वितीय प्रतिमा लगायी गयी जिसका वजन 400 टन से भी ज्यादा था। इस तरह की मूर्त्ति बनाना बहुत हुनर का काम था।

हमारे दिनों तक जो प्राचीन कांस्य मूर्तियां सही सलामत रही हैं वे कई शताब्दियों पूर्व बनायी गयी थीं। उदाहरणतया, मार्क औरेली की मूर्त्ति, चक्र फेंकने वाले और सोये वनदेवता की प्रतिमाएं। ये तथ्य यह बताते हैं कि प्राचीन युग में काँसा कला में कितनी महत्त्व-पूर्ण भूमिका निभाता था। आगे भी यह

ऐलॉय मूर्तिकारों की मुख्य सामग्री बना रहा। आपने पीटर्सबर्ग में स्थापित जार पीटर प्रथम की प्रतिमा के बारे में जरूर सुना होगा जो "ताम्र अश्वारोही" के नाम से सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। इस अद्वितीय प्रतिमा के निर्माणकर्ता फ्रेंच मूर्तिकार फाल्कोने थे।

प्राचीन काल से ताम्र और इसके ऐलॉयों के अलावा इस तत्त्व के और भी कई यौगिक ज्ञात रहे हैं। अंग्रेज रसायनज्ञ डेवी ने जब कुछ प्राचीन भितिचित्रों का रसायनिक विश्लेषण करके देखा तो उन्हें पता चला कि इन चित्रों में इस्तेमाल हुआ नीला पेंट कापर ऐसिटेट है। प्राचीन रूस में इस पेंट का नाम "यार-मेद्यान्का" अर्थात् वर्डिग्रिस था। इसके बनाने का नुसखा बहुत सरल था: "बकरी के दूध का पनीर लेकर उसमें शहद मिला दें और एक ताम्र के बर्तन में रख कर ताम्र के ही ढक्कन से ढक दें। अब लोई से इस ढक्कन को अच्छी तरह से चिपका दें और फिर दो सप्ताह के लिये भट्टी पर रख दें। आपका यार-मेद्यान्का तैयार है"। कितना सरल तरीका है! रोमन सम्राट टाइटस के महल के स्नानघर की दीवारों तथा पाम्पेई के भित्तिचित्रों में भी वर्डिग्रिस मिला था।

मिस्र के अलेक्सान्द्रीया शहर के व्यापारी जब भी कहीं माल बेचने जाते थे तो उनके "हरे ताम्र" की बहुत बिक्री होती थी। उस जमाने में औरतें अपनी आंखों के नीचे हरे रंग के गोले बनाया करती थीं। और जैसाकि कहा जाता है कि इतिहास दोहरता है, आज यह रंग फिर स्त्रियों के शृंगार का अंग बन गया है।

रूस में ताम्र की खानें ईसा से लगभग 2 हजार वर्ष पूर्व मिलनी शुरू हो गयीं। ट्रांसकाकेशस, साइबेरिया तथा अल्ताई क्षेत्र में खुदाई के दौरान ताम्र के बने चाकू, तीरों की नोकें, काँसे की बनी ढालें, हैल्मैट (टोप) तथा अन्य कई चीजें मिली हैं। अनुमान लगाया जाता है कि ये ईसा से 8-6 शताब्दी पूर्व के समय की हैं। परंतु देश में ताम्र के औद्योगिक प्रगलन का प्रथम प्रयास केवल तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में किया गया जब त्सील्मा नदी (रूस के यूरोपीय भाग के उत्तरी क्षेत्र में) के पास ताम्र अयस्क मिलने लगे (आज यहां आर्खा-न्गेल्स्क शहर बसा हुआ है)।

सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में मास्को के कुछ शस्त्र-उद्योगों में, जैसे 'तोप-उत्पादन घर', "तोप यार्ड" आदि में विभिन्न कैली-बरों वाले कांसे की तोपों का निर्माण शुरू हो चुका था। रूसी कारीगर इस काम में बहुत निपुण हो चुके थे। 40 टन वजन वाली "जार-तोप" आज भी एक अद्वितीय चीज मानी जाती है। इसे 1586 में रूसी कारीगर आन्द्रेइ चोखोव ने काँसे से बनाया था। तकनीक की एक दूसरी मिसाल "जार-घंटा" है जिसे मातोरिन परिवार के दो सदस्यों – पिता और पुत्र ने मिलकर 1735 में बनाया था। उसका वजन 200 से ज्यादा टन है। यह घंटा महान इवान घंटाघर में लगाया गया था। सोलहवीं शताब्दी की वास्तुकला के इस अद्वितीय स्मारक का गुंबद सोने से चढ़ी शुद्ध ताम्र की पत्तियों से सजाया गया था। उस्पेन्स्की कैथीड्रल का दक्षिणी दरवाजा भी ताम्र की पत्तियों से सजा हुआ है। यह प्राचीन काल में रूस का मुख्य कैथीड्रल था। मास्को के सेंट बासिल कैथीड्रल के पुनर्निर्माण के दौरान इसके गुंबदों में लोहे की जगह ताम्र इस्तेमाल करने का फैसला किया गया। इसकी वजह यह थी

कि इस चर्च के बनने के बाद से अब तक मास्को की सूक्ष्म जलवायु बहुत बदल चुकी है और लोहे में धीरे-धीरे जंग लगता जा रहा है।

ताम्र की बहुत सख्त जरूरत होने की वजह से रूस में बड़े जोर-शोर से इसके अयस्क ढूंढ़े जा रहे थे। सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य में एक व्यापार सिमयोन गाव्रीलोव को ताम्र अयस्क खोजने के लिये ओलोनेत्स्क भेजा गया। उसकी यात्रा सफल रही क्योंकि इस इलाके में ताम्र अयस्क मिल गये। 1673 में लिखी एक दस्तावेज आज भी सुरक्षित रखी हुई है जिसमें यह बताया गया है कि जार ने ओलोनेत्स्क के वोयेवोदा (गवर्नर) को खानों वाले इलाके में डेढ़ वेर्स्ता (0.99 मील) लंबा रास्ता साफ कराने का आदेश दिया। इस घटना से कुछ पहले 1652 में कज़ान के गवर्नर ने जार को इस बात की सूचना भेजी कि उसके इलाके में "ताम्र के बहुत सारे अयस्क मिले हैं और... वह इनसे ताम्र निकालने के लिये कारखाने लगवा रहा है"।

इतना सब कुछ होते हुए भी देश में ताम्र की कमी थी। स्वीडन के साथ युद्ध के दौरान रूस को ताम्र की कमी और भी ज्यादा महसूस हुई (विशेष बात यह है कि युद्ध के दिनों में भी रूस स्वीडन से ताम्र और लोहा खरीद रहा था)।

नार्वा के पास हुई लड़ाई में स्वीडिश सेना ने रूसी सेना को बहुत क्षति पहुंचायी। शक्तिशाली तोपों का महत्त्व समझते हुए जार पीटर ने ताम्र का प्रगलन बढ़ाने के आदेश दिये। इसके अलावा उन्होंने सब चर्चों से काँसे के घंटों तथा अन्य चीजों को ले लेने का हुक्म दिया। धर्माधिकारियों ने

इसका विरोध किया, परंतु जार ने उनकी कोई परवाह नहीं की और देश का सारा कांसा युद्ध सामग्री के निर्माण में इस्तेमाल होने लगा।

पोल्तावा युद्ध पीटर प्रथम की बुद्धिमान काररवाइयों का परिणाम था। इसमें रूसियों ने स्वीडिश सेना को बुरी तरह से पराजित किया। स्वीडिश लोगों के पास केवल चार तोपें थीं जबकि रूसियों के पास 72। इस विजय ने आगे चलकर रूस के आर्थिक विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

पोल्तावा विजय के बाद जार ने एक और नया आदेश जारी किया। देश के आंतरिक व्यापार के विकास के लिये सस्ते सिक्कों की जरूरत थीं जो रजत सिक्कों की जगह ले सकें। रजत एक बहुमूल्य धातु होने के कारण केवल विदेशों के साथ व्यापार में इस्तेमाल की जानी थीं। इस बार फिर चर्चों के घंटे काम आये। परंतु अब उनसे तोपें नहीं बल्कि सिक्के बनाये गये।

कुछ समय बाद 1763 में अल्ताई में एक नयी टकसाल खोली गयी — कोलीवान टकसाल। यहां 1.5 और 10 कोपेक के सिक्के ढाले गये। इन सिक्कों के किनारों पर निम्न शब्द अंकित थे — "साइबेरियन सिक्का"। 1781 तक लगभग 40 लाख रूबल मूल्य के ऐसे सिक्के ढाले जा चुके थे।

आने वाले वर्षों में देश में ताम्र का उत्पादन लगातार बढ़ता रहा। यूराल तथा अल्ताई में दसियों ताम्र प्रगलन कारखाने खुल गये। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में काकेशस तथा कजाखस्तान में भी ताम्र का प्रगलन शुरू हो गया।

इन्हीं दिनों सुदूर उत्तर (उन दिनों इस इलाके को येनिसेई स्टेट कहते थे) में भी ताम्र धात्विकी का काम शुरू हो गया। 1919 में प्रसिद्ध भूविज्ञानी नि० उरवान्त्सेव को नोरील्स्क में ताम्र प्रगलन भट्टी के अवशेष मिले। पता चला कि यह भट्टी 1872 में लगायी गयी थी और इसका बड़ा दिलचस्प इतिहास है।

उस वक्त लोगों को इस बात की जानकारी हो गयी थी कि ताइमीर में ताम्र अयस्क उपस्थित हैं। परंतु निर्माण सामग्री, खास

कर ईंटों की कीमत महंगी होने के कारण ताम्र उद्योग विकसित नहीं हो पा रहा था, 1863 में एक व्यापारी किरीयान सोलीकोव ने एक चालाकी खेली। उसने प्रांत के गवर्नर से दुदीनका कस्बे में लकड़ी का एक चर्च बनाने की इजाजत मांगी। व्यापारी ने यह भी कह दिया कि इस काम में सारा पैसा वह अपनी जेब से लगायेगा। स्वाभाविक था कि गवर्नर इस धार्मिक काम के लिये मना नहीं कर सकता था। अतः व्यापारी को तुरंत इजाजत मिल गयी। चालाकी की बात यह थी कि दुदीनका में पहले से ही एक चर्च बना हुआ था और वह भी ईंटों का। परन्तु गवर्नर को इस बात की जानकारी नहीं थी। बुद्धिमान व्यापारी ने जल्दी से लकड़ी का एक चर्च बनवा दिया और ईंटों के चर्च को तुड़वा कर उसकी 'धार्मिक' ईंटों से एक भट्टी का निर्माण करवाया। शीघ्र ही उसने यहां ताम्र का प्रगलन शुरू करवा दिया। आज इस स्थान पर सोवियत संघ में अलौह धातुओं के प्रगलन का अतिविशाल आधुनिक कारखाना लगा हुआ है जिसका नाम नोरील्स्क धात्विक कारखाना है। यह द्वितीय विश्व युद्ध से कुछ समय पहले चालू हुआ था।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक रूस के ताम्र उद्योग का लगभग 3/4 हिस्सा विदेशी पूंजीपतियों के अधिकार में था। 1913 में शुद्ध ताम्र का उत्पादन केवल 17 हजार टन था। देश की जरूरत को देखते हुए यह मात्रा बहुत ही थोड़ी थी।

गृहयुद्ध तथा एन्टेन्टे देशों के हस्तक्षेप (1918-1920) के दौरान सोवियत संघ में ताम्र का प्रगलन बंद सा हो गया था। बहुत सारी ताम्र खानें शत्रुओं ने या तो नष्ट कर दीं या डूबो दीं। कारखाने ठप्प हो गये थे, क्योंकि काम के लिये न तो मजदूर थे, न माल और न ही ईंधन।

इस कठिन अवसर पर एक बहुत बड़े अंग्रेज व्यापारी लेसली उरक्वारट ने सोवियत सरकार के सामने सहायता का प्रस्ताव रखा। उसने काराबाश ताम्र खान के पुनरुद्धार का ठेका मांगा जो उन दिनों देश की सबसे समृद्ध ताम्र खान मानी जाती थी। परंतु उरक्वारट ने हिम्मत नहीं हारी। वह किसी भी कीमत पर यह ठेका हासिल करना चाहता था क्योंकि इस काम में कमाई ही कमाई थी। यह जानते हुए कि सोवियत भूमि में ताम्र के विपुल भंडार छिपे हुए हैं, उसने सोवियत सरकार के सामने एक नया प्रस्ताव रखा: "मैं चाहता हूँ कि मुझे किरगीजिया के मैदानी इलाके में बालखाश झील के आसपास खुदाई कराने की इजाजत दी जाये। आपको क्या फर्क पड़ता है? आप लोग इस जगह पर कम से कम 50 साल से पहले, और हो सकता है 100 साल से पहले खुदाई नहीं करने जा रहे हैं"।

सोवियत अधिकारी समझ गये थे कि उरक्वारट को ठेका देने का मतलब युवा सोवियत देश की जड़ उखड़वाना है। अंग्रेज व्यापारी को इजाजत देने की जगह सोवियत लोगों ने खुद यह काम शुरू कर दिया।

लेनिन का कहना था कि देश का विकास तभी होगा जब हर जगह बिजली पहुंच जायेगी। इस योजना का व्यावहारिक रूप देने के लिये (रूस का विद्युतीकरण—GOELRO) ताम्र की बहुत अधिक मात्रा में आवश्यकता थी। 5 मई 1922 के दिन पुनःस्थापित कालातीन्स्क ताम्र कारखाने (आज इसका नाम कीरोवग्रादस्क कारखाना है) ने ताम्र की पहली खेप दी। इस दिन

को सोवियत अलौह धात्विकी का जन्मदिन माना जा सकता है।

बालखाश की भी जल्दी ही बारी आ गयी। 1928 में ही (न कि 50 या 100 साल बाद) यहां एक अभियान-दल भेजा गया। भूविज्ञानियों को बैन्ताऊ-अता पहाड़ की तलहटी में ताम्र मिल गया। अंग्रेज व्यापारी उरक्वारट इसी जगह पर हीं तो खुदाई करवाना चाहता था। कुछ दिनों बाद सोवियत संघ की सर्वोच्च आर्थिक समिति के अध्यक्ष वा० कूइबिशेव ने कम्युनिस्ट पार्टी के सोलहवें अधिवेषण में भाषण देते समय प्रतिनिधियों को बताया कि "देश में ताम्र अयस्कों के नये निक्षेप मिले हैं जिनमें कोउन्दार्स्क का ताम्र निक्षेप मुख्य स्थान रखता है"।

1932 में इस जगह पर बालखाश ताम्र कारखाने का निर्माण शुरू हो गया। यह काम मुश्किलों से भरा था। इलाका रेगिस्तानी तथा बियाबान था। 400 किलोमीटर का लंबा सफर तय करने का एकमात्र साधन ऊंट थे। माल ढोने का काम भी ऊंटों से ही लिया जाता था। परंतु लोगों ने हिम्मत नहीं हारी। वे हर मुसीबत का सामना करते रहे और कारखाना पूरा करके ही हटे। सन् 1938 में बालखाश कारखाने से ताम्र मिलना शुरू हो गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सोवियत संघ में बहुत सारे ताम्र कारखाने लगाये गये। ताम्र उद्योग आज सोवियत अलौह धात्विकी का एक मुख्य अंग है।

ताम्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह अति उत्तम विद्युत तथा तापचालक होता हैं। केवल एक और धातु है जिसमें ये गुण ताम्र से उच्च हैं और वह धातु रजत है। परंतु रजत पहले तो महंगा है और दूसरी बात यह है कि तकनीकी कार्यों में विस्तृत रूप से इस्तेमाल भी नहीं किया जा सकता। ताम्र की विद्युतचालकता लोहे से 5 गुना अधिक, ऐलुमिनियम से डेढ़ गुना, जिंक से 3 गुना और टाइटेनियम से 35 गुना अधिक है। यही कारण है कि इसे विद्युततकनीक की मुख्य धातु मानते हैं।

ट्रांसफार्मर में, कार के इंजन में, टेलीविजन और रेडियो सेटों में, जटिलतम इलैक्ट्रानिक मशीनरी तथा धातु उद्योग की मशीनों में हम ताम्र लगा देखते हैं। ताम्र से रसायनिक उपकरण बनाये जाते हैं। चूंकि विस्फोट के समय स्टील चिंगारियां उत्पन्न करता है इसलिये आतिशबाजी तथा ज्वलनशील पदार्थों के साथ काम करने के लिये औजार ताम्र से बनाये जाते हैं।

ताम्र ऐलॉयों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है तथा इन्हें विभिन्न प्रकार के उद्योगों में प्रयुक्त किया जा रहा है। अगर आज से 30-40 साल पहले केवल ताम्र तथा टिन के ऐलॉय को काँसा कहते थे तो आज ऐलुमिनियम, लैड, सिलिकन, मैंगनीज, बेरिलियम, कैडमियम, क्रोमियम तथा जिर्कोनियम के साथ ताम्र के ऐलॉय को भी काँसा कहते हैं।

ऐलुमिनियम काँसे (ताम्र का एक ऐलाय जिसमें ऐलुमिनियम की मात्रा लगभग 5% होती है) से सिक्के भी बनाये जाते हैं। रूस में ताम्र के सिक्कों का प्रचलन सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुआ। इस घटना से मास्को में दंगे-फंसाद शुरू हो गये (1662 में)। इतिहास में यह घटना "ताम्र दंगे" के नाम से प्रसिद्ध है। दंगे-फंसाद का कारण यह था कि जैसे ही रजत की जगह

ताम्र के सिक्के चलाये गये, डबलरोटी तथा अन्य खाद्यपदार्थों के भाव बढ़ गये। रूसी लोग वैसे भी पोलैंड तथा स्वीडन के साथ चल रहे लंबे युद्धों से बहुत परेशान थे। उधर फसल भी अच्छी नहीं हो रही थी तथा सरकार ने टैक्स बहुत बढ़ा दिये थे। अत: जैसे ही ताम्र के सिक्के बाजार में आये लोगों के सब्र का बांध टूट गया और दंगे-फसाद शुरू हो गये। परंतु जार ने उपद्रवियों का पूरी शक्ति के साथ दमन किया और उन्हें कड़ी सजायें दीं: सैकड़ों बागी मौत के घाट उतार दिये गये, नदी में फेंक दिये गये, हजारों बागी जेल भेज दिये गये तथा हजार से अधिक साइबेरिया तथा आस्त्राखान भेज दिये गये।

अक्तूबर क्रांति के तुरंत बाद सोवियत सरकार ने अपने सिक्के ढलवाने शुरू करवा दिये। 1920 में खोरेज्म शहर (मध्य एशिया) में खोरेज्म सोवियत जनतंत्र के कमिशनरों की समिति के आदेश पर 20, 25, 50, 100 तथा 500 रूबल के सिक्के बनने शुरू हो गये (इसके 2 वर्ष बाद लेनिनग्राद की टकसाल फिर चालू हो गयी)। इन सिक्कों पर अंकित शब्द रूसी तथा उज्बेकी भाषा में थे। इनका प्रचलन तब बंद हुआ जब सोवियत सरकार ने सारे देश के लिये बैंकनोट बनाने शुरू कर दिये।

आपको शायद विश्वास नहीं आयेगा कि कई बार ताम्र के सिक्कों की कीमत सोने के सिक्कों से ज्यादा होती है। कुछ साल पहले लंदन में एक अजीब नीलाम देखा गया: इस नीलाम में केवल एक सिक्का बेचा जा रहा था और वह भी एक पैंस का। परंतु हाल में उपस्थित लोग जानते थे कि इस सिक्के की असली कीमत क्या है।

1933 में इंगलैंड की टकसाल ने ऐसे कुल छ: सिक्के ढाले थे जिनमें से पांच सिक्के ब्रिटिश राष्ट्रीय संग्रहालय में रखे हुए हैं और यह छठा सिक्का किसी संग्रहकर्ता, किसी सिक्कों के शौकीन के पास था। सिक्के के नये मालिक को अपना शौक पूरा करने के लिये इसकी कीमत से 6 लाख गुना ज्यादा पैसे – 2600 पौंड देने पड़े।

ऊपर हम बता चुके हैं कि पीतल की विभिन्न किस्में ताम्र के ऐलॉयों का एक बहुत बड़ा ग्रुप बनाती हैं। इन ऐलॉयों का दूसरा घटक जिंक होता है। अगर इनमें दूसरे तत्त्व मिला दिये जायें तो अलग-अलग गुणों वाले पीतल प्राप्त होते हैं।

पिछले कुछ समय से तकनीक के कुछ क्षेत्रों में ताम्र तथा इसके ऐलॉयों की जगह दूसरी धातुओं ने ले ली है। उदाहरणतया, संयुक्त राज्य अमरीका में उच्चवोल्टता वाली बिजली के तार अब ताम्र की जगह ऐलुमिनियम से बनाये जा रहे हैं। हो सकता है कि आने वाले वर्षों में प्लास्टिक भी ताम्र की जगह इस्तेमाल होने लगेगा।

ताम्र की जगह अन्य धातुओं का इस्तेमाल करने का कारण यह है कि इस धातु के भंडार कम होते जा रहे हैं। यही वजह है कि आज ताम्र अयस्कों के नये निक्षेपों की खोज पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। हाल ही में सोवियत संघ में उडोकान के पास ताम्र के अद्वितीय निक्षेप मिले हैं। अनुमान लगाया जाता है कि कजाखस्तान के जेजकाज्गान निक्षेपों के मुकाबले उडोकान निक्षेपों में ताम्र की मात्रा दुगुना अधिक है। उत्तरी ध्रुव के क्षेत्र में ताल्नाख के पास भी कुछ ऐसे निक्षेप मिले है जिनमें ताम्र अयस्क उपस्थित हैं।

हाल में ताम्र की सांद्रता की वजह से एक जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। नार्वे का एक मालवाहक जहाज "अनातीना" ताम्र की सांद्रता लादकर जापान जा रहा था कि अचानक खतरे की घंटी बजने लगी। जहाज में पानी भरता जा रहा था। पता चला कि माल ने जहाजियों के साथ बहुत बुरा मजाक किया था। हुआ यह था कि सांद्रता में जमे ताम्र ने जहाज के बाडी के स्टील के साथ मिलकर एक अच्छा विद्युतअपघटनी जोड़ा बना लिया था और समुद्र का पानी विद्युत-अपघटनी अवगाह की भूमिका निभा रहा था। परिणाम यह हुआ कि विद्युत बननी शुरू हो गयी। इस विद्युत ने जहाज के बाडी को इतनी क्षति पहुंचाई कि उसमें सूराख हो गये और समुद्री पानी अंदर आने लगा।

ताम्र का एक और भी उपयोग है, परंतु धातु के रूप में नहीं बल्कि एक जैवतत्त्व के रूप में। जीव-जंतुओं तथा पेड़-पौधों के सामान्य विकास के लिये ये जैवतत्त्व परम आवश्यक हैं। ये कोशिकाओं के अंदर घट रही रसायनिक प्रतिक्रियाओं में उत्प्रेरक का काम करते हैं।

पेड़-पौधों के ऊतकों में अगर ताम्र की कमी हो जाती है तो उनके अंदर क्लोरोफिल की मात्रा घट जाती है जिससे उनकी पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा वे फसल देना बंद कर देते हैं। क्लोरोफिल के अभाव से वनस्पतियां पूर्णतया नष्ट भी हो सकती हैं।

जंतुओं की श्रेणी में ताम्र की अधिकतम मात्रा आक्टोपसों (अष्टभुजों), कटल फिशों, सीपों तथा कुछ अन्य मोलस्कों में होती है। कैंसराइडों तथा शीर्षपादों में ताम्र उनके श्वसन वर्णक – हीमोसायनिन का एक घटक होता है (0.33-0.38%) तथा उनके अंदर ताम्र वही काम करता है जो अन्य जानवरों के रक्त में लोहा करता है। वायु की आक्सीजन के साथ मिलकर हीमोसायनिन का रंग नीला हो जाता है (यही कारण है कि घोंघे का रक्त नीले रंग का होता है), परंतु जैसे ही हीमोसायनिन अपनी आक्सीजन ऊतकों को दे देता है, रक्त रंगहीन हो जाता है। मानसिक रूप से अधिक विकसित जंतुओं तथा मनुष्य के अंदर ताम्र मुख्यतः यकृत के अंदर होती है। मनुष्य को प्रतिदिन 0.005 ग्राम ताम्र की आवश्यकता होती है। अगर उसके भोजन में ताम्र की कमी रहती है तो उसे अरक्तता का रोग लग सकता है तथा वह कमजोरी भी महसूस कर सकता है।

यही वजह है कि बहुत सारी जातियों के लोग ताम्र को एक औषधि मानते हैं। नेपाली लोग इसे एक पवित्र धातु समझते हैं। उनका कहना है कि यह धातु दिमाग को ताकत देती है, पाचन में सहायक होती है तथा पेट व आंतों की बीमारियों के इलाज में फायदेमंद सिद्ध होती है (पानी भरे गिलास में कुछ ताम्र सिक्के डालकर रोगियों को यह पानी पिलाया जाता है)। नेपाल का एक विशाल तथा अतिसुंदर मंदिर "ताम्र मंदिर" के नाम से प्रसिद्ध है।

पोलेंड के वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि जिन जलाशयों में ताम्र उपस्थित होता है वहां की कार्पो* का आकार बड़ा होता है। परंतु जिस तालाब या झील में ताम्र बिल्कुल नहीं होता, वहां जल्दी ही फफूंदी लग जाती है जो कार्पों को बहुत हानि पहुंचाती है।

---

* एक मछली का नाम।

अगर कार्पों को ताम्र से बहुत लगाव है तो जल-जगत के दूसरे प्रभावशाली वासियों– शार्कों को इस तत्त्व से बहुत नफरत है। ठीक-ठीक कहें तो वे इस धातु के एक यौगिक कापर सल्फेट (नीले थोथे) से बहुत ही घृणा करती हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ में अमरीका में शार्करोधी इस औषधि के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये बड़े पैमाने पर कई प्रयोग किये गये। इसकी वजह यह थी कि जर्मन टॉरपीडों तथा बमों से जो जहाज तबाह हो रहे थे उनके नाविकों की शार्कों से रक्षा के तरीके ढूंढ़ना बहुत जरूरी था।

इस समस्या का हल ढूंढ़ने के काम में शार्कों के बहुत सारे शिकारियों तथा विशेषज्ञों ने भाग लिया। सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक हेमिंग्वे ने भी इस काम में हाथ बंटाया। उन्होंने वैज्ञानिकों को वे जगहें दिखायीं जहां कई बार उन्होंने खुद शार्कों का शिकार किया था।

शार्करोधी औषधि के प्रयोग आशा से ज्यादा सफल रहे। लेकिन आस्ट्रेलियन विशेषज्ञ इन प्रयोगों से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने मजाक में कह दिया कि "इस पाउडर से हमारी शार्कों (आस्ट्रेलिया की शार्कें सबसे खतरनाक मानी जाती हैं) के तो सिर में दर्द होने लगेगा। यह पाउडर केवल एक तेज मसाले का काम करता है"। परंतु जैसे ही आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट पर प्रसिद्ध "शार्क खाड़ी" में इस पाउडर का परीक्षण किया गया तो देखा गया कि 100 में से 95 बार इसका प्रयोग सफल सिद्ध हुआ।

ताम्र की प्राप्ति की एक विधि जैविक प्रक्रियाओं के साथ भी संबंधित है। हमारी

शताब्दी के आरंभ में अमरीका के यूटा प्रांत में ताम्र की खानें बंद कर दी गयीं। वजह यह थी कि उनके मालिकों ने यह समझ कर कि अयस्क के भंडार खत्म हो चुके हैं, इन खानों में पानी भरवा दिया। परंतु दो साल बाद जब खानों से पानी निकलवा कर इनकी सफाई करवाई गयी तो इनके अंदर 12 हजार टन ताम्र मिला। मैक्सिको में भी बिल्कुल ऐसी ही घटना घटी जहां एक बेकार खान से 1 साल के अंदर 100 हजार टन ताम्र मिला।

स्वाभाविक था कि वैज्ञानिक सोचने पर मजबूर हो गये कि यह ताम्र आया कहां से? उन्हें इस प्रश्न का उत्तर मिल गया। बात यह है कि विभिन्न किस्मों के जीवाणुओं में कुछ ऐसे भी हैं जो कुछ धातुओं के सल्फ्यूरिक यौगिकों को बड़े शौक से खाते हैं। चूंकि ताम्र प्रकृति में प्रायः सल्फर के साथ रहता है इसलिये ये जीवाणु ताम्र अयस्कों को भी पसंद करते हैं। ताम्र के

जो सल्फाइड जल में अविलेय होते हैं उन्हें यह जीवाणु आक्सीकरण द्वारा विलयशील यौगिकों में परिवर्तित कर देते हैं। विशेष बात यह है कि यह प्रक्रिया बड़ी तेजी से घटती है। आपको यह बात समझाने के लिये यहां हम निम्न उदाहरण देते हैं: अगर साधारण आक्सीकरण द्वारा कैल्कोपाइ-राइट (ताम्र का एक खनिज) से 24 दिनों में केवल 5% ताम्र प्राप्त हुआ तो जीवाणुओं की सहायता से 4 दिनों में 80% ताम्र प्राप्त किया जा सका। इन प्रयोगों के बाद जीवाणुओं – खनिकों की श्रेष्ठता में कोई संदेह नहीं रहा। यह बात जरूर है कि उक्त प्रयोग के दौरान आदर्श परिस्थितियां रखी गयीं: तापमान 30°C से 35°C के बीच था, खनिज को पीस दिया गया था और विलयन में उसे लगातार हिलाया जा रहा था। परंतु दूसरे बहुत सारे प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवाणु बहुत शरीफ किस्म के हैं तथा काम से जी नहीं चुराते हैं: उत्तरी इलाके की कड़कती ठंड में भी वे बड़े शौक से काम में जुटे रहे, उदाहरणतया, सोवियत संघ में कोल्स्क प्रायद्वीप में।

खानों की खुदाई के समापन के समय जीवाणुओं की उपस्थिति बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है: खानों के अंदर से सारा माल निकालने के बाद भी 5 से 20% तक अयस्क जरूर बच जाते हैं। इसकी वजह यह है कि बचे माल का निकालना बहुत महंगा पड़ता है और कई बार तो बिल्कुल असंभव होता है। जीवाणु ताम्र की इन कब्रों तक बड़ी आसानी से पहुंच जाते हैं जहां वे बचा माल इकट्ठा कर लेते हैं।

सूक्ष्मजीवाणुओं की सहायता से कूड़े के ढेर से भी काम की चीजें निकाली जा सकती हैं। मेक्सिको में कानानिआ खान के पास 4 करोड़ टन वजन के लगभग धात्विक कूड़ा इकट्ठा हो गया। हालांकि इसमें ताम्र की मात्रा केवल 0.2% थी फिर भी खनिकों ने इससे ताम्र प्राप्त करने की कोशिश की। उन्होंने इस कूड़े को खानों से निकले पानी में भिगाया और फिर इस पानी को खानों में बहा दिया। जब खनिजज्ञों ने इस पानी का विश्लेषण किया तो उन्हें प्रति लीटर पानी से 3 ग्राम ताम्र मिला और इस प्रकार कूड़े से एक महीने के अंदर कुछ नहीं से कुल मिलाकर 650 टन धातु प्राप्त हुई।

सोवियत संघ की कुछ खानों में भी जीवाणुओं को "नौकरी" दी गयी है। सन् 1964 में यूराल की एक बहुत बड़ी खान में पहली बार जीवाणुओं की सहायता से ताम्र निकाला गया। इस इलाके में खाली खानों के आसपास गरीब ताम्र अयस्क का ढेर लग गया था। ताम्र की इस नयी खान को जीवाणुओं के जिम्मे कर दिया गया। जीवाणुओं ने दिल लगाकर काम किया और उनकी तारीफ करनी ही पड़ी क्योंकि कूड़े से कीमती धातु की कई टन मात्रा प्राप्त हुई। आज कूड़े से ताम्र निकालने के लिये वहां एक औद्योगिक प्लांट चालू है। यूराल तथा कजाखस्तान की कई खनन संस्थाएं भी जीवाणुओं को "नौकरियां" दे रही हैं।

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के सूक्ष्मजीवाणु संस्थान में किये गये अनुसंधान कार्यों से यह पता चला है कि औद्योगिक जीवाणुओं की रुचियां भिन्न हैं। उनकी सहायता से ताम्र के अलावा भू-पर्पटी से लोहा, जिंक, निकैल, कोबाल्ट, टाइटेनियम, ऐलुमिनियम तथा कई अन्य तत्त्व निकाले जा सकते हैं। और तो और वे यूरेनियम,

स्वर्ण, जर्मेनियम तथा रीनियम जैसी बहुमूल्य धातुएं भी निकाल सकते हैं। कुछ साल पहले इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि जीवाणुओं की सहायता से निक्षारन द्वारा गैलियम, इंडियम तथा थैलियम जैसी विरल धातुएं भी प्राप्त की जा सकती हैं।

जैवधात्विकी का भविष्य काफी उज्जवल है। आज ताम्र प्राप्त करने की सारी विधियों में भूमिगत निक्षारन विधि सबसे सस्ती मानी जाती है। इसमें न तो खनिकों को खानों के अंदर भेजने की जरूरत पड़ती है और न ही ताम्र अयस्कों के अर्जन की फैक्टरियों की आवश्यकता होती है। इस जटिल काम को करोड़ों सूक्ष्म "खनिक" खुद करते हैं। कहानियों के बौनों की तरह वे दिन-रात काम में जुते रहते हैं और लोगों को काम की धातुएं देते रहते हैं।

कुछ साल पहले विख्यात सोवियत वैज्ञानिक अकादमीशियन अ० इमशेनेत्स्की ने निम्न शब्द कहे: "प्रकृति के चक्र में सूक्ष्मजीव अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बहुत साल पहले व० वेर्नादस्की ने जो भूसूक्ष्मजीवविज्ञान संबंधी विचार प्रस्तुत किये थे आज उनका व्यावहारिक प्रयोग हो रहा है। सब जानते हैं कि जीवाणुओं ने कई सारे खनिजी अयस्कों की रचना की है। जार पीटर प्रथम ने रूस के उत्तरी इलाके में झील की सतह से तोपों के लिये अयस्क निकालने का आदेश दिया था जो बहुत सस्ता था। उस जमाने में झील में अयस्क कहां से आ गया? ...यह सूक्ष्मजीवाणुओं की कृपा थी। आने वाले दिनों में बहुमूल्य धातुओं के रूप में उनका प्रयोग और भी बढ़ेगा। 20 साल पहले यह बात एक गप्प सी लगती थी, परंतु आज मनुष्य इन अदृश्य खनिकों से काम लेने का तरीका जानता है। दुनिया के कई हिस्सों में आज पानी में डूबी बेकार खानों से इन सूक्ष्म-जीवाणुओं की सहायता से बड़े पैमाने पर यूरेनियम, ताम्र, जर्मेनियम तथा कई अन्य धातुएं प्राप्त की जा रही हैं। इस बात में कोई शक नहीं कि हमारी शताब्दी के अंत तक सूक्ष्मजीवाणुओं का जलधात्विकी में प्रयोग बहुत तरक्की कर जायेगा तथा इसकी गिनती औद्योगिक स्तर पर धातु प्राप्त करने की मुख्य विधियों में की जायेगी। सूक्ष्म जीवाणु, जो सल्फर तथा अन्य तत्त्वों का आक्सीकरण करने की क्षमता रखते हैं, सबसे उत्तम तथा सस्ते धात्विक "एजेंट" बन जायेंगे। विशेष बात यह है कि इनका उत्पादन बड़ी सरलता से स्वचालित किया जा सकता है।"

पिछले कुछ समय से भूविज्ञान तथा वनस्पतिविज्ञान के संबंध बढ़ते जा रहे हैं और उन्होंने विज्ञान की एक नयी शाखा को जन्म दिया है जिसे अभिसूचक भूवनस्पति-विज्ञान कहते हैं। रूसी लेखक बाजोव ने "यूराल की लोककथायें" नामक अपनी पुस्तक में जादूई फूलों तथा पत्थर तोड़ने वाली घास का वर्णन किया है। इनकी सहायता से लोगों ने स्वर्ण, लोहे तथा ताम्र के खजाने ढूंढ़े। बहुत सारी वनस्पतियों की जड़ें पृथ्वी के अंदर काफी गहराई तक पहुंच कर एक पंप की तरह वहां उपस्थित विभिन्न पदार्थों के विलयनों को चूस लेती हैं। और अगर उसके आसपास किसी धातु के भंडार उपस्थित होते हैं, तो उस वनस्पति की जड़ों, तनों तथा पत्तियों में इस धातु की मात्रा काफी बढ़ जाती है। मजेदार बात यह है कि हर वनस्पति की अपनी पसंद होती है: मक्के तथा मधुभोजी को स्वर्ण अच्छा लगता है, नीलपुष्प जिंक को प्राथमिकता

देते हैं; कृमि मधु लवंग को मैंगनीज भाता है तथा चीड़ बेरिलियम को पसंद करता है। अगर वनस्पति के अंदर किसी तत्त्व की मात्रा अधिक मिलती है तो यह इस बात का सूचक होती है कि उस वनस्पति के आसपास की भूमि में वह धातु हो सकती है। ऐसे भूविज्ञानी प्रयास अक्सर सफल रहते हैं। उदाहरण के लिये, कजाखस्तान तथा तूवा में वनस्पतियों की सहायता से ताम्र के निक्षेप ढूंढ़ने में सफलता मिली।

हालांकि ताम्र-युग इतिहास की बहुत प्राचीन घटना है, परंतु मनुष्य ताम्र से जुदा नहीं होना चाहता। ताम्र उसका पुराना तथा वफादार दोस्त है।

“चादर”, जिससे स्टील ढका जाता है

प्राचीन गांव मेशोको का रहस्य – रोमन प्रांत दाकीय में मिली मूर्त्ति – मार्को पोलो साक्षी है – नकली रजत – अपरपक्षी जैसा – एक अंग्रेज जिंक का पेटेंट ले लेता है – धूंध में सूरज – जन्म से काफी पहले – रजत नमूने – दोस्त प्रतिद्वंदी बन जाते हैं – अद्वितीय संग्रह – जिंक बैटरियों में कैथोड की भूमिका निभाता है – निवा नदी की सैर – पिछली शताब्दी की तीन घटनाएं – सौ साल इंतजार करना पड़ा – खुद बलिदान हो जाता है – जिंक अंतरिक्ष तकनीक में – पिस्तौल में गोलियां भरी हुई हैं – जादूई सफेद पाउडर – कांच के ऐगट – यह एल ग्रेको की बनायी तस्वीर नहीं है – टेलीविजन की स्क्रीन के इंद्रधनुषी रंग – चूहे क्यों लड़ने लग पड़े? – फूल क्या कहते हैं? – लाल सागर के तल से – अंतरिक्ष में जिंक के क्रिस्टल बनाये गये हैं

इस शताब्दी के छठे दशक के आरंभ में काकेशस पहाड़ों की तलहटी में स्थित एक प्राचीन गांव मेशोको की खुदाई की गयी। ईसा से लगभग 2500 साल पूर्व यहां जो लोग रहते थे उनका मुख्य पेशा पशुपालन था। वे लोग ताम्र तथा कांसे के औजार इस्तेमाल करते थे। खुदाई के दौरान मिली धातुओं की विभिन्न चीजों में एक चीज ने पुरातत्वज्ञों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया। यह हरे से रंग की एक छोटी सी ट्यूब थी जिस पर काफी जंग लग गया था। यह कोई आभूषण लगता था। किसी जमाने में शायद वह किसी सुंदरी के गले की शोभा बढ़ा रहा था। आधुनिक इतिहासकार तथा पुरातत्वज्ञ इस चीज में इतनी दिलचस्पी क्यों दिखा रहे थे?

इस आभूषण के स्पेक्ट्रमी विश्लेषण से पता चला कि इसके निर्माण में जिंक का इस्तेमाल किया गया था। तो क्या 5000 साल पहले मनुष्य इस धातु से परिचित था?

मनुष्य प्राचीन काल से जिंक अयस्कों से परिचित है: 3000 से भी ज्यादा साल पहले बहुत सी जातियों के लोग पीतल ढालना जानते थे जो जिंक और ताम्र का ऐलॉय है। परंतु रसायनज्ञ तथा धातुकर्मी बहुत लंबे अर्से तक शुद्ध जिंक प्राप्त नहीं कर सके। आक्साइड से यह धातु अलग करना बड़ा टेढ़ा काम लग रहा था। बात यह थी कि जिंक और आक्सीजन के जोड़े को तोड़ने के लिये बहुत ऊंचे तापमान का होना आवश्यक था। यह तापमान इसके क्वथनांक से भी बहुत उच्च था। परिणाम यह होता था कि जिंक के वाष्प वायु की आक्सीजन के साथ मिलकर फिर से जिंक आक्साइड में परिवर्तित हो जाते थे।

बहुत दिनों तक कोई भी इस जोड़े को तोड़ने में सफल नहीं हुआ। परंतु ईसा से पांच शताब्दी पूर्व प्राचीन भारत तथा चीन के कारीगरों ने जिंक के वाष्पों का संघनन करना सीख लिया। अच्छी तरह से बंद किये गये मिट्टी के वर्तनों में उन्होंने जिंक के पिंडों का उत्पादन शुरू कर दिया जिनका रंग नीला-सफेद था। उदाहरण के लिये, ट्रांसिल्वानिया में (आज यहां रूमानिया है) हमारे युग के आरंभ में रोमन प्रांत दाकीया में एक ऐसी मूर्त्ति मिली जिसमें 85% से ज्यादा जिंक उपस्थित था। परंतु दुर्भाग्यवश बाद में इस धातु की प्राप्ति का रहस्य खो गया तथा सत्तरहवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धांश तक यूरोप के लोग पूर्वी देशों से जिंक खरीदते रहे तथा इसे एक विरल धातु समझते रहे।

इसी कारणवश पुरातत्वज्ञ मेशोको में मिली इस चीज में बहुत रुचि दिखा रहे थे। उन्होंने एक बार फिर इसका स्पैक्ट्रमी विश्लेषण किया। इस बार भी परिणाम वही निकला: आभूषण मुख्यतः जिंक से बना था। इसमें ताम्र के ऐलॉय बहुत थोड़ी मात्रा में जरूर उपस्थित थे। शायद जिंक की बनी यह चीज बाद के जमाने की थी और संयोगवश इतनी प्राचीन चीजों के बीच मिली थी। परंतु यह धारणा गलत थी क्योंकि यह आभूषण जिस गहराई में मिला वहां ईसा से 3000 वर्ष पूर्व बस्ती के निशान थे। "जवान" चीजें अर्थात् बाद के जमाने की चीजें वहां पहुंच ही नहीं सकती थीं। संभव है कि मेशोको में मिला यह आभूषण जिंक की बनी सभी ज्ञात चीजों में सबसे प्राचीन हो।

मध्य-युग की दस्तावेजों में कई जगह जिंक की चर्चा मिलती है। सातवीं-आठवीं शताब्दियों

की भारतीय तथा चीनी दस्तावेजों में इस धातु के प्रगलन का विवरण दिया गया है। सुप्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो ने तेरहवीं शताब्दी के अंत में फारस की यात्रा की। उसने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उस जमाने में फारस के कारीगर जिंक प्राप्त करते थे। परंतु जिंक को धातु का पद केवल सोलहवीं शताब्दी में दिया गया जब सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पारासेल्स ने अपने लेखों में इस शब्द का प्रयोग शुरू कर दिया। इससे पहले इस धातु के बहुत सारे नाम थे: नकली रजत, तूतिया, उलटी परी आदि। "जिंक" शब्द लातीनी भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है– "सफेद परत"।

1721 में जर्मन रसायनज्ञ तथा धातुकर्मी फ्रीडरिख गेन्केल (जर्मनी में पढ़ते समय लोमोनोसोव उनके शिष्य रहे थे) ने एक खनिज कैलेमाइन से जिंक पृथक कर डाला। गेन्केल ने कैलेमाइन को जलाकर प्राप्त राख से चमकीला जिंक प्राप्त किया। और इसलिये उन्होंने अपने लेखों में इस धातु की अमरपक्षी से तुलना की।

यूरोप में जिंक का पहला कारखाना इंगलैंड के एक शहर ब्रिस्टल में 1743 में लगाया गया। इस घटना से चार साल पहले एक अंग्रेज धातुकर्मी जान चैम्पियन ने आक्सीकृत अयस्कों से आसवन-विधि से जिंक के उत्पादन का पेटेंट ले लिया था। ब्रिस्टल के इस कारखाने में जिंक के उत्पादन की तकनीक प्राचीन बेनाम धातुकर्मियों की तकनीक से पूर्णतया मिलती जुलती थी। परंतु जिंक के औद्योगिक उत्पादन का श्रेय चैम्पियन को मिला क्योंकि प्राचीन कारीगर यह जानते तक नहीं थे कि पेटेंट क्या होता है। लगभग बीस साल तक चैम्पियन जिंक के प्रगलन में व्यस्त रहा और उन्होंने इसके उत्पादन की एक और विधि ढूंढ़ डाली जिसमें कच्चे माल का काम जिंक आक्साइड नहीं बल्कि जिंक सल्फाइड कर रहा था।

अगर ब्रिस्टल के कारखाने में जिंक का वार्षिक उत्पादन 200 टन था, तो हमारे दिनों में विश्व में इस धातु का उत्पादन लाखों टनों में होता है। आंकड़े बताते हैं कि आज उत्पादन के हिसाब से अलौह धातुओं में इस धातु का तीसरा स्थान है– केवल ऐलुमिनियम तथा ताम्र का उत्पादन इससे अधिक है। फिर भी अन्य औद्योगिक धातुओं के मुकाबले जिंक में एक खास खूबी है और वह यह कि इसका उत्पादन सस्ता पड़ता है (विश्व मंडी में केवल लोहा तथा लेड इससे सस्ते हैं)। प्राचीन आसवन-विधि के अलावा जिंक का उत्पादन विद्युत अपघटन-विधि से भी किया जाता है जिसमें जिंक ऐलुमिनियम कैथोडों पर इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर प्रेरण-भट्टियों में पिघला लिया जाता है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अंग्रेज वैज्ञानिक हेनरी बेसेमर ने, जो स्टील प्रगलन परिवर्तक के निर्माता के नाम से सारे विश्व में प्रसिद्ध हैं, 1868 में एक सौर-भट्टी बनायी। उन्हें इस भट्टी में ताम्र और जिंक के प्रगलन में सफलता मिल गयी, परंतु यह भट्टी प्रचलित नहीं हो पायी। इसके दो कारण थे– पहला यह कि भट्टी के तकनीकी प्ररूप में काफी कमी थी और दूसरा यह कि इंगलैंड में धुंधली छायी रहने से इसका व्यावहारिक प्रयोग काफी मुश्किल था।

हम बता चुके हैं कि एक धातु के रूप में मान्यता देने से काफी पहले ही मनुष्य ने जिंक से लाभ उठाना शुरू कर दिया था।

पुराने जमाने में धातुकर्मी जिंक के भूरे पत्थर कोयले और ताम्र के साथ आग में फेंककर पीतल प्राप्त करते थे जो एक उत्तम कोटि का ऐलॉय है। इसकी मजबूती, तन्यता तथा संक्षारण प्रतिरोध उच्च होते हैं। इसका रंग भी बहुत सुंदर होता है। रंगों की विभिन्नता तथा खूबसूरती इसमें जिंक तथा अन्य अवयवों की मात्रा पर निर्भर करती है। रूस में पीतल को पीला ताम्र कहा जाता था। जिंक की मात्रा बढ़ाने से पीतल का रंग लाल की जगह हलका पीला हो जाता है। पीतल में थोड़ा सा ऐलुमिनियम मिलाने से इसका रंग सोने जैसा हो जाता है। इस तरह के पीतल से आज तमगे आदि बनाये जाते हैं। अरिस्तु ने भी उस ताम्र का जिक्र किया था: "...जिसमें और सोने में केवल स्वाद का फर्क होता है"। स्पष्ट है कि उनका अभिप्राय पीतल से था।

बहुत दिनों तक यह समझा जाता रहा कि मास्को के लाल चौक में बना मीनिन तथा पोजार्स्की का स्मारक कांसे का है, परंतु पिछले दिनों इसकी मरम्मत के दौरान यह पता चला है कि यह कांसे का नहीं बल्कि पीतल का बना है।

भारत के कुछ इलाके खूबसूरत चीजों के लिये प्रसिद्ध हैं। यहां के कारीगर ताम्र, जिंक और टिन के ऐलॉय से सुराहियां, तश्तरियां, मूर्त्तियां आदि बनाकर उनके ऊपर एक खास घोल लेप देते हैं जिससे उनका रंग काला हो जाता है फिर वे इन चीजों पर अति सुंदर डिजाइन बनाते हैं जिनके रंग कभी फीके नहीं पड़ते। इस विशेषता के कारण भारत की चीजें सारी दुनिया में मशहूर हैं।

ऐलॉय में अक्सर जिंक और ताम्र साथियों की भूमिका निभाते हैं तथा एक दूसरे को मजबूत बनाते हैं। परंतु कुछ दिनों पहले दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी बन गये हैं— जिंक ने ऐलॉय में ताम्र का महत्त्व कम करवा दिया है। यह घटना संयुक्त राज्य अमरीका में घटी: पिछले दिनों तक इस देश की मुद्रा का सबसे छोटा सिक्का—सेंट, जिस ऐलॉय से ढाला जाता था, उसमें 95% ताम्र होता था तथा 5% जिंक, परंतु अब इन दोनों धातुओं का अनुपात उलटा करने का प्रस्ताव है—97.6% जिंक होगा तथा ताम्र केवल 2.4% होगा। इस "परिवर्तन" का कारण यह है कि जिंक ताम्र से काफी सस्ता पड़ता है जिसके फलस्वरूप सरकार को काफी लाभ होगा।

जिंक के कई ऐलॉय ज्ञात हैं जिनमें ताम्र, ऐलुमिनियम, मैग्नीशियम आदि धातुओं की बहुत थोड़ी मात्रा उपस्थित होती है। इन ऐलॉयों का गलनांक निम्न होने पर भी इन्हें सरलता से ढाला जा सकता है। इन ऐलॉयों से पतले-पतले पुर्जे तथा अन्य कई तरह के औजार बनाये जाते हैं। छपाई के छोटे-छोटे अक्षर भी इन्हीं से ढाले जाते हैं। क्रेमलिन में पिछली शताब्दी के मध्य में निर्मित महान प्रासाद में जो 18 स्तंभ लगे हैं, वे जिंक से ढाले हुए हैं। इनका डिजाइन रूसी वास्तुकार इ० विताली ने बनाया था।

जनवादी जर्मनी के एक नागरिक के पास जिंक से ढाली चीजों का अद्वितीय संग्रह है। यह आदमी 25 साल से मनुष्यों तथा जानवरों की छोटी-छोटी मूर्त्तियां जिंक से बनाता आ रहा है जिनकी ऊंचाई सेंटीमीटर से अधिक नहीं होती। उसके पास मूर्त्तियों के लगभग 1500 सेट हैं। संभवतः इन सेटों में सबसे सुंदर सेट लेप्जिग युद्ध को समर्पित

है, जहां नैपोलियन की सेना को रूस, प्रूसिया (मध्य युगीय जर्मनी का एक क्षेत्र), आस्ट्रिया और स्वीडन की सेनाओं ने बुरी तरह हराया था। इस सेट में 1000 के लगभग मूर्तियां हैं – सिपाहियों, घोड़ों, तोपों आदि की। इस सेट का नाम है – "राष्ट्रों की लड़ाई"।

जर्मन संग्रहकर्ता के सेटों की गिनती बढ़ाने का श्रेय जिंक के निम्न गलनांक को जाता है – लगभग 420°C । इस धातु के बहुत से गुण इसकी शुद्धता पर निर्भर करते हैं। आम तौर पर यह अम्लों में सरलता से घुल जाता है, परंतु अगर शुद्धता 99.999% होती है, तो अम्ल उच्च ताप पर भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ पाते। शुद्धता जिंक की रसायनिक "निरापदता" का ही नहीं, उच्च तन्यता का भी प्रतीक है। ऐसी धातु के बारीक से बारीक तार ताने जा सकते हैं। परंतु साधारण कार्यों में प्रयुक्त होने वाला जिंक काफी नखरेदार होता है – केवल 100°C से 150°C ताप के बीच जिंक को मोड़कर इसकी पत्तियां, डलियां आदि बनायी जा सकती हैं। साधारण तापमानों तथा 250°C से गलनांक तक यह धातु बड़ी भंगुर रहती है – इसे बड़ी आसानी से पाउडर में पीसा जा सकता है।

विद्युत के आधुनिक रसायनिक स्रोतों में जिंक की पट्टियां कैथोड की भूमिका निभाती हैं, जहां धातु आक्सीकृत होती है। सन् 1800 में पहली बार जिंक ने अपनी इस शक्ति का प्रदर्शन किया जब इतालवी वैज्ञानिक अलेक्सांद्रो वोल्टा ने अपने गैल्वैनी तत्त्व की रचना की। इसके दो साल बाद एक बहुत बड़ी (उस जमाने के हिसाब से) गैल्वैनी बैटरी की सहायता से रूसी भौतिकविद व० पेत्रोव ने पहली बार विद्युत आर्क प्राप्त किया। इस बैटरी के निर्माण में ताम्र और जिंक की 4200 गोल डिस्कें इस्तेमाल की गयी थीं।

1838 में रूसी विद्युतविशेषज्ञ बो० याकोबी ने एक बोट में विद्युत से चलने वाला इंजन फिट किया। इसे गैल्वैनी बैटरी से विद्युत दी गयी। कुछ अर्से तक यह बोट लोगों को निवा की सैर कराती रही। इसमें 14 सवारियां बैठ सकती थीं। परंतु इस इंजन को चलाना बड़ा महंगा पड़ रहा था। तभी जर्मन रसायनज्ञ यूस्तुस लीबिख ने खुले आम कह दिया: "कोयला जला कर जिंक प्राप्त करके उसे बैटरी में लगाने की जगह इंजन को सीधा कोयले से चलाना सस्ता पड़ेगा"। उस वक्त बैटरियों से उत्पन्न विद्युत का किसी भी काम में उपयोग नहीं हो रहा था। विख्यात अंग्रेज भौतिकविद जेम्स प्रेस्काट जूल ने एक बार मजाक-मजाक में सच बात कह ही दी: "बैटरी में जिंक लगाने की जगह घोड़े को चारा खिलाना सस्ता पड़ता है"।

हमारे दिन में इस विचार की फिर से कद्र हुई: बहुत सारे देशों की सड़कों पर अब इलैक्ट्रोमोबाइल दौड़ रही हैं। इनके निर्माणकर्ता इनमें जिंक बैटरियों के प्रयोग को प्राथमिकता दे रहे हैं जो "बिना चारा खाये" दर्जनों घोड़ों का काम कर रही हैं। विद्युत के इतने छोटे-छोटे स्रोत श्रवण-सहायों, घड़ी सूचकों, उद्भासन-मापियों तथा मिनी परिकलित्रों में प्रयुक्त किये जा रहे हैं। जेब के अंदर आ जाने वाली टार्च में जो चपटी बैटरी लगायी जाती है, उसमें जिंक के तीन सिलिंडर फिट होते हैं: "ज्वलित होकर" (अर्थात् आक्सीकृत होकर) जिंक विद्युत उत्पन्न करता है जिससे टार्च का बल्ब जल उठता है। और अधिक भरोसेदार

विद्युत स्रोतों में रजत और जिंक के इलेक्ट्रोड प्रयुक्त किये जाते हैं। इस तरह की एक बैटरी एक सोवियत कृत्रिम उपग्रह में इस्तेमाल की गयी।

पिछले दिनों ऊर्जिकी का जो संकट उत्पन्न हो गया है, उसने बड़े-बड़े वैज्ञानिक और औद्योगिक संस्थानों को ऊर्जा के नये स्रोत खोजने पर मजबूर कर दिया है। परंतु शौकिय लोग भी पेशावरों से पीछे नहीं हैं। इंगलैंड के एक शहर किडेरमिन्स्टर में एक घड़ीसाज ने इस काम के लिये – साधारण नीबू इस्तेमाल किया। उसने नीबू में जिंक और ताम्र की पट्टियां घुसा कर एक अद्भुत विद्युत बैटरी बनायी। सिट्रिक अम्ल की ताम्र और जिंक के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विद्युत उत्पन्न होती है जिससे एक छोटी सी मोटर चालू हो जाती है। यह मोटर घड़ीसाज की दुकान के बाहर लगे विज्ञापन को घुमाती रहती है। यह एक आविष्कार नहीं तो और क्या है? परंतु इसमें एक कमी है: अगर इस तरह की बैटरी से एक टेलीविजन चलाना हो, तो विशेषज्ञों की गणनानुसार कई लाख नीबुओं की जरूरत पड़ेगी।

एक अमरीकी जीवरसायनज्ञ नोबेल पुरस्कार विजेता मेल्विन काल्विन ने और ज्यादा शक्तिशाली विद्युत स्रोत के निर्माण की योजना प्रस्तुत की। उन्होंने एक सौर बैटरी बनायी जिसमें जिंक आक्साइड तथा वनस्पतियों के क्लोरोफिल से विद्युत उत्पन्न की। एक छोटे से कमरे जैसे इस हरे इलेक्ट्रो-बागान से 1 किलोवाट "फसल" काटी जा सकती है।

लगता है कि निकट भविष्य में, शायद हमारी शताब्दी के अंत तक, हम लोग सौर-वनस्पति ऊर्जिकी के क्षेत्र में नयी उपलब्धियों के साक्षी बन जायें, परंतु फिलहाल हम पिछली शताब्दी में लौटते हैं और जिंक से संबंधित तीन महत्त्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा करते हैं।

पहली घटना 1850 की है: फ्रेंच वैज्ञानिक ज्भील्लो ने चित्र छापने की एक बिल्कुल नयी विधि प्रस्तुत की। उन्होंने अम्लप्रूफ रंग लेकर जिंक की पट्टी पर एक चित्र बनाया और

फिर धातु की ऊपरी सतह को नाइट्रिक अम्ल से निश्चेष्टित किया। रंगे हुए हिस्से पर तो अम्ल का कोई असर नहीं पड़ा, परंतु जहां रंग नहीं था उन जगहों पर अम्ल जिंक "चाट गया" जिसके कारण वहां गड्ढे बन गये। इस प्रकार चित्र "स्थलाकृति" में परिवर्तित हो गया और छापने पर कागज पर यह चित्र आ गया। आगे चलकर भ्रौल्लो की इस विधि में कई सुधार लाये गये और इसका नाम जिंकाग्राफी (Zincography) रख दिया गया। आज सारी दुनिया के मुद्रणालय इसी विधि से किताबों, अखबारों तथा पत्रिकाओं में रोज असंख्य चित्र तथा फोटो छापते हैं।

1887 में प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक हेन्रीख रूदोल्फ हेर्त्स ने फोटो प्रभाव की खोज की – प्रकाश के प्रभाव से पदार्थ द्वारा इलैक्ट्रानों का उत्सर्जन। एक साल बाद रूसी भौतिकविद् अ० स्तोलेतोव ने फोटो प्रभाव का अतिध्यानपूर्वक अध्ययन किया। उन्होंने मास्को विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में एक सुंदर प्रयोग किया जो हमेशा के लिये विज्ञान के इतिहास में लिख दिया गया। उन्होंने गैल्वेनिक बैटरी के कैथोड के साथ जिंक की एक जाली जोड़ी। इस धात्विक जाली को उन्होंने जिंक की पट्टी के सामने कुछ दूरी पर रख दिया। स्वाभाविक था कि इस अधूरे सर्किट में विद्युत नहीं दौड़ रही थी और गैल्वेनिक मीटर की सूई शून्य पर स्थिर थी। परंतु जैसे ही वैज्ञानिक ने जिंक की पट्टी की ओर प्रकाश की तीव्र किरण भेजी, सूई तुरंत अपने स्थान से हट गयी। इसका मतलब यह हुआ कि सर्किट में विद्युत दौड़ रही थी। स्तोलेतोव ने प्रकाश की किरण की तीव्रता बढ़ा दी, सूई और आगे बढ़ गयी अर्थात् विद्युत की तीव्रता भी बढ़ गयी थी। जैसे ही प्रकाश हटा दिया गया, सर्किट से विद्युत गायब हो गयी और सूई शून्य पर वापस आ गयी। यह उपकरण एक प्रकार से प्रथम फोटो-बैटरी था जिसके बिना आधुनिक तकनीक की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जिस साल स्तोलेतोव ने अपना ऐतिहासिक प्रयोग किया, उसी साल "जिंक की पट्टी" एक रोचक आविष्कार की साझेदार बन गयी। संयुक्त राज्य अमरीका में काम कर रहे एक जर्मन इंजीनियर बर्लिनर ने ग्रामोफोन बनाया जिसमें जिंक की डिस्क का प्रयोग ध्वनिवाहक के रूप में किया। उन्होंने इस डिस्क के ऊपर मोम की पतली तह बिछा रखी थी। इस डिस्क से धात्विक सांचा बनाया जा सकता था जिससे ग्रामोफोन रिकार्डों की सैकड़ों प्रतियों का उत्पादन किया जा सकता था। विश्व का पहला ग्रामोफोन रिकार्ड भी बर्लिनर ने ही बनाया जो आज वाशिंगटन के राष्ट्रीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहा है। 1907 में पेरिस में एनीको कारूजो, फ्रान्चेस्को तामानो, आदेलीना पाती तथा कई अन्य प्रसिद्ध गायकों के रिकार्ड बड़ी धूमधाम के साथ ऐसे बक्सों में लंबे अर्से के लिये रख दिये गये जिनके ऊपर जिंक का अस्तर चढ़ा था। इन बक्सों को 100 साल बाद सन् 2007 में खोला जायेगा।

आधुनिक तकनीक में अखंडित जिंक के साथ-साथ जिंक की धूल के भी कई उपयोग हैं। आतिशबाज इससे ज्वाला को नीला रंग दे पाते हैं। धातुकर्मी साइनाइडों से स्वर्ण तथा रजत अलग करने में इसका प्रयोग करते हैं। यहां तक कि जिंक के उत्पादन में भी जिंक की धूल काम आती है: इसकी

सहायता से विद्युत अपघटनी विधि द्वारा जिंक सल्फेट के विलयन से ताम्र तथा कैडमियम अलग करते हैं। धातु के बने पुल, औद्योगिक संस्थानों के ढांचे तथा बड़ी-बड़ी मशीनें अक्सर भूरे रंग से रंगी जाती हैं, जो धातु की संक्षारण से रक्षा करता है। इस रंग में भी जिंक की धूल मिली होती है।

जब हम संक्षारण की चर्चा कर रहे हैं तो जिंक के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपयोग की बात जरूर बतानी चाहेंगे। विश्व में इस धातु के कुल उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा स्टील की रक्षा में खर्च हो जाता है। यह उसके सबसे खतरनाक शत्रु—संक्षारण से रक्षा करता है, जो हर साल लाखों टन लोहा खा जाता है। जिंक चढ़ी बाल्टी, टब, घरों की छतें, पानी के पाइप कई सालों तक सही सलामत रहते हैं जबकि साधारण लोहे की बनी चीजों पर पहली बारिश ही भूरे धब्बे छोड़ जाती है।

इतना उत्तरदायी तथा कठिन काम जिंक को ही क्यों सौंपा गया है? क्रोमियम, निकैल, कोबाल्ट जैसे बढ़िया रक्षकों के सामने जिंक कोई अहमियत नहीं रखता है। इसी बात में हमारे प्रश्न का उत्तर छिपा है। एक विद्वान ने कहा है कि स्त्री की कमजोरी बड़ी मजबूत होती है, इसी तरह जिंक की कमजोरी बड़ी मजबूत सिद्ध होती है। वह लोहे की संक्षारण से रक्षा करता है क्योंकि खुद उसके सामने बेबस है। जिंक में लोहे के मुकाबले काफी ज्यादा रसायनिक सक्रियता होती है। अतः जैसे ही संक्षारण का खतरा सामने दिखाई देता है जिंक खुद को आगे कर देता है। वह अपनी बलि देकर लोहे को मौत से बचा देता है। इसी कारणवश रक्षा के ऐसे तरीके को "आत्मबलिदान" कहा जाता है।

जिंक बकतर पर खरोंच आने पर भी संक्षारण लोहे पर वार करने में असमर्थ रहता है। जब तक जिंक चढ़े स्टील को थोड़ी सी भी मात्रा उपस्थित है, लोहे का कुछ नहीं बिगाड़ा जा सकता। निकैल तथा क्रोमियम पालिश में उच्च संक्षारण प्रतिरोध-क्षमता होने के बावजूद भी वह जिंक की

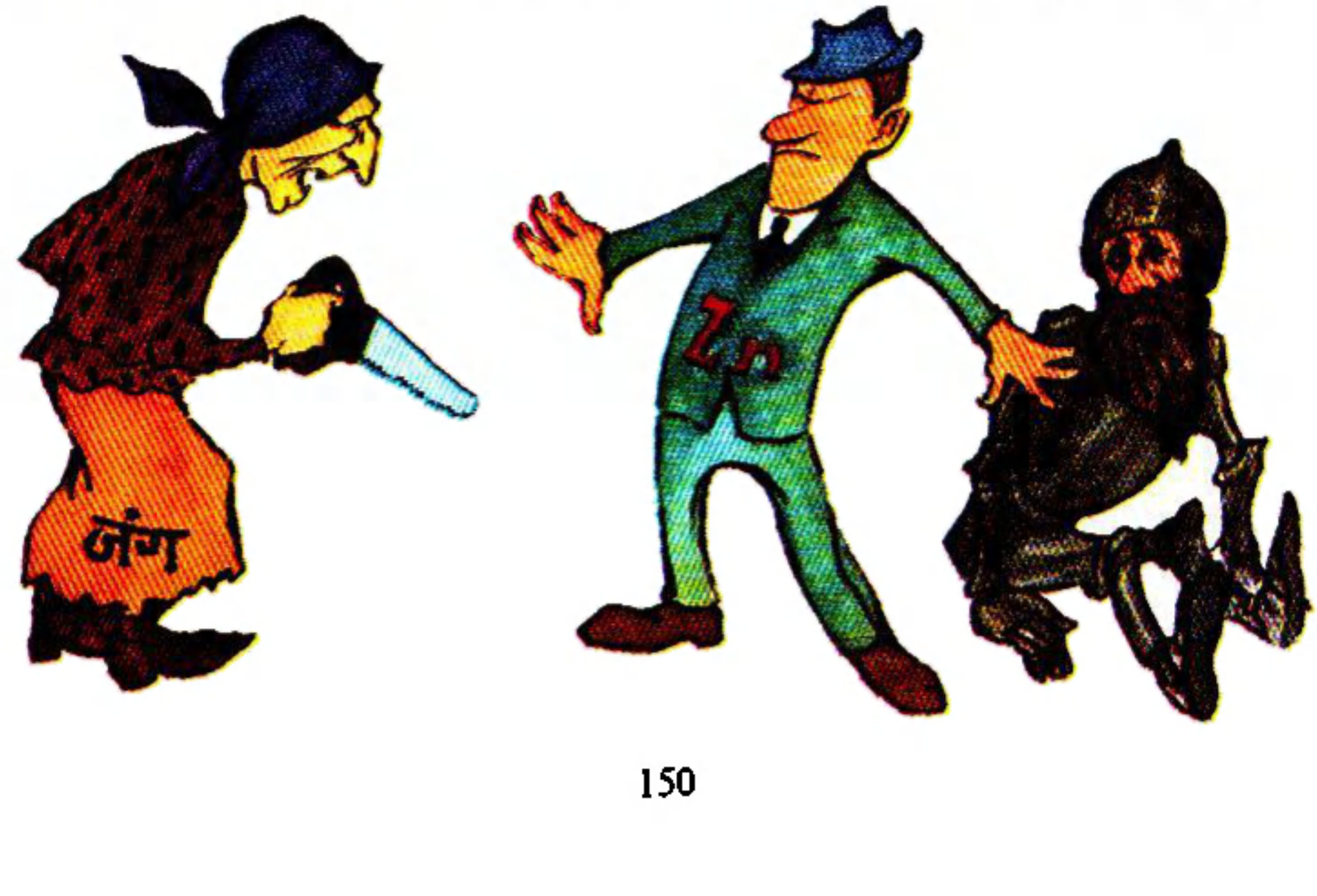

तरह भरोसेदार नहीं सिद्ध होती। वह केवल एक झटका सह सकती है, परंतु जरा सी भी खरोंच लग जाने पर निकैल तथा क्रोमियम आक्रमणकारी तत्त्वों के लिये लोहे के घर का रास्ता खोल देते हैं और उनकी "आखों के सामने" लोहे पर संक्षारण की मार पड़नी शुरू हो जाती है।

अगर यह सोचा जाये कि जिंक लोहे के अन्य रक्षकों से सस्ता भी है तो आपको समझ आ ही जायेगा कि धातुओं पर पालिश चढ़ाने समय इसे ही प्राथमिकता क्यों दी जाती है।

पिछले कुछ समय से जिंक ने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा लिया है। धातुओं की जिन संरचनाओं को ज्यादा ताप सहना पड़ता है, अब उन पर जिंक की पालिश चढ़ा दी जाती है। कुछ दिनों पहले तक अंतरिक्ष राकेटों के स्टार्ट-टावर का ढांचा ताप के कारण धीरे-धीरे अपनी मजबूती खोता रहता था। अब इस कमी को दूर करने के लिये ढांचे की धातु पर जिंक का लेप चढ़ा देते हैं। निम्न क्वथनांक के कारण स्टार्ट के दौरान निकले ताप से जिंक बड़ी तेजी से वाष्पित हो जाता है और ताप की बहुत बड़ी मात्रा खुद ले लेता है जिसके फलस्वरूप धातु ताप के प्रभाव से मुक्त रहती है।

जिंकन (जिंक की पालिश चढ़ाना) की तकनीक काफी सादी है। ज्यादातर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये स्टील की पत्तियों, पाइपों, पुर्जों आदि को सीधे प्रगलित जिंक में डूबो देते हैं। परंतु बिजली की लाइन के मस्तूल को कैसे डूबोया जा सकता है? इसके लिये बहुत बड़ा स्विमिंग-पूल चाहिये। इन परिस्थितियों में कई विशेष तरीके अपनाये जाते हैं। एक ऐसी विशेष "पिस्तौल" बनायी गयी है जिसमें धातु का तार भरा जाता है। फायर करने पर इस पिस्तौल से तार से प्राप्त द्रवित धातु बाहर निकलती है जो सूखने पर एक संरक्षी परत का काम करती है। अगर पालिश में चमक लानी होती है तो विद्युत अपघटन-विधि अपनाते हैं।

जिंक के साथ-साथ इसके यौगिकों के कार्यक्षेत्र भी विविध हैं: मध्य युग में अरबी तथा पश्चिमी यूरोप के डाक्टर इलाज में एक सफेद पाउडर इस्तेमाल करते थे – यह जिंक आक्साइड होता था। आज भी दवा की हर दुकान में मलहमों, बच्चों के पाउडरों, आंख की दवाइयों में यह तत्त्व किसी न किसी रूप में उपस्थित मिलेगा। हर औरत जिंक आक्साइड इस्तेमाल करती है हालांकि उसे इस बात का तनिक भी आभास नहीं होता। उसका पाउडर जिंक के यौगिक से तो बना होता है जिसमें रंग तथा सुगंध मिली होती है। अगर पाउडर के एक कण को आवर्धित करके देखा जाये तो उसका आकार एक मकड़ी की याद दिलाता है।

लगभग 200 साल पहले फ्रांस व ब्रिटेन में जिंक-रंग बनने शुरू हो गये जो पुराने जमाने से प्रचलित लेड-रंगों के मुकाबले मनुष्य के लिये तनिक भी हानिकारक नहीं थे। जिंक-रंग बड़ी जल्दी प्रसिद्ध हो गये। शीघ्र ही अन्य देशों में भी नये रंग बनाये जाने लगे। 1807 में एक रूसी पत्रिका में एक लेख छपा जिसमें यह बताया गया कि जिंक आक्साइड से रंग बनाये जा सकते हैं जो साधारण रंगों की जगह इस्तेमाल किये जा सकते हैं। जिंक पुराने चित्रकारों की चित्रकारी की जांच के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। मिसाल के लिये, अगर ब्रेगल

ज्येष्ठ, रूबेन्स या एल ग्रेको के नाम से बिक रहे चित्रों में जिंक-रंगों का इस्तेमाल किया गया है तो निस्संदेह चित्र नकली हैं।

रबड़ तथा लिनोलियम की फैक्टरियां भी जिंक आक्साइड के बिना काम नहीं चला सकतीं। जिंक और कांच की जान-पहचान भी काफी पुरानी है। 1851 में लंदन के विश्व मेले में कांच की एक नयी चीज – जिंक क्रिस्टल ने सनसनी मचा दी थी। इसकी चमक तथा चिकनाहट कुछ खास तरह की थी। हमारे दिनों में कांच के कारीगर जिंक सल्फाइड इस्तेमाल करते हैं जो कांच को अति सुंदर रंगों में रंग देता है – कांच को संगमरमर, जैस्पर, एगेट आदि जैसा बना देता है।

हमारी शताब्दी के दूसरे दशक में जिंक आक्साइड का क्रिस्टल पहली बार रेडियो तकनीक में इस्तेमाल किया गया। इसकी सहायता से अति दूरी से रेडियो सिग्नल

प्राप्त किये गये। इस तत्त्व के यौगिक टेली-विजन तकनीक में भी बड़े काम के सिद्ध हुए। स्क्रीन पर 3 मुख्य रंगों (नीला, हरा तथा लाल) का श्रेय जिंक सल्फाइड, जिंक सेलेनाइड तथा जिंक फास्फेट को जाता है। आशा है कि जिंक आक्साइड का कृत्रिम क्रिस्टल लेसर टेलीविजन में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। रंगीन लेसर टेलीविजन के स्क्रीन का क्षेत्रफल कई वर्ग मीटर होगा (फ्लेट के कमरे की दीवार के क्षेत्रफल के बराबर)। जिंक के यौगिक अर्धचालक गुण भी रखते हैं जिनसे काफी आशाएं हैं।

जिंक की जरूरत केवल तकनीक के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। जीवों तथा वनस्पतियों के लिये इसकी अल्प मात्रा परमावश्यक है। 24 घंटों में मनुष्य को 5 से 20 मिलीग्राम तक जिंक की जरूरत पड़ती है। शराब के शौकीन लोगों को इस तत्त्व की ज्यादा जरूरत रहती है क्योंकि शराब उनके शरीर में जिंक का असर कम कर देती है। ईरान तथा मिस्र में ठिगने कद के लोगों के अध्ययन से पता चला है कि उनका कद न बढ़ने का कारण उनके खाने में जिंक की कमी है। जिन मादा चूहों की खुराक से जिंक बिल्कुल निकाल दिया गया, वे शीघ्र ही झगड़ालू स्वभाव की बन गयीं। उनकी यह आदत उनकी संतान में भी दिखाई दी (यहां भी मादाओं ने नरों को पिछाड़ दिया था)।

कुछ अकशेरुकी समुद्री जीवों में जिंक वही भूमिका निभाता है जो लोहा मनुष्य के रुधिर में। कुछ मोलस्कों के अंदर इसकी मात्रा 12% तक मिली है। सांप के विष में इसकी काफी मात्रा मिलती है, विशेष रूप से कोबरे तथा गेहुअन के विष में।

वैज्ञानिकों का विचार है कि यह तत्त्व सांप की उसके अपने विष से रक्षा करता है।

वनस्पति जगत में जिंक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरणतया, अगर मिट्टी में जिंक नहीं होता, तो गेहूँ की फसल नष्ट हो सकती है। अंगूर, मौसमी, नाशपाती में काफी जिंक होता है। यह टमाटर, प्याज तथा सलाद में भी होता है। कुकुरमुत्तों की कुछ किस्मों में यह तत्त्व काफी बड़ी मात्रा में उपस्थित होता है।

पुराने जमाने से यह देखा जा रहा है कि कई वनस्पतियां धातुओं के निक्षेपों के पास उगना पसंद करती हैं। उदाहरण के लिये, कुछ किस्मों के फूल जिंकयुक्त भूमि से ज्यादा लगाव रखते हैं। प्राचीन खननकर्मी इस बात को जानते थे। आधुनिक भूविज्ञानी भी इस जानकारी से लाभ उठा रहे हैं।

स्फैलेराइट जिंक का सबसे विस्तृत खनिज है। इसे यशदब्लैंड भी कहते हैं। इसे ऐसा नाम क्यों दिया गया है? बात यह है कि विभिन्न तत्त्वों के एलाय इस खनिज को सभी संभव रंगों में रंग देते हैं जिससे इसकी पहचान मुश्किल हो जाती है तथा गलती से दूसरे खनिज को स्फैलेराइट समझ लिया जाता है। अल्ताई पहाड़ों में एक ऐसा अयस्क मिलता है जो जिंक-ब्लैंड तथा भूरे स्पार का ऐलाय होता है। ये धारीदार पत्थर जंगली जानवर से लगते हैं।

नियमानुसार जिंक प्रकृति में अर्धधात्विक अयस्कों के रूप में मिलता है जिनमें जिंक के अलावा लेड, ताम्र, लोहा तथा कई विरल तत्त्व उपस्थित होते हैं। यूरोप में मिले जिंक और लेड के एक निक्षेप ने एक नये देश को जन्म दिया। यह पिछली शताब्दी की बात है। नैपोलियन की हार के बाद उसके राज्य का एक भाग विजेता देशों को मिलना था। बंटवारे के दौरान नीदरलैंड तथा प्रुसिया में मोरेने जिले के ऊपर झगड़ा हो रहा था। यह इलाका दोनों देशों की सीमाओं पर स्थित था। आखिर 1816 में एक समझौता हो गया जिसके अंतर्गत जिले का एक भाग नीदरलैंड को और एक भाग प्रुसिया को दे दिया गया। जिस इलाके में जिंक तथा लेड के बहुत सारे निक्षेप थे (जिनकी वजह से झगड़ा हो रहा था) उसे तटस्थ घोषित कर दिया गया। इस प्रकार एक नये, बहुत ही छोटे गणतंत्र का जन्म हुआ जिसका नाम मोरेने रखा गया। इसका क्षेत्रफल केवल 3.3 वर्ग किलोमीटर था तथा इसकी आबादी कुछ सौ लोगों तक सीमित थी। जब देश बन गया तो उसके प्रभुत्व तथा खनिजों की रक्षा का इंतजाम भी करना पड़ा। देश में सेना बनायी गयी जिसमें केवल ... एक सैनिक था। वह सैनिक भी था और कमांडर भी। पिछली शताब्दी के आठवें दशक में इस देश के जिंक तथा लेड अयस्कों के सारे भंडार खाली हो गये, परंतु यह देश 1920 तक बना रहा। इसके बाद यह बेल्जियम में मिल गया।

पिछले दिनों विशेषज्ञों ने एक अद्वितीय खजाने की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया है। लाल सागर में 2 किलोमीटर की गहराई पर जिंक, ताम्र तथा रजत के अर्धतरल अयस्क मिले हैं। एक विशेष जहाज के निर्माण की योजना बनायी गयी है जिसके डैक से सागर के तल तक पाइप बिछाये जायेंगे जिनके रास्ते अयस्क ऊपर लाये जायेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिंक अयस्क केवल पृथ्वी के नीचे से ही नहीं, पानी के अंदर से भी निकाले जा रहे हैं। इस धातु

के गुणों का अध्ययन अंतरिक्ष में भी किया जा रहा है : सोवियत कक्षक-स्टेशन "साल्यूत" पर जिंक के क्रिस्टल बनाये गये तथा लोहे के साथ इसका ऐलाय भी प्राप्त किया गया। ये प्रयोग बल्गारिया के वैज्ञानिकों के दिमाग की खोज थी। देखते हैं कि अंतरिक्ष का जिंक किस काम आता है?

यूरेनियम शलाकों की "पोशाक"

मार्टिन क्लाप्रोत की खोज – अपने सपने में क्या देखा? – परदादा के जमाने की बात – "नौकरी की तलाश में हूँ" – पक्का दोस्त – विचारों में बहुत अंतर है – नमक के अम्ल से कितनी हानि होती है? – बहुरंगी धंधा – जरूरत से ज्यादा गर्म हो जाने पर भी इसका कुछ नहीं बिगड़ता है – "भाइयों" की किस्मत – "आगे जाना मना है" – "नाउटिलस" का रिऐक्टर – अच्छाइयां और बुराइयां – समस्याओं की बैछार – कूड़े के ढेर से जिर्कोनियम मिलता है – समुद्री तट पर – गौन "पेशे" – नेर्न्स्ट लैम्प – मोन्टलूई के किले में क्या हो रहा है? – "सूरज की राजधानी" – गलतफहमी दूर करनी है

1789 में बर्लिन विज्ञान अकादमी के एक सदस्य जर्मन रसायनज्ञ मार्टिन हेनरीख क्लाप्रोत ने जिर्कोन के खनिज की विभिन्न किस्मों का विश्लेषण करते समय एक नये तत्त्व की खोज कर डाली जिसका नाम उन्होंने जिर्कोनियम रखा। अतिसुंदर रंगों (सुनहरा, नारंगी, गुलाबी आदि) के कारण जिर्कोनियम सिकंदर महान के जमाने से एक बहुमूल्य पत्थर के रूप में प्रसिद्ध चला आ रहा है। इसका यह नाम शायद अरबी शब्द "जारकून" से लिया गया है जिसका अर्थ है – सुनहरा।

पुराने जमाने में जिर्कोनियम का प्रयोग केवल फैशन के लिये ही नहीं बल्कि तावीज के रूप में भी किया जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि यह पत्थर आदमी को जिंदादिल बना देता है, गंदे विचारों तथा दुख को भगा देता है, मनुष्य को अक्लमंद बना देता है तथा समाज में उसकी इज्जत बढ़ाता है। पुराने जमाने में एक रूसी हकीम ने अपनी एक किताब में पूर्ण विश्वास के साथ निम्न शब्द लिखे: "जो आदमी लाल रंग का नग पहनता है उसे न तो बुरे सपने आते हैं और न ही डर लगता है। इसके अलावा उसे एक भला आदमी भी समझा जाता है"।

स्वीडिश रसायनज्ञ जान्स बर्जेलियस ने 1824 में जिर्कोनियम प्राप्त किया। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने इस तत्त्व को स्वतंत्र रूप में प्राप्त किया था। परंतु उन दिनों शुद्ध जिर्कोनियम प्राप्त करना असंभव समझा जाता था। बहुत लंबे अर्से तक इस तत्त्व के भौतिक गुणों का भी अध्ययन नहीं किया गया। इसी वजह से दसियों साल तक अन्य कई उपयोगी धातुओं की तरह जिर्कोनियम को भी कोई काम नहीं दिया गया। इसके विपरीत लोहा, ताम्र, लैड जैसी धातुएं जानती थीं कि काम कैसे ढूंढ़ा जाता है और वे कभी खाली नहीं बैठी थीं।

केवल हमारी शताब्दी के आरंभ में वैज्ञानिकों को शुद्ध जिर्कोनियम प्राप्त करने में सफलता मिली और तभी उन्हें इसके गुणों की पूरी-पूरी जानकारी भी प्राप्त हुई। उन्होंने यह देखा कि इस तत्त्व का एक पक्का दोस्त है जो हमेशा इसके साथ रहता है। इस दोस्त का नाम हैफनियम है। दुर्भाग्यवश 130 से भी ज्यादा सालों तक वैज्ञानिकों को यह पता ही नहीं था कि जिर्कोनियम के अंदर हैफनियम उपस्थित होता है। कई बार तो इसकी मात्रा बहुत ही ज्यादा होती है। इसकी वजह यह है कि दोनों तत्त्वों के रसायनिक गुणों में बहुत समानता तो है, बल्कि अंतर भी है। इसका वर्णन हम थोड़ी देर बाद करेंगे।

शुद्ध जिर्कोनियम देखने में स्टील की तरह लगता है परंतु मजबूती और तन्यता में

यह स्टील से उत्तम होता है। जिर्कोनियम में एक विशेष गुण यह है कि कई आक्रमणशील माध्यमों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता है। संक्षारणप्रतिरोधता में यह नियोबियम तथा टाइटेनियम जैसी संक्षारण-रोधी धातुओं से भी श्रेष्ठ होता है। 60°C के ताप वाले 5% नमक अम्ल के अंदर एक साल के दौरान जंगरोधी स्टील अगर 2.6 मिलीमीटर के लगभग हिस्सा गंवा देता है और टाइटेनियम लगभग 1 मिलीमीटर, तो जिर्कोनियम इनसे 1000 गुना कम भाग गंवाता है। जिर्कोनियम में क्षारों के प्रति भी उच्च प्रतिरोधक्षमता होती है। इस गुण में टैन्टेलम भी इसका मुकाबला नहीं कर सकता हालांकि वह संक्षारण के सबसे शक्तिशाली शत्रु के नाम से प्रसिद्ध है। अद्वितीय संक्षारणप्रतिरोधता के कारण जिर्कोनियम चिकित्सा के एक गंभीर क्षेत्र – न्यूरोसर्जरी तक में प्रयुक्त किया जाता है। इसके ऐलायों से रक्त का बहाव रोकने वाली चिमट्टियां तथा शल्यचिकित्सा यंत्र बनाये जाते हैं। कई बार दिमाग के आपरेशन के बाद जिर्कोनियम से बने तंतुओं से टांके भी लगाये जाते हैं।

जैसे ही वैज्ञानिकों को यह पता चल गया कि स्टील में जिर्कोनियम मिलाने से स्टील के गुण उत्तम हो जाते हैं, उन्होंने जिर्कोनियम को एक महत्त्वपूर्ण ऐलाय के रूप में मान्यता दे दी। इस दिशा में इसके विविध उपयोग हैं: यह स्टील की मजबूती तथा शक्ति बढ़ाता है, उसे मशीनरी कार्यों तथा वेल्डिंग लायक बनाता है, उसके अंदर उपस्थित सल्फाइडों का चूरा कर देता है तथा उसे सूक्ष्मकणिक बना देता है।

अगर निर्माण-कार्य में उपयुक्त स्टील में जिर्कोनियम मिला दिया जाये तो स्टील का स्केल प्रतिरोध बहुत बढ़ जाता है: 40-45 श्रेणी के स्टील में (इसमें जिर्कोनियम की मात्रा 0.16-0.37% तक होती है) 3 घंटे बाद 820°C ताप में वजन की कमी जिर्कोनियमरहित स्टील से 6-7 गुना कम होती है।

जिर्कोनियम निर्माण-इस्पात की संक्षारण प्रतिरोध-क्षमता भी उत्तम करता है। उदाहरण के लिये, अगर 20G श्रेणी के स्टील को 3 महीने तक पानी में डूबो कर रखा जाये तो उसके 1 वर्ग मीटर क्षेत्र के वजन में 16.3 ग्राम की कमी आती है

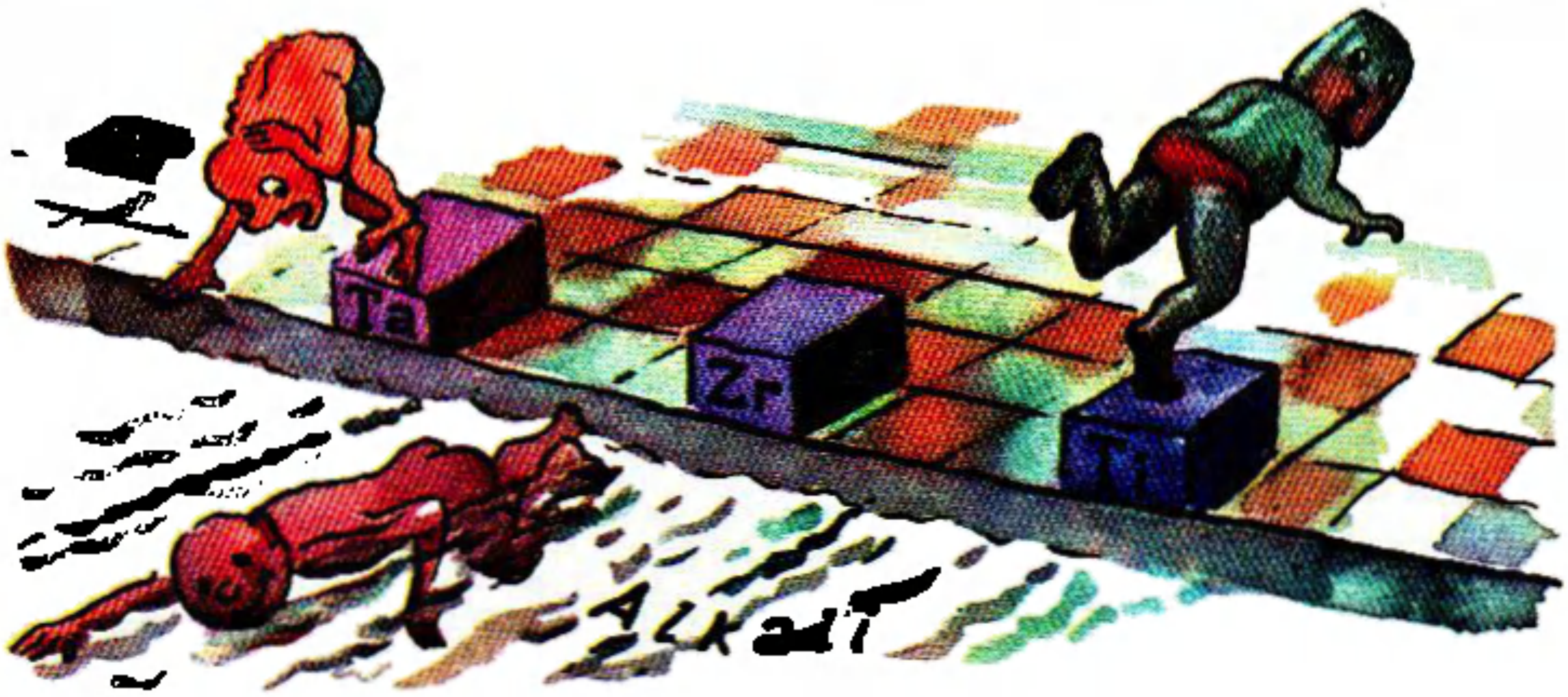

परंतु स्टील के इसी नमूने में अगर 0.19% जिर्कोनियम मिला दिया जाये तो इसका वजन केवल 7.6 ग्राम कम होगा।

जिर्कोनियम स्टील बहुत उच्च ताप तक गर्म किया जा सकता है। इससे फोर्जन, ताप-उपचार तथा सिमेंटिंग आदि प्रक्रियाओं की गति तीव्र हो जाती है।

ठोस सूक्ष्मकणिक तथा अत्यधिक मजबूत होने के साथ-साथ जिर्कोनियम स्टील में उत्तम तरलता भी होती है जिसके कारण यह पतली दीवारों के निर्माण साधारण स्टील की तुलना में अधिक प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरणतया, 40X श्रेणी के स्टील में जिर्कोनियम मिला कर 2 मिलीमीटर मोटे पुर्जे बनाये जा सके हैं परंतु जिर्कोनियम के बिना इन पुर्जों की दीवारों की मोटाई

5-6 मिलीमीटर से कम नहीं की जा सकी है।

जिर्कोनियम कई अलौह धातुओं के साथ भी उपयोगी ऐलाय बनाता है। जिर्कोनियम से ताम्र की मजबूती बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तथा उसकी वैद्युत चालकता पहले जितनी ही रहती है। ताम्र-कैडमियम ऐलाय में अगर 0.35% जिर्कोनियम मिला दिया जाये तो ऐलाय की मजबूती तथा वैद्युत चालकता उच्च हो जाती है। जिर्कोनियम से ऐलुमिनियम ऐलायों की मजबूती, तन्यता, संक्षारण तथा तापप्रतिरोध बहुत बढ़ जाते हैं। 0.6-0.7% जिर्कोनियम से मैगनीशियम-जिंक ऐलायों की मजबूती दुगुनी हो जाती है। 14% जिर्कोनियम वाले टाइटेनियम ऐलाय को अगर 100°C ताप पर 5% नमक अम्ल में रखा जाये तो उसका संक्षारण प्रतिरोध साधारण शुद्ध टाइटेनियम के मुकाबले 70 गुना अधिक निकलता है। 5% जिर्कोनियम से मालिब्डेनम काफी सख्त हो जाता है। जिर्कोनियम मैंगनीज-पीतल में तथा ऐलुमिनियम, निकैल और लैड-कांसे में भी मिलाया जाता है।

इतने सारे इज्जतदार काम मिलने पर भी जिर्कोनियम संतुष्ट नहीं था। उसने मनपसंद काम की तलाश जारी रखी और उसे ऐसा काम मिल भी गया। परंतु इसका वर्णन करने से पहले हम आपको मार्टिन क्लाप्रोथ की प्रयोगशाला ले चलते हैं जहां इस तत्त्व का जन्म हुआ था।

बात यह है कि 1789 में क्लाप्रोथ ने जिर्कोनियम के अलावा एक और अद्वितीय तत्त्व की खोज की थी जिसे बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीक के क्षेत्रों में अति-महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। यह तत्त्व यूरेनियम था। उस वक्त क्लाप्रोथ और उनके

साथियों को इन दोनों "भाइयों" – जिर्कोनियम और यूरेनियम के भविष्य की कोई जानकारी नहीं थी। दोनों तत्त्व काफी लंबे अर्से तक एक दूसरे से दूर रहे: 150 साल तक दोनों में किसी तरह के संबंध स्थापित नहीं हुए। केवल बीसवीं शताब्दी में आकर इन दोनों की फिर से मुलाकात हुई। शुरू में इस बात की जानकारी केवल कुछ गिने चुने वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों को थी जो परमाणु ऊर्जा पर काम कर रहे थे और यह बात सब लोग जानते ही हैं कि इस विषय का विस्तृत प्रचार नहीं होता है। दोनों तत्त्वों की मुलाकात परमाणु रिऐक्टरों में हुई जहां यूरेनियम तो नाभिकीय ईंधन का काम कर रहा था और जिर्कोनियम यूरेनियम शलाकों के आवरण के रूप में इस्तेमाल हो रहा था। पाठकों की विशेष जानकारी के लिये हम यह बताना चाहेंगे कि इस घटना से कई साल पहले अमरीकी वैज्ञानिकों ने परमाणु रिऐक्टर में जिर्कोनियम इस्तेमाल करके देखा था और ऐसा रिऐक्टर अमरीका की पहली परमाणु पनडुब्बी "नाउटिलस" पर फिट किया गया था। परंतु शीघ्र ही उन्हें यह पता चल गया कि जिर्कोनियम से रिऐक्टर के सक्रिय क्षेत्र के स्थायी पुर्जे बनाने की जगह ईंधन तत्त्वों के आवरण बनाना ज्यादा फायदेमंद रहेगा। बस तभी यूरेनियम और जिर्कोनियम की मुलाकात हो गयी।

जिर्कोनियम के चुनाव की कोई वजह थी। भौतिकविदों को यह पता था कि अन्य धातुओं के मुकाबले जिर्कोनियम न्यूट्रानों को सरलता से निकलने देता है (न्यूट्रान पारदर्शता)। यूरेनियम शलाकों के आवरण के लिये उन्हें ऐसी धातु की ही तलाश थी। सच है कि कुछ अन्य धातुओं – मैगनीशियम, ऐलुमिनियम तथा टिन में भी ऐसी विशेषता है परंतु ये धातुएं दो कारणों से परमाणु रिऐक्टरों में इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं – पहला यह कि इनका गलनांक निम्न होता है तथा दूसरा यह कि ये उच्च ताप नहीं सह सकती। जिर्कोनियम 1850°C पर प्रगलित होता है इसलिये इसमें परमाणु ऊर्जा के तापों को सहने की क्षमता होती है।

परंतु जिर्कोनियम में कुछ कमियां भी हैं जिनकी वजह से इसे इतना जिम्मेदार काम देते हुए डर लगता है। बात यह है कि न्यूट्रानों के लिये केवल अतिशुद्ध जिर्कोनियम पारदर्शी होता है। बस यहीं हैफनियम की याद आ जाती है जिसे रसायनिक गुणों के कारण जिर्कोनियम का "जुड़वां भाई" समझा जाता है। इतनी समानता होते हुए भी न्यूट्रानों के बारे में दानों में बहुत मतभेद

है। हैफनियम बड़े शौक से न्यूट्रानों को ग्रहण करता है (जिर्कोनियम से 500-600 गुना ज्यादा शक्ति से)। इसके अलावा अगर जिर्कोनियम में हैफनियम की मात्रा लगभग नगण्य है (होमियोपैथी की गोलियों की तरह), तब भी वह जिर्कोनियम का "रक्त" खराब कर सकता है और उसकी न्यूट्रान पारदर्शिता नष्ट कर देता है। इसी वजह से परमाणु रिऐक्टरों में जो जिर्कोनियम इस्तेमाल किया जाता है उसमें हैफनियम की मात्रा 0.02% से अधिक नहीं होती। हालांकि इतनी थोड़ी सी अशुद्धि भी काम जरूर बिगाड़ती है – वह जिर्कोनियम की न्यूट्रान पारदर्शिता 6.5 गुना कम कर देती है।

चूंकि प्रकृति में ये दोनों धातुएं प्रायः एक दूसरे के साथ रहती हैं इसलिये हैफनियम से पूरी तरह मुक्त जिर्कोनियम प्राप्त करना बड़ा ही मुश्किल काम है। परंतु रसायनज्ञों तथा धातुविज्ञानियों को यह काम हाथ में लेना ही पड़ा क्योंकि परमाणु ऊर्जा उद्योग को इस धातु की सख्त जरूरत थी।

जैसे ही उन्होंने इस समस्या का हल ढूंढ़ लिया, एक नयी समस्या सामने आयी। अब इस बात का खयाल रखना था कि शुद्धतम जिर्कोनियम के वेल्डिंग के दौरान उसमें "फालतू परमाणु" न मिलें क्योंकि वे धातु का सत्यानाश कर सकते थे। उनकी उपस्थिति में न्यूट्रानों के मार्ग में बाधा आ सकती थी। इसके अलावा वेल्डिंग का काम इस तरह से करना था कि धातु की समांगता न बिगड़े: धातु और उसमें वेल्डिंग से बने टांकों में एक जैसे गुण होने चाहिये थे। इस काम के लिये इलेक्ट्रानिक पुंज की सहायता ली गयी जिसकी मदद से वेल्डिंग की परिशुद्धता प्राप्त हुई और उक्त समस्या पूर्णतया हल हो गयी। परिणाम यह हुआ कि जिर्कोनियम से यूरेनियम शलाकों की पोषाक बनायी जाने लगी।

बस तभी जिर्कोनियम के उत्पादन में बड़ी तेजी से वृद्धि लायी गयी – 1949 से 1959 के दौरान विश्व में इस धातु का उत्पादन 1000 गुना बढ़ गया। इससे पहले अन्य खनिजों की प्राप्ति के दौरान जो जिर्कोन रेत मिलती थी उसे बेकार समझ कर फेंक दिया जाता था परंतु अब इस कूड़े की कीमत का पता चल गया था। उदाहरणतया, कैलीफोर्निया में पुरानी नदियों के तलों से स्वर्ण निकालते समय जिर्कोनियम की बहुत बड़ी मात्रा प्राप्त हुई परंतु किसी काम का न होने के कारण इसे कूड़े के ढेर में फेंक दिया गया। अमरीका में आरीजोना प्रांत के समुद्री तट पर युद्ध के दौरान जब क्रोमाइट निकाला गया तो खनिकों को इसके साथ जिर्कोनियम भी मिला परंतु उन दिनों उद्योग जगत की इस धातु में कोई दिलचस्पी नहीं थी जिसकी वजह से इसे वहीं पड़ा रहने दिया गया। परंतु युद्ध के तुरंत बाद जैसे ही जिर्कोनियम की धूम मचनी शुरू हुई, कूड़े के ये सारे ढेर "स्वादिष्ट भोजन" में बदल गये।

आजकल संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, भारत तथा कुछ पश्चिमी अफ्रीकी देशों में जिर्कोनियम के विशाल निक्षेपों पर काम चल रहा है। अक्सर समुद्री तटों की रेत में जिर्कोनियम अयस्क काफी मात्रा में मिलते हैं। उदाहरणतया, आस्ट्रेलिया के समुद्री तट पर 150 किलोमीटर इलाके में जिर्कोनियम सहित रेत फैले हुए हैं। सोवियत संघ में भी जिर्कोनियम अयस्कों के काफी भंडार हैं।

जिर्कोनियम की मांग हर साल बढ़ती जा रही है क्योंकि यह धातु नये-नये धंधों में उपयोगी सिद्ध हो रही है। गर्म अवस्था में गैसों की अवशोषणक्षमता के कारण यह धातु इलेक्ट्रोवाक्युम लैंपों तथा रेडियो तकनीक में प्रयुक्त की जा रही है। धात्विक जिर्कोनियम पाउडर तथा दहनशील पदार्थों के मिश्रण से तेज प्रकाश देने वाले राकेट बनाये जाते हैं। ऐलुमिनियम की पन्नी के मुकाबले जिर्कोनियम की पन्नी के जलने पर 1.5 गुना ज्यादा प्रकाश निकलता है (आक्सीजन की मात्रा एक सी रहती है)। जिर्कोनियम फ्लैशें बहुत सुविधाजनक रहती हैं क्योंकि वे बहुत कम जगह घेरती हैं – वे एक उंगली-स्तन जितनी छोटी हो सकती हैं। अंतरिक्ष वैज्ञानिक जिर्कोनियम ऐलायों में काफी दिलचस्पी ले रहे हैं क्योंकि ऐसी संभावना है कि इस तत्त्व के तापरोधक ऐलायों से अंतरिक्ष यानों के अगले हिस्से बनाये जा सकते हैं।

बरसातियों में नमी से रक्षा करने की क्षमता का श्रेय जिर्कोनियम को ही तो है। इसके लवण विशेष संसेचित इमल्शन में मिले होते हैं जिससे बरसातियों का कपड़ा भिगोया जाता है। जिर्कोनियम लवण छपाई के रंगों, विशेष वार्निशों तथा प्लास्टिक में भी इस्तेमाल किये जाते हैं। उच्च-आक्टेन ईंधन के उत्पादन में जिर्कोनियम यौगिक उत्प्रेरकों की भूमिका निभाते हैं। जिर्कोनियम सल्फेटों में अति उत्तम चर्मशोधक गुण होते हैं।

जिर्कोनियम टेट्राक्लोराइड को एक बढ़िया काम मिल गया है। इस यौगिक की विशेषता यह है कि इसकी विद्युतचालकता दाब के अनुसार बदलती रहती है। इसी गुण के सिद्धांत पर विद्युत-दाब के मापक का निर्माण किया गया है। दाब में जरा सा भी परिवर्तन आने पर उपकरण में विद्युत धारा भी बदल जाती है। इस प्रकार के मापकों की सहायता से 0.00001 से लेकर 1000 ऐटमौस्फियर तक का दाब नापा जा सकता है।

कई रेडियो यंत्रों, अल्टरा-साउंड जेनेरेटरों, ध्वनि तरंगों की आवृति के स्थिरीकारक आदि में दाबक्रिस्टलों की जरूरत पड़ती है। कई बार इन्हें बहुत अधिक ताप पर काम करना पड़ता है। इस काम के लिये निस्संदेह लैड जिर्कोनेट क्रिस्टल बहुत काम के सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि 300°C ताप तक इनके दाब विद्युत गुण वैसे के वैसे ही रहते हैं।

जिर्कोनियम का वर्णन करते समय इसके डाइआक्साइड की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि वह प्रकृति में सर्वाधिक उच्चतापसह पदार्थों में गिना जाता है। इसका गलनांक 2700°C के आसपास होता है। जिर्कोनियम डाइआक्साइड उच्चतापसह वस्तुओं, ताप-प्रतिरोधी एनैमल तथा दुर्गलनीय कांच आदि के निर्माण में विस्तृत रूप से प्रयोग किया जाता है। जिर्कोनियम बोराइड का गलनांक इससे भी उच्च होता है। इस ऐलाय से तापवैद्युत युग्मों के लिये ऐसे रक्षा आवरण बनाये जाते हैं जिन्हें गलित कच्चे लोहे में 10-15 घंटे तक तथा द्रव स्टील में 2-3 घंटे तक लगातार रखा जा सकता है जबकि क्वार्ट्ज आवरण इन माध्यमों में 20-25 सेकंड से ज्यादा नहीं टिक सकते और वे भी सिर्फ एक या दो बार।

जिर्कोनियम डाइआक्साइड में एक और अद्वितीय गुण होता है: बहुत ज्यादा गर्म किये जाने पर यह इतना ज्यादा प्रकाश

उत्पन्न करता है कि इसे प्रदीप्त तकनीक में इस्तेमाल किया जा सकता है। पिछली शताब्दी के अंत में जर्मन भौतिकविद वाल्टर नेर्न्स्ट ने इस गुण पर ध्यान दिया। उनके बनाये लैंप में (जो इतिहास में नेर्न्स्ट लैंप के नाम से प्रसिद्ध है) दीप्त शलाकें जिर्कोनियम डाइआक्साइड की ही तो बनी थीं। आज भी प्रयोगशालाओं में कभी-कभी यह पदार्थ एक प्रकाश स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

फ्रांस में वैज्ञानिकों ने एक ऐसी विधि ढूंढ़ी है जिसके द्वारा सौर-ऊर्जा की सहायता से जिर्कोनियम डाइआक्साइड से जिर्कोनियम प्राप्त किया जा सकता है। पूर्वी पिरेनेई पहाड़ियों में समुद्री तट से 1500 मीटर ऊँचाई पर मोन्टलूई किले में एक सौर-भट्टी लगायी गयी है जहां प्रोफेसर फेलिक्स ट्रोम्बे के नेतृत्व में वैज्ञानिकों का एक दल इस दिशा में कार्य कर रहा है। मोन्टलूई में आयोजित एक सिम्पोजियम में इस विधि का प्रदर्शन किया गया।

इस सिम्पोजियम के एक भागी ने निम्न शब्दों में "सौर-जिर्कोनियम" की प्राप्ति की विधि का वर्णन किया: "धीरे-धीरे एक विशेष प्लेटफार्म सफेद मुट्ठीभर पाउडर को एक विशाल परवलयिक दर्पण की ओर उठाता है। जैसे ही यह प्लेटफार्म दर्पण के फोकस में आ जाता है, पाउडर में से सफेद रंग की तीव्र ज्वाला निकलने लगती है जिससे वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की आंखें चौंधिया जाती हैं।

"यह सफेद पाउडर जिर्कोनियम डाइआक्साइड है। परवलयिक दर्पण के फोकस में सांद्रित सौर-किरणों का तापमान 3000°C तक पहुंच जाता है जिससे पाउडर पिघल जाता है। इस वक्त ज्वाला की कौंध केवल काले चश्मों से देखी जा सकती है। प्लेटफार्म पर पड़ा गलित पदार्थ का छोटा सा ढेर पुराने जमाने के एक ज्वालामुखी के विस्फोट की याद दिलाता है"।

इस यूनिट में एक विशेष सौर परावर्तक लगा होता है जो असंख्य दर्पणों से बना होता है। इसका व्यास 12 मीटर है तथा यह प्रकाशतत्त्वों की सहायता से अपने आप सूरज के पीछे-पीछे घूमता रहता है। परावर्तक किरणों को संकेंद्रित करके उन्हें विशाल

परवलयिक दर्पण की ओर भेजता है जिसका व्यास 10 मीटर है। इस दर्पण की तापक्षमता 75 किलोवाट है तथा यही सौर किरणों को भट्टी में सकेंद्रित करता है।

मोन्टलूई से 10 किलोमीटर दूर एक छोटे से पहाड़ी गांव ओडेयो में दुनिया की सबसे बड़ी सौर-भट्टी लगायी गयी है। यहां के लोग अपने गांव को बड़े गर्व से सूरज की राजधानी कहते हैं। हर आगंतुक को इस गांव में एक विचित्र नजारा दिखाई देता है। उसे ऐसा लगता है जैसे किसी काल्पनिक फिल्म की शूटिंग हो रही हो। पुराने चर्च के पास एक बहुत आधुनिक कई मंजिली इमारत दिखाई देती है – यह सौर-ऊर्जा की प्रयोगशाला है। इस इमारत का उत्तरी भाग एक विशाल परवलयिक दर्पण से बना है जिसका व्यास 50 मीटर के लगभग है। इस इमारत के बिल्कुल सामने पहाड़ी की ढाल में दसियों विशाल दर्पण (हीलियोस्टेट) पंक्तिबद्ध लगाये गये हैं। ये हीलियोस्टेट सौर-किरणों को परवलयिक दर्पण की ओर परावर्तित कर देते हैं जहां से वे एक पुंज के रूप में प्रगलन भट्टी में फेंकी जाती हैं जिसके फलस्वरूप भट्टी का तापमान 3500°C तक पहुंच जाता है।

ओडेयो सौर-भट्टी का दैनिक उत्पादन 2.5 टन है जबकि मोन्टलूई की भट्टी प्रतिदिन केवल 60 किलोग्राम जिर्कोनियम देती है। परावर्तित सौर किरणों द्वारा भट्टी में उत्पन्न ताप 1000 किलोवाट विद्युत शक्ति के बराबर होता है।

सौर-भट्टियों की मुख्य विशेषता यह है कि प्रगलन प्रक्रिया के दौरान धातु में किसी भी तरह की अशुद्धियां नहीं मिलती हैं और वे आयें भी कहां से? इसी वजह से जो भी धातुएं तथा ऐलाय सौर-ऊर्जा से प्राप्त की जाती हैं वे हमेशा अतिशुद्ध होती हैं तथा उनकी बहुत मांग रहती है। इस विधि से एक और लाभ यह है कि सौर-ऊर्जा मुफ्त मिल जाती है।

अंत में एक गलतफहमी हम जरूर दूर करनी चाहेंगे। भू-पर्पटी में जिर्कोनियम की मात्रा ताम्र, निकैल, लैड और जिंक से ज्यादा है परंतु फिर भी जिर्कोनियम को एक विरल तत्त्व माना जाता है। किसी जमाने में यह बात जरूर सच थी क्योंकि तब जिर्कोनियम अयस्कों की एक तो कमी थी और दूसरी बात यह है कि इसकी प्राप्ति भी बहुत कठिन थी। इसके अलावा तकनीक में इसका प्रचलन भी बहुत कम था। परंतु आज जब जिर्कोनियम का उत्पादन हर साल बढ़ता जा रहा है और इसे नये-नये कामों में प्रयुक्त किया जा रहा है, इसे विरल धातु कहना अन्याय होगा। यह बात ठीक है कि बीते दिनों को भूला नहीं जा सकता, अतः अगर आपसे जिर्कोनियम की उत्पत्ति के बारे में पूछा जाये तो आप बड़े गर्व के साथ कह सकते हैं कि यह "विरल तत्त्वों" में से एक है।

फ्लैट नंबर इकतालिस

आपका घर कहां है? – झगड़ेबाजी न हो – पड़ोसियों के मन में उत्सुकता पैदा होती है – कोलंबिया नदी की घाटी से एक पार्सल मिलता है – 150 साल बाद – एक नहीं दो आविष्कार – "एक बार फिर पूछताछ की जायेगी" – दुख की देवी के सम्मान में – "कोलंबियनों" को अंतर्राष्ट्रीय संगठन का फैसला मानना पड़ता है – जिगरी यार – काम करने लायक है – हर बुराई में कुछ भलाई भी होती है – मान्यता मिल जाती है – कई जरूरी काम करने हैं – निर्वात काम आता है – सर्दी का डर नहीं है – फर्म "वैस्टिंगहाउस" की चालाकी – प्रतिरोध लुप्त हो जाता है – जिर्कोनियम का प्रतिद्वंदी – गैसों का दुश्मन – "अस्पताल का एक जिम्मेदार कर्मचारी" – "वित्तीय कार्रवाइयां" – भविष्यवाणी सच सिद्ध होती है

पिछली शताब्दी के मध्य तक दसियों रसायनिक तत्त्वों की खोज हो चुकी थी परंतु दुर्भाग्यवश उनके पास "रहने के लिये" अपनी कोई जगह नहीं थी। 1869 में प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मेंडेलीफ ने जब अपनी आवर्त सारणी की महान इमारत बनायी तब कहीं इन सब तत्त्वों को सिर छिपाने की जगह मिली।

"फ्लैट" बांटते समय भावी निवासियों के विज्ञान तथा इंजीनियरी में योगदान तथा अनुभव आदि को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। केवल उनके व्यक्तिगत गुणों का ख़याल रखा गया (खास तौर पर, परमाणु भार का)। इसके अलावा उनकी प्रवृतियों तथा पड़ोसियों के साथ समानता पर भी ध्यान दिया गया। पारस्परिक संबंधों (हमारा मतलब रसायनिक संबंधों से है) ने भी इस काम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। झगड़ेबाजी से बचाने के लिये भिन्न-भिन्न विचारों वाले निवासियों के फ्लैट एक दूसरे से दूर रखे गये।

पांचवें प्रवेशद्वार में (अर्थात् पांचवें ग्रुप में) पांचवीं मंजिल पर (अर्थात् पांचवें आवर्त की छटी श्रेणी में) फ्लैट नंबर इकतालिस एक नये मालिक को स्थान किया गया, जिसका नाम बड़ा सुंदर था – नियोबियम। पड़ोसियों को यह जानने की बड़ी उत्सुक्ता थी कि यह नया मालिक है कौन और आया कहां से है?

सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य में कोलंबिया नदी (उत्तरी अमरीका) की घाटी में लोगों को सुनहरी अभ्रक के साथ गहरे काले रंग का एक खनिज भी मिला। उन दिनों नयी दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में जितने भी नये खनिज मिल रहे थे उन्हें ब्रिटेन भेजा

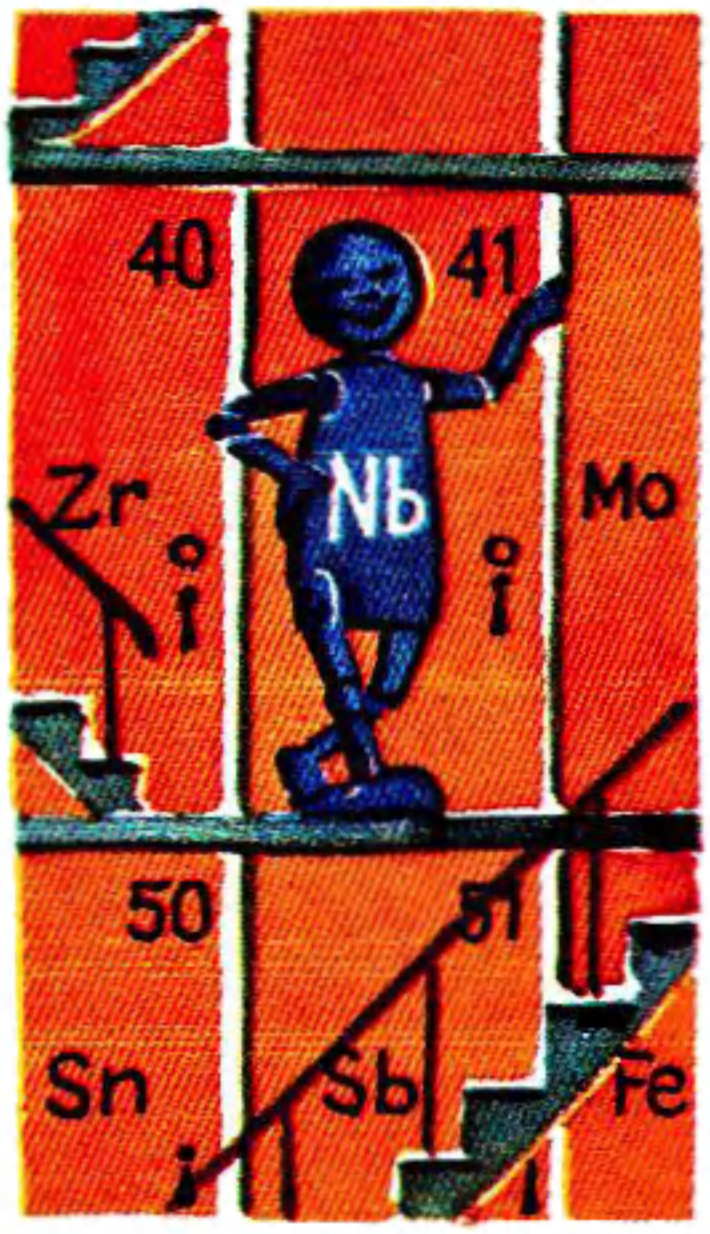

जा रहा था। इस खनिज की किस्मत में भी ब्रिटिश संग्रहालय की शोभा बढ़ाना लिखा था। 150 साल तक यह खनिज (बाद में इसका नाम कोलंबाइट पड़ गया था) संग्रहालय में एक शीशे के बक्से में एक नमूने की तरह रखा रहा और इसे लौह-अयस्क समझा जाता रहा। 1801 में चार्ल्स हैटचेर ने, जो उस वक्त एक रसायनज्ञ के रूप में विख्यात हो चुके थे, इस खूबसूरत खनिज में दिलचस्पी ली। उन्होंने इसका विश्लेषण किया। पता चला कि खनिज में लोहे, मैंगनीज तथा आक्सीजन के अलावा एक अज्ञात तत्त्व उपस्थित है जो अम्लीय आक्साइड के गुणों वाला पदार्थ बनाता है। हैटचेर ने इस तत्त्व का नाम कोलंबियम रखा।

एक साल बाद 1802 में स्वीडिश वैज्ञानिक एकेबर्ग ने स्कैन्डीनेवियन देशों के कुछ खनिजों में एक और नया तत्त्व पाया जिसका नाम उन्होंने टैन्टेलम रखा (पौराणिक कथा के

एक नायक के सम्मान में)। सच बात यह थी कि यह नाम इस बात का प्रतीक था कि इस नये तत्त्व का अध्ययन एक बहुत मुश्किल काम लग रहा था (इस तत्त्व के आक्साइड को अम्लों में घोलना असंभव हो रहा था)। टैन्टेलम और कोलंबियम के गुणों में पूर्ण समानता थी, इस कारण बहुत सारे वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनका दो तत्त्वों से नहीं बल्कि एक ही तत्त्व से संबंध है और वह तत्त्व टैन्टेलम है। सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ बर्जेलियस भी इस मत से सहमत थे।

आगे चलकर बर्जेलियस को अपने फैसले पर शक होने लगा। उन्होंने अपने एक विद्यार्थी, प्रसिद्ध जर्मन रसायनज्ञ व्योलर को निम्न शब्दों का एक पत्र लिखा: "तुम्हारा x वापस भेज रहा हूँ। मैंने सारे तरीके अपना कर देखे पर हर बार अस्पष्ट उत्तर मिले। मैंने पूछा – क्या तुम [illegible]इटेनियम हो?" उसने जवाब दिया – "क्या [illegible] तुम्हें नहीं बताया है कि मैं टाइटेनियम नहीं हूँ?" मैंने उससे यह कबूल करवाने की कोशिश की कि वह जिर्कोनियम है परंतु उसने जवाब दिया कि वह सोडे में घुल जाता है जबकि जिर्कोनियम सहित मिट्टी में यह गुण नहीं होता है। "अच्छा, तो क्या तुम टिन हो?" वह बोला: "मेरे अंदर टिन है जरूर परंतु बहुत थोड़ी मात्रा में"। "फिर तो तुम टैन्टेलम ही हो सकते हो"। "मैं उसका रिश्तेदार हूँ परंतु मैं कास्टिक पोटाश में धीरे-धीरे घुल जाता हूँ और पीले-भूरे रंग के अवक्षेप में बदल जाता हूँ"। "तो फिर तुम कौनसी बला हो?" – मैंने पूछा। तब मुझे ऐसा लगा जैसेकि उसने जवाब दिया: "मेरा अभी तक कोई नाम ही नहीं रखा गया है"। गड़बड़ी यह है कि मुझे पता नहीं कि वास्तव में उसने ये शब्द कहे या नहीं क्योंकि वह मेरी दायीं ओर खड़ा था। तुम तो जानते ही हो कि मुझे दायें कान से कम सुनाई देता है। तुम्हारे कान बिल्कुल ठीक हैं इसलिये मैं इस शरारती को तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। अब तुम इससे पूछताछ करो।"

परंतु व्योलर भी हैटचेर तथा एकेबर्ग द्वारा आविष्कृत तत्त्वों के पारस्परिक संबंध समझने में असफल रहे। अंत में एक जर्मन रसायनज्ञ हेनरी रोज ने सन् 1844 में यह सिद्ध किया कि खनिज कोलंबाइट में दो तत्त्व उपस्थित हैं – पहला टैन्टेलम और दूसरा कोलंबियम। उन्होंने इस दूसरे तत्त्व का एक नया नाम रखा – नियोबियम। यह नाम उन्होंने यूनानी [illegible] की [illegible] नायिका टैन्टेलस की पुत्री देवी [illegible] मे रखा जिसे [illegible] था। परंतु [illegible] दिनों तक कुछ देशों में (अमरीका, ब्रिटेन) इसे पहले नाम से

पुकारा जाता रहा। 1950 में अंतर्राष्ट्रीय शुद्ध तथा अनुप्रयुक्त रसायन संगठन (UPAC) ने दो नामों के इस झगड़े का निबटारा कर दिया। यह फैसला किया गया कि भविष्य में इस तत्त्व को केवल नियोबियम नाम से पुकारा जायेगा।

आरंभ में अमरीकी तथा ब्रिटिश रसायनज्ञों ने इस फैसले का विरोध किया क्योंकि उनके विचार से यह ज्यादती वाली बात थी। परंतु संगठन का फैसला अंतिम था तथा अपील की कोई गुंजाइश नहीं थी। अत: "कोलंबियनों" को यह फैसला मानना पड़ा और शीघ्र ही अमरीका व ब्रिटेन के रसायनिक साहित्य में एक नया संकेताक्षर "Nb" दिखायी देने लगा।

नियोबियम और टैन्टेलम में बहुत अधिक रसायनिक समानता होने के कारण दोनों तत्त्व प्रकृति में "इकट्ठे रहते हैं"। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत समय तक इन धातुओं का औद्योगिक उत्पादन रुका रहा। 1866 में पहली बार स्वीटजरलैंड के एक रसायनज्ञ जोन गैलीसार्ड डि मारीन्याक इन "जुड़वा भाइयों" को पृथक करने में सफल हुए। उन्होंने इन धातुओं के कुछ यौगिकों के विलय गुणों में भिन्नता का लाभ उठाया: मिश्रित टैन्टेलीफ्लुओराइड जल में अविलेय होता है जबकि नियोबियमफ्लुओराइड जल में आसानी से घुल जाता है। पिछले दिनों तक इन दोनों धातुओं को पृथक करने के लिये डि मारीन्याक की विधि का प्रचलन रहा परंतु अब कुछ नयी बढ़िया विधियां अपनायी जा रही हैं जैसे, चयनशील निचोड़न, आयन विनिमय, हैलाजेनाइड परिशोधन आदि।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में एक फ्रेंच रसायनज्ञ हेनरी मोइसन ने विद्युत-तापीय प्रक्रम द्वारा शुद्ध नियोबियम प्राप्त किया (उन्होंने एक विद्युत भट्टी में कार्बन द्वारा नियोबियम आक्साइड का अपचयन किया)।

आज के जमाने में धात्विक नियोबियम का उत्पादन एक बहुचरणी जटिल प्रक्रम है। सबसे पहले नियोबियम अयस्क को सांद्रित किया जाता है। फिर इसे विभिन्न गालकों (कास्टिक सोडे, हाइड्रोसल्फेट या सोडे) के साथ प्रगलित करके विक्षारित करते हैं जिसके परिणामस्वरूप नियोबियम तथा टैन्टेलम के हाइड्रोआक्साइडों के अविलेय अवक्षेप प्राप्त होते हैं। इन्हें एक-दूसरे से अलग करने के लिये नियोबियम क्लोराइड या आक्साइड इस्तेमाल करते हैं। उच्च ताप पर इन यौगिकों का अपचयन करके नियोबियम पाउडर प्राप्त होता है जिसे निम्न विधि द्वारा एक ठोस व तन्य धातु में परिवर्तित किया जाता है।

सबसे पहले उच्च दाब पर पाउडर को वर्गाकार या आयताकार शलाकों में संहित कर लेते हैं। फिर इन शलाकों को निर्वात में कई चरणों में प्रगलित किया जाता है – अंतिम चरण पर तापमान 2350°C हो जाता है। इसके पश्चात नियोबियम को निर्वात आर्क भट्टी में डाला जाता है जहां नियोबियम अयस्क का धातु में परिवर्तित होने का प्रक्रम समाप्त हो जाता है।

पिछले कुछ सालों से इसके लिये एक नयी विधि अपनायी जा रही है। इसे इलेक्ट्रान-पुंज प्रगलन विधि कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसने बहुत कठिन मध्यवर्ती चरणों से पीछा छुड़वा दिया है जैसे निपीड़न तथा सिंटरन। पाउडर नियोबियम की ओर एक शक्तिशाली इलेक्ट्रान पुंज संकेंद्रित किया जाता है जो पाउडर को पिघाल देता है।

प्रगलित धातु की बूंदें नियोबियम की सिल्ली पर गिरने लगती हैं। पाउडर के पिघलने के साथ-साथ सिल्ली का आकार बढ़ता जाता है। इसे धीरे-धीरे चैंबर से बाहर निकाल लिया जाता है।

आपने देख ही लिया है कि नियोबियम अयस्क से नियोबियम प्राप्त करना कितना जटिल काम है।' परंतु इतनी मेहनत व्यर्थ तो नहीं होती। उद्योग जगत को आज नियोबियम की बड़ी सख्त जरूरत है। अजीब बात यह है कि इस धातु की जिंदगी कूड़े के ढेर से शुरू हुई। उन दिनों इसे टिन की एक हानिप्रद अशुद्धि समझा जाता था तथा टिन की खुदाई के दौरान जितना भी नियोबियम प्राप्त होता था उसे कूड़े में फेंक दिया जाता था। इस धातु की किस्मत तब भी नहीं पलटी जब उद्योग जगत टैन्टेलम में रुचि लेने लगा था। टैन्टेलम अयस्कों से जितना नियोबियम कूड़ा निकलता था उसे बेकार समझ कर फेंक दिया जाता था। परंतु जैसाकि कहा जाता है कि हर बुराई में कोई अच्छाई भी होती है। जैसे ही मनुष्य को नियोबियम की कीमत पता

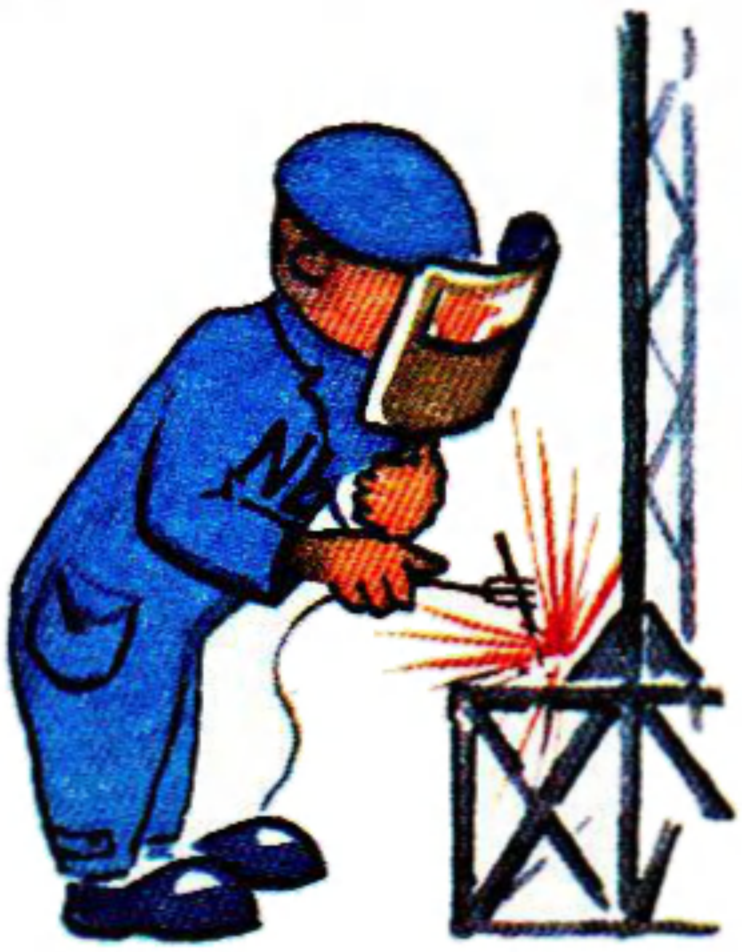

चल गयी, कूड़े के ये ढेर नियोबियम अयस्कों के "मूल्यवान निक्षेप" बन गये।

जैसे ही 1907 में जर्मन रसायनज्ञ फोन वोल्टेन ने ठोस नियोबियम प्राप्त कर लिया, इस तत्त्व को भी उच्च गलनांक वाले अपने "भाइयों" की तरह बिजली के बल्बों में तंतु के रूप में इस्तेमाल करके देखा गया। परंतु यह इस काम के अयोग्य सिद्ध हुआ। आप जानते ही हैं कि इस काम के लिये केवल एक तत्त्व उपयुक्त निकला – टंग्स्टन। बाकी सारी धातुओं को मजबूर होकर दूसरे पेशे ढूंढ़ने पड़े।

सन् 1925 में पहली बार नियोबियम का प्रयोग एक ऐलाय के रूप में करके देखा गया : संयुक्त राज्य अमरीका में तीक्ष्ण स्टील में टंग्स्टन की जगह नियोबियम प्रयुक्त किया गया। हालांकि ये प्रयोग असफल सिद्ध हुए, हां एक फायदा जरूर हुआ : धातुकर्मी नियोबियम में रुचि लेने लगे।

1930 में विश्व में नियोबियम की चीजों (पत्तों, तारों आदि) का कुल स्टाक केवल... 10 किलोग्राम था। परंतु शीघ्र ही इस धातु की कीमत पता चल गयी और इसका उत्पादन बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। नियोबियम ने यह दिखा दिया कि वास्तव में वह स्टील के लिये एक "विटामिन" है। क्रोमियम स्टील में नियोबियम मिलाने से स्टील की तन्यता श्रेष्ठ हो जाती है तथा संक्षारणप्रतिरोध बढ़ जाता था। प्रयोगों से पता चला कि जंगरोधी स्टील में नियोबियम (1% तक) मिलाने से कणों की सीमाओं पर क्रोमियम कार्बाइडों का अवक्षेपण बंद हो जाता है जिसके फलस्वरूप अंतराक्रिस्टलीय संक्षारण से छुटकारा मिल जाता है। निर्माण में प्रयुक्त स्टील में नियोबियम मिलाने से निम्न

तापों पर स्टील की घात प्रतिरोघक्षमता बहुत बढ़ जाती है। इस स्टील में अस्थिर भार सहने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है, जो एक महत्त्वपूर्ण गुण है। उदाहरण के लिये, वायुयान उद्योग में ऐसा स्टील बहुत उपयोगी होता है।

भविष्य में वेल्डिंग कार्य में नियोबियम बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला था। जब तक साधारण स्टील की वेल्डिंग से वास्ता पड़ता रहा, इस कार्य में कभी कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई। परंतु जैसे ही विशेष ऐलायों वाले स्टीलों की वेल्डिंग करनी पड़ी तो पता चला कि वेल्डिंग के बाद धातु के कई महत्त्वपूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं, उदाहरणतया, जंगरोधी स्टील की वेल्डिंग के बाद ऐसा देखने को मिला। समस्या यह थी कि टांके की कोटि उत्तम कैसे की जाये? वेल्डिंग उपकरण का डिजाइन बदल कर देखा गया, पर कोई फायदा नहीं हुआ। इलैक्ट्रोडों का संयोजन बदल दिया गया, इससे भी काम नहीं बना। वेल्डिंग का काम निष्क्रिय गैसों के माध्यम में करके देखा गया, अब भी कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर नियोबियम ही काम आया। जिस स्टील में इस तत्त्व को मिलाया गया उसके टांके की कोटि में जरा सी भी खराबी नहीं आयी: जिस जगह पर वेल्डिंग नहीं की गयी थी वहां की धातु और टांके वाली जगह की धातु में तनिक भी फर्क नहीं मिला।

पिछले दिनों तक दो उच्च गलनांक वाली धातुओं की वेल्डिंग के दौरान बड़ी कठिनाइयां सामने आती थीं जैसे नियोबियम के साथ मालिब्डेनम की वेल्डिंग के समय। निर्वात ने इन परेशानियों से हमेशा के लिये पीछा छुड़वा दिया। पता चला कि साधारण अवस्थाओं के मुकाबले निर्वात में बहुत सारी धातुओं का गलनांक निम्न होता है। बस, वैज्ञानिकों ने तुरंत इस गुण का फायदा उठाया। उन्होंने उच्च गलनांक वाली धातुओं की वेल्डिंग निर्वात में करके देखी। प्राप्त परिणामों से वे पूर्णतया संतुष्ट थे।

अलौह धात्विकी में नियोबियम एक ऐलाय के रूप में विख्यात है। उदाहरणतया, ऐलुमिनियम क्षारों में बड़ी आसानी से घुल जाता है परंतु जैसे ही इसमें 0.05% नियोबियम मिला दिया जाता है, क्षारों का इस पर कोई असर नहीं पड़ता। ताम्र तथा उसके ऐलायों में नियोबियम मिलाने से उनकी सख्ती बढ़ जाती है। नियोबियम से टाइटेनियम, मालिब्डेनम तथा जिर्कोनियम की तापप्रतिरोधता तथा मजबूती श्रेष्ठ हो जाती है। निम्न तापों पर बहुत सारे ऐलाय तथा स्टील की कई किस्में कांच की तरह भंगुर होती हैं। नियोबियम इस खराबी से उन्हें छुटकारा दिलवा सकता है। केवल 0.7% नियोबियम मिलाने से $-80°C$ ताप पर भी धातु की मजबूती कायम रहती है। यह गुण जेट हवाई जहाजों के पुर्जों के लिये बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि ये हवाई जहाज बहुत अधिक ऊंचाई पर उड़ते हैं।

नियोबियम को अन्य तत्त्वों के साथ दोस्ती करने का शौक भी है। जब अमरीकी फर्म 'वेस्टिंगहाउस' ने अतिशुद्ध नियोबियम का उत्पादन शुरू कर दिया तो खरीदारों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि यह नियोबियम 2500°C पर भी पिघल नहीं रहा था, हालांकि शुद्ध नियोबियम का गलनांक 2468°C है। प्रयोगशाला में विश्लेषण से उन्हें पता चला कि फर्म ने "अतिशुद्ध"

नियोबियम में थोड़ा सा जिर्कोनियम मिला दिया था। इस घटना से एक तापप्रतिरोधी ऐलाय – नियोबियम-जिर्कोनियम ऐलाय का पता चल गया।

कुछ धातुएं ऐसी हैं जिनके मिलाने से नियोबियम में कई नयी विशेषताएं आ जाती हैं। टंग्स्टन तथा मालिब्डेन धात्विक नियोबियम का तापप्रतिरोध उच्च कर देते हैं, ऐलुमिनियम इसकी मजबूती बढ़ा देता है, ताम्र इसकी विद्युतचालकता बढ़ा देता है। शुद्ध नियोबियम की विद्युतचालकता ताम्र से आठ गुना कम होती है परंतु अगर उसमें 20% ताम्र मिला दिया जाये तो उसकी विद्युतचालकता उच्च हो जाती है तथा वह शुद्ध ताम्र से दुगुना ज्यादा मजबूत और सख्त हो जाता है। नियोबियम में अगर टैन्टेलम मिला दें तो 100°C ताप पर भी सल्फ्यूरिक तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का नियोबियम पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

जेट इंजनों के टर्बाइन ब्लेडों में तापमान बहुत उच्च हो जाता है। अतः इनके निर्माण में ऐसे ऐलायों का प्रयोग किया जाता है जो अधिक से अधिक तापमान पर भी अपनी मजबूती कायम रखें। इन ऐलायों में नियोबियम जरूर मिलाया जाता है। नियोबियम-युक्त ऐलायों तथा शुद्ध नियोबियम से सुपरसोनिक जेटों, अंतरिक्ष राकेटों तथा पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रहों के कुछ पुर्जे बनाये जाते हैं।

अगर कुछ साल पहले अतिचालकता में केवल भौतिकविद् रुचि लेते थे तो आज इसका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। प्रयोगशालाओं से बाहर निकलकर यह तकनीक पर "कब्जा" करने जा रही है जहां उसके विस्तृत व्यावहारिक प्रयोग की बड़ी संभावनाएं खुल जाती हैं। आप पूछेंगे कि अतिचालकता क्या चीज है?

70 से भी ज्यादा साल पहले वैज्ञानिकों को यह पता चल गया था कि बहुत निम्न तापमानों पर कई धातुओं, ऐलायों तथा रसायनिक यौगिकों में प्रवाहित करते समय विद्युत धारा की किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है अर्थात् उनकी प्रतिरोध क्षमता खत्म हो जाती है। परंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक बात आवश्यक थी कि धातु को परम शून्य तक ठंडा करना जरूरी होता था अर्थात् 273°C तक। सभी ज्ञात पदार्थों में नियोबियम स्टैनाइड (नियोबियम और टिन का एक यौगिक) में अतिचालकता अवस्था प्राप्त करने का तापमान सर्वोत्तम होता है (18°K अर्थात् −255°C)। इन तत्त्वों के ऐलायों से बनी अतिचालक चुंबकीय कुडलियों का चुम्बकीय क्षेत्र अतिविशाल होता है। ऐसे ऐलाय का बना फीता 16 सेंटीमीटर व्यास तथा 1 सेंटीमीटर ऊंचाई वाले एक चुम्बक पर लपेट दिया जाये तो इसके चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति 1 लाख ओर्स्टेड तक पहुंच सकती है (तुलना करें: पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति केवल कुछ ओर्स्टेड होती है)।

नियोबियम शुद्ध रूप में भी तकनीक में इस्तेमाल किया जाता है। अतिउच्चसंक्षारण-प्रतिरोधक्षमता के कारण यह धातु रसायनिक इंजीनियरी में बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। आपको शायद इस बात की जानकारी नहीं है कि हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उत्पादन में यह दो रूपों में प्रयुक्त किया जाता है – निर्माण-सामग्री तथा उत्प्रेरक के रूप में। इसके उत्प्रेरक गुण के फलस्वरूप अम्ल की सांद्रता उत्तम हो जाती है। नियोबियम के

उत्प्रेरक गुण कई अन्य प्रक्रियाओं में भी काम आते हैं उदाहरण के लिये, ब्यूटाडाइन से ऐल्कोहॉल का संश्लेषण करने में।

जिर्कोनियम की तरह नियोबियम भी परमाणु रिऐक्टरों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। कई बार तो यह जिर्कोनियम का मुकाबला तक कर लेता है। इसमें जिर्कोनियम के लगभग सभी गुण विद्यमान हैं—न्यूट्रान पारदर्शता, अतिउच्च गलनांक, बड़ी तापरोधता, उच्च रसायनिक प्रतिरोध, अच्छे यांत्रिक गुण। इसके अलावा नियोबियम पर गलित क्षारीय धातुएं न के बराबर असर करती हैं। द्रव सोडियम और पोटेशियम स्वतंत्रतापूर्वक नियोबियम पाइपों में प्रवाहित हो सकते हैं। ये धातुएं कुछ परमाणु रिऐक्टरों में तापवाहकों के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं। नियोबियन में एक और भी विशेषता होती है, इसमें कृत्रिम रूप से विघटनाभिक क्षमता बढ़ाने की संभावना बहुत कम है जिसकी वजह से इस धातु से विघटनाभिक कूड़े के संचय या कूड़े के इस्तेमाल के लिये बक्से बनाये जा सकते हैं।

इस धातु के एक और गुण की चर्चा जरूरी है—इसमें गैसों के अवशोषण की अद्वितीय क्षमता होती है। उदाहरणतया, साधारण ताप पर 1 ग्राम नियोबियम 100 घन सेंटीमीटर से भी अधिक हाइड्रोजन सोख सकता है तथा 500°C ताप पर नियोबियम में हाइड्रोजन की विलयनक्षमता 75 घन सेंटीमीटर प्रति ग्राम होती है। धातु के इस गुण का इस्तेमाल उच्च निर्वात इलैक्ट्रान ट्यूबों के निर्माण में किया जाता है। ट्यूबों को खाली करते समय थोड़ी-बहुत गैसें अंदर जरूर रह जाती हैं जो काम में बाधा डालती हैं। ट्यूबों में लगा नियोबियम इन गैसों को एक स्पंज की तरह सोख लेता है जिसके परिणामस्वरूप उच्च निर्वात्त कायम रहता है। टैन्टेलम या टंग्स्टन के मुकाबले नियोबियम के पुर्जे सस्ते पड़ते हैं तथा इनकी उम्र भी ज्यादा होती है। उदाहरणतया, नियोबियम कैथोड वाली जेनेरेटर ट्यूबें 10000 घंटे तक काम कर सकती हैं।

टैंटेलम की तरह नियोबियम भी मनुष्य के ऊतकों पर बिल्कुल भी बुरा प्रभाव नहीं डालता। यह ऊतकों के साथ मिल जाता है तथा द्रव माध्यम में बहुत देर तक रहने पर भी निष्क्रिय बना रहता है। इन गुणों के कारण शल्यचिकित्सकों ने इसका इस्तेमाल शुरू कर दिया है और अब यह खुद को "अस्पताल का एक जिम्मेदार कर्मचारी" बता सकता है।

पिछले दिनों से एक अफवाह फैली हुई है कि नियोबियम "वित्तीय कार्रवाइयों" में भाग लेने जा रहा है। बात यह है कि रजत की कमी की वजह से अमरीकी पूंजीपति नियोबियम के सिक्के बनाने की सलाह दे रहे हैं क्योंकि दोनों धातुओं का मूल्य एक जैसा है।

भू-पर्पटी में नियोबियम की मात्रा के बारे में जितने भी आंकड़े इकट्ठे किये गये हैं, वे यह बताते हैं कि पिछले कुछ दशकों से इस तत्त्व की मात्रा बढ़ती जा रही है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि पृथ्वी पर इस धातु के भंडार स्थायी हैं परंतु इसके निक्षेपों की संख्या लगातार बढ़ रही है। हाल ही में अफ्रीका में नियोबियम अयस्कों के विशाल निक्षेप मिले हैं। विश्व-मंडी में नाइजेरिया सबसे ज्यादा नियोबियम-सांद्रक भेज रहा है। इस देश में कोलंबाइट के विशाल निक्षेप हैं।

सोवियत संघ में कोला प्रायद्वीप को खनिजों

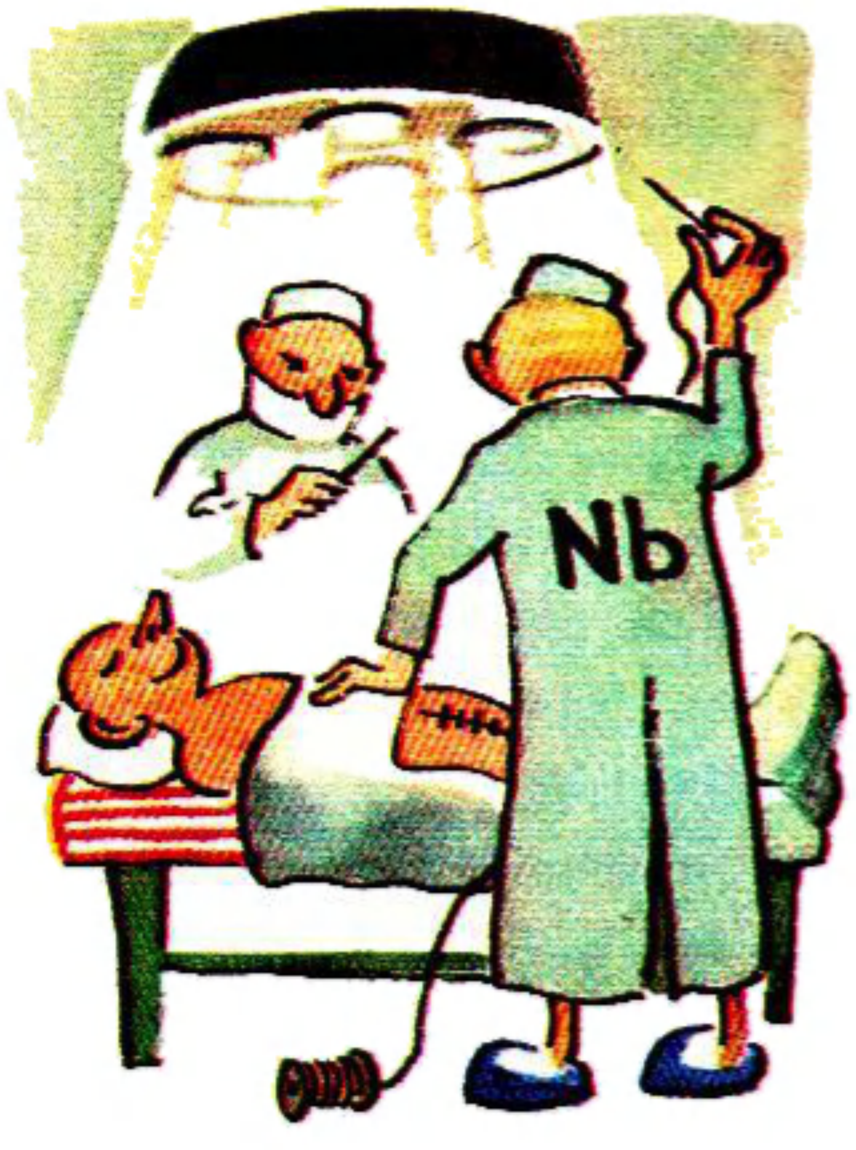

का खजाना कहा जा सकता है। सदियों तक इस इलाके की जमीन को वेकार तथा उजाड़ समझा जाता रहा। हालांकि 1763 में विख्यात रूसी वैज्ञानिक लोमोनोसोव ने निम्न भविष्यवाणी की थी : "मुझे ऐसे कई सबूत मिले हैं जिनके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि उत्तरी इलाके की जमीन कुदरती उपहारों से भरपूर है तथा श्वेत सागर के तट पर खनिज मिलने चाहिये"। सोवियत सरकार की स्थापना होते ही इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये। इस इलाके में बहुत सारे महत्त्वपूर्ण निक्षेप ढूंढ़े गये हैं, दसियों कीमती खनिज प्राप्त किये गये हैं जिनमें लोपैराइट भी शामिल है। इस खनिज में 8% तक नियोबियम उपस्थित होता है। इस खनिज की खोज का श्रेय सुप्रसिद्ध रूसी अन्वेषक अलेक्सान्द्र फेर्समान को जाता है। उन्हें कोला प्रायद्वीप का अध्ययन करते समय यह खनिज खिबीनी पहाड़ों में मिला। खास बात यह है कि लोपैराइट दुनिया के किसी और कोने में नहीं मिलता है।

... तो हमने आपका फ्लैट नंबर इकतालिस के मालिक से परिचय करवा ही दिया, जिसके दरवाजे पर "नियोबियम" का नामपट्ट लगा हुआ है।

लोहे का दोस्त

मसाले के बिना मजा नहीं आता है – दूसरे के नाम से – प्राचीन यूनानवासियों की गलती – 1600 मंजिली गगनचुम्बी इमारत – समतल सड़क पर कार दुर्घटना – हज्जामों के काम की चीज – टंग्स्टन तंतु के लिये होल्डर – "यह बोझ मैं खुद उठाऊंगा" – कॉंच का रंग बदल जाता है – सच्चे दोस्त – सामूराइयों की तलवारों का रहस्य – टैंक नष्ट करना असंभव हो जाता है – शेविंग ब्लेड – "सजातीय आत्माएं" – ठंड का डर नहीं है – मनुष्य के "अतिरिक्त पुर्जे" – सेम का कृपापात्र – बालों का रंग मेंहदी जैसा क्यों हो जाता है? – बिनबुलाये मेहमान – साधारण भूमिका – "मिलिटरी" धातु – पहाड़ की चोटी पर – करोड़ों मीटर लंबी तार – "खजाने" की चाबी कहां है?

जिस प्रकार रसोइया खाना जायकेदार बनाने के लिये उसमें मसाले मिलाते हैं, उसी प्रकार स्टील बनाने वाला स्टील को बढ़िया करने के लिये उसमें विभिन्न ऐलाय तत्त्व मिलाता है।

हर मसाले का असर अलग होता है। कुछ खाने को स्वादिष्ट बना देते हैं, दूसरे उसे खुशबूदार बना देते हैं, तीसरे चटपटा बना देते हैं, चौथे ...। मसालों की सारी खूबियों का वर्णन काफी मुश्किल काम है। परंतु स्टील में क्रोमियम, टाइटेनियम, निकैल, टंग्स्टन, मालिब्डेनम, वैनेडियम, जिर्कोनियम तथा अन्य तत्त्वों से जो गुण आ जाते हैं, उनका वर्णन इससे भी मुश्किल है।

इस अध्याय में हम लोहे के एक पक्के दोस्त – मालिब्डेनम की चर्चा करने जा रहे हैं।

मालिब्डेनम की खोज 1778 में स्वीडिश रसायनज्ञ कार्ल विलियम शैले ने की। इस तत्त्व का नाम यूनानी शब्द "मालिब्डोस" से लिया गया। नये तत्त्व का यूनानी नाम रखना कोई नयी बात नहीं थी। उन दिनों बहुत सारे रसायनज्ञ नये तत्त्वों का नाम रखते समय यूनानी भाषा का सहारा लेते थे। परंतु आश्चर्य की बात यह थी कि यूनानी भाषा में "मालिब्डोस" का अर्थ होता है – लैड। मालिब्डेनम को दूसरे तत्त्व का नाम क्यों लेना पड़ा? और फिर यह दूसरा तत्त्व लैड ही क्यों था?

इन प्रश्नों का उत्तर आसानी से मिल जाता है। बात यह थी कि प्राचीन यूनान-वासियों को लैड का एक खनिज – गैलेनाइट ज्ञात था। वे लोग इसे "मालिब्डेना" कहते थे। परंतु इसके साथ-साथ उन्हें प्रकृति में एक और खनिज भी मिलता था – "मालिब्डे-

नाइट" जो गैलेनाइट की हूबहू कापी था। इस समानता से यूनानवासी गलतफहमी में पड़ गये: वे इन दोनों को एक खनिज "मा-लिब्डेना" समझने लगे। अन्य देशों के रसा-यनज्ञों का भी यही मत था। यही वजह थी कि जब शैले को इस खनिज में एक अज्ञात तत्त्व मिला, उन्होंने बिना झिझके इसका नाम मालिब्डेनम रख दिया।

सन् 1783 में स्वीडिश रसायनज्ञ हेल्म ने यह तत्त्व धात्विक पाउडर के रूप में प्राप्त कर लिया परंतु यह पूर्णतया शुद्ध मालिब्डेनम नहीं था: इसमें कार्बाइड मिले हुए थे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि शुद्ध मालिब्डेनम प्राप्त करने में पूरे 100 साल लग गये।

आवर्त सारणी के अपने कई "भाई-बंधुओं" की तरह मालिब्डेनम भी अशुद्धियां बिल्कुल पसंद नहीं करता। अपनी नाराजगी जाहिर करने के लिये यह अपने गुण बिगाड़ देता है। 0.001% या 0.0001% आक्सीजन

या नाइट्रोजन मालिब्डेनम को बहुत भंगुर कर देते हैं। इसी कारण बीसवीं शताब्दी के आरंभ में प्रकाशित रसायन की कई निदर्शिकाओं में यह कहा गया कि शुद्ध मालिब्डेनम का मशीनरी में उपयोग लगभग असंभव है। जबकि सच यह है कि मालिब्डेनम बहुत सख्त होते हुए भी काफी तन्य होता है. इसे आसानी से लपेटा जा सकता है तथा इसका फोर्जन बहुत सरल होता है।

कई शताब्दियों पहले मालिब्डेनम ने अपना कामकाज स्लेट-पेंसिलों के रूप में शुरू किया। उन दिनों इन पेंसिलों का निर्माण खनिज मालिब्डेनाइट से किया जाता था (आप शायद जानते ही होंगे कि आज भी यूनानी भाषा में पेंसिल को "मालिब्डोस" कहते हैं)। ग्रेफाइट की तरह मालिब्डेनम भी असंख्य सूक्ष्म पपड़ियों का बना होता है। इन पपड़ियों की मोटाई इतनी कम होती है कि अगर 1600 ऐसी पपड़ियां एक दूसरे के ऊपर रख दी जायें तो उनकी कुल ऊंचाई 1 माइक्रोन के बराबर होगी। इन पपड़ियों के कारण ही मालिब्डेनाइट लिखने और ड्राइंग बनाने की 'क्षमता' रखता है। यह कागज पर हरे-भूरे रंग के निशान बना देता है।

आज आपको मालिब्डेनाइट की बनी स्लेट-पेंसिलें दिखाई नहीं देतीं। इसका कारण यह है कि ग्रेफाइट ने पेंसिल उद्योग कब्जे में कर लिया है। परंतु मालिब्डेनम डाइसल्फाइट (मालिब्डेनाइट का रसायनिक नाम) ने एक और काम ढूंढ़ लिया है। इसका वर्णन करने से पहले, आइये, हम आपको एक किस्सा सुनाते हैं।

इस घटना को बीते कई साल हो गये हैं। सोवियत संघ में सिम्फेरोपोल हाइवे पर "जापोरोजेत्स" कारों का परीक्षण चल रहा

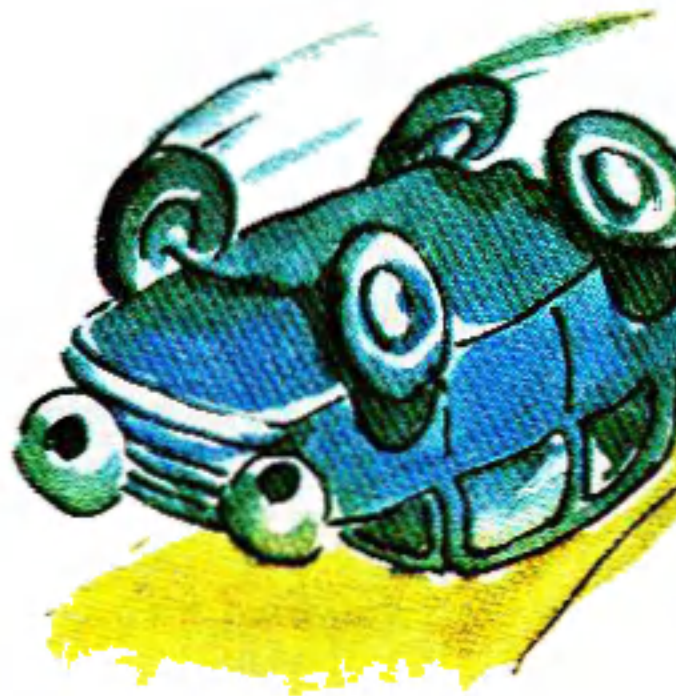

था। सारे काम ठीक हो रहे थे परंतु अचानक पूरी रफ्तार से दौड़ रही एक कार समतल सड़क पर उलट गयी। भाग्यवश कार में बैठे लोगों को बिल्कुल चोट नहीं लगी। विशेषज्ञों के लिये दुर्घटना का कारण एक पहेली बना रहा परंतु जैसे ही उन्होंने कार के सारे पुर्जे खोल दिये, राज खुल गया। पता चला कि ट्रांसमीशन का एक गियर, जिसे स्टील खोल में आराम से घूमना चाहिये था, इस खोल के साथ कसकर चिपक गया था। स्वाभाविक था कि ऐसे "ब्रेक" ने उसी क्षण करामात दिखायी जिसके परिणामस्वरूप कार तुरंत उलट गयी।

ऐसी दुर्घटनाओं से बचने के लिये एक उचित स्नेहक चाहिये था। बस, यहीं मालिब्डेनाइट याद आया। विशेषज्ञों ने अतिसूक्ष्म पपड़ियों में टूटने की इसकी क्षमता का लाभ उठाने का फैसला किया। इन पपड़ियों को ही गियर के पुर्जों में स्नेहक का काम करना था।

स्टील के पुर्जे को 2% मालिब्डेनम डाइसल्फाइड विलयन में क्षण भर के लिये डुबाने से ही उसकी सतह पर ठोस स्नेहक की बढ़िया तह जम जाती है। परंतु इस स्नेहक को एक खतरनाक दुश्मन का डर रहता है।

यह उच्च ताप नहीं सह पाता है। गर्म होने पर मालिब्डेनम डाइसल्फाइड मालिब्डेनम ऐन्हाइड्राइड में परिवर्तित होना शुरू हो जाता है। यह पुर्जों को किसी तरह की हानि तो नहीं पहुंचाता परंतु दुर्भाग्यवश स्नेहक गुणों से वंचित होता है। इस समस्या को कैसे हल किया जाये?

इंजीनियरों को यह पता चला कि पुर्जे को डाइसल्फाइड में डुबाने से पहले गर्म फास्फेट में डालना जरूरी है। इससे डाइसल्फाइड के कण फास्फेट लेप के सूक्ष्म रंध्र तक पहुंच जाते हैं और पुर्जे की ऊपरी सतह पर स्नेहक की एक अतिमहीन परत जम जाती है जो बड़े से बड़ा बोझ सह सकती है– एक वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्र कई टन बोझ सह सकता है। गियर के खोलों पर ऐसे लेप चढ़ाकर कठिन से कठिन परिस्थितियों में कारें चलाकर परीक्षण किये गये। हर बार गियर ठीक काम करते रहे। बस तब से "जापोरोजेत्स" कारें लंबे से लंबा सफर तय करती आ रही हैं और गियर के इस खतरनाक पुर्जे ने ड्राइवरों को कभी धोखा नहीं दिया है।

मालिब्डेनम डाइसल्फाइड के गुण केवल यहीं तक सीमित नहीं हैं कि वह स्टील के लिये स्नेहक का काम करता है। अगर कर्तन औजार पर मालिब्डेनाइट का लेप चढ़ा दिया जाये तो उसकी मजबूती और कार्य अवधि बढ़ जाती है। हज्जामों ने मालिब्डेनाइट की इस खूबी का तुरंत फायदा उठाया।

आइये, मालिब्डेनम की ओर लौटें। उच्च गलनांक तथा निम्न तापीय प्रसरण के कारण मालिब्डेनम विद्युत इंजीनियरी, रेडियो इलेक्ट्रानिक तकनीक तथा उच्चतापी इंजीनियरी में विस्तृत रूप से प्रयुक्त किया जाता है। एक साधारण बल्ब में टंग्स्टन तंतु जिन हुकों पर लटके होते हैं वे मालिब्डेनम के ही तो बने होते हैं। इसके अलावा रेडियो-लैंपों तथा एक्सरे ट्यूबों के बहुत सारे पुर्जों में भी यही धातु इस्तेमाल की जाती है। शक्तिशाली वैद्युत निर्वात प्रतिरोध भट्टियों में बहुत उच्च ताप पैदा करने के लिये मालिब्डेनम कुंडलियां लगायी जाती हैं।

यूक्रेइन की विज्ञान अकादमी के द्रव्य अध्ययन संस्थान में वैज्ञानिकों ने बहुत उपयोगी पदार्थ प्राप्त किये हैं। उन्होंने ऐलुमिनियम, ताम्र, निकैल, कोबाल्ट, टाइटेनियम जैसी तन्य धातुएं मूल पदार्थ के रूप में लेकर टंग्स्टन और मालिब्डेन जैसी अधिक मजबूत धातुओं से प्रबलन के तंतु बनाये हैं जो तनाव सहते हैं। इस प्रकार के संयोजन से तंतुओं की मजबूती बहुत बढ़ जाती है। उदाहरणतया, टंग्स्टन या मालिब्डेनम द्वारा प्रबलित होने पर निकैल और कोबाल्ट की मजबूती तीन गुना बढ़ जाती है। साधारण टाइटेनियम के मुकाबले मालिब्डेनम प्रबलित टाइटेनियम दो गुना ज्यादा मजबूत होता है।

कुछ साल पहले संयुक्त राज्य अमरीका में एक अद्भुत किस्म का कांच बनाया गया। यह कांच पहर के अनुसार अपना रंग बदलता रहता है। सूरज की रोशनी में इसका रंग नीला हो जाता है तथा अंधेरे में यह पारदर्शी हो जाता है। कांच को यह गुण मालिब्डेनम देता है जिसे या तो गलित कांच में मिला देते हैं या कांच की दो तहों के बीच एक पारदर्शी फिल्म के रूप में लेप देते हैं।

मालिब्डेनम के यौगिकों के उपयोग विविध हैं। इनसे एनैमलों की आवरण-शक्ति उच्च

हो जाती है। मालिब्डेनम रंजक चीनी-मिट्टी, प्लास्टिक, चर्मशोधन, फर तथा वस्त्र उद्योग में प्रयुक्त किये जाते हैं। मालिब्डेनम ट्राइ-आक्साइड पेट्रोल भंजन तथा अन्य रसायनिक प्रक्रियाओं में उत्प्रेरक का काम करता है।

आपने देख ही लिया है कि मालिब्डेनम के पास कितने सारे काम हैं। परंतु अभी तक हमने इसके असली धंधे की जरा सी भी चर्चा नहीं की है। आपको याद होगा कि इस अध्याय के आरंभ में मालिब्डेनम को लोहे का जिगरी दोस्त कहा गया है। अतः अब हम लोहे और मालिब्डेनम की मित्रता का सविस्तार वर्णन करना चाहेंगे। आपको शायद यह जानकारी होगी कि विश्व में मालिब्डेनम के कुल उत्पादन का 75% भाग स्टील उद्योग में खप जाता है। रूस में मालिब्डेनम स्टील का उत्पादन 1886 में शुरू हुआ। धातुविज्ञानियों ने सेंट-पीटर्सवर्ग के पुतीलोव प्लांट में 3.7% मालिब्डेनियमयुक्त स्टील बना लिया। परंतु मालिब्डेनम के इस गुण के उपयोग का इतिहास इस घटना मे कहीं ज्यादा पुराना है।

सामूराइयों की तलवारों की धार इतनी तेज क्यों होती है? इस रहस्य को बहुत दिनों तक कोई नहीं समझ पाया। धातु-कर्मियों की कई पीढ़ियों ने इस तरह का स्टील बनाने के लिये हर संभव प्रयास अपनाये परंतु हर बार असफलता ही मिली। विख्यात रूसी धातुविज्ञानी पावेल आनोसोव (1799-1851) ने भी इस काम को हाथ में लिया और उनके प्रयास व्यर्थ नहीं गये। आखिर इस रहस्यमयी स्टील का राज खुल ही गया। पता चला कि जापानी लोग स्टील में मालिब्डेनम मिलाते थे जो धातु (स्टील) की मजबूती और तन्यता दोनों गुण उत्तम कर देता था। हालांकि आम तौर पर यह होता था कि धातु की मजबूती बढ़ाने से उसकी भंगुरता भी बढ़ जाती थी।

बकतर स्टील के लिये मजबूती तथा तन्यता का संयोजन बहुत सख्त जरूरी है। 1916 में प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन और फ्रांस की सेनाओं के पास जो टैंक थे वे मजबूत परंतु भंगुर मैंगनीज स्टील के बने थे। हालांकि इनकी दीवारों की मोटाई 75 मिलीमीटर थी परंतु फिर भी ये जर्मन तोपों के सामने ठहर नहीं सके। जर्मन सेना के गोले इन टैंकों को ऐसे वेध रहे थे जैसे चाकू मक्खन को। परंतु जैसे ही इन टैंकों के स्टील में केवल 1.5-2% मालिब्डेनम मिला दिया गया, इन्हें नष्ट करना असंभव हो गया हालांकि अब इनकी दीवारों की मोटाई तीन गुना कम कर दी गयी थी।

बकतर में यह जादूई ताकत कैसे आ गयी? बात यह है कि मालिब्डेनम स्टील के क्रिस्टलीकरण की प्रक्रिया के दौरान कणों की वृद्धि पर रोक लगा देता है और स्टील को सूक्ष्मकणिक तथा समांगी बना देता है जिसकी वजह से धातु के उत्तम गुण कायम रहते हैं। ऐलाय स्टील की अधिकांश किस्मों को भंगुरता का भय लगा रहता है परंतु जिन स्टीलों में ऐलाय का काम मालिब्डेनम करता है उन्हें इस "बीमारी" की परवाह नहीं होती। इन स्टीलों पर बिना किसी डर के तापीय उपचार किया जा सकता है क्योंकि उनके अंदर आंतरिक प्रतिबल पैदा होने की संभावना खतम हो जाती है। मालिब्डेनम स्टील की मजबूती काफी उच्च कर देता है। ऐसा स्टील उच्चतापसह होता है तथा उसका

विसर्पण प्रतिरोध भी उच्च होता है। टंग्स्टन भी स्टील पर इसी तरह का असर करता है परंतु मालिब्डेनम स्टील की मजबूती ज्यादा बढ़ाता है। 0.3% मालिब्डेनम वही असर करता है जो 1% टंग्स्टन और फिर टंग्स्टन मालिब्डेनम से महंगा भी तो होता है।

मालिब्डेनम स्टील का कार्यक्षेत्र बकतर स्टील तक ही सीमित नहीं है। बंदूकों की नालें, हवाई जहाजों और कारों के पुर्जे, बायलर, टर्बाईनें, कर्तन औजार तथा शेविंग ब्लेड – ये सारी चीजें मालिब्डेनम स्टील से बनायी जाती हैं। मालिब्डेनम ढलवां लोहे पर भी अनुकूल प्रभाव डालता है: यह उसकी मजबूती तथा कार्यअवधि बढ़ा देता है।

मालिब्डेनम में उत्तम ऐलाय गुण होने का कारण यह है कि इसका क्रिस्टलीय जालक लोहे के जालक का समरूपी होता है और इनके परमाणुओं की त्रिज्याएं भी लगभग बराबर सी होती हैं। इन बातों की वजह से "सजातीय आत्माएं" आपस में आसानी से घुलमिल जाती हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मालिब्डेनम की दोस्ती सिर्फ लोहे के साथ है। इसके ऐलुमिनियम, क्रोमियम, कोबाल्ट तथा निकैल ऐलायों का अम्ल प्रतिरोध बहुत उच्च होता है जिसके कारण इन्हें रसायनिक उपकरणों में प्रयुक्त किया जाता है। इन तत्त्वों के कुछ ऐलायों का घर्षण-प्रतिरोध भी उच्च होता है। मालिब्डेनम तथा टंग्स्टन के ऐलाय प्लैटिनम की जगह इस्तेमाल किये जा सकते हैं। ताम्र तथा रजत के साथ इस धातु के ऐलाय विद्युत संपर्कों के निर्माण में प्रयुक्त किये जाते हैं।

प्रशीतन तकनीक में द्रवित गैसों का, विशेष रूप से नाइट्रोजन का बहुत प्रचलन है। इस गैस को द्रवित अवस्था में रखने के लिये हद से ज्यादा शीतन आवश्यक है – तापमान –200°C। साधारण स्टील इतने निम्न तापमान को नहीं सह पाता जिसका परिणाम यह होता है कि वह कांच जैसा भंगुर बन जाता है। इस परेशानी से बचने के लिये द्रवित नाइट्रोजन के डिब्बे विशेष किस्म के शीतप्रतिरोधी स्टील से बनाये जाते हैं। परंतु बहुत दिनों तक इस स्टील में एक कमी बनी रही – वेल्डिंग की टांकें बहुत कच्ची निकलती थी। इस कमी को दूर करने में मालिब्डेनम ने मदद की। शुरू में वेल्डिंग में जिन यौगिकों का प्रयोग किया जाता था उनमें क्रोमियम मिलाया जाता था।

पता चला कि क्रोमियम ही इस खराबी का जिम्मेदार था। वैज्ञानिकों ने इसकी जगह मालिब्डेनम इस्तेमाल करने का फैसला किया। सिद्ध हो गया कि मालिब्डेनम वास्तव में टांकों को भंजन से रक्षा करता है। बहुत सारे परीक्षणों के बाद यह तय किया गया कि 20% मालिब्डेनम का मिश्रण सर्वोत्तम है। बस तब से टांके भी -200°C की भयंकर ठंड उतनी ही आसानी से झेल लेते हैं जैसे स्टील।

हाल ही में धातुविज्ञानियों ने कोबाल्ट, मालिब्डेनम तथा क्रोमियम से एक अद्वितीय ऐलाय "कोमाक्रोम" बनाया है। यह "मनुष्य के अतिरिक्त पुर्जों" का कार्य करता है। जी हां, हम मनुष्य के शरीर के पुर्जों की बात कर रहे हैं। बात यह है कि कोमाक्रोम शरीर के लिये बिल्कुल भी हानिकारक नहीं है। अत: जिस मरीज के जोड़ ठीक काम नहीं कर रहे होते, उसके शरीर में सर्जन लोग कोमाक्रोम के बने जोड़ फिट कर देते हैं।

मालिब्डेनम कृषि-उद्योग में भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। सन् 1965 में सोवियत

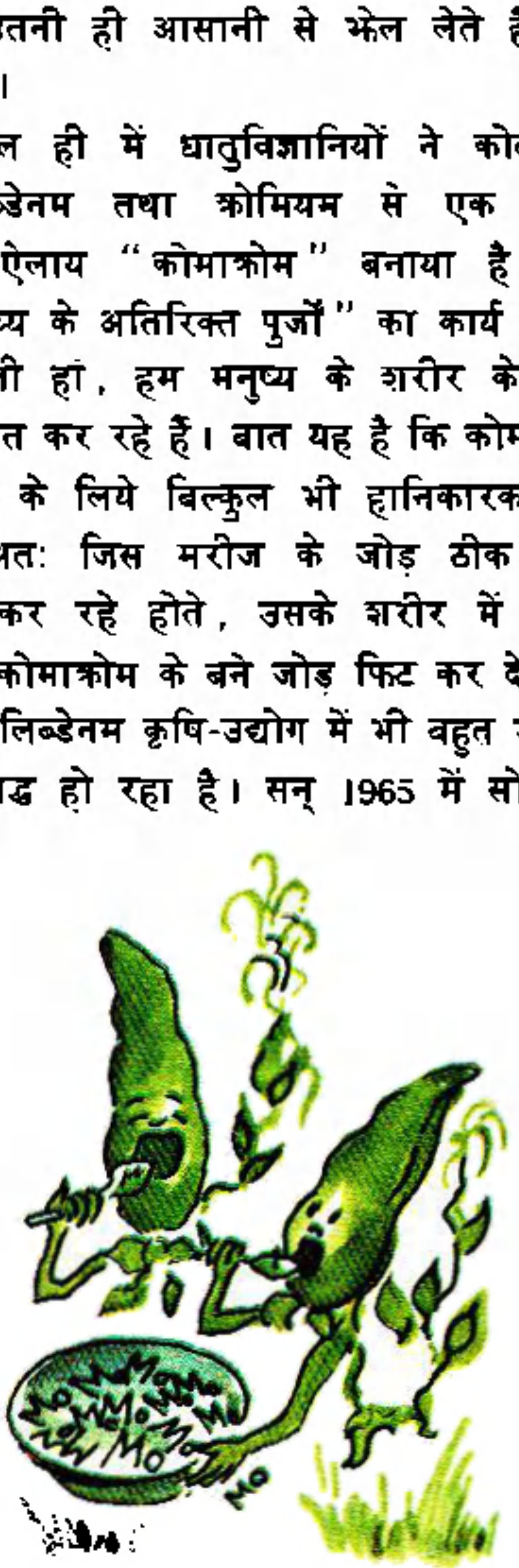

वैज्ञानिकों के एक दल को सूक्ष्मतत्त्वों की जीवविज्ञानी भूमिका तथा कृषि उद्योग में उनके उपयोग संबंधी अनुसंधान कार्य के लिये लेनिन पुरस्कार दिया गया। मिट्टी में या जानवरों के चारे में अगर कुछ तत्त्वों की बहुत जरा सी मात्रा मिला दी जाये तो एक जादू सा हो जाता है। मालिब्डेनम भी ऐसा जादू करता है। इस तत्त्व की बहुत थोड़ी सी मात्रा से कई फसलों की पैदावार बढ़ जाती है तथा कोटि भी उत्तम हो जाती है। सेम के पौधों को तो मालिब्डेनम से विशेष लगाव है। अमोनियम मालिब्डेट में संसाधित मटर के बीजों से आम से ज्यादा फसल मिली। मालिब्डेनम पौधों के कंदों में सांद्रित होकर वायुमंडल से नाइट्रोजन लेने में उनकी सहायता करता है जो पौधों के विकास के लिये परम आवश्यक है। मालिब्डेनम की उपस्थिति से वनस्पतियों के ऊतकों में प्रोटीन, क्लोरोफिल तथा विटामिनों की मात्रा बढ़ जाती है। इतना गुणकारी होते हुए भी मालिब्डेनम कुछ खर-पतवारों के लिये हानिकारक रहता है।

ओसाका विश्वविद्यालय में जापानी वैज्ञानिक ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य किये हैं। आधुनिकतम उपकरणों की सहायता से मनुष्य के जले बालों के अवशेषों के अध्ययन से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि बालों का रंग उनके अंदर उपस्थित धातुओं की अतिसूक्ष्म मात्रा पर निर्भर करता है। उदाहरणतया, चमकीले बालों में निकैल ज्यादा होता है, सुनहरे बालों में टाइटेनियम विस्तृत होता है। लाल बालों वाले लोग अगर अपने बालों के रंग से असंतुष्ट हैं तो उन्हें मालिब्डेनम को दोष देना चाहिये क्योंकि जापानी वैज्ञानिकों के मतानुसार यही

तत्त्व बालों को लाल रंग देता है। अतः अगर वास्तव में "लाल बालों वाले लोगों का गुट"* जैसा कोई गुट होता तो मालिब्डेनम जरूर उनका प्रतिचिंह होता।

बदकिस्मती से यह तत्त्व कई बार भलाई की जगह बुराई के काम भी करने लगता है। सोवियत वैज्ञानिकों के एक अभियान दल ने लंबी समुद्री यात्रा से लौटने के बाद इस तत्त्व के "गंदे" कामों की पोल खोली।

यह अभियान 1966 के आखिरी दिनों में व्लादीवास्तोक से शुरू हुआ। वैज्ञानिकों को एक विशेष अनुसंधान जहाज "मिखाइल लोमोनोसोव" दिया गया। इस अभियान का उद्देश्य था — विश्व के विभिन्न भागों में विघटनाभिक संदूषण का स्तर बताना। महीनों तक जहाज विभिन्न सागरों में घूमता रहा। उस पर लगे गाइगर मापक-यंत्र की सूइयां दिन रात सीमा के पहरेदारों की तरह बड़ी वफादारी के साथ अपना फर्ज निभाती रहीं। जैसे ही विकिरण के नये संकेत (मेहमान) दिखाई देते थे वे उन्हें तुरंत पकड़ लेते थे।

एक दिन जहाज प्रशांत महासागर के सबसे बियाबान इलाके में भूमध्य रेखा पार करने जा रहा था। जहाज पर लगी पंखुड़ियां 24 घंटे बड़ी तेजी से घूमती हुई हजारों घन मीटर समुद्री वायु को फिल्टरों में फेंक रही थीं। ये फिल्टर 0.01 माइक्रोन जितने सूक्ष्म धूलकण रोकने की क्षमता रखते थे। समय-समय पर इकट्ठी हुई धूल को फिल्टरों सहित जला कर अतिसंवेदी उपकरणों की सहायता से राख का विघटनाभिक स्तर नापा जाता था। अचानक गाइगर मापक की सूइयां बड़ी तेजी से कांपने लगीं — राख में विघटनाभिक समस्थानिक मालिब्डेनम-99 तथा निओडियम-147 दिखाई दिये। इन समस्थानिकों का जीवन काल बहुत अल्प होता है। उदाहरण के लिये, मालिब्डेनम-99 के क्षय की अर्द्धविधि केवल 67 घंटे होती है। वैज्ञानिकों ने उपकरणों तथा गणना से यह पता लगाया कि इन "बिनबुलाये मेहमानों" का जन्म 28 दिसम्बर 1966 को हुआ था। और वास्तव में उनकी गणना बिल्कुल ठीक निकली। चीनी समाचार एजेन्सी "सिन्खुआ" ने घोषणा की कि इस दिन चीन ने परमाणु शस्त्र का परीक्षण किया था। कुछ दिनों के अंदर हवा से विघटनाभिक कण हजारों मील दूर पहुंच गये थे।

यहां हम यह जरूर बताना चाहेंगे कि इस खतरनाक खेल में मालिब्डेनम बहुत ही साधारण भूमिका निभाता है। हमें उम्मीद

---

* ब्रिटिश उपन्यासकार आर्थर कानन डायल के एक उपन्यास के कुछ पात्रों के गुट का नाम।

है कि आने वाले सालों में परमाणविक परीक्षणों पर पूरी रोक लग जायेगी और तब मालिब्डेनम इस तरह के गंदे कामों में भाग नहीं ले पायेगा। तब यह तत्त्व केवल भले काम करेगा और मानवजाति की पूरे दिल से सेवा करेगा। ऊपर लिखी बातों से आप यह तो समझ ही गये होंगे कि मालिब्डेनम बड़े काम की धातु है। विविध उपयोगों के कारण मनुष्य को इसकी विशाल मात्रा चाहिये। प्रश्न उठता है कि आखिर हमारे ग्रह पर इसकी मात्रा है कितनी?

भू-पर्पटी में मालिब्डेनम की मात्रा 0.0001% है। प्रकृति में उपलब्धि के अनुसार मेंडेलीफ की आवर्त सारणी के तत्त्वों में इस तत्त्व ने बहुत साधारण जगह ले रखी है – इसकी गिनती तत्त्वों के छठे दर्जन में की जाती है हालांकि इसके निक्षेप दुनिया के कई हिस्सों में मिलते हैं।

यदि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में मालिब्डेनम का कुल उत्पादन केवल कुछ टनों तक सीमित था तो प्रथम विश्व युद्ध के दौरान इसका उत्पादन लगभग 50 गुना बढ़ गया (बकतर स्टील की जरूरत जो थी)। युद्ध के तुरंत बाद मालिब्डेनम अयस्कों की निकासी का स्तर गिर गया परंतु 1925 के आसपास मालिब्डेनम के उत्पादन में फिर तेजी आ गयी। 1943 में इसका उत्पादन उच्चतम सीमा पर पहुंच गया (30 हजार टन)। यह द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों की बात है। इसी वजह से मालिब्डेनम को "मिलिटरी" धातु कहा जाता है।

1934 में भूविज्ञान की एक विद्यार्थिनी वेरा फ्लेरोवा को उत्तरी काकेशस में बाक्सान नदी की घाटी में मालिब्डेनम अयस्कों के विशाल निक्षेप मिले। सोवियत संघ के विरल धातु उद्योग के इतिहास में यह बहुत महत्त्वपूर्ण घटना थी। दो साल बाद इस स्थान पर एक विशाल मालिब्डेनम खान थी। परंतु अभाग्यवश वेरा की किस्मत में यह देखना नहीं लिखा था कि किस प्रकार पहाड़ की चोटी पर एक नया शहर तिरनाउज बस जायेगा जिसकी जन्मदाता वह खुद थी। 1936 में एक पहाड़ी दुर्घटना में वेरा की मृत्यु हो गयी। तिरनाउज शहर के एक चौक का नाम इस बहादुर लड़की के सम्मान में रखा गया है तथा वहां के पहाड़ की चोटी का नाम भी उसके सम्मान में रखा गया है। भीड़भाड़ से दूर एक पहाड़ी की ढाल में एक छोटा सा स्मारक स्थापित किया गया है। इस जगह से कुछ दूर ट्रालियां स्टील की कनातों के रास्ते मालिब्डेनम अयस्क दूसरे किनारे तक पहुंचाती रहती हैं।

मालिब्डेनम अयस्कों को मुख्यतः फेरोमालिब्डेनम में परिवर्तित किया जाता है तथा इन्हें उच्च कोटि के स्टीलों तथा विशेष किस्मों के कुछ ऐलायों के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। फेरोमालिब्डेनम का औद्योगिक स्तर पर उत्पादन पिछली शताब्दी के आरंभ में शुरू हुआ। 1890 में मालिब्डेनम आक्साइडों के अपचयन द्वारा फेरोमालिब्डेनम प्राप्त करने की एक विधि ढूंढ़ ली गयी। परंतु जार के रूस में फेरोमालिब्डेनम का उत्पादन इस विधि तक सीमित रहा। 1929 में श्तेनबर्ग तथा कुसाकिन ने तापीय प्रक्रिया द्वारा एक ऐलाय प्राप्त किया जिसमें मालिब्डेनम की मात्रा 50 से 65% तक थी। 1930-1931 में व० एल्यूतीन को ऐसे कुछ और प्रयोगों में सफलता मिली जिनके आधार पर आगे चलकर यह विधि धात्विकी उद्योग में अपना ली गयी।

तकनीक को मालिब्डेनम स्टील के अलावा शुद्ध मालिब्डेनम भी चाहिये। परंतु बहुत लंबे अर्से तक वैज्ञानिक शुद्ध मालिब्डेनम की चीजें बनाने में असफल होते रहे। इसका कारण क्या था? लोग इस धातु का लगभग शुद्ध पाउडर प्राप्त करने की विधि बहुत पहले सीख चुके थे। इसका दोषी मालिब्डेनम का उच्च गलनांक था जिसके कारण धातु-कर्मी पाउडर को ठोस धातु में प्रगलित नहीं कर पा रहे थे। मजबूर होकर उन्होंने दूसरे तरीके ढूढ़ने शुरू कर दिये। आखिर 1907 में प्रयोगशाला परिस्थितियों में मालि-ब्डेनम तंतु प्राप्त हो गया। इसके लिये मालिब्डेनम पाउडर में चिपचिपा कार्बनिक पदार्थ मिलाकर एक मातृक्स (डाइ) से गुजारा गया। इस प्रकार प्राप्त चिपचिपे तंतु को हाइड्रोजन वायुमंडल में रखकर इसके अंदर विद्युत धारा प्रवाहित की गयी। वही हुआ, जिसकी आशा थी। तंतु जलने लगा। कार्बनिक पदार्थ भस्म हो गया और धातु प्रगलित होकर एक धागे में बदल गयी (हाइड्रोजन की जरूरत इसलिये थी कि तापन के दौरान मालिब्डेनम का आक्सीं-करण न हो)।

इस घटना के 3 साल बाद उच्चगलनांक वाली धातुओं के उत्पादन का पेटेंट दिया गया। मालिब्डेनम भी इस सूची में शामिल था। यह पाउडर धात्विकी विधि सोवियत संघ में आज भी अपनायी जा रही है। इस विधि के अन्तर्गत धात्विक पाउडर को संपीडित करके प्रगलित करते हैं और फिर इसे पत्तियों या तारों में बदल देते हैं। अब धातु तकनीकी कामों के लिये उपयुक्त हो जाती है।

सोवियत संघ में मालिब्डेनम तारों का उत्पादन 1928 में शुरू हुआ। इसके 3 साल बाद मास्को के विद्युत-कारखाने में इनका उत्पादन 2 करोड़ मीटर तक पहुंच गया।

पिछले कुछ सालों से निर्वात आर्क प्रगलन द्वारा भी मालिब्डेनम का उत्पादन संभव हो गया है। इस विधि में इलैक्ट्रान-पुंज प्रगलन का प्रयोग किया जा रहा है जिससे और भी बढ़िया परिणाम मिल रहे हैं।

हम ऊपर बता ही चुके हैं कि भू-पर्पटी में मालिब्डेनम अयस्कों के निक्षेपों की संख्या सीमित है। अतः, संभव है कि कुछ समय बाद ये सारे भंडार बिल्कुल खाली हो जायेंगे और तब मनुष्य के सामने यह समस्या खड़ी हो जायेगी कि इतनी कीमती धातु अब कहां से लायी जाये?

परंतु फिलहाल हमें आने वाली पीढ़ियों के भविष्य की चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि भू-पर्पटी के अलावा महासा-गरों तथा सागरों के जल में भी विभिन्न तत्त्व घुले हुए हैं। अगर सारे समुद्री खजाने को पृथ्वी के सारे वासियों के बीच बराबर बांट दिया जाये तो हम में से हर कोई अरब-पति बन जायेगा। यहां इतना कहना ही काफी होगा कि वरूण देवता हर आदमी को 3 टन स्वर्ण दे सकता है। और जहां तक मालिब्डेनम का सवाल है तो समुद्र हर आदमी को इसकी 100 टन मात्रा दे सकता है। देखा आपने, समुद्र कितने माल-दार हैं।

मनुष्य अभी इन "समुद्री संदूकों" की चाबियां ढूढ़ रहा है। वह दिन दूर नहीं जब ये खजाने उसके कब्जे में होंगे।

अभिजात वर्ग का

महान सिकंदर अपनी सेना का वापस लौटने का आदेश देता है—साइरस के "पवित्र बर्तन"—रजत की बनी नालें—दूसरा सबसे पुराना पेशा—रूबल का जन्म—शाही वंश के लोगों की जालसाजी—रूसी बोयारों की चतुराई—टकसाल की 250वीं जयन्ती—जार उपराज्यपाल को रजत खरीदने के आदेश भेजता है—नेवयान्स्क मीनार का रहस्य—खानदानी रजत—काउंट ओरलोव का डिनर-सेट—नोवगोरोव के सुनारों का हुनर—एक फोटोग्राफर के स्टूडियो में—चक्रवात का मुकाबला—दर्पण ऐश की चीज नहीं है—पनडुब्बी "थरैशर" समुद्र में डूब जाती है—विजेता धातु—भूगोल का रजत के साथ क्या संबंध है?—महारानी समुद्री डाकू की प्रशंसा करती है—रात के वक्त नाविक रम पीने में मस्त थे—रजत का खजाना समुद्र में छिपा है—फ्लोरिडा के एक मछुए की भूल—गोताखोर खजाने का मालिक बन जाता है—विलियम फिप्स पैर पटकता है—शराबी का सपना सच निकला

महान सिकंदर की सेना बड़ी तेजी से पूर्व की ओर बढ़ रही थी। एक के बाद दूसरा देश जीता जा रहा था। फारस, फोनिसिआ, मिश्र, बाबिलोन, बाक्ट्रीया तथा सोगडिआना पर कब्जा हो चुका था। ईसा से 327 वर्ष पूर्व सिकंदर ने भारत पर हमला कर दिया। लग रहा था कि यहां भी इस महान सेनापति की विशाल सेना का कोई मुकाबला नहीं कर पायेगा। परन्तु यूनानी सैनिकों को अचानक पेट की एक भयंकर बीमारी लग गयी। थके तथा बीमार सैनिकों में विद्रोह की भावना पैदा होने लगी। उन्होंने वापस लौटने की इच्छा प्रकट की। बादशाह की आगे बढ़ने की बड़ी तमन्ना थी परंतु मजबूर होकर उसे लौटने का आदेश देना पड़ा।

आश्चर्य की बात यह थी कि साधारण सैनिकों के मुकाबले सेना अधिकारियों को यह रोग बहुत कम हो रहा था हालांकि वे भी सैनिकों की तरह खानाबदोश जिंदगी बिता रहे थे।

इस रहस्य का भेद खुलने में 2000 से भी ज्यादा साल लग गये। वैज्ञानिकों को पता चला कि सैनिकों के बीमार होने का कारण यह था कि वे टिन के प्यालों का इस्तेमाल करते थे और उनके अधिकारी इसलिये बीमार नहीं होते थे क्योंकि उनके प्याले रजत के बने होते थे। रजत में एक अद्वितीय गुण होता है। पानी में घुला रजत बहुत सारे हानिकारक जीवाणुओं को मार देता है। एक लीटर पानी को शुद्ध करने के लिये एक ग्राम रजत का करोड़वां हिस्सा काफी रहता है।

प्राचीन इतिहासकार हेरोडोटस का कथन है कि ईसा से पांच शताब्दी पूर्व फारस का बादशाह साइरस सफर के दौरान जल को "पवित्र बर्तनों" में रखता था। भारतीय धार्मिक पुस्तकों में भी यह पढ़ने को मिलता है कि जल को शुद्ध करने के लिये उसमें तप्त रजत डाला जाता था। बहुत सारे देशों में कुंओं के जल को शुद्ध करने के लिये उनमें रजत के सिक्के फेंकने की प्रथा चली आ रही है।

जलशुद्धि रजत का प्राचीनतम पेशा माना जा सकता है। हालांकि यह बात भी सच है कि कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के कारण इस धातु को फालतू के काम भी करने पड़े। उदाहरण के लिये, रोमन सम्राट नीरो ने, जो फजूलखर्ची के लिये मशहूर था, अपने खच्चरों की नालें रजत की बनवायी थीं।

परन्तु यह बात इस धातु के इतिहास की एक छोटी सी घटना है।

रजत का दूसरा प्राचीनतम पेशा मुद्रा मानक है। धातु ने इस काम में अपना सारा जीवन बिता दिया है।

प्राचीन रोमवासियों ने ईसा से 269 वर्ष पहले रजत के सिक्के ढालने शुरू किये थे। स्वर्ण सिक्कों की तुलना में रजत सिक्कों का इतिहास 50 वर्ष पुराना है। रूस में रजत के सिक्कों का चलन काफी देर से शुरू हुआ। रूसी राजा व्लादीमिर के जमाने के कुछ रजत-सिक्के आज भी सुरक्षित हैं। इन सिक्कों के एक ओर सिंहासन पर बैठे राजा का चित्र अंकित है और दूसरी तरफ शाही प्रतीक बना हुआ है। इन सिक्कों पर निम्न शब्द अंकित हैं: "व्लादीमिर सिंहासन पर बैठा है और यह उसका रजत है"।

बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों में रूसी सिक्कों का प्रचलन बंद हो गया था। इसकी वजह यह थी कि कीव रूस नामक संयुक्त राज्य फिर छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभाजित हो गया था और इतने राज्यों में एक ही तरह का सिक्का चलाना एक असंभव कार्य था। एक बार फिर रजत की सिल्लियों ने सिक्कों की जगह ले ली और इनका मुद्रा के रूप में प्रचलन शुरू हो गया। इतिहासकार इस काल को "बिना सिक्के का युग" कहते हैं।

रूबल के जन्म की घटना तेरहवीं शताब्दी की बात ही तो है – यह रजत की एक सिल्ली के आकार का था और इसका वजन 200 ग्राम के लगभग था। कई प्राचीन पुस्तकों में रूबल को ग्रीवेन्का भी कहा गया है। इनके बनाने का तरीका निम्न था: सबसे पहले रजत की एक लंबी और पतली सिल्ली ढाली जाती थी और फिर एक तेज औजार से उसे कई टुकड़ों में बांट दिया जाता था। इन टुकड़ों को ही रूबल कहते थे।

मंगोल-तातारों के प्रभुत्त्व ने भी रूसी सिक्कों के पुर्नढालन पर बुरा असर डाला। उन दिनों गोल्डन होर्डे ने अपना रजत का सिक्का चला रखा था जिसे डायरगेमा या देन्गा कहते थे (तातार भाषा में "देन्गा" शब्द का अर्थ है – "छनकने वाला")। धीरे धीरे शब्द "देन्गा" रूसी शब्द "देन्गी" में बदल गया जिसका अर्थ है – "धन"।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में जैसे ही मंगोल-तातारों का प्रभुत्त्व कम किया गया, रूस ने फिर से अपने सिक्के ढालने शुरू कर दिये।

सन् 1534 में रूसी जार इवान "भयंकर" की माता हेलेन ग्लीन्स्काया के शासनकाल में सारे देश के अन्दर एक जैसी मुद्रा के चलन की व्यवस्था की गयी। रजत के छोटे सिक्कों पर तलवार पकड़े एक घुड़सवार का चित्र अंकित होता था। इन्हें तलवार वाले सिक्के कहा जाता था। रजत के बड़े सिक्कों पर अंकित घुड़सवार के हाथ में बरछा होता है। रूसी भाषा में बरछे को "कोप्ये" कहते हैं। आधुनिक शब्द कोपेक इसी शब्द से ही तो लिया गया है।

आज सच का पता करना बहुत मुश्किल है परन्तु लगता है कि असली सिक्कों के चलते ही जाली सिक्कों का धंधा भी शुरू हो गया था। आम जालसाजों की बात क्या करें जब बादशाह जैसे अमीर लोग भी जाली सिक्कों का धंधा करते थे। तेरहवीं शताब्दी के अंत तथा चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में फिलिप चतुर्थ फ्रांस का सम्राट

था जिसे फिलिप "सुन्दर" उपनाम से पुकारा जाता था। कई ऐतिहासिक दस्तावेजों में इस सम्राट को फिलिप-जालसाज कहा गया है। खुद को दौलतमंद बनाने के लिये फिलिप या तो स्वर्ण तथा रजत के सिक्कों का वजन कम करवा देता था या उनमें ताम्र, टिन जैसी सस्ती धातुएं मिलवा देता था। यही कारण है कि प्रसिद्ध इतालवी कवि दान्ते ने नर्क का वर्णन करते हुए फिलिप चतुर्थ को भी नरकवासी बताया है।

सतरहवीं शताब्दी में भी इससे मिलती जुलती एक घटना घटी। यह 1654 की बात है। पोलेंड के साथ युद्ध करते-करते रूस का खजाना खाली हो गया था परन्तु मुद्रा की जरूरत बढ़ती जा रही थी। और कोई उपाय न देखकर जार अलेक्सेई ने कर बढ़ा दिये परन्तु जनता कर देती कहां से। तब एक बोयार* फ्योदर रतीश्चेव ने एक तरकीब बतायी जिससे जार का खजाना भर सकता था परन्तु वास्तविकता में उसने सरकार का बेड़ा गर्क कर दिया।

उन दिनों रूस में रजत के सिक्के चला करते थे। देश के पास खुद का रजत तो था नहीं, अतः इन सिक्कों को विदेशी सिक्कों से बनाया जाता था। आम तौर पर इस काम में जोआचिमस्टाले इस्तेमाल किये जाते थे (इन्हें चेकोस्लोवाकिया के एक शहर जोआचिमस्टाले में ढाला जाता था)। रूसी लोग इन सिक्कों को "एफिम्की" कहते थे। रूसी टकसाल में उनके ऊपर से लातीनी शब्द मिटा कर रूसी शब्द अंकित कर दिये जाते थे। रतीश्चेव तथा अन्य बोयारों की सलाह पर जार ने 50 कोपेक कीमत वाली एफिम्की पर एक रूबल की मोहर लगाने की आज्ञा दे दी। इसके अलावा जार ने एक और आदेश जारी कर दिया जिसके अनुसार 50, 25, 10, 3 तथा 1 कोपेक के सिक्के सस्ते ताम्र के बनाये जाने लगे परन्तु उनकी कीमत रजत के बराबर रखी गयी। जार के इन सलाहकारों ने हिसाब लगाया कि इस प्रकार सरकारी खजाने में 40 लाख रूबल जमा हो जायेंगे। यह संख्या जार द्वारा लगाये करों की कुल संख्या से दस गुना अधिक थी। बस फिर क्या था, इन आंकड़ों से जार का तो दिमाग़ ही खराब हो गया। उसने यह आदेश दिया कि दिन-रात पूरी गति से सिक्के ढाले जायें जिससे खजाना जल्दी से जल्दी भर जाये।

देश में सस्ते सिक्कों का ढेर लग गया।

---

* अठारहवीं शताब्दी तक रूस में अभिजात वर्ग के लोगों को बोयार कहा जाता था।

परन्तु मुद्रा के कुछ अपने कायदेकानून होते हैं जिन पर सम्राटों का भी नियंत्रण नहीं होता। अगर हिसाब से अधिक सिक्के चला दिये जायें तो उनकी क्रयक्षमता गिर जाती है जिसके फलस्वरूप चीजें महंगी हो जाती हैं। रूस में उस वक्त बिल्कुल ऐसा ही हुआ। साधारण नागरिकों को शीघ्र ही जार के सुधारवादी आदेशों के परिणाम भुगतने पड़े। डबल रोटी तथा अन्य खाद्य-पदार्थों के भाव बहुत बढ़ गये और व्यापारी लोग माल का भुगतान केवल रजत में स्वीकार करने लगे। परन्तु रजत आता कहां से? सारा रजत तो जार के खजाने में बंद था। देश में भूखमरी फैल गयी। लोगों के धैर्य का बांध टूट गया और 1662 में मास्को में दंगे शुरू हो गये। इतिहास में यह घटना "ताम्र दंगों" के नाम से प्रसिद्ध है। जार ने बड़ी सख्ती से बलवाइयों का दमन किया परन्तु जनता ने अपनी मांग पूरी करवा कर ही छोड़ी: ताम्र के सिक्के वापस ले लिये गये और उनकी जगह रजत के सिक्के चला दिये गये।

जार पीटर प्रथम के शासनकाल में सिक्कों की ढलाई का काम मुख्यतः मास्को में होता था। 1711 में सीनेट (संसद) ने यह आदेश जारी किया कि रजत के सिक्के केवल एक टकसाल में ढाले जायें और वह केवल मास्को की इस टकसाल में। इसके कुछ साल बाद 1724 में जार के आदेश पर सेंट पीटर्सबर्ग में एक नयी टकसाल खोली गयी। यह टकसाल (लेनिनग्राद) आज भी चालू है और कुछ साल पहले इसकी 250वीं जयंती मनायी गयी।

पीटर प्रथम ने स्वर्ण तथा रजत का उत्पादन बढ़ाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। परन्तु इसके बावजूद भी बहुत दिनों तक रूस में ये कीमती वस्तुएं दूसरे देशों से खरीदता रहा। ऐसे दस्तावेज मिले हैं जो यह बताते हैं कि 1734 में इर्कूत्स्क के उपराज्यपाल को यह आदेश मिला कि वह चीन से बहुत बड़ी मात्रा में रजत खरीद ले।

इन्हीं दिनों अकीन्फी देमीदोव (यूराल में देमीदोव खानदान लोहे के बहुत बड़े व्यापारी के रूप में मशहूर था) के अयस्क-खोजियों को रजत अयस्क का एक निक्षेप मिला। उन दिनों के कानून के अनुसार किसी को कहीं भी जब कभी रजत अयस्क मिलता तो वह सरकार की संपत्ति माना जाता था। परन्तु देमीदोव इस खजाने को अपने पास रखना चाहता था। उसने अपने सिक्के ढालने शुरू कर दिये जो जार के सिक्कों से पूर्णतया मिलते जुलते थे। हां, एक फर्क जरूर था और वह यह था कि इन सिक्कों में रजत की मात्रा सरकारी सिक्कों के मुकाबले अधिक थी। इतिहास में शायद यह एकमात्र मिसाल है जब जाली सिक्के असली सिक्कों से ज्यादा कीमती थे।

एक किवदंती के अनुसार देमीदोव की जागीर—नेवयान्स्क में एक भूमिगत टकसाल थी। यह टकसाल एक ऊंची मीनार के तहखाने में स्थित थी जहां जंजीरों में जकड़े गुलाम दिन-रात जाली सिक्के बनाते थे। यह बड़ी भयंकर जेल थी। वहां से भाग निकलना असंभव था तथा सरकार को इसकी बिल्कुल भी जानकारी नहीं थी। इतनी सारी सावधानियों के बावजूद भी नेवयान्स्क टकसाल की खबर राजधानी पहुंच गयी। शुरू में इसे एक अफवाह समझा जाता रहा। सम्राज्ञी आन्ना इवानोव्ना भी यूराल के इस बेताज बादशाह से संबंध नहीं बिगाड़ना

चाहती थी। परन्तु कहते हैं कि एक बार ताश खेलते समय हारने पर जब देमीदोव ने सम्राज्ञी को रजत के नये सिक्के दिये, तो वह अचानक पूछ बैठी: "निकीतिच! ये सिक्के तुम्हारी टकसाल में ढले हैं या मेरी?" देमीदोव सिर झुका कर खड़ा हो गया और मुस्करा कर बोला: "सम्राज्ञी! हम सब आपके हैं। मैं भी आपका हूं और जो कुछ मेरा है, वह सब भी आपका ही तो है।"

परन्तु शीघ्र ही एक ऐसी घटना घटी जिसने इस भूमिगत टकसाल का बड़ा गर्क कर दिया। देमीदोव का एक कारीगर मालिक के प्रकोप के डर से नेवयान्स्क से भाग निकलने में सफल हो गया। जैसे ही देमीदोव को इस बात का पता चला उसने भगोड़े के पीछे अपने आदमी दौड़ाये और उन्हें यह आदेश दिया कि वे उसे जान से मार दें। देमीदोव ने यह भी कह दिया कि अगर भगोड़ा नहीं मिलता तो वे जल्दी से जल्दी राजधानी पहुंच कर सम्राज्ञी को रजत निक्षेप मिलने की "खुशखबरी" सुना दें।

भगोड़ा नहीं मिला। मजबूर होकर सम्राज्ञी को यह "खुशखबरी" बतानी पड़ी। इस खजाने को राजधानी लाने के लिये एक आयोग नेवयान्स्क भेजा गया। इसके वहां पहुंचने से दो दिन पहले देमीदोव ने मीनार के तहखाने में पास बहती झील का पानी छुड़वा दिया जिससे टकसाल के सारे कारीगरों का मुंह हमेशा के लिये बंद हो गया और इस अपराध का कोई साक्षी न रहा।

रूसी तथा फ्रेंच अभिजात-वर्ग के लोगों को रजत की चीजों का बहुत ही ज्यादा शौक था। ये लोग "खानदानी रजत" को भद्रता तथा संपन्नता की निशानी समझते थे। काउंट ओरलोव के पास एक अद्वितीय डिनर-सेट था जिसमें 3275 चीजें थीं। इस सेट के निर्माण में लगभग दो टन शुद्ध रजत व्यय किया गया था।

नोवगोरोद के सुनार मीनाकारी तथा नक्का-

शी के लिये पुराने जमाने से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं। उनके बनाये प्यालों, कटोरों तथा बर्तनों की खूबसूरती तथा चमक ने उस जमाने के कारीगरों को आश्चर्यचकित कर रखा था। ऐसे दस्तावेज मिले हैं जो यह बताते हैं कि सोलहवीं शताब्दी के अंत में नोवगोरोद में 100 के लगभग बढ़िया सुनार चांदी का काम करते थे तथा छोटे-मोटे सुनार (अंगूठियां, कान के बुंदे आदि बनाने वाले) इतने ज्यादा थे कि उनकी गिनती करना असंभव था। नोवगोरोद के सुनारों के रजत कारीगरों के नमूने आज मास्को के शस्त्रागार व राष्ट्रीय ऐतिहासिक संग्रहालय तथा लेनिनग्राद के रूसी संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहे हैं।

हमारे दिनों में रजत का यह महत्त्व जरा भी कम नहीं हुआ है और आज भी उसी तरह से यह धातु गहनों तथा घर की अन्य चीजों के निर्माण में इस्तेमाल हो रही है। परंतु आज इस धातु के पास कुछ इनसे भी ज्यादा जरूरी काम हैं। जब से 1839 में फ्रेंच चित्रकार तथा खोजकर्त्ता डेगर ने सुग्राहित पदार्थों पर स्थायी चित्र खींचने की विधि खोजी है तब से रजत का हमेशा के लिये फोटोग्राफी के साथ संबंध जुड़ गया है। इस विधि में फोटो फिल्म या पेपर पर जमी रजत ब्रोमाइड की पतली सतह मुख्य भूमिका निभाती है। प्रकाश की किरणों के प्रभावस्वरूप रजत ब्रोमाइड विभाजित हो जाता है – ब्रोमियम रसायनिक रूप से सतह में उपस्थित जिलेटिन में मिल जाता है तथा रजत नन्हें-नन्हें क्रिस्टलों के रूप में अवक्षेपित हो जाता है। ये क्रिस्टल इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक साधारण सूक्ष्मदर्शी में भी दिखाई नहीं देते। रजत ब्रोमाइड के विभाजन का स्तर प्रकाश की शक्ति पर निर्भर करता है: प्रकाश जितना तीव्र होता है, उतना ही ज्यादा रजत अलग हो जाता है।

इसके बाद की प्रतिक्रियाओं (फिल्म का व्यक्तीकरण तथा स्थायीकरण) से चित्र का नेगेटिव मिल जाता है जिससे पोजिटिव प्रिंट बना लिया जाता है। एक शताब्दी से ज्यादा अर्से के दौरान फोटोग्राफी के क्षेत्र में काफी तरक्की हुई है परन्तु रजत तथा उसके योगिकों के बिना फोटोग्राफी आज भी असंभव है।

वैज्ञानिकों ने रजत आयोडाइड के लिये एक मजेदार तथा बढ़िया काम ढूंढ़ लिया है: इसकी सहायता से उष्णकटिबंधी चक्रवात का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है। चक्रवात की नष्टकारी शक्ति कम करने के लिये उसे फैलाना अर्थात् उसका व्यास बढ़ाना आवश्यक होता है। रजत आयोडाइड इस काम में सहायक सिद्ध होता है, वह वायुमंडलीय आर्द्रता को वर्षा की बूंदों में परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

आज से 10 साल पहले इस विधि द्वारा पहली बार एक चक्रवात "बेइला" का मुकाबला किया गया। हवाई जहाजों की सहायता से इस चक्रवात के मार्ग में रजत आयोडाइड की 10 किलोमीटर ऊंची तथा 30 किलोमीटर लंबी स्क्रीन बिछा दी गयी। इतने विशाल आकार के बावजूद भी इस स्क्रीन के निर्माण में केवल कई सेंटनर रजत आयोडाइड की जरूरत पड़ी। स्क्रीन से टकराते ही चक्रवात ने इसे लपेट दिया और फिर इसे गटक गया। बस, फिर क्या हुआ। उसी क्षण चक्रवात के केंद्रीय भाग के चारों ओर बिखरे बादलों की दीवार (इसे चक्रवात की आंख कहते हैं) खंडित होकर वर्षा करने लगी जिसके फलस्वरूप चक्रवात का

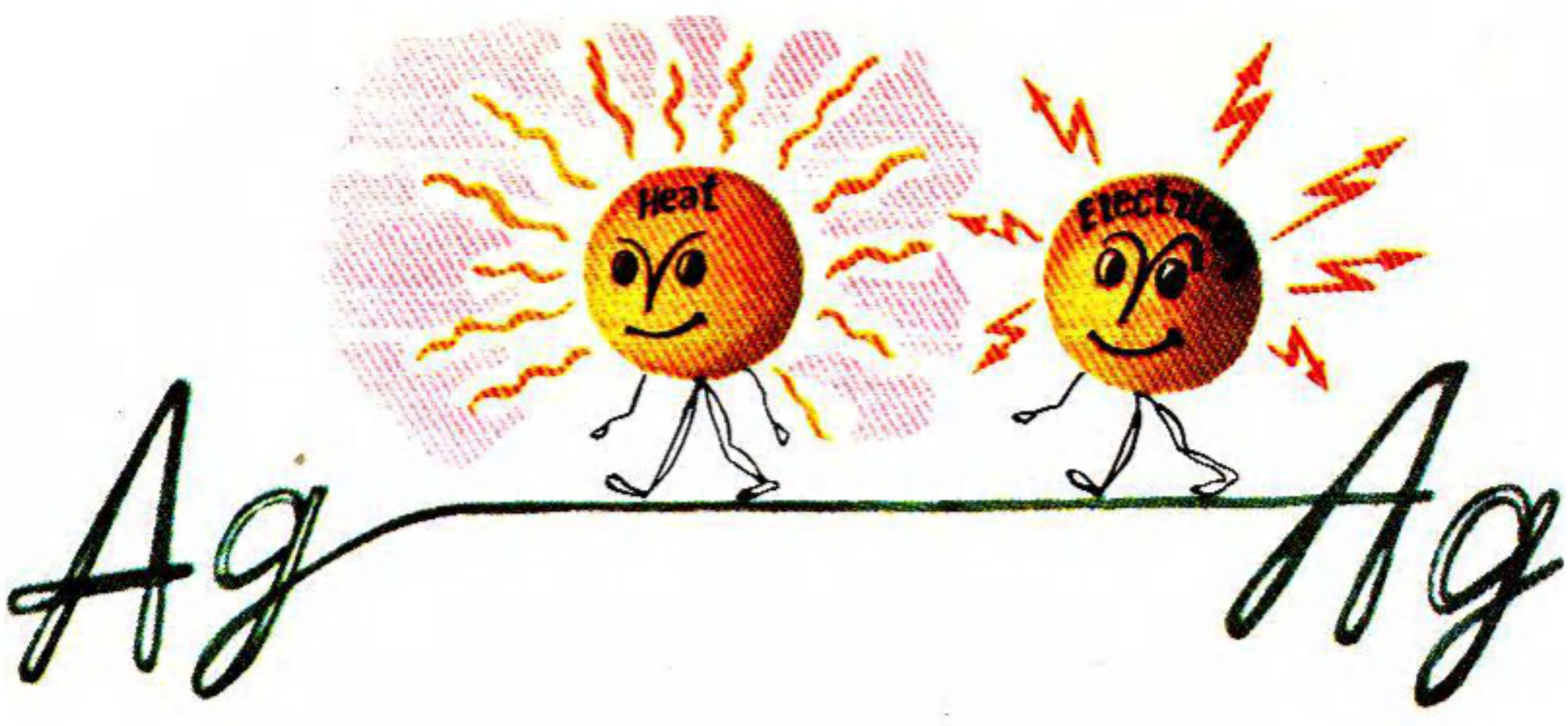

वेग बहुत कम हो गया। यह बात जरूर थी कि इस आक्रमण से चक्रवात घबराया नहीं। उसने दोबारा बादलों की दीवार बनानी शुरू कर दी परन्तु इस बार इस दीवार का व्यास पहले से बहुत ज्यादा था जिसके कारण उसकी गति काफी मंद हो गयी। इस प्रकार रजत ने चक्रवात की नष्टकारी शक्ति काफी घटा दी।

पिछली शताब्दी के मध्य से रजत दर्पणों के निर्माण में प्रयुक्त होता आ रहा है। सब धातुओं में रजत की परावर्तन-क्षमता सर्वाधिक उत्तम होती है। कांच के ऊपर इस धातु का पतला सा लेप चढ़ाने से यह धातु हमारे रोजमर्रा के काम की चीज का नहीं बल्कि डाक्टरों के औजारों, दूरदर्शियों, सूक्ष्मदर्शियों तथा अन्य प्रकाशिकीय यंत्रों का भी आवश्यक अंग बन जाती है।

वैद्युतचालकता तथा तापचालकता में कोई भी धातु रजत का मुकाबला नहीं कर सकती। सुग्राही भौतिक यंत्रों के तारों के निर्माण में रजत इस्तेमाल किया जाता है। विभिन्न प्रकार के रिलों के महत्त्वपूर्ण टर्मिनल भी रजत से ही बनाये जाते हैं तथा रेडियो तकनीक में महत्त्वपूर्ण पुर्जों की वेल्डिंग रजत से ही की जाती है।

असंख्य स्वचालित मशीनों, अन्तरिक्ष-राकेटों, पनडूब्बियों, कंप्यूटरों, परमाणु-उपकरणों, संचार-साधनों तथा सिग्नल-प्रणाली में संपर्कों के बिना काम नहीं चल सकता। अपने लंबे जीवनकाल में ऐसे हर संपर्क को लाखों बार सक्रिय होकर काम करना पड़ता है। ये संपर्क इतने बड़ा बोझ तभी संभाल सकते हैं, जब उनमें उच्च जीर्णरोधकता होगी, प्रयोग में विश्वसनीय होंगे तथा वे कई विद्युत तकनीक की मांगों के अनुकूल होंगे। इन संपर्कों के निर्माण के लिये अक्सर रजत चुना जाता है। विशेषज्ञों को इस धातु से कोई शिकायत नहीं है: वह इस मुश्किल काम को बड़ी अच्छी तरह से निपटाती है। परन्तु अगर रजत में कुछ विरल तत्व मिला दिये जायें, तो इस धातु के गुण बहुत श्रेष्ठ हो जाते हैं। इस रजत के बने संपर्कों की कार्य-अवधि कई गुना बढ़ जाती है।

विदेशी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में यह बता-

या गया है कि कुछ जेट-इंजनों के तुंडों के पुर्जे रजत में संतृप्त फोम टंग्स्टन से बनाये जाते हैं। शायद सब लोगों को इस बात की जानकारी नहीं है कि अमरीकी पनडुब्बी "थरैशर" के समुद्र में डूबने से कई टन रजत भी हाथ से गया जो इस पनडूब्बी की बैटरियों में लगा हुआ था।

रजत इतना अधिक तन्य होता है कि इससे केवल 0.00003 सेंटीमीटर मोटी पारदर्शक पत्ती ढाली जा सकती है। एक ग्राम रजत से 2 किलोमीटर लंबा तार निकाला जा सकता है।

शुद्ध रजत अति सुंदर सफेद रंग का होता है। इसी कारण लातीनी भाषा में इसका नाम "अर्जेन्टम" रखा गया। यह शब्द संस्कृत से लिया गया है जिसमें "अर्जेन्टा" का अर्थ होता है – "हलके रंग वाला"।

अब अगर नामों की बात चल ही पड़ी है तो क्यों न हम आपको इनसे संबंधित एक महत्त्वपूर्ण घटना सुना दें। भूगोल के नक्शे ने तत्त्व का नाम ढूंढने में आविष्कारों की हमेशा मदद की है। मेंडेलीफ की आवर्त सारणी में आपको इसके कई उदाहरण मिलेंगे – जर्मेनियम, फ्रांसियम, यूरोपियम, अमेरिसियम, स्कैन्डियम, कैलिफार्नियम आदि। इस तरह के उदाहरणों की सूची बहुत लंबी है। परन्तु धातु के सम्मान में एक विशाल नदी और फिर पूरे के पूरे देश का नाम रखने की मिसाल शायद ही मिलेगी। ऐसी एक धातु है – रजत। यह घटना 400 से भी ज्यादा साल पुरानी है।

सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में स्पेनिश यात्री जुआन डिआज डि सोलिस ने दक्षिणी अमरीका के पूर्वी तट की यात्रा के दौरान एक विशाल नदी की खोज की। जुआन ने बिना किसी शर्म के इस नदी को अपना नाम दे दिया। 10 साल बाद कप्तान सेबेस्त्यान कैबोट को इस नदी की यात्रा का मौका मिला। उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा था कि उसके नाविकों ने इस नदी के तट पर बसे लोगों को लूटकर जो माल इकट्ठा किया था, उसमें रजत की मात्रा बहुत ही ज्यादा थी। कैबोट ने इस नदी का नाम ला-प्लाटा रखने का फैसला किया (स्पेनिश भाषा में रजत को ला-प्लाटा कहते हैं)। आगे चलकर सारे देश का यही नाम पड़ गया। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में स्पेनिश लोगों का प्रभुत्त्व समाप्त हो गया और तब उस देश के लोगों ने अपने दुखी अतीत को भुलाने के उद्देश्य से अपने देश का लातीनी नाम रख दिया – अर्जेन्टीना (लातीनी भाषा में रजत को 'अर्जेन्टुम' कहते हैं)।

एक और किवदंती प्रसिद्ध है जिसमें भी रजत भौगोलिक नाम के साथ संबंधित है। 1577 में इंगलैंड के तट से एक समुद्री बेड़ा यात्रा पर निकला जिसका नेतृत्त्व एडमिरल फ्रेंसिस ड्रेक कर रहा था। महारानी एलिजाबेथ ने ड्रेक को समुद्री डाकू के रूप में देश की सेवा के उपलक्ष्य में इस उच्च पद से सम्मानित किया था। इस नयी यात्रा का उद्देश्य दक्षिणी अमरीका के समुद्री नगरों को लूटना था। महारानी ने गुप्त रूप से इस लूट की सहमति दे रखी थी। एलिजाबेथ तथा उनके सामंत इस समुद्री डाकू की सहायता से खूब पैसा कमाने की आशा लगाये बैठे थे। इस समुद्री डाकू का नाम सारी दुनिया में मशहूर हो चुका था।

कई महीनों तक ड्रेक के जहाजों ने विभिन्न सागरों और महासागरों में लूट मचाये रखी।

असंख्य लड़ाइयां लड़ी गयीं जिनमें ड्रेक के पांच में से चार जहाज नष्ट हो गये परन्तु उसके ध्वज-पोत "स्वर्ण-मृग" ने फिर भी समुद्री नगरों में तहलका मचाये रखा।

एक दिन शाम के समय जब ड्रेक कैलाओ के पास पहुंचा तो वहां 30 के लगभग स्पेनिश जहाज खड़े थे। साहस में ड्रेक का कोई मुकाबला नहीं कर सकता था: "स्वर्ण-मृग" बंदरगाह में घुस आया और सारी रात दुश्मन के जहाजों के बिलकुल पास खड़ा रहा। स्पेनिश नाविकों ने खूब रम पी रखी थी। वे सारी रात डैक पर नाचते गाते रहे और बड़ी जोर-जोर से उन जहाजों की बातें करते रहे जो कुछ समय पहले उस बंदरगाह से रवाना हुए थे तथा जिन पर खजाना लदा था। इन नाविकों के कथनानुसार स्पेन के बादशाह के जहाज "काकाफुएगो" पर तो बहुत ही ज्यादा खजाना लदा हुआ था। यह सुनते ही ड्रेक ने तुरंत लंगर उठाया और इस जहाज का पीछा शुरू कर दिया।

ड्रेक के जहाज का नाम "स्वर्ग मृग" वैसे ही नहीं रखा गया था: चाल में इसका मुकाबला गिने चुने जहाज कर सकते थे। शीघ्र ही एक्वाडोर के तट के पास ड्रेक ने "काकाफुएगो" पर कब्जा कर लिया। ड्रेक के एक साथी ने इस घटना का निम्न शब्दों में वर्णन किया: "अगली सुबह खजाने की गिनती शुरू हुई और इस काम में छ: दिन लग गये। स्पेनिश जहाज पर हमें असंख्य मणि, रजत के सिक्कों के 13 बक्से, 18 पाउंड स्वर्ण तथा अमुद्रांकित रजत के 26 पीपे मिले। छठवें दिन हमने उस जहाज के कप्तान से विदा ली। उसने अपना जहाज पनामा की ओर बढ़ाया और हमने खुले सागर की ओर।"

ड्रेक बहुत अक्लमंद था। उसे पता था कि "स्वर्ण-मृग" को अभी काफी सफर

करना था। संभव था कि स्पेनिश लोग अपने खजाने को वापस लेने का प्रयास करें (हालांकि उन्होंने यह खजाना दक्षिणी अमरीका के वासियों को लूट कर इकट्ठा किया था)। ज्यादा बोझ होने के कारण जहाज की गति मंद हो गयी थी। इसे अकलमंदी कहें या लालच? ड्रेक ने जो फैसला किया वह बिलकुल उचित था: 45 टन अमुद्रांकित रजत समुद्र में फेंक दिया गया। रजत के इस खजाने की याद में एडमिरल ने पास वाले द्वीप का नाम ला-प्लाटा रख दिया।

यह कोई पहली घटना नहीं है जब स्वर्ण, रजत तथा हीरे-जवाहरात समुद्र के तल में पहुंच गये। शताब्दियों से समुद्री यात्राओं के दौरान जहाज विभिन्न कारणों से समुद्र में डूबते रहे हैं और उन पर लदे खजाने भी जल के गर्भ में समाते गये हैं। इन खजानों ने आज भी हजारों लोगों को पागल कर रखा है।

सागर अपना माल देकर खुश नहीं है, परन्तु लोग फिर भी नहीं मानते। समुद्र के गर्भ से खजाना निकालने के इतिहास की कई घटनाएं काफी रोचक हैं। रजत से संबंधित कुछ ऐसी घटनाओं का हम यहां वर्णन करने जा रहे हैं।

1939 में फ्लोरिडा के तट पर पिजेन-केस नामक द्वीप के दक्षिण-पूर्व में एक बूढ़े मछुए को समुद्र में कुछ भारी लंबे पत्थर मिले। कुछ दिनों तक वह इन पत्थरों से अपनी नाव का संतुलन करता रहा और फिर उसने इन्हें समुद्र में फेंक दिया। एक पत्थर किसी तरह से बच गया। बूढ़े ने उसे ठोकपीट के काम में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया—वह उस पर कीलें रखकर हथोड़ी से उन्हें सीधी करता। दो साल बीत गये। बार बार ठोकने पीटने से पत्थर नर्म हो गया और चमकने लगा। अब जाकर मछुए को पता चला कि वह पत्थर शुद्ध रजत का बना था। परन्तु मछुआ खुश होने की जगह रोने पीटने लगा क्योंकि उसने मूर्खतावश भगवान का दिया खजाना अपने ही हाथों से लुटा दिया था।

बूढ़े को उम्मीद थी कि उस जगह पर ऐसे कुछ और पत्थर अभी भी पड़े होंगे। परन्तु लाख कोशिशों के बावजूद वह उस जगह को न ढूंढ़ पाया, जहां किसी जमाने में चांदी की सिल्लियों से लदा कोई जहाज डूब गया था।

अमरीकी गोताखोर मैक-की इस मामले में ज्यादा भाग्यशाली निकला। मई 1949 में वह की-लारगो जलशैल से कुछ दूर फ्लोरिडा के समुद्री तट की अन्तर्जलीय सतह के फोटो खींच रहा था। एक दिन 20 मीटर गहराई पर मैक-की को किसी जहाज के अवशेष दिखाई दिये। जहाज की तलाशी लेने पर उसे वहां कुछ बंदूकें, एक लंगर तथा भारी व लंबे आकार के धातु के तीन टुकड़े मिले। मैक-की ने इन चीजों को ऊपर पहुंचाया। इस परिश्रम का उसे तुरंत फल मिल गया। धातु के टुकड़े शुद्ध रजत की सिल्लियां निकले जिन पर NATA की मोहर लगी हुई थी। मैक-की इस खजाने को वाशिंगटन ले आया। वहां के ऐतिहासिक संग्रहालय के विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह मोहर पनामा की एक पुरानी रजत खान की है तथा जिस जहाज को मैक-की ने ढूंढ़ा है वह उन 14 स्पेनिश जहाजों में से एक है जो 1715 की वसंत में एक भयंकर तूफान की लपेट में आकर समुद्र की गोद में समा गये थे।

इस प्रकार बिना इच्छा के फ्लोरिडा

का मछुआ तथा मैक-की खजाने के खोजी बन गये। ज्यादातर यह होता है कि पानी में डूबे खजानों की खोज का काम योजना बनाकर किया जाता है। परंतु हर तरह के साधनों से लैस ऐसे अभियान-दल अक्सर खाली हाथ लौटते हैं। कई बार उन्हें सफलता तब मिलती है जब उन्हें उसकी तनिक भी आशा नहीं होती है। सतरहवीं शताब्दी के अंत में एक अंग्रेज विलियम फिलिप के साथ ऐसी ही घटना घटी। इंगलैंड के बादशाह जेम्स II के आदेश पर वह एक स्पेनिश जहाज के खजाने को ढूंढ़ने निकला जो बहामा द्वीप समूह के पास समुद्र में डूब गया था।

दिन, हफ्ते, महीने बीतते गये, परन्तु फिलिप के अभियान-दल को डूबे जहाज के अवशेष कहीं नहीं मिले। इस तरह एक साल बीत गया। फिलिप अब अपनी हार मानने को तैयार हो गया। उसने अपने

सहायकों को बुलाया और खोज का काम बंद करने की आज्ञा दे दी। बातचीत के दौरान जैसे ही गुस्से से उसने अपने पैर से मेज को ठोकर मारी, मेज से कोई चीज बाहर गिरी जो मूंगे के बड़े टुकड़े से मिलती जुलती थी। फिलिप ने कुल्हाड़ी से टुकड़े को तोड़ दिया। उसे इसके अन्दर मजबूत लकड़ी का बना एक छोटा सा बक्सा मिला जिसे तोड़ते ही फर्श सोने और चांदी के सिक्कों से भर गया।

यह "मूंगा" एक रैड-इंडियन गोताखोर को समुद्र में मिला था। उसने ही इसे मेज के नीचे फेंक दिया था। जिस जगह यह कीमती चीज मिली थी वहां फिलिप ने तुरंत कई गोताखोर भेजे। उन्हें जल में ऐसी कई दर्जन चीजें मिलीं।

काम बड़े जोर-शोर से चलता रहा। फिलिप ने खुद भी कई बार गोताखोरी की। तीन महीने के अन्दर उसे समुद्र से 30 टन रजत, काफी सोना तथा सिक्कों से भरे अनगिनत बक्से मिले। इस सारे खजाने की कीमत 3 लाख पाउंड थी (आज के हिसाब से 30 लाख पाउंड)।

कुछ दिनों पहले समुद्र के गर्भ से मिला रजत अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का कारण बन गया। हुआ यह कि 1972 में गर्मियों के दिनों में "सीफाउंडर्स" कंपनी के एक कर्मचारी अमरीकी पुरातत्वज्ञ रोबर्ट मार्क्स को बहामा द्वीप समूह से 45 मील दूर समुद्र में डूबा एक स्पेनिश जहाज दिखाई दिया (यह कंपनी समुद्रों में खजाने ढूंढ़ने का काम करती है)। कुछ दिनों बाद बड़े जोर-शोर से इस जहाज का माल ऊपर लाने का काम शुरू हो गया। शीघ्र ही पता चल गया कि यह जहाज 1656 में समुद्र में डूबा था। दस्तावेजों के

अध्ययन ने बताया कि यह जहाज रजत तथा हीरे-जवाहरातों से लदा पड़ा था जिनकी कीमत 20 लाख रूबल के लगभग थी।

जल के वासियों की रजत में कभी रुचि नहीं रही है। अतः यह आशा की गयी कि जहाज का सारा रजत उसकी केबिनों में सुरक्षित पड़ा होगा। बस फिर क्या था–दो-तीन हफ्ते बाद इस खजाने का पहला हिस्सा ऊपर पहुंच गया। कंपनी के मालिक इस काम से काफी मालदार बनने की उम्मीद लगाये बैठे थे और उनके ऐसा सोचने की बात भी ठीक थी। जहाज खजाने से लदा पड़ा था। परन्तु अचानक अप्रत्याशित परेशानियां सामने आ गयीं। बहामा की सरकार को जैसे ही इस बात का पता चला, उसने सारे खजाने को अपना घोषित कर दिया। कंपनी को काम बंद कर देना पड़ा। झगड़ा इतना ज्यादा बढ़ गया कि अमरीकी सरकार को बीच में पड़ना पड़ा। इसके प्रतिनिधि ने यह घोषणा की कि जहाज बहामा की जल-सीमा में नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय जल-सीमा में मिला है, अतः बहामा की सरकार का उस पर कोई हक नहीं है। यह झगड़ा अभी चल रहा है और पता नहीं इसका फैसला क्या होगा।

यह जानते हुए भी कि पानी के अन्दर खजाना मिलने की संभावना बहुत कम होती है लोग फिर भी इसे ढूंढ़ने की धुन में पागल रहते हैं और ऐसे लोगों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। हां, यह बात जरूर है कि फिलिप के जमाने के मुकाबले आज के गोताखोरों की सफलता की संभावना काफी ज्यादा है क्योंकि उस जमाने में गोताखोरों को सांस के लिये केवल अपने फेफड़ों पर निर्भर रहना पड़ता था। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी सागर से उसका खजाना लेना कोई आसान काम नहीं है।

रजत के खजाने पृथ्वी पर भी काफी मिलते हैं। कुछ दिनों पहले स्वीडिश द्वीप गोटलैंड में रजत के हजार अरबी सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों के मिलने की कथा काफी रोचक है। इन्हें ढूंढ़ने का श्रेय एक खरगोश को जाता है। जी हां, एक भूरे खरगोश को जिसने एक छोटे से शहर व्यूरम के बाहरी इलाके में अपना बिल बनाना चाहा। अपना घर बनाते समय इस खरगोश के रास्ते में धातु की कई डिस्कें आ गयीं। इस बेचारे ने बड़ी मेहनत करके इन्हें अपने रास्ते से हटा दिया। उन दिनों कुछ पुरातत्वज्ञ उस द्वीप पर खुदाई करवा रहे थे। शीघ्र ही ये डिस्कें उनकी नजर में पड़ गयीं। उन्होंने इन्हें स्टाक्होम के ऐतिहासिक संग्रहालय में पहुंचा दिया जहां विशेषज्ञों ने इस खजाने का रहस्य खोल दिया।

किसी जमाने में गोटलैंड यूरोप का एक बहुत बड़ा व्यापारिक केंद्र था। विभिन्न देशों के व्यापारी यहां आते-जाते रहते थे। सैकड़ों, हजारों की संख्या में रजत के सिक्के इधर से उधर होते रहते थे या भाग्यशाली व्यापारियों के संदूकों में जमा होते रहते थे। कभी-कभी ये खजाने विकिंगों के हाथ पड़ जाते थे जो इस द्वीप पर आया-जाया करते थे। एक किवदंती के अनुसार खरगोश को जो खजाना मिला था उसे एक विकिंग सरदार स्टावेर ने जमीन में गाड़ा था। कई दशकों तक स्थानीय लोग इस कहानी में विश्वास करते रहे कि 150 साल पहले एक शराबी गोटलैंडी किसान को सपने में शैतान ने स्टावेर के खजाने में से बहुत सारे रजत के सिक्के दिये और यह कहा कि पांच

पीढ़ियों बाद यह खजाना लोगों के हाथ लग जायेगा जिसे शक्तिशाली विकिंग ने बुरे दिन के लिये संभाल रखा था।

यह कहना मुश्किल है कि यह कहानी सच है या झूठ। परन्तु एक बात जरूर है कि किवदंती में बतायी जगह पर ठीक पांच पीढ़ियों बाद खजाना मिला। हां, एक बात समझ में नहीं आती कि शैतान ने किसान को यह क्यों नहीं बताया कि इस खजाने को ढूंढने का काम एक खरगोश करेगा।

सख्त भी है और नर्म भी

अभियानदल का दर्दनाक अंत–"टिन की महामारी"–रूसी ठंड का मजाक–बटनों की चोरी–ये सब करतूतें डाइनों की है–परमाणु खुले होकर बैठ जाते हैं–"महामारी" का "टीका"– "टिन की चीख"–मुकाबला करने वाला कोई नहीं है–टिन के सिपाही की किस्मत–सख्त है या नर्म?–कब्र में टिन की बनी सबसे पुरानी चीज मिली है–हैफेस्टेट आचिलस को अजेयी ढाल बनाकर देता है–लैटिन अमरीकी जातियों की प्राचीन मुद्रा–जुलियस सीजर इस बात की पुष्टि कर सकता है– बादशाह गलती पर था–बहुत भारी चीज की नुमाइश–उत्तरी ध्रुवीय महासागर के किनारों पर खोज का काम–"फोर्ड मोटर्स" कंपनी के शीशे–सूरज को पकड़ने के लिये एक नया शीशा–"बैंक अपरेशन" असफल रहता है–टिन अपना बलिदान दे देता है

1910 में इंगलैंड के ध्रुव अन्वेषक कप्तान रोबर्ट स्काट ने एक अभियान-दल तैयार किया जिसका उद्देश्य दक्षिणी ध्रुव की यात्रा करना था। उन दिनों तक मनुष्य के कदम इस क्षेत्र में नहीं पड़े थे। कई महीनों तक हिम्मती यात्री बड़ी मुश्किलों का सामना करते हुए अंटार्कटिक के बर्फीले इलाकों में आगे बढ़ते रहे। रास्ते में वे जगह-जगह पर कुछ भोजन-सामग्री तथा केरोसीन छोड़ते गये जिससे लौटते समय उन्हें इन चीजों की दिक्कत महसूस न हो।

1912 के आरंभ में अभियान-दल दक्षिणी ध्रुव पहुंच गया परन्तु उन्हें यह जानकर बहुत खेद हुआ कि नार्वेजियन यात्री रूआल आमुन्डसेन उनसे भी पहले वहां पहुंच चुका था। परन्तु स्काट को इससे भी बुरे दिन देखने थे। वापस लौटते समय असली मुसीबत सामने आयी। पहले स्टेशन पर जो रसद और केरोसीन छिपा कर रखा गया था उसका कहीं पता नहीं चल रहा था। थके और भूखे यात्री न तो आग जला सके और न ही खाना बना सके। बड़ी मुश्किल से वे अगले स्टेशन तक पहुंचे, परन्तु वहां भी केन खाली थे: केरोसीन बह गया था। बर्फीली तूफान ने ध्रुवीय ठंड को और भी बढ़ा दिया था जिसकी वजह से कप्तान स्काट और उनके साथी शीघ्र ही मौत का शिकार बन गये।

केरोसीन के गायब होने का रहस्य क्या था? इतनी बढ़िया तरह से आयोजित अभियान का इतना दर्दनाक अंत क्यों हुआ? कप्तान स्काट ने ऐसी कौनसी गलती की थी?

इस दुर्घटना का कारण बड़ा साधारण था। बात यह थी कि केरोसीन को जिन केनों में रखा गया था उनकी सोल्डरिंग में टिन इस्तेमाल किया गया था। लगता है कि अन्वेषकों को यह मालूम नहीं था कि शीत में टिन को बीमारी लग जाती है: यह चमकदार धातु पहले फीके भूरे रंग की हो जाती है और फिर पाउडर में परिवर्तित हो जाती है। इसे टिन की महामारी कहते हैं तथा यही स्काट के अभियान के लिये इतनी घातक सिद्ध हुई।

टिन को ठंड की बीमारी लगने की बात इन घटनाओं से पहले भी पता थी। मध्य युग में टिन के बर्तनों के मालिक यह जानते थे कि ठंड से इन बर्तनों को "फोड़े" हो जाते थे जो धीरे-धीरे बढ़ते जाते थे और अंत में धातु पाउडर में बदल जाती थी। यह भी पता था कि अगर कोई बीमार टिन की प्लेट स्वस्थ प्लेट के संपर्क में आ जाती थी तो स्वस्थ प्लेट पर भूरे धब्बे बनने लगते थे और वह टूट जाती थी।

पिछली शताब्दी के अंत में हालैंड ने रूस को मालगाड़ी द्वारा टिन की सिल्लियां भेजीं। मास्को में जब मालगाड़ी के डिब्बे

खोले गये तो उनके अंदर टिन की जगह एक भूरे रंग का पाउडर मिला जो किसी काम का न था। यह रूसी ठंड की करामात थी, उसने टिन के खरीदारों के साथ गंदा मजाक किया था।

लगभग इन्हीं दिनों अच्छी तरह से सुसज्जित एक अभियान-दल साइबेरिया भेजा गया। इस बात का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया था कि साइबेरिया की भयंकर ठंड से काम में बाधा न पड़े। परन्तु यात्रियों से एक गलती फिर भी हो गयी। वे अपने साथ टिन के बने बर्तन ले गये थे जो शीघ्र ही बेकार हो गये। मजबूर होकर उन्हें लकड़ी के चम्मच व पतीले बनाने पड़े। तब कहीं जाकर अभियान-दल आगे बढ़ पाया।

बीसवीं शताब्दी के बिलकुल आरंभ में पीटर्सबर्ग के मिलिटरी डिपो में एक सनसनीखेज घटना घटी। लेखा-परीक्षण के दौरान यह पता चला कि सैनिकों की वर्दियों के लिये रखे टिन के सारे के सारे बटन गायब हैं। जिन बक्सों में ये टिन रखे हुए थे वे ऊपर तक भूरे रंग के एक पाउडर से भरे पड़े थे। क्वाटरमास्टर बड़ा परेशान था। उसे यह डर था कि चोरी के इलजाम में उसे जेल भेज दिया जायेगा और कड़ी सजा दी जायेगी। परन्तु रसायनिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट ने इस बेचारे की जान बचा दी। इस रिपोर्ट में ये शब्द लिखे हुए थे: "आपने जो चीज भेजी है वह टिन ही है। लगता है कि यहां हमारा वास्ता "टिन की महामारी" से पड़ा है।"

इस परिवर्तन के दौरान टिन के अन्दर कौनसी प्रक्रियाएं घटती हैं? मध्य युग में पादरी लोग यह विश्वास रखते थे कि डाइनें टिन की महामारी फैलाती हैं।

उनके आदेश पर बहुत सारी निर्दोष महिलाएं जिंदा जला दी जाती थीं। विज्ञान के विकास के साथ इन धारणाओं की असंगति स्पष्ट होती गयी परन्तु फिर भी वैज्ञानिक बहुत दिनों तक टिन की महामारी का असली कारण नहीं जान पाये।

एक्सरे की खोज होते ही धातुकर्मियों ने धातुओं के अन्दर झांक कर देखना शुरू कर दिया। इसके बल पर वे धातु की क्रिस्टलीय संरचना का अध्ययन करने में सफल हुए और तब "डाइनों" के माथे पर लगा कलंक मिट गया और इस रहस्यमयी बीमारी का सही वैज्ञानिक कारण पता चल गया। साधारण तथा उच्च ताप पर सबसे अधिक परिवर्तनशील सफेद टिन होता है जो एक तन्य धातु है। 13°C से नीचे ताप पर टिन की क्रिस्टलीय जाली इस प्रकार फैल जाती है कि उसके परमाणु ज्यादा खुले होकर बैठ जाते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप टिन का रंग भूरा हो जाता है और यह धातु के गुण खो देता है। अब यह अर्द्धचालक बन

जाता है। इस प्रकार विभिन्न क्रिस्टलीय जालियों के जोड़ों में आंतरिक प्रतिबल उत्पन्न होने लगते हैं जिनके परिणामस्वरूप पदार्थ चटकने लगता है और फिर पाउडर में परिवर्तित हो जाता है। यही कारण है कि अत्यधिक शीत टिन की चीजों को इतनी बेदर्दी से गला देती है। आसपास का तापमान जितना नीचा होता है क्रिस्टलों के अंदर यह परि-वर्त्तन इतनी ही जल्दी होता है। –33°C के तापमान पर इस परिवर्त्तन का वेग उच्चतम होता है। इसलिये सख्त सर्दी टिन की बनी चीजों को बुरी तरह बर्बाद करती है।

यहां पाठक यह कह सकते हैं कि रेडियो इंजीनियरी में (विशेषतया अर्द्धचालकों में) सोल्डरिंग के काम में टिन ही तो इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा तार तथा अन्य पुर्जे भी टिन की सहायता से ही जोड़े जाते हैं। अर्थात् इन उपकरणों के साथ-साथ टिन भी आर्कटिक, अन्टार्कटिक तथा अन्य ठंडी जगहों में पहुंच जाता है। तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि जिन उपकरणों में टिन लगा होता है, वे ठंडी जगहों में तुरंत खराब हो जाते हैं? जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। वैज्ञानिक टिन को टीका लगाना सीख चुके हैं। इस टीके से टिन पर महामारी का कोई असर नहीं पड़ता। इस प्रकार के टीके के लिये एक उपयुक्त पदार्थ विस्मथ है जिसके परमाणु टिन की जाली में अतिरिक्त इलेक्ट्रान भेज कर उसको मजबूत बना देते हैं जिससे उसे बीमारी का तनिक भी खतरा नहीं रहता।

शुद्ध टिन में एक अद्वितीय गुण विद्यमान होता है: इस धातु की शलाकें या प्लेटें मोड़ने पर चटक की आवाज सुनाई देती है। इसे "टिन की चीख" कह सकते हैं। टिन के क्रिस्टलों के अव्यवस्थित तथा विकृत होने के दौरान उनके पारस्परिक घर्षण से यह आवाज निकलती है। परन्तु टिन के ऐलाय इस अवस्था में "अपनी जबान बंद रखते हैं।"

विश्व में उत्पादित टिन का लगभग आधा भाग टिन प्लेट के उत्पादन में व्यय हो जाता है जो मुख्यतः डिब्बों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में टिन की अच्छाइयां बहुत काम की साबित होती हैं: आक्सीजन, जल तथा कार्बनिक अम्लों के प्रति इसका रसायनिक प्रतिरोध तथा मनुष्य के शरीर के लिये इसके लवणों का

पूर्णतया अहानिकारक होना। टिन यह काम बड़ी बेहतरी से करता है। कोई दूसरी धातु शायद ही इसका मुकाबला कर सके। इसी वजह से टिन को "डिब्बों की धातु" (canning metal) कहते हैं। टिन की बहुत पतली परत से लोग लाखों टन मांस, मछली, फल, सब्जियां तथा दूध की चीजें सुरक्षित रख पाते हैं।

पहले टिन का लेप चढ़ाने के लिये गर्म टिन इस्तेमाल किया जाता था: साफ तथा चिकनाईरहित लोहे की एक परत को पिघले टिन में डूबाया जाता था। अगर परत की केवल एक सतह पर टिन चढ़ाना होता था तो इसको साफ करके गर्म किया जाता था और फिर टिन के साथ रगड़ा जाता था। अब इस विधि का प्रचलन बंद हो गया है और इसकी जगह 'विद्युत अपघटन बाथ' की विधि इस्तेमाल की जाती है।

कभी न कभी हर डिब्बे को कूड़े के ढेर का मुंह जरूर देखना पड़ता है, परन्तु टिन (हर डिब्बे में इसकी मात्रा आधे ग्राम के लगभग होती है) को वहां ज्यादा देर तक नहीं रहना पड़ता। मनुष्य इस बात का ख्याल रखता है कि इस कीमती धातु को इकट्ठा करके फिर से काम लायक बनाया जा सके। टिन को अलग करना कोई ज्यादा मुश्किल काम नहीं है। क्षारों से इसे अलग करने के लिये विद्युत धारा का इस्तेमाल किया जाता है। इस काम में टिन के एक अन्य गुण का उपयोग किया जाता है: यह क्लोरीन के साथ बड़ी सरलता से प्रतिक्रिया करता है। अगर एक पुराने डिब्बे पर शुष्क क्लोरीन छिड़क दी जाये, तो डिब्बा वाष्पशील स्टैनस क्लोराइड में बदल जाता है जिससे टिन प्राप्त करना बहुत आसान काम है।

टिन अपेक्षाकृत बहुत कम गलनांक वाली धातु है। प्रसिद्ध लेखक हैन्स क्रिस्टियन एंडरसन की कहानी की वह घटना आपको याद होगी कि जैसे ही निर्दयी लड़के ने टिन के सैनिक को आग में फेंका, वह तुरंत पिघल गया। निम्न गलनांक के कारण यह धातु सोल्डरिंग के काम में मुख्य स्थान रखती है।

एक विशेष बात यह है कि बिस्मथ (52%) तथा लेड (32%) के साथ टिन (16%) का ऐलॉय उबले पानी में पिघलाया जा सकता है: इस ऐलॉय का गलनांक केवल +95°C होता है जबकि इसके घटकों का गलनांक काफी उच्च होता है – टिन का 232°C, बिस्मथ का 271°C तथा लेड का 327°C। गैलियम तथा इंडियम के साथ टिन के ऐलॉयों का गलनांक और भी निम्न होता है। उदाहरणतया, ऐसे एक ऐलॉय का गलनांक 3°C है। इस प्रकार के ऐलॉय बिजली के फ्यूजों में इस्तेमाल किये जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के कांसों, प्रिंटिंग ऐलॉयों तथा बैबिटों (उच्च जीर्णरोधता वाले ऐलॉयों को बैबिट कहते हैं। ये बाल-बेयरिंग में इस्तेमाल किये जाते हैं) में भी टिन मिलाया जाता है।

तकनीक के विभिन्न क्षेत्रों में टिन के रसायनिक यौगिकों का प्रयोग विस्तृत है। स्टैनस तथा स्टैनिक क्लोराइड रूई तथा रेशम के रंजन में रंगबंधक का कार्य करते हैं। प्राकृतिक रेशम बहुत हलका होता है तथा इसपर रंग चढ़ाना बहुत मुश्किल काम होता है। टिन के यौगिकों के विलयनों में रेशम भिगोने पर उसके तंतुओं पर स्टैनिक

हाइड्रो-डाइआक्साइड जम जाता है। कई बार तो इसकी मात्रा कपड़े के भार की दुगुनी हो जाती है, जिसकी वजह से रेशम पर रंग पक्की तरह से चढ़ जाता है।

चीनी मिट्टी के वर्तनों तथा कांच में लाली लाने के लिये कासियस-पर्पिल इस्तेमाल करते हैं जो स्टैनस क्लोराइड तथा स्वर्ण क्लोराइड के विलयन से वनाया जाता है। सुनहरे (स्वर्ण) रंग में रंगने के लिये स्टैनस डाइसल्फाइड प्रयुक्त किया जाता है। इसे मोजेक स्वर्ण भी कहते हैं।

युद्ध के समय स्टैनिक क्लोराइड धुएं के बादल पैदा करने के लिये इस्तेमाल किया

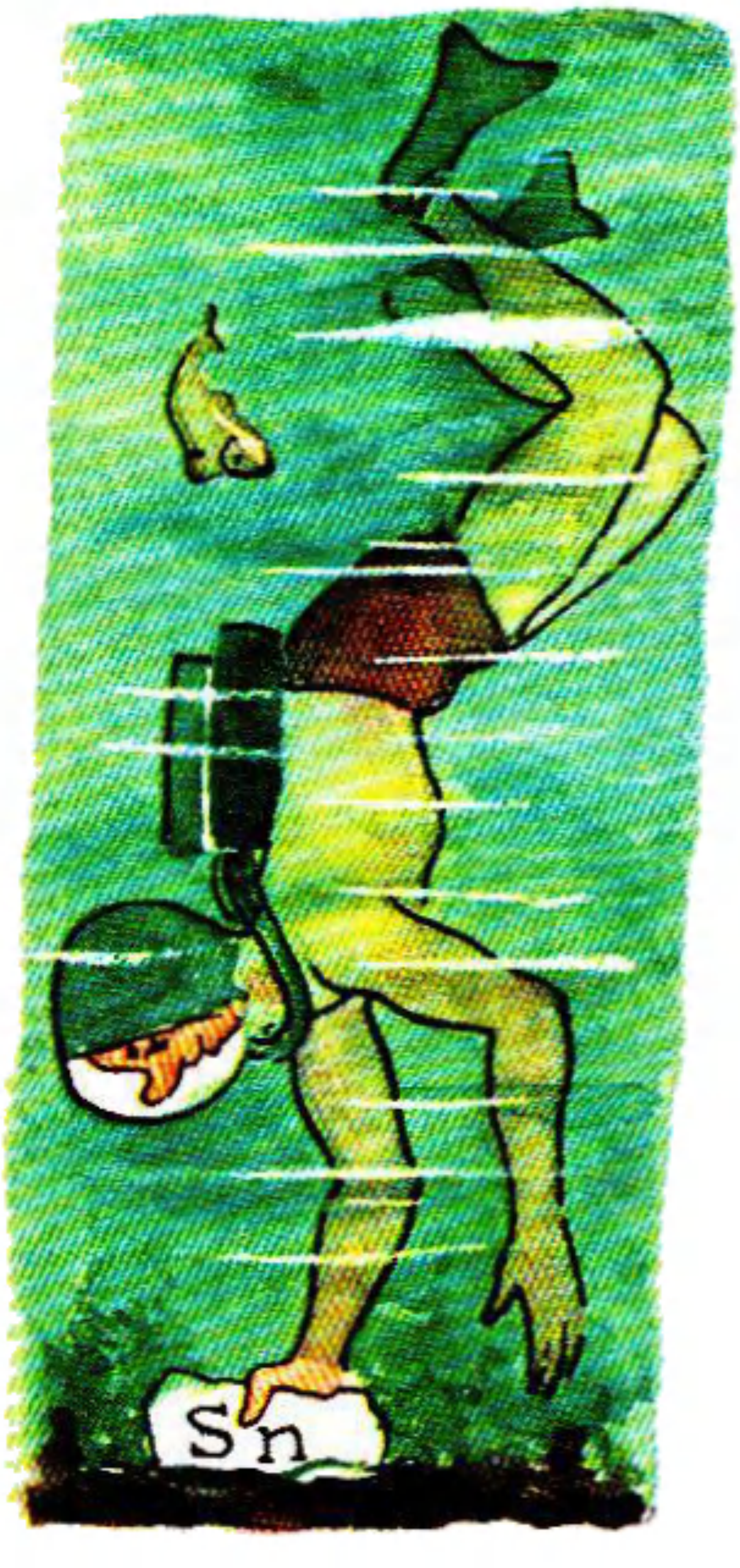

जाता है। यह पदार्थ जल के साथ बड़ी आसानी से प्रतिक्रिया कर जाता है जिसके फलस्वरूप स्टैनिक डाइआक्साइड घने धुएं के रूप में निकलने लगता है।

यह कहना बहुत कठिन है कि मनुष्य का टिन के साथ परिचय कब हुआ। शुरू में टिन केवल ताम्र के ऐलॉय के निर्माण में इस्तेमाल किया जाता था। इस ऐलॉय को कांसा कहते हैं, जो ईसा से पूर्व युग में भी प्रचलित था। कांसे के हथियार ताम्र के हथियारों से काफी ज्यादा मजबूत होते थे। शायद इसी वजह से लातीनी भाषा में टिन का नाम "स्टैनुम" रखा गया जिसका अर्थ है – सख्त।

शुद्ध रूप में टिन बहुत ही नर्म होता है, अतः यहां नाम बड़े और दर्शन छोटे वाली बात सत्य सिद्ध होती है। परन्तु इतिहास ने इस विरोधाभास को उचित सिद्ध कर दिया है। धातुकर्मी दिन-रात इस नर्म धातु को जो भरकर तोड़ते-मोड़ते रहते हैं और कभी सोचते तक नहीं हैं कि उनका वास्ता एक "सख्त" धातु के साथ पड़ रहा है।

60 शताब्दियों पुरानी कब्रों की खुदाई करने पर वहां कांसे की बनी कई चीजें मिली हैं। प्लीनी ज्येष्ठ ने दर्पणों का वर्णन करते हुए इस बात का दावा किया कि "हमारे बाप-दादाओं के जमाने में सबसे उम्दा दर्पण *ब्रुन्डीजियम में बनाये गये और वे ताम्र और* टिन के मिश्रण से बनाये गये।"

यह निश्चित करना बहुत कठिन है कि मनुष्य ने टिन का शुद्ध रूप में इस्तेमाल कब शुरू किया। मिस्र के अठारहवें राजवंश (ईसा से 1580 से 1350 वर्ष पूर्व के बीच के अर्से के दौरान) के एक सदस्य की कब्र में

पुरातत्त्वज्ञों को टिन की एक अंगूठी तथा बोतल मिली है जिन्हें टिन की सबसे प्राचीन चीजें माना जाता है।

प्रसिद्ध यूनानी कवि होमेर ने अपनी पुस्तक "इलिआड" में इस बात का वर्णन किया है कि किस प्रकार अग्नि तथा धातु के देवता हैफेस्टेस ने आचिलस को एक खास ढाल बनाकर दी। इस ऐतिहासित ढाल पर एक चित्र अंकित था।

ढाल बनाने के बाद हैफेस्टेट ने आचिलस की टांगों की रक्षा के लिये टिन के कवच भी बनाकर दिये।

पेरू के रैड-इंडियनों इंका जाति के लोगों के एक पुराने किले में वैज्ञानिकों को शुद्ध टिन मिला है। उन लोगों ने यह टिन शायद कांसे के निर्माण के लिये रखा होगा। यहां के लोग किसी जमाने में बड़े बढ़िया धातु-कर्मी माने जाते थे और इनकी बनायी कांसे की चीजें बहुत उम्दा समझी जाती थीं। ऐसा लगता है कि इंका जाति के लोग टिन को शुद्ध रूप में इस्तेमाल नहीं करते थे क्योंकि इस किले में शुद्ध टिन की बनी एक भी चीज नहीं मिली है।

स्पेनिश विजेता फेर्नान्डो कारटेज ने सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में मैक्सिको जीत लिया। उसके लेख में निम्न शब्द मिलते हैं: "टाक्स्को प्रान्त के लोगों के पास मैंने टिन के छोटे छोटे कुछ गोल टुकड़े देखे। आगे बढ़ते-बढ़ते मुझे पता चला कि इस प्रान्त में तथा मैक्सिको के अन्य भागों में टिन के ये टुकड़े सिक्कों के रूप में चल रहे थे।"

1925 में इंगलैंड में पुरातत्त्वज्ञों को ईसा से तीन शताब्दी पूर्व पुराने एक दुर्ग की खुदाई करवाते समय कुछ प्रगलन गर्त मिले जिनके अंदर टिनयुक्त धातुमल पड़ा था। इसका मतलब यह हुआ कि 2000 से भी ज्यादा साल पहले इंगलैंड में टिन-उद्योग विकसित था। जूलियस सीजर ने अपनी पुस्तक "डे वैलो गैलिको" में भी इस बात का वर्णन किया है कि इंगलैंड के कुछ इलाकों में टिन का उत्पादन विकसित था।

सन् 1971 में इंगलैंड में 94 कारीगरों को मरणोपरांत प्रतिष्ठित किया गया। इन बेचारों को 847 साल पहले झूठे इलजाम में कड़ी सजा भुगतनी पड़ी थी। बात यह थी कि 1124 में इंगलैंड के बादशाह हेनरी प्रथम ने अपनी टकसाल के कर्मचारियों पर चारसौबीसी का इलजाम लगाया। किसी ने बादशाह से यह कह दिया था कि रजत के सिक्के ढालते समय ये कारीगर उनमें टिन बहुत ज्यादा मात्रा में मिला देते थे। शीघ्र ही यह मामला बादशाह की अदालत के सामने आया और वहां इन निरपराध लोगों को कड़ी सजा सुना दी गयी। अदालत के आदेश पर इन बेचारों के दायें हाथ काट दिये गये। साढ़े आठ सौ से भी ज्यादा साल बाद आक्सफोर्ड के एक वैज्ञानिक ने इन बदनसीब सिक्कों का एक्सरे द्वारा बड़ी बारीकी से अध्ययन किया। वैज्ञानिक ने बड़े विश्वास के साथ इस बात की घोषणा की कि इन सिक्कों में टिन की मात्रा बहुत ही कम है। बादशाह को गलतफहमी हो गयी थी।

पुराने जमाने से कैसिटेराइट (रांगा पत्थर) टिन का मुख्य स्रोत चला आ रहा है। इस कीमती खनिज के विशाल निपेक्ष मलाया द्वीप समूह में हैं। सोवियत संघ में टिन अयस्क सुदूर पूर्व, ट्रांसबैकाल क्षेत्र तथा कजाखस्तान में मिलते हैं। उसुरीस्क शहर के एक कारखाने

के संग्रहालय में "रांगा पत्थर" का एक अतिविरल नमूना रखा हुआ है। इसकी लंबाई, चौड़ाई व ऊंचाई केवल 30×20×8 सेंटीमीटर है, परन्तु इसका वजन 50 किलोग्राम है।

कुछ साल पहले वैज्ञानिकों ने टिन संसूचक नामक एक उपकरण का निर्माण किया है जिसकी सहायता से भूविज्ञानी कुछ मिनटों में अयस्क के अन्दर टिन की बिल्कुल सही-सही प्रतिशत मात्रा जान सकते हैं। इस उपकरण की एक खास बात यह है कि यह केवल कैसिटेराइट की उपस्थिति में कार्य करता है। टिन के अन्य खनिजों का इसपर कोई असर नहीं पड़ता, उदाहरणतया स्टैनाइट, जो उद्योग जगत के लिये किसी काम का नहीं होता।

सोवियत वैज्ञानिकों ने कुछ समय पहले एक महत्त्वपूर्ण खोज की है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि फ्लुओरिन की सहायता से किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में टिन की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। असंख्य प्रयोगों तथा विश्लेषणों के आधार पर इन वैज्ञानिकों ने वे प्रक्रियाएं दोहरा कर दिखा दी जो लाखों साल पहले अयस्कों की रचना के समय घटी होंगी। उस प्रागैतिहासिक युग में टिन एक यौगिक पदार्थ के रूप में मिलता था तथा इसके अंदर फ्लुओरिन जरूर उपस्थिति होती थी। धीरे धीरे टिन तथा इसके यौगिक एक अवसाद के रूप में जमा होते गये। आगे चलकर इन जगहों पर टिन के निक्षेप बनते गये तथा टिन की भूतपूर्व सहेली फ्लुओरिन ने हमेशा के लिये इन भंडारों के पास अड्डा बना लिया। इस महत्त्वपूर्ण खोज के आधार पर अब टिन के भंडारों का पता लगाया जा सकता है।

भूविज्ञानी कैसिटेराइट जमीन के अलावा जल के अंदर भी खोज रहे हैं। उनकी कोशिशें बेकार नहीं जा रही हैं: जापान सागर में टिखान्गो खाड़ी में रांगे पत्थर के भंडार मिले हैं। उत्तरी ध्रुवीय महासागर के किनारे तथा कुछ अन्य इलाके भी इनसे समृद्ध हैं। गोताखोर इस काम में भूविज्ञानियों की बहुत सहायता कर रहे हैं। भूविज्ञानियों ने खुद भी एक विशेष गोताखोरी–सूट बनाया है जिसके बिना उत्तरी महासागर में इस काम का प्रयास करना बिल्कुल बेकार है।

टिन की कमी होने की वजह से वैज्ञानिक तथा इंजीनियर लोग हर समय यह सोचते रहते हैं कि इसकी जगह और कौनसी धातु से काम चलाया जा सकता है। उधर यह धातु नये नये क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो रही है। कुछ दिनों पहले अमरीकी कंपनी "फोर्ड मोटर्स" ने एक कारखाना लगाया है जिसमें मोटरों की खिड़कियों के शीशों का निर्माण एक नयी विधि से किया जा रहा है। इस शीशे की चौड़ाई 2.5 मीटर है। इस विधि के अन्तर्गत पिघले शीशे को 53 मीटर लंबे बाथ में द्रवित टिन के ऊपर फैला दिया जाता है। चूंकि गलित धातु (टिन) की सतह बहुत चिकनी होती है इसलिये उसके ऊपर ढाला शीशा पहले ठंडा तथा फिर सख्त होकर खुद भी बहुत चिकना हो जाता है। अब इस शीशे पर पालिश करने की कोई जरूरत नहीं रहती जिसकी वजह से काफी खर्चा बच जाता है।

सोवियत वैज्ञानिकों ने एक निराला शीशा बनाया है जो सूरज को पकड़ सकता है। यह शीशा देखने में एक आम शीशे की तरह लगता है। अंतर केवल यह होता है कि

इसके ऊपर स्टैनिक डाइआक्साइड का बहुत पतला लेप चढ़ा होता है जो आंखों को दिखाई नहीं देता है। यह लेप सूरज की किरणों को केवल आने देता है और इस बात का बड़ी चौकसी से ख्याल रखता है कि उनकी गर्मी बाहर न निकले। ऐसा शीशा सब्जी के खेतों के मालिकों के लिये बहुत काम का रहेगा। दिन में सूरज की किरणों से गर्म होकर यह कांचघर रात के वक्त भी दिन जैसा तापमान बनाये रखेगा। साधारण शीशे में यह गुण नहीं होता। वह सूरज की गर्मी व्यर्थ करता रहता है। सड़क पर $-10^{\circ}C$ तापमान होने पर भी अब कांचघरों में पौधे उगाये जा सकते हैं। यह करामात इन शीशों की है। टिन का लेप चढ़े शीशे सौर-हीटरों तथा अन्य उपकरणों में काम के सिद्ध हो सकते हैं जहां सूरज की गर्मी को ऊर्जा में बदला जाता है।

टिन की जीवन-कथा अधूरी रह जायेगी अगर हम आपको एक जासूसी कहानी नहीं सुनायेंगे जहां इस धातु ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

...द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत नजदीक आ रहा था। "आजाद स्लोवाकिया" राज्य के नेताओं को अपना भविष्य अंधेरे में दिखायी दे रहा था। हिटलर ने 1939 में इन नेताओं को चेकोस्लोवाकिया के इस राज्य की गद्दी सौंप दी थी। इन नेताओं ने बुरे दिनों के लिये कोई चीज छिपा कर रखने का फैसला किया। सरकारी खजाने में भरा सोना छिपाना सबसे आसान काम था। परन्तु कुछ देशभक्तों ने इस योजना को असफल करने का निश्चय किया। इनमें से कुछ बैंक के कर्मचारी भी थे। उन्होंने सोने का एक हिस्सा गुप्त रूप से स्वीटजरलैंड के एक बैंक में पहुंचा दिया जहां वह युद्ध के अंत तक चेकोस्लोवाकिया सरकार के खाते में जमा रहा। सोने का कुछ भाग देशभक्तों-छापेमारों के पास पहुंचा दिया। परन्तु अभी भी ब्राटीस्लावा के बैंक में काफी सोना बाकी रह गया।

कठपुतली सरकार के एक नेता ने ब्राटीस्लावा में जर्मन राजदूत को चुपके से यह बात बता दी और बैंक के सेफों में भरे इस खजाने को लूटने के लिये सैनिक मांगे। इस लूट का एक और भागीदार बन गया। यह जर्मन SS का एक जनरल था। अब लूट के इस आपरेशन की सफलता की गारंटी लग रही थी।

SS के सैनिकों ने बैंक को चारों ओर से घेर लिया। उनके अफसर ने बैंक के कर्मचारियों को बंदूक दिखाकर खजाने की चाबियां ले लीं। बस फिर क्या था? कुछ मिनटों बाद सोने से भरे बक्से जर्मन ट्रकों पर लाद दिये गये। उन लोगों की खुशी का ठिकाना न था, परन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि बक्सों में जो सोना भरा था उसे टकसाल के चतुर डायरेक्टर ने... टिन से ढलवाया था। जर्मन सैनिकों के जाते ही बैंक के कर्मचारियों ने गुप्त जगहों पर छिपाये बक्सों के तालों की जांच की जिनके अंदर असली सोना भरा हुआ था। वे बड़ी बेसब्री से उस दिन का इंतजार कर रहे थे जब उनका देश जर्मनों के कब्जे से मुक्त हो जायेगा।

जन्म के समय बहुत यंत्रणा हुई

टैन्टेलस की यंत्रणा – समानता धोखे में डाल देती है – हेनरी रोज गलतफहमी दूर करता है – हमेशा एक दूसरे के साथ रहते हैं – 100 साल बाद – पूर्वसूचना सच निकलती है – आपके पास कोई सिफारिश चिट्ठी है? – माचिस की तीली के सिरे से बड़ा नहीं है – रुचि बढ़ती जाती है – अम्ल-राज का भी इसपर कोई असर नहीं होता – क्या यहां खोपड़ियों की मरम्मत की जाती है? – टैन्टेलस से तंत्रिकाएं बनायी जाती हैं – रोग का निदान बिल्कुल ठीक निकला – मानवोचित मिशन – मालदार गाहक – अतिविशाल तापमान इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं – नजदीकी संबंध – टैन्टेलस "गर्म" कामों में इस्तेमाल किया जाता है – टैन्टेलस के साथ हमदर्दी है – इसकी निष्ठा देखकर ईर्ष्या होती है – जौहरियों के हाथ में खर्चा वसूल हो जाता है

एक बार भगवान जीयस के चहेते पुत्र फ्रीजिया के बादशाह टैन्टेलस ने देवताओं को भोज पर बुलाया। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये उसने अपने पुत्र पेलोप्स के मांस से विशेष व्यंजन बनवाया। बादशाह की इस क्रूरता से देवता लोग बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने उसे शाप दिया कि वह हमेशा भूखा और प्यासा रहेगा तथा डर से सताया जायेगा।

उस दिन से टैन्टेलस जल के बीच खड़ा है। उसकी गर्दन पानी से बाहर निकली हुई है और पक्के फलों से लदी डालियां उस के मुंह के पास झूल रही हैं। जैसे ही वह अभागा अपनी प्यास बुझाने के लिये मुंह खोलता है, पानी उसके होंठों के ऊपर से निकल जाता है। भूख मिटाने के लिये जैसे ही वह हाथ फलों की ओर बढ़ाता है, हवा डालियों को ऊपर उठा देती है। पापी इतना अशक्त होता है कि अपनी जगह से हिल तक नहीं पाता और भूखा ही खड़ा रहता है। उसके सिर के ऊपर एक चट्टान लटक रही है जो किसी भी वक्त उसका सिर तोड़ सकती है।

एक यूनानी दंतकथा में "टैन्टेलस की यन्त्रणा" का यह वर्णन पढ़ने को मिलता है।

स्वीडिश रसायनज्ञ एन्डेरस एकेबर्ग को इस कथा के नायक की यंत्रणा की कई बार याद आयी होगी जब वह एक नये तत्त्व के आक्साइड को विभिन्न अम्लों में घोलने में असफल रहे। यह तत्व इस वैज्ञानिक ने 1802 में खोजा था। कई बार वैज्ञानिक को ऐसा लगा कि वे सफलता के बहुत नजदीक हैं परन्तु इस नयी धातु को शुद्ध रूप में प्राप्त करने में वह असफल रहे। थक कर उन्होंने अपनी हार मान ली और इस धातु

को अलग करने का विचार ही छोड़ दिया, परन्तु अपनी परेशानियों की याद में उन्होंने इसका नाम "टैन्टेलम" रखने का फैसला किया।

कुछ समय बाद यह पता चला कि टैन्टेलम का एक जुड़वां भाई भी है जो उससे पहले पैदा हुआ है, परन्तु उसके गुण बिल्कुल टैन्टेलम जैसे हैं। यह जुड़वां भाई कोलंबियम था जिसकी खोज 1801 में एक अंग्रेस वैज्ञानिक चार्ल्स हैटचेट ने की थी। दोनों तत्वों में इतनी अधिक समानता होने से बहुत सारे रसायनज्ञों को गलतफहमी हो गयी थी। काफी बहस के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये दो अलग-अलग तत्व न होकर एक तत्व टैन्टेलम हैं।

यह गलतफहमी 40 साल तक बनी रही। 1844 में जर्मन रसायनज्ञ हेनरी रोज ने इस भ्रम को दूर किया और यह सिद्ध किया कि कोलंबियम और टैन्टेलम दो अलग-अलग तत्व हैं तथा कोलंबियम के भी उतने ही अधिकार हैं जितने टैन्टेलम के। दोनों तत्वों के नजदीकी संबंधों का ध्यान रखते हुए रोज ने कोलंबियम को एक नया नाम दे दिया—नियोबियम (टैन्टेलस की पुत्री का नाम नियोबिया था)।

तब से टैन्टेलम और नियोबियम एक दूसरे के साथ रह रहे हैं, परन्तु इन बेचारों की किस्मत बड़ी खराब रही है।

कई दशकों तक औद्योगिक जगत ने टैन्टेलम में कोई रुचि नहीं दिखायी। और यह बात स्वाभाविक थी। उस वक्त टैन्टेलम था भी कहां। इसकी खोज के केवल 100 साल बाद यह धातु शुद्ध रूप में प्राप्त की जा सकी। यह घटना 1903 की है। तब 101 साल की उम्र में इस धातु को पहली बार कोई काम दिया गया: उच्चतापरोधी गुण के कारण वैज्ञानिकों ने बिजली के बल्बों में टैन्टेलम इस्तेमाल करने का फैसला किया। और कोई प्रस्ताव न मिलने के कारण मजबूरी में टैन्टेलम को हां करनी पड़ी हालांकि वह समझ रहा था कि यह काम उसकी हैसियत लायक नहीं है।

इसकी आशंका ठीक ही निकली। धातुओं की दुनिया के कठोर नियमों ने शीघ्र ही इसकी रोगी छीन ली। इसकी जगह एक अन्य धातु टंग्स्टन को दे दी गयी जिसका गलनांक और भी ज्यादा उच्च था।

टैन्टेलम फिर से बेकार हो गया। "रोजगार की दुनिया" में केवल उन धातुओं को काम दिया जा रहा था जो पुराने जमाने से प्रसिद्ध चली आ रही थीं या जिनके पास भौतिकविदों, रसायनज्ञों या अन्य वैज्ञानिकों की सिफारिश होती थी। उन दिनों टैन्टेलम का विज्ञान तथा तकनीक की दुनिया के लोगों से बहुत थोड़ा परिचय था, अतः मजबूर होकर उसे चुप बैठा रहना पड़ा। परन्तु एक दिन उसकी भी किस्मत जाग उठी: 1922 में वैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग विद्युतधारा के संशोधकों में करके देखा जो सफल रहा। इसके एक साल बाद रेडियो वाल्वों में इसका इस्तेमाल करके देखा गया। यहां भी इसने बड़ी निष्ठा से फर्ज निभाया। बस फिर क्या था, वैज्ञानिक इस धातु की कीमत जान गये थे। उन्होंने इसके औद्योगिक उत्पादन की विधियां ढूंढ़नी शुरू कर दीं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि 1922 में औद्योगिक स्तर पर प्राप्त टैन्टेलम की प्रथम शलाका माचिस की तीली के सिरे से बड़ी नहीं थी। आज टैन्टेलम की फैक्टरियों से जो शलाकें निकलती हैं उनका आकार कई बार इस प्रथम शलाका से 1000 गुना बड़ा होता है।

भू-पर्पटी में टैन्टेलम की मात्रा केवल 0.0002% है, परन्तु इसके खनिज प्रकृति में काफी विस्तृत हैं। इनकी संख्या 130 के लगभग है (इन खनिजों के अन्दर टैन्टेलम हमेशा नियोबियम के साथ मिलता है)। टैन्टेलाइट तथा कोलंबाइट टैन्टेलम के मुख्य खनिज हैं जिनके विशाल निक्षेप अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका में हैं।

अगर द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व टैन्टेलम-नियोबियम अयस्कों का वार्षिक उत्पादन 600 से 900 टन के बीच था, तो 1944 में आकर इनका उत्पादन कई गुना बढ़ गया। अकेले संयुक्त राज्य अमरीका में 1940 से 1944 के

बीच टैन्टेलम का उत्पादन 12 गुना बढ़ गया था। टैन्टेलम में इतनी अधिक रुचि का कारण स्पष्ट था। विज्ञान जगत को इस धातु के कई महत्त्वपूर्ण गुण पता चल गये थे जिनकी वजह से तकनीक के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हो गया था।

टैन्टेलम हलके भूरे रंग का होता है तथा इसमें थोड़ा सा नीलापन होता है। इसका गलनांक (3000°C के लगभग) केवल टंग्स्टन तथा रेनियम से निम्न है। अत्यधिक मजबूत तथा सख्त होने के साथ साथ यह अति तन्य भी होता है। शुद्ध टैन्टेलम को तोड़ना-मोड़ना काफी सरल होता है जिसकी वजह से विभिन्न मैकेनिकल कामों (स्टैम्पिंग, रौलिंग आदि) में सरलता से प्रयुक्त हो जाता है। टैन्टेलम के पत्ते 0.04 मिलीमीटर तक पतले हो सकते हैं तथा इनके तार खींचे जा सकते हैं।

इस बात में कोई शक नहीं कि उच्च रसायनिक प्रतिरोध टैन्टेलम का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है तथा इस बात में यह केवल कुछ धातुओं से निम्न है और वह भी हमेशा नहीं। टैन्टेलम पर सांद्रित अम्ल तो क्या, अम्लराज का भी कोई असर नहीं होता। 200°C ताप पर 70% नाइट्रिक अम्ल में टैन्टेलम में तनिक भी संक्षारण नहीं उत्पन्न होता। सल्फ्यूरिक अम्ल में भी 150°C ताप पर इस धातु का कुछ नहीं बिगड़ता। 200°C पर साल भर में इस अम्ल में संक्षारण के कारण टैन्टेलम की कुल हानि 0.006 मिलीमीटर से ऊपर नहीं बढ़ती। इस अद्वितीय गुण के कारण रसायनिक उपकरणों के निर्माण के लिये टैन्टेलम एक बहुत कीमती पदार्थ माना जाता है।

बहुत सारे अम्लों (हाइड्रोक्लोरिक, सल्फ्यूरिक, नाइट्रिक, फास्फोरस तथा ऐसीटिक) हाइड्रोजन पर आक्साइड, ब्रोमीन तथा क्लोरीन के उत्पादन में टैन्टेलम के बने उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं। हाइड्रोजन क्लोराइड गैस का उत्पादन करने वाले एक कारखाने में जंगरोधी स्टील के पुर्जे 2 महीने बाद ही खराब हो गये। लेकिन जैसे ही जंगरोधी स्टील की जगह टैन्टेलम इस्तेमाल किया गया तो सबसे पतले पुर्जों (0.3-0.5 मिलीमीटर) की कार्य-अवधि भी 20 साल बढ़ गयी। केवल हाइड्रोफ्लुओरिक अम्ल एक ऐसी चीज है जिससे टैन्टेलम घबराता है।

स्वर्ण तथा रजत के विद्युत अपघटनी निष्कर्षण में टैन्टेलम कैथोड प्रयुक्त किये जाते हैं। इन कैथोडों की खासियत यह होती है कि स्वर्ण तथा रजत तो अम्लराज में विलयित हो जाते हैं, परन्तु टैन्टेलम पूर्णतया सुरक्षित रहता है।

टैन्टेलम में एक और अद्वितीय गुण होता है—यह जीवित ऊतकों के साथ बड़ी आसानी से घुल-मिल जाता है और उन्हें तनिक सा भी उत्तेजित नहीं करता। इस गुण के आधार पर चिकित्सा में, खास तौर पर शल्य-चिकित्सा में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत है। उदाहरण के लिये, खोपड़ी में फ्रैक्चर होने पर इस धातु की प्लेटें लगायी जाती हैं। चिकित्सा के इतिहास में एक ऐसी घटना पढ़ने को मिलती है जब एक रोगी के शरीर में टैन्टेलम का कृत्रिम कान फिट किया गया। इस कान के लिये मांस उस मनुष्य की जांघ से लिया गया था। यह कान इतनी सफाई से बनाया गया था कि यह बताना मुश्किल था कि कौनसा कान असली है और कौनसा नकली? मनुष्य की पेशियों के

विकृत तंतु टैन्टेलम तंतुओं से बदले जाते हैं। सर्जन लोग रोगी का आपरेशन करने के बाद उसकी उदरीय दीवारें टैन्टेलम से मजबूत करते हैं। टैन्टेलम के क्लैम्प किताब के टांकों की तरह रुधिरवाहिकाओं को बड़ी मजबूती से जोड़ देते हैं। टैन्टेलम की जालिकाएं कृत्रिम आंखों में इस्तेमाल की जाती है। इस धातु के अति बारीक धागे कंडराओं तथा तंत्रिकाओं के ऊतकों की जगह इस्तेमाल किये जाते हैं। अगर "फौलादी नसें" शब्दों का प्रयोग एक मुहावरे के रूप में किया जाता है तो "टैन्टेलम नसें" एक वास्तविक बात है।

स्वीटजरलैंड के डाक्टरों का विश्वास है कि मनुष्य की श्वसन-नली तथा फेफड़ों के एक्सरे के विश्लेषण में टैन्टेलम एक विशेष सूचक का काम कर सकता है। शरीर के लिये पूर्णतया अहानिकारक टैन्टेलम पाउडर के कण श्वसन क्रिया के दौरान सांस के साथ श्वसन अंगों के छोटे से छोटे हिस्सों में पहुंच जाते हैं, परन्तु ये कण वहां ठहर नहीं पाते। स्वस्थ ऊतक इन्हें अपने ऊपर टिकने नहीं देते, परन्तु रोगी ऊतकों में

इतनी शक्ति नहीं होती कि वे इन्हें भगा दें, वहां ये बड़ी आसानी से डेरा डाल लेते हैं। एक्सरे लेते ही ये कण दिखायी दे जाते हैं जिससे ठीक-ठीक पता चल जाता है कि कौनसा भाग रोगी है।

चिकित्सा टैन्टेलम का असली धंधा जरूर नहीं है, पर यह इसका सबसे नेक धंधा है। वास्तव में कितनी अजीब बात है कि जिस धातु को पौराणिक कथा के एक सजायाफ्ता पात्र का नाम दिया गया, वही आज हजारों मनुष्यों को कष्टों से मुक्ति दिला रही है।

विश्व में टैन्टेलम के कुल उत्पादन का केवल 5% भाग चिकित्सा के क्षेत्र में इस्तेमाल होता है, 20% के लगभग रसायनिक उद्योगों में काम आता है। इस धातु तथा इसके ऐलायों का असली उपभोक्ता धात्विकी है (45% से अधिक)। पिछले कुछ सालों से एक ऐलाय घटक के रूप में टैन्टेलम का प्रयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। अत्यधिक मजबूत, संक्षारण-प्रतिरोधी तथा उच्च गलनांक वाले विशेष स्टीलों में यह धातु इस्तेमाल की जा रही है। टैन्टेलम का स्टील पर वही असर होता है जो नियोबियम का। ये धातुएं साधारण संक्षारण-प्रतिरोधी क्रोमियम स्टील की मजबूती बढ़ा देती हैं तथा कठोरीकरण व तापानुशीतन के कारण उत्पन्न भंगुरता कम कर देती हैं।

ताप-प्रतिरोधी ऐलायों के उत्पादन में टैन्टेलम का उपयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है क्योंकि राकेट तथा अंतरिक्ष तकनीक में इन ऐलायों की बड़ी सख्त जरूरत है। 90% टैन्टेलम तथा 10% टंग्स्टन के मिश्रण से बने ऐलाय में अद्वितीय गुण होते हैं। इस ऐलाय के पत्ते 2500°C ताप तक इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इस ऐलाय के

भारी पुर्जे 3300°C से भी ज्यादा ताप सह सकते हैं। कई देशों के विशेषज्ञ अंतरिक्ष यानों के निकास पाइपों, गैस कंट्रोल तथा नियंत्रण व्यवस्था के पुर्जों, अन्य महत्त्वपूर्ण पुर्जों के निर्माण के लिये इस ऐलाय को पूर्णतया विश्वसनीय मानते हैं। कई बार जो द्रव धातु (लिथियम या सोडियम) राकेट के तुंडों को ठंडा करने में इस्तेमाल की जाती है, वे राकेट में जंग लगने का कारण बन सकती हैं। इस परेशानी से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि टैन्टेलम तथा टंग्स्टन के ऐलाय से बना तुंड फिट किया जाये।

अगर टैन्टेलम-टंग्स्टन के ऐलाय से बने पुर्जों पर टैन्टेलम कार्बाइड (गलनाक 4000°C का लेप चढ़ा दिया जाये, तो उनकी ताप-प्रतिरोधता बहुत ही उच्च हो जाती है। परीक्षणों के दौरान जो राकेट अंतरिक्ष में भेजे गये, उनके तुंड अतिविशाल ताप सह गये। जब इन तुंडों पर टैन्टेलम कार्बाइड नहीं लगाया गया तब इन्हें शीघ्र ही जंग लग गया और ये टूट गये।

टैन्टेलम कार्बाइड में एक और विशेषता यह है कि वह बहुत ज्यादा मजबूत होता है। यह लगभग हीरे की तरह सख्त होता है। इस गुण के कारण सख्त ऐलायों के उत्पादन में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत है। धातु को काटते समय तीव्र गति के कारण काटने वाला औजार इतना ज्यादा गर्म हो जाता है कि इसकी धार खुंडी हो जाती है तथा मुड़ जाती है। परन्तु सख्त ऐलाय से बने औजार को इस बात का डर नहीं होता। उसकी कार्य-अवधि भी बहुत लंबी होती है।

टैन्टेलम की "सर्विस बुक" में दर्ज बातें यह बताती हैं कि इस धातु की विद्युत के साथ काफी घनिष्ठता रही है। विश्व में इस धातु के कुल उत्पादन का 1/4 भाग विद्युत इंजीनियरी तथा इलैक्ट्रान उद्योग में काम आ रहा है। इस धातु के बने रैक्टीफायर

रेलवे सिग्नलों, टेलीफोन कम्प्यूटेरों तथा आग की चेतावनी देने वाले अलार्मों में प्रयुक्त किये जाते हैं। टैन्टेलम के बने सूक्ष्म संधारित्र रेडियो ट्रांसमीटरों, रेडारों तथा अन्य इलैक्ट्रानी प्रारूपों में इस्तेमाल किये जाते हैं।

इलैक्ट्रान मशीनरी के विभिन्न पुर्जे भी टैन्टेलम से बनाये जाते हैं। नियोबियम की तरह टैन्टेलम भी अति उत्तम गैस अवशोषक होता है: 800°C ताप पर यह 740 आयतन अवशोषित कर सकता है। इलैक्ट्रानिक ट्यूबों के अंदर जो गैस रह जाती है, उसे अवशोषित करते समय टैन्टेलम विरलता की कोटि उत्तम कर देता है। टैन्टेलम से ट्यूबों के गर्म पुर्जे बनाये जाते हैं – ऐनोड, जालियां, अप्रत्यक्ष रूप से तापित कैथोड आदि। उच्च ताप तथा उच्च वोल्टेज पर जिन ट्यूबों की परिशुद्धता लंबे अर्से तक कायम रखनी होती है, उनमें टैन्टेलम की बहुत सख्त जरूरत पड़ती है। कुछ निर्वातट्यूबों में एक निश्चित स्तर पर गैसों का दाब स्थिर रखने के लिये टैन्टेलम इस्तेमाल किया जाता है। टैन्टेलम के तारों से क्रायाटोन (अतिचालक तत्व) बनाये जाते हैं जो कंप्यूटरों में काम आते हैं।

यहां हम टैन्टेलम के एक और महत्त्वपूर्ण गुण की चर्चा करनी चाहेंगे – यह स्पार्क गैसट्यूबों के निर्माण के लिये बहुत उत्तम पदार्थ है। ऐसा लगता है जैसे कि यह धातु अपने हमनामी भाई टैन्टेलस से हमदर्दी जताते हुए भगवान जीवस को चुनौती दे रही है और इसी वजह से उसकी भेजी तड़ित को बेकार करती रहती है।

कृत्रिम रेशम के उत्पादन में धागे को खीचने वाली डाइ में बहुत नन्हे-नन्हे सूराख बने होते हैं जिनका व्यास 0.01 मिलीमीटर होता है। ये सूराख अक्सर बंद हो जाते हैं, अतः हर समय इनकी सफाई की जरूरत बनी रहती है जिससे इनका व्यास एक समान बना रहे। स्वाभाविक है कि इन डाइयों के लिये एक सख्त, मजबूत तथा जंगरोधी पदार्थ चाहिये। टैन्टेलम वह धातु है जिसमें ये सारे गुण विद्यमान होते हैं। इसी वजह से इस तरह की चीजों के निर्माण में टैन्टेलम प्रयुक्त किया जाता है।

पिछले कुछ समय से टैन्टेलम आभूषणों में भी प्रयुक्त होने लगा है: कई बार यह प्लैटिनम की जगह इस्तेमाल किया गया है। इस प्रयोगों में पूर्ण सफलता मिली है जिसके परिणामस्वरूप बहुत बचत हो रही है क्योंकि प्लैटिनम टैन्टेलम से 15 गुना मंहगा है। टैन्टेलम आक्साइड का लेप अतिसुंदर तथा रंग-बिरंगा होने के कारण ही यह आभूषणों की सजावट में इस्तेमाल किया जा रहा है। टैन्टेलम से घड़ियां, कंगन तथा अन्य गहनें बनाये जा रहे हैं।

फ्रांस में स्थित अन्तर्राष्ट्रीय माप व तौल समिति तथा संयुक्त राज्य अमरीका की मापदंड समिति के विशेषज्ञ अतिपरिशुद्ध तुलाओं

के निर्माण में प्लैटिनम की जगह टैन्टेलम प्रयोग कर रहे हैं। पेनों की निबें इरीडियम की जगह टैन्टेलम से बनायी जा रही हैं क्योंकि इरीडियम बहुत ज्यादा महंगा पड़ता है।

हालांकि टैन्टेलम प्लैटिनम या इरीडियम जितना महंगा नहीं है, परन्तु फिर भी इसकी कीमत काफी ऊंची है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस धातु के उत्पादन में जो माल इस्तेमाल होता है, वह बहुत महंगा पड़ता है। इसके अलावा टैन्टेलम का निष्कर्षण एक बहुत ही जटिल प्रक्रम है। एक टन सांद्रित टैन्टेलम उत्पादन में 3000 टन अयस्क लग जाता है। यह बात जरूर है कि बाद में यह खर्चा ब्याज के साथ वसूल हो जाता है।

वह जमाना गया जब टैन्टेलम एक "जवान" तत्व था तथा काम की तलाश में दर-दर भटक रहा था। आपने देख ही लिया है कि आज इस धातु के पास हजारों काम हैं। भविष्य में इसको और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और रोचक काम करने हैं।

प्रकाश देने वाला

व्याख्या क्या जरूरी है? – भेड़िये का भाग – एक दवा-विक्रेता की खोज – एक अंग्रेज वैज्ञानिक मूशेट का बनाया स्टील – हार मानने को तैयार नहीं है – आड़ू के रंग का – पुतीलोव प्लांट में परीक्षण किये जाते हैं – जर्मन इंजीनियरों को सफलता मिल जाती है – आवश्यकता आविष्कार की जननी है – स्वादिष्ट निवाला – तोलमाचोव की बातों पर विश्वास नहीं किया जाता – दीर्घकालीन मौन – राजकुमारों व्लादीमीरोविचों की "जमीन" – पूरा खानदान तबाह हो जायेगा – "बाहर से" सहायता आती है – ठंड तथा गर्मी में – भगोड़ों की वापसी – सूरज की सतह पर – हर साल करोड़ों बल्ब बनाये जाते हैं – मिनट तथा शताब्दियां – "यूरान-1" मांट्रियल की प्रदर्शनी में – जौहरी जैसी बारीकी – 'मूछों' का फैशन – टंग्स्टन का बचतखाता।

बहुत सारे तत्त्वों के नाम ही उनकी खूबी बता देते हैं: हाइड्रोजन – "जल पैदा करने वाला", कार्बन – "कोयला पैदा करने वाला", मेंडेलियम, आइंस्टाइनियम, फर्मियम, क्यूरियम, कुरचातोवियम आदि नाम विख्यात वैज्ञानिकों के सम्मान में रखे गये हैं; यूरोपियम, ऐमेरिशियम, फ्रांसियम, जर्मेनियम तथा कैलिफोर्नियम – भौगोलिक नामों से लिये गये हैं। परंतु कुछ तत्व ऐसे हैं जिन्हें व्याख्या की जरूरत पड़ती है। इन तत्त्वों में से एक का नाम टंग्स्टन है। इसे "वुलफ्रैम" भी कहते हैं, जिसका अर्थ है – "भेड़िया का झाग"। मेंडेलीव की आवर्त सारणी के छठे ग्रुप के इस तत्व का एक जंगली जानवर के साथ क्या संबंध हो सकता है?

बहुत समय पहले धातुकर्मियों ने इस बात पर ध्यान दिया कि अयस्क से टिन प्रगलित करते समय कई बार टिन की मात्रा बहुत कम हो जाती थी। चूंकि हमारे पूर्वजों की भी प्रगलन की तकनीकी व आर्थिक आंकड़ों में पूरी-पूरी रुचि थी, अतः उन्होंने प्रगलन के लिये रखे अयस्क का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। शीघ्र ही उन्हें यह पता चला कि जिस अयस्क में भूरे या पीले-भूरे रंग के पत्थर होते थे उनसे टिन की मात्रा बहुत कम मिलती थी। बाकी अयस्कों से टिन पूरा मिलता था। वे समझ गये कि यह सब शरारत इस पत्थर की है। वह टिन को ऐसे सटक जाता था जैसे भेड़िया बकरी को। उन्होंने इस पत्थर का नाम "वुलफ्रैम" रख दिया। कुछ देशों में इसे "टंग्स्टन" या "भारी पत्थर" भी कहते हैं।

टंग्स्टन की खोज सुप्रसिद्ध स्वीडिश रसायनज्ञ कार्ल शील ने की जो पेशे से एक दवाबिक्रेता थे। अपनी छोटी सी प्रयोगशाला में

उन्होंने बहुत सारे उपयोगी अनुसंधान कार्य किये। आक्सीजन, क्लोरीन, बेरियम तथा मैंगनीज की खोज का श्रेय उन्हीं को जाता है। मृत्यु से कुछ पहले 1781 में शील ने, जो उस वक्त तक स्वीडिश विज्ञान अकादमी के सदस्य बन चुके थे, यह कहा कि खनिज टंग्स्टन (बाद में इसका नाम शीलाइट पड़ गया) एक अज्ञात अम्ल का लवण है। इसके दो साल बाद उनके सहायकों स्पेनिश भाइयों देलहुयार को इस खनिज से एक नया तत्व अलग करने में सफलता मिल गयी। यह तत्व वुलफ्रैम था जिसने उद्योग जगत में एक क्रांति लायी थी। परंतु यह घटना 100 साल बाद घटी।

सन् 1864 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक रोबर्ट मूशेट ने पहली बार स्टील में टंग्स्टन मिला कर देखा (लगभग 5%)। यह स्टील धात्विकी के इतिहास में "अपने आप" सख्त होने वाला स्टील के नाम से प्रसिद्ध है। मूशेट का यह स्टील तप्त आग सह गया और इसकी सख्ती कम होने की जगह बढ़ती गयी अर्थात् इस स्टील में खुदबखुद सख्त होने की क्षमता थी। इस स्टील के बने कटरों

से कर्तन की गति डेढ़ गुना बढ़ गयी (एक मिनट में 5 की जगह 7.5 मीटर हो गयी)।

इस घटना के लगभग 40 वर्ष बाद ऐसे स्टील का निर्माण शुरू हुआ जिसकी कर्तन क्षमता उत्तम थी। इस में टंग्स्टन की मात्रा 8% थी। अब धातु के कर्त्तन की गति 18 मीटर प्रति मिनट थी। कुछ सालों बाद यह गति बढ़ कर 35 मीटर प्रति मिनट हो गयी। इस प्रकार लगभग 50 साल के अर्से में टंग्स्टन ने कर्त्तन औजारों की कार्य-क्षमता सात गुना बढ़ा दी।

क्या यह गति और भी उच्च की जा सकती थी? यह काम स्टील के बस का नहीं था तथा टंग्स्टन भी उसकी कोई मदद नहीं कर सकता था। तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि धातुओं के कर्तन की गति की सीमा 35 मीटर प्रति मिनट से ऊपर नहीं जा सकती थी?

इस प्रश्न का उत्तर उसी टंग्स्टन ने दिया। नहीं, उसके पास अभी भी इतनी शक्ति है कि वह और ऊँचे ताप का मुकाबला कर सकता है तथा कर्त्तन की गति बढ़ा सकता है। 1907 में टंग्स्टन, क्रोमियम तथा कोबाल्ट से एक ऐलायस्टेलाइट बनाया गया जो आधुनिक कठोर ऐलायों की श्रेणी का प्रथम सदस्य था। इन ऐलायों ने कर्त्तन की गति बहुत उच्च कर दी और आज यह 2000 मीटर प्रति मिनट तक पहुँच गयी है।

कहां 5 और कहां 2000! धातु कर्त्तन की इतनी उच्च गति का श्रेय टंग्स्टन के नये-नये यौगिकों को जाता है।

आधुनिक अतिदृढ़ ऐलाय टंग्स्टन कार्बाइडों तथा कुछ अन्य तत्वों (टाइटेनियम, नियोबियम, टैन्टेलम) के मिश्रण से बने होते हैं। यहां यह बताना जरूरी है कि कार्बाइडों के कण कोबाल्ट द्वारा टंग्स्टन के साथ जोड़े जाते हैं। इस प्रकार के ऐलायों को सर्मेट कहते हैं। ये 1000°C ताप पर भी अपनी सख्ती नहीं खोते हैं जिसके कारण धातु के कर्त्तन की गति अतिविशाल रखी जाती है। टंग्स्टन कार्बाइड के आधार पर बने एक ऐलाय – रेलाइट की दृढ़ता इतनी ज्यादा होती है कि अगर इस ऐलाय पर एक आरी चलाई जाये तो ऐलाय की जगह आरी कट जायेगी।

धातु कर्त्तन टंग्स्टन का मुख्य गुण था जिसके कारण इसे तकनीक की दुनिया में घुसने का मौका मिल गया परंतु यह इसका एकमात्र पेशा नहीं था। पिछली शताब्दी के मध्य में यह पता चल चुका था कि सोडियम टंग्स्टेट में भिगोने से कपड़े के तंतुओं में अग्निसह की क्षमता आ जाती है। टंग्स्टनयुक्त रंगों का प्रचलन शुरू हो गया – पीले, नीले, सफेद, जामनी, हरे, आसमानी आदि रंगों का। इनको चित्रकारी में तथा मृतिका व पोर्सिलेन बर्तनों के उत्पादन में प्रयुक्त किया जाने लगा। सतरहवीं शताब्दी में चीन में जो पोर्सिलेन के बर्तन बनाये जाते थे वे आज तक सुरक्षित हैं। इन बर्तनों का आड़ू जैसा रंग अपनी खूबसूरती के कारण सारी दुनिया में प्रसिद्ध था। हमारे दिनों में इन बर्तनों का रसायनिक विश्लेषण करके देखा गया है जिससे पता चला है कि इस खूबसूरत रंग का कारण टंग्स्टन था।

1860 में ढलवां लोहे को टंग्स्टन अम्ल के साथ गर्म करके एक ऐलाय – फेरोटंग्स्टन प्राप्त किया गया। इस ऐलाय की मजबूती देख कर कई रसायनज्ञों तथा धातुकर्मियों की इसमें बहुत रुचि हो गयी। शीघ्र ही फेरोटंग्स्टन के औद्योगिक उत्पादन की विधि ढूंढ़ ली गयी जिसके परिणामस्वरूप धात्विकी

में टंग्स्टन का उपयोग बहुत ज्यादा बढ़ गया।

सन् 1882 में पहली बार टंग्स्टन तोपों के निर्माण में इस्तेमाल करके देखा गया। 1896 में पीटर्सबर्ग के पुतिलेव प्लांट में प्रोफेसर व. लीपिन ने टंग्स्टन स्टील प्रगलित कर लिया। उन दिनों बारुद के धुएं से तोपों को बड़ी जल्दी जंग लग जाता था। स्टील में थोड़ा सा टंग्स्टन मिलाने से इन तोपों का संक्षारण-प्रतिरोध काफी बढ़ जाता था। सबसे पहले यह बात जर्मन इंजीनियरों के दिमाग में आयी। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हलकी जर्मन तोपें 15000 बार गोलें फेंक सकती थीं जबकि रूसी तथा फ्रैंच तोपें 6000 से 8000 विस्फोटों के बाद बेकार हो जाती थीं।

स्वाभाविक था कि युद्ध के दिनों टंग्स्टन अयस्कों का उत्पादन बहुत बढ़ गया था। अगर पिछली शताब्दी के नौवें दशक में विश्व में प्रतिवर्ष टंग्स्टन अयस्कों का कुल उत्पादन 200-300 टन था तो 1910 में यह 8000 टन हो गया था तथा 1918 में 35 हजार टन तक पहुँच गया था।

परंतु फिर भी टंग्स्टन की कमी थी। जर्मनी के पास इस धातु का एक भी स्रोत नहीं था, अतः उसे और भी ज्यादा परेशानी हो रही थी। हां, युद्ध की तैयारी करते समय चतुर जर्मन लोगों ने टंग्स्टन अयस्कों के काफी भंडार जमा कर लिये थे परंतु शीघ्र ही वे काम में आ गये और माल बिल्कुल खत्म हो गया।

जर्मन धातुकर्मी इस धातु की खोज में जुट गये। ठीक ही कहते हैं कि "आवश्यकता आविष्कार की जननी है"। शीघ्र ही उन्होंने इस समस्या का हल ढूंढ लिया। उन्हें याद आ गया कि "भेड़िये का झाग" टिन खाने के बाद उसे कूड़े में फेंका जाता था और जर्मनी में जिस जगह पर बारहवीं शताब्दी से टिन का उत्पादन हो रहा था ऐसे कूड़ों के ढेर लगे हुए थे। बस फिर क्या था! शीघ्र ही जर्मन धातुकर्मी इन कूड़ों से टंग्स्टन निकालने लगे। यह बात जरूर थी कि उनको इतना टंग्स्टन नहीं मिल रहा था जितने की जरूरत थी। पर फिर भी इससे कुछ तो काम चल ही रहा था।

जिस वक्त सारी दुनिया में इस धातु

के उत्पादन में बहुत वृद्धि हो रही थी, जार के रूस में तब भी इस कीमती धातु का उत्पादन न के बराबर हो रहा था। 1915 में ट्रांसबैकाल के निक्षेप से एक स्थानीय कारखाने को केवल 1.4 टन टंग्स्टन अयस्क मिले तथा 1916 में दूसरे कारखाने को केवल 8.7 टन। उन दिनों पीटरग्राद के एक कारखाने से साल भर में कुल 60 पूड* फेरोटंग्स्टन मिल रहा था।

ट्रांसबैकाल निक्षेप पर विदेशियों की नजर लगी हुई थी, खास तौर पर स्वीडिश तथा जापानी फर्मों की। 1916 की ग्रीष्म में एक जापानी फर्म के भूविज्ञानियों ने इस इलाके में खोज का काम किया। जापानियों के इस अभियान के परिणाम आशाजनक होने चाहिये थे क्योंकि इस फर्म के डायरेक्टरों ने कई बार इस निक्षेप का ठेका मांगा, परंतु रूसी सरकार ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया।

उन दिनों बूकूकिन तथा ओल्डान्डू टंग्स्टन निक्षेप काफी प्रसिद्ध थे। इनका ठेका दो लोगों ने मिलकर ले रखा था – उद्योगपति तोल्माचोव तथा खनन इंजीनियर जिक्स ने। एक मौके पर दोनों ने यह फैसला किया कि ये निक्षेप स्वीडिश फर्म "मोंटिमेर एंड बोगाजू" को ऊँची कीमत पर बेच देंगे क्योंकि इस फर्म के प्रतिनिधियों ने इन निक्षेपों में काफी दिलचस्पी दिखायी थी। तोल्माचोव को इस सौदे से 30000 रूबल पेशगी के रूप में मिलने थे परंतु उसकी किस्मत खराब निकली। रूसी भूविज्ञानी समिति को यह शक हो गया कि तोल्माचोव ने अपनी खानों में टंग्स्टन की मात्रा जान बूझ कर कम बतायी है। समिति ने यह सुझाव दिया कि तोल्माचोव की खानों का भार जार की समिति को सौंप दिया जाये। इस प्रस्ताव को शीघ्र ही जार की सहमति मिल गयी।

अकादमीशियन फेर्समान ने अपने संस्मरणों में उस वक्त का निम्न शब्दों में वर्णन किया: "अक्तूबर क्रांति से पहले रूसी विज्ञान अकादमी की प्राकृतिक उत्पादक स्रोतों की समिति को किसी भी तरह के अधिकार नहीं दिये गये थे। उन दिनों रूस में विज्ञान की स्थिति बहुत खराब थी। वैज्ञानिकों के प्रस्तावों का डट कर विरोध किया जाता था। टंग्स्टन के निक्षेपों की खुदाई जैसे जरूरी काम के लिये भी विज्ञान अकादमी को दो साल तक एक भी पैसा नहीं दिया गया।"

दुर्भाग्य की बात यह थी कि वैज्ञानिकों को आर्थिक कठिनाइयों के साथ-साथ और भी कई तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा जलपोत निर्माता अकादमीशियन क्रीलोव की एक पुस्तक में इस बात के सबूत मिलते हैं। जनवरी 1917 में अर्थात् जार निकोलाई द्वितीय के शासन के अंतिम दिनों में प्राकृतिक उत्पादक स्रोतों की समिति टंग्स्टन के निक्षेपों पर विचार कर रही थी जिनकी रूस को बड़ी सख्त जरूरत थी। बातचीत के दौरान जार के एक प्रभावशाली अधिकारी ने समिति को बताया कि टंग्स्टन अयस्कों के निक्षेप तुर्कीस्तान में हैं और वहां अभियान-दल भेजने में 500 रूबल खर्च होंगे। इस सूचना के बाद सब चुप बैठ गये। वहां बैठे सभी लोग यह बात जानते थे कि अल्ताई की जमीन में भी टंग्स्टन निक्षेप विस्तृत हैं परंतु किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि इस

* पूड-16.38 किलोग्राम, जारशाही रूस का एक वजन-मापक। – अनु०

बात को जोर से कह सके। बात यह थी कि अल्ताई का सारा इलाका जार के नजदीकी रिश्तेदारों राजकुमारों व्लादीमीरोविचों की संपत्ति था, अतः इस इलाके में निक्षेपों की खोज की बात कहना एक जुर्म से कम नहीं था।

अ० क्रिलोव ने इस लंबी खामोशी को तोड़ा: "जहां तक तुर्कीस्तान के निक्षेपों का सवाल है तो 500 रूबल मैं अपनी जेब से देता हूँ"। इतना कहकर उन्होंने 500 रूबल का एक नोट सभा के अध्यक्ष अकादमीशियन फेर्समान को पकड़ा दिया। "मेरे से पहले जो सज्जन बोल रहे थे, उन्होंने यह नहीं बताया कि जार के रिश्तेदारों की अल्ताई में जो जमीन है, वहां भी टंग्स्टन के निक्षेप हैं। टंग्स्टन का मतलब है उत्तम कर्त्तन-क्षमता वाला स्टील। टंग्स्टन वह चीज है जो शार्पनलों की गति दुगुना तेज कर देती है। देश के हित में अगर सरकारी कब्जे की जरूरत है तो वह अल्ताई में है। शार्पनलों के बिना रूस हार जायेगा जिसके फलस्वरूप जार के रिश्तेदारों का तो क्या, जार का भी सत्यानाश हो जायेगा"।

इस निडर वैज्ञानिक की भविष्यवाणी सच निकली। एक महीने बाद जार रोमानोव के खानदान का नामोनिशान भी न रहा।

विदेशी विशेषज्ञों की "सहायता" भी रूस के टंग्स्टन उद्योग के विकास में बाधा का कारण बनी हुई थी। 1931 में मास्को विश्वविद्यालय के खनिज संग्रहालय में प्राचीन खनिजों की छंटाई करते समय वैज्ञानिकों को शैलाइट के कुछ नमूने दिखाई दिये जो ताजिकिस्तान में मोगोल-टाऊ पहाड़ों में मिले थे। छानबीन करने पर यह पता चला कि ये नमूने 1912 में मिले थे और परीक्षण के लिये मास्को लाये गये थे। परंतु जब ये पत्थर विख्यात जर्मन भूविज्ञानियों को दिखाये गये तो उन्होंने इन्हें बेकार बताया जिसका फल यह हुआ कि जार की सरकार ने इन निक्षेपों को हमेशा के लिये भुला दिया। मास्को विश्वविद्यालय में इन नमूनों के मिलने के कुछ महीने बाद एक कमिटी ताजिकिस्तान

भेजी गयी जिसने इन निक्षेपों का अध्ययन कर के यह रिपोर्ट भेजी कि मोगोल-टाऊ में टंग्स्टन के विशाल निक्षेप हैं तथा इनकी गिनती देश के मुख्य टंग्स्टन निक्षेपों में की जानी चाहिये।

लगभग इन्हीं दिनों विख्यात रूसी भूविज्ञानी अकादमीशियन स्मीरनोव ने अपने विद्यार्थियों के साथ सारे देश के टंग्स्टन निक्षेपों की खोज शुरू कर दी। इन लोगों ने भयंकर ठंड तथा गर्मी में हजारों किलोमीटर सफर तय किया – कभी पैदल तो कभी स्लेज पर। जहां-जहां ये साहसी भूविज्ञानी पहुंचे, वहां नये-नये टंग्स्टन प्लांट लगाये गये। यह सोवियत संघ के टंग्स्टन उद्योग की शुरुआत थी।

आज विश्व में टंग्स्टन के कुल उत्पादन का 80% भाग उच्च कोटि के स्टीलों की धात्विकी में तथा 15% के लगभग दृढ़ ऐलायों के निर्माण में व्यय हो जाता है। बाकी 5% का इस्तेमाल उद्योग जगत अद्वितीय गुणों वाली शुद्ध धातु के रूप में करता है।

टंग्स्टन को पिघलाने के लिये इतने ताप की जरूरत पड़ती है जिस पर अधिकांश

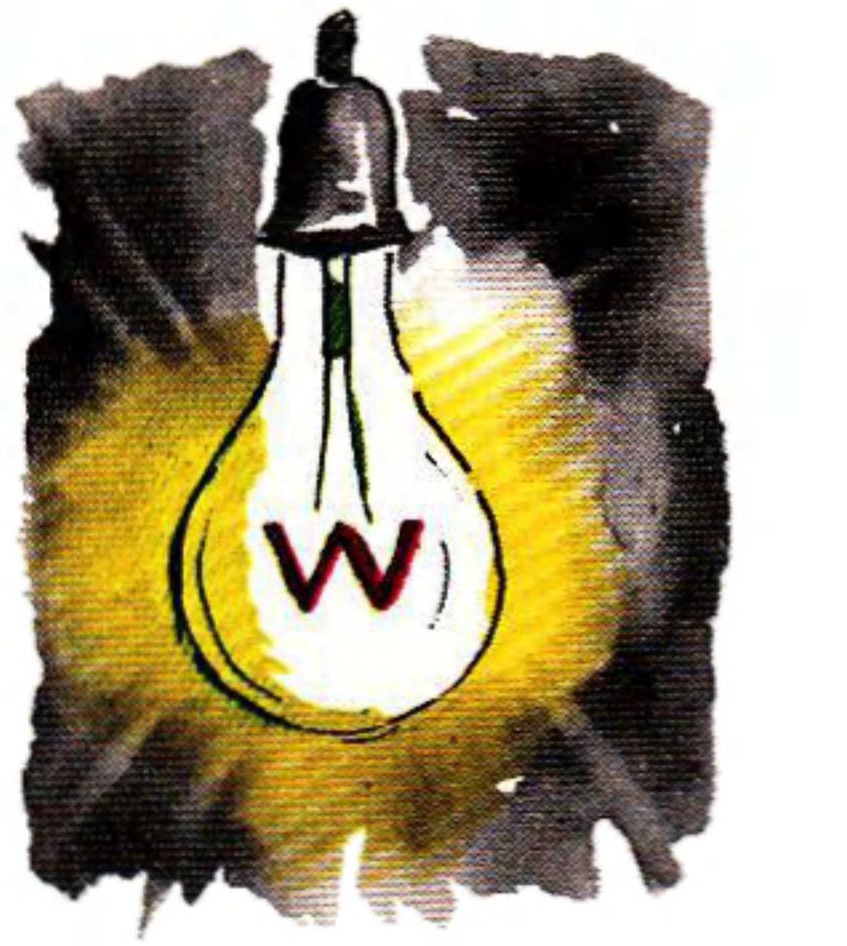

धातुएं वाष्पित हो जाती हैं – 3410°C के लगभग। यह धातु सूरज की सतह पर भी द्रव अवस्था में रह सकती है : इसका गलनांक 6000°C से ऊपर है। इस महत्वपूर्ण और अद्वितीय गुण के कारण उद्योग के एक अतिमहत्वपूर्ण क्षेत्र – विद्युत इंजीनियरी में इसका प्रयोग अति विस्तृत है।

जब से 1906 में बिजली के बल्बों में कार्बन, आस्मियम तथा टैंटेलम के तंतुओं की जगह टंग्स्टन तंतु का इस्तेमाल शुरू हुआ तब से हर रोज शाम को नन्ही-नन्ही टंग्स्टन बिजलियां हमारे घरों को उजाला देती चली आ रही हैं। प्रतिवर्ष विश्व में अरबों बिजली बल्बों का उत्पादन होता है। कई अरब बल्ब! ... इनकी संख्या क्या बहुत ज्यादा है? आप खुद ही फैसला कीजिये : कालानुक्रम के आरंभ से मानवजाति अरब मिनट से थोड़ा ज्यादा जी चुकी है (29 अप्रैल 1902 को 10 बज कर 40 मिनट पर नये कालानुक्रम का दूसरा अरबवां मिनट शुरू हो गया था)।

वैज्ञानिक तथा इंजीनियर दिन-रात बल्बों की कोटि उच्च करने के प्रयास में जुटे हुए हैं। वे उनकी कार्य अवधि ज्यादा से ज्यादा करनी चाहते हैं। जैसे एक मोमबत्ती के जलते ही उसका मोम पिघलना शुरू हो जाता है, उसी तरह एक बल्ब के जलते ही तंतुओं की सतह से टंग्स्टन वाष्पित होने लगता है। इस वाष्पीकरण को कम करने के लिये उसके अंदर दाब पर विभिन्न निष्क्रिय गैसें भर दी जाती हैं। हाल ही में कुछ वैज्ञानिकों ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बल्ब में आयोडीन वाष्प भरने का प्रस्ताव पेश किया है। पता चला है कि आयोडीन यहां एक विशिष्ट भूमिका निभाता है। वह

टंग्स्टन के वाष्पित अणुओं को पकड़ कर उनके साथ रसायनिक प्रतिक्रिया करके तंतु पर बैठ जाता है। इस प्रकार आयोडीन "भगोड़ों" को वापस लौटा लाता है जिसके परिणामस्वरूप बल्ब की उम्र काफी बढ़ जाती है।

विद्युत बल्बों की किस्में बहुत विविध होती हैं – चिकित्सा में काम आने वाले नन्हे-नन्हे मनकों से लेकर शक्तिशाली सर्चलाइटों तक।

मांट्रियल में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में सोवियत मंडप में एक विकिरण-हीटर "यूरान-1" दिखाया गया। इस हीटर का एक मुख्य अंग एक विशेष बल्ब था जो जल तथा वायु द्वारा शीतित किया जा रहा था। दुर्गलनीय क्वार्ट्ज के बने इस छोटे से बल्ब में टंग्स्टन के दो इलैक्ट्रोड लगे हुए थे तथा इसके अंदर निष्क्रिय गैस जीनान भरी हुई थी। बल्ब के जलते ही इलैक्ट्रोडों के बीच गैस प्लैज्मा ज्वलित होने लगता था जिसका तापमान 8000°C तक पहुंच जाता था। विशेष दर्पण, जिसके सामने साधारण दर्पण एक धुंधली टिनप्लेट लगते थे, कृत्रिम सूरज की (यह बल्ब सौर स्पेक्ट्रम उत्पन्न करता था) इंफ्रारेड किरणों को एक प्रकाशिकीय उपकरण की ओर संकेंद्रित कर देता था जो इन किरणों को एक पुंज में परिवर्तित कर देता था। इस पुंज का व्यास 1 सेंटीमीटर से कुछ ज्यादा था तथा इन किरणों के फोकस का ताप 3000° C तक पहुंच जाता था। इतनी "अधिक गर्म परिस्थितियों" में "यूरान-1" सैकड़ों घंटों तक बिना रुके काम कर सकता था। निर्वात में धात्विक कैथोड की सतह से निकल रहे इलेक्ट्रान पुंज (इलेक्ट्रान उत्सर्जन) की किरणों को कैथोड किरणें कहते हैं। तकनीक में इन किरणों का उपयोग विस्तृत है। प्रयोगों ने यह बताया है कि इन कैथोडों के निर्माण के लिये टंग्स्टन एक अति उत्तम पदार्थ है।

टंग्स्टन केवल सर्वाधिक उत्तम दुर्गलनीय धातु ही नहीं है। शुद्ध टंग्स्टन की मजबूती अतिविशाल होती है। इसकी भंग प्रतिरोध की क्षमता 40 टन प्रति वर्ग सेंटीमीटर होती है अर्थात् सबसे बढ़िया किस्म के स्टील से भी श्रेष्ठ है। 800°C ताप पर भी इस धातु की ये खूबियां सही सलामत रहती हैं।

विशाल मजबूती तथा उच्च तन्यता मिलकर टंग्स्टन को बहुत काम का बना देती हैं : इससे बहुत ही महीन तार ताने जा सकते हैं। 100 किलोमीटर लंबे इस किस्म के तारों का वजन केवल 250 ग्राम होता है।

बिजली के बल्बों में विस्तृत उपयोग के अलावा टंग्स्टन को कुछ दिनों पहले एक नया प्रस्ताव मिला है। वैज्ञानिकों ने पदार्थों के कर्त्तन औजारों के निर्माण में टंग्स्टन इस्तेमाल करने का निश्चय किया है। पराश्रव्य ध्वनि जनित्र निर्मित किया जो परिवर्त्तक की सहायता से टग्स्टन तंतु में तरंगों का दोलन उत्पन्न करता है। परिणाम यह हुआ कि तंतु धातु में घुसते-घुसते उसे धीरे-धीरे काटता रहा। इस नये औजार से क्वार्ट्ज, मणि, सिटाल, कांच तथा मृत्तिका जैसे कठोर पदार्थ को बड़ी सफाई से काटा जा सकता है या इन पदार्थों के अंदर हर आकार तथा हर किस्म के सूराख और खांचे बनाये जा सकते हैं।

टंग्स्टन तंतु कितना भी मजबूत क्यों न होता हो, इस धातु की "मूछों" का यह फिर भी मुकाबला नहीं कर सकता, जो

अतिसूक्ष्म क्रिस्टलों से बनी होती हैं। ये मनुष्य के बाल से भी कई सौ गुना बारीक होती हैं। इनकी दृढ़ता 230 टन प्रति वर्ग सेंटीमीटर होती है जो दृढ़ता की लगभग उच्चतम सीमा है अर्थात् विज्ञान द्वारा पार्थिव पदार्थों के लिये निश्चित सैद्धांतिक सीमा के बराबर है। परंतु फिलहाल इस करामाती धातु का कार्यक्षेत्र प्रयोगशाला तक सीमित है।

तकनीकी कार्यों में जो शुद्ध टंग्स्टन इस्तेमाल किया जाता है उसे प्राप्त करने के लिये टंग्स्टन ट्राइआक्साइड का हाइड्रोजन द्वारा अपचयन किया जाता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्राप्त बारीक टंग्स्टन पाउडर को संपीडित करके विद्युत-धारा से 3000° C तक तापते हैं। अब जो टंग्स्टन मिलता है उसके तंतु बिजली के बल्बों, रेडियो-वल्वों तथा एक्सरे ट्यूबों और अन्य उपकरणों में लगाये जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने एक योजना बनायी है जिसके अनुसार आर्क-प्लाज्मा विधि द्वारा टंग्स्टन, मालिब्डेनम तथा अन्य उच्चतापसह धातुओं के विशाल मोनोक्रिस्टल विकसित किये जा सकते हैं। सोवियत विज्ञान अकादमी के धात्विकी संस्थान में इस विधि द्वारा टंग्स्टन का एक मोनोक्रिस्टल प्राप्त किया गया है जिसका वजन 10 किलोग्राम है। अतिशुद्ध होने के कारण इस धातु में अद्वितीय यांत्रिक गुणधर्म विद्यमान होते हैं – अति निम्न तापमानों पर भी इसकी तन्यता कायम रहती है तथा काफी ज्यादा गर्म होने पर भी इसकी मजबूती में कोई खास फर्क नहीं आता। ये मोनोक्रिस्टल बहुत सारे विद्युत-निर्वात उपकरणों में काम के सिद्ध हो रहे हैं।

"सोयुज-अपोलो" प्रोग्राम के अंतर्गत सोवियत तथा अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियों ने संयुक्त अंतरिक्ष उड़ान के दौरान एक रोचक प्रयोग किया जिसमें टंग्स्टन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सर्वविदित है कि पार्थिव परिस्थितियों में अलग-अलग घनत्व वाली धातुओं से ऐलाय प्राप्त करना कठिन तथा अक्सर असंभव कार्य होता है: इसका कारण यह है कि प्रगलन तथा क्रिस्टलीकरण के दौरान भारी धातु के कण ढाले हुए पिंड की निचली सतह पर जम जाते हैं जबकि हलकी धातु के कण ऊपरी सतह पर। यह स्वाभाविक है कि ऐसा विषमस्तरीय ऐलाय किसी भी काम का नहीं होगा।

अंतरिक्ष प्रगलन की बात दूसरी है। अंतरिक्ष में भारहीनता की परिस्थितियों में सब धातु एक समान होती हैं – चाहे वे हलकी हों या भारी, जिसकी वजह से अंतरिक्ष में प्रगलित ऐलाय संघटन तथा संरचना में एकरूपी होते हैं। उक्त अंतरिक्ष उड़ान के दौरान इस "सार्विक भट्टी" में एक हलकी व निम्न गलनांक वाली धातु ऐलुमिनियम तथा एक भारी व परम दुर्गलनीय धातु टंग्स्टन के प्रगलन से एक ऐलाय बना कर देखा गया।

यह प्रयोग अंतरिक्ष तकनीक के क्षेत्र में पहला कदम है। इस ऐतिहासिक उड़ान के एक भागी सोवियत अंतरिक्षयात्री वालेरी कुबासोव ने इस उपलब्धि पर निम्न टिप्पणी की: "कुछ अर्से बाद हम लोग मिल कर अंतरिक्ष में ऐसे प्लांट चालू कर सकते हैं जहां एक नयी धात्विकी पर काम शुरू होगा – ये प्लांट ऐसे ऐलाय तथा पदार्थ बनायेंगे जिनका पृथ्वी पर उत्पादन असंभव होता है।"

1929 में अमरीकी इंजीनियरों ने टंग्स्टन

के प्रयोग से हो रही बचत की गणना की। परिणाम बड़े रोचक तथा आशाजनक निकले। पता चला कि बिजली के बल्वों में टंग्स्टन के इस्तेमाल से 40 करोड़ रूबल की बचत हुई। टंग्स्टन स्टील के औजारों से जो कार बनायी जा रही थी, उसकी लागत कार्बन स्टील के औजारों की मदद से बनायी जा रही कार की लागत से 40 रूबल कम पड़ रही थी। मशीनरी में टंग्स्टन के प्रयोग से साल भर में 50-60 करोड़ रूबल की बचत हो रही थी।

सदियों से धातुएं मनुष्य की बड़ी वफादारी के साथ सेवा करती आ रही हैं। इनकी मदद से मनुष्य तकनीक की अद्वितीय दुनिया की रचना कर रहा है। इन धातुओं में टंग्स्टन का विशेष महत्व है क्योंकि इसने अन्य धातुओं को काफी पीछे छोड़ दिया है।

तीन तालों के अंदर बंद

स्पेनिश हमलावरों की खोज – स्पेन के बादशाह का आदेश – प्लैटिनम एक बार फिर यूरोप में – नजदीकी रिश्तेदार – रूस का पहला प्लैटिनम – हीरक स्टील – किले पर धावा – वित्तमंत्री की गलती – याद के तौर पर – कूड़े में खजाना – देमीदोव पुरस्कार विजेता – एक ग्राम प्लैटिनम के लिये कितने बखेड़े ? – हार्दिक अभिनंदन – क्या चिंगारियां हवा से बुझ जाती हैं ? – तीव्र गति से – यह दोनबास की बात है – मनहूस साल – पारदर्शी दर्पण – मोंटेज़ूमा का उपहार – प्लैटिनम का थर्मामीटर – तीन चाबियां – हर युग के लिये, हर राष्ट्र के लिये – नारंगी किरणें – प्लैटिनम रोगनिदान करता है – दर्द महसूस नहीं होता – बड़े आदर की बात है।

सोलहवीं तथा सत्तरहवीं शताब्दी में स्पेनिश हमलावरों (कोनकिस्टेडोरों) ने अजटेकों तथा इंकाओं के देश को जी भर कर लूटा। अमरीका से स्पेन लौट रहे जहाजों पर टनों स्वर्ण, रजत तथा पन्ने लदे होते थे। एक बार स्पेनिश विजेताओं को प्लाटीना डेल पिंटो (कोलंबिया) नदी के तट पर स्वर्ण तथा रजत जैसी एक अज्ञात धातु के कण मिले। इस नयी धातु का गलनांक अति उच्च होने के कारण यह किसी काम की नहीं सिद्ध हुई। इसकी उपस्थिति से स्वर्ण के परिष्करण में परेशानी हुई। स्पेनिश लोगों को इस धातु से चिढ़ हो गयी जिसकी वजह से उन्होंने इसका नाम "प्लैटिनो" रख दिया जिसका अर्थ है – "घटिया किस्म का रजत"।

इतना सब कुछ होते हुए भी प्लैटिनम की बहुत बड़ी मात्रा यूरोप पहुँच गयी जहां इसे रजत से भी सस्ते भावों पर बेचा गया। शीघ्र ही स्पेनिश जौहरियों को यह पता चल गया कि प्लैटिनम को स्वर्ण के साथ बड़ी आसानी से प्रगलित किया जा सकता है। फिर क्या हुआ! बेईमान जौहरियों ने सोने में इसकी मिलावट शुरू कर दी। और तो और सिक्कों के निर्माण में भी यह जालसाजी शुरू हो गयी। बादशाह को जैसे ही इस मिलावट की सूचना मिली उसने तुरंत इस धातु के आयात पर पाबंदी लगा दी और इसके सारे भंडार नष्ट करने का आदेश दे दिया।

स्पेन तथा इसके उपनिवेशों में जितना भी प्लैटिनम था वह सारा इकट्ठा कर लिया गया। अब इस धातु को बड़े गंदे नामों से पुकारा जाता था – "सड़ा स्वर्ण", "मेढ़क स्वर्ण" आदि। बादशाह की टकसाल के

कर्मचारियों ने सारा प्लैटिनम नदियों तथा समुद्रों में गहरी जगहों पर डुबो दिया। आगे भी प्लैटिनम के साथ ऐसा सलूक कई बार किया गया। इस बेचारी के जीवन के प्रथम चरण का अंत बहुत ही दुखदायी था।

सतरहवीं शताब्दी के मध्य में स्पेन में दो खंडों वाली एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक था "मेरी दक्षिणी अमरीका की यात्रा"। इस पुस्तक के लेखक प्रसिद्ध समुद्री-यात्री, खगोलज्ञ तथा गणितज्ञ आंतोनीयो डि युल्ओआ थे। वे अभियान के उद्देश्य से दक्षिणी अमरीका गये थे जहां उन्हें प्राकृतिक प्लैटिनम में रुचि हो गयी। वे इसे यूरोप ले आये और अपनी पुस्तक में उन्होंने इस धातु का सविस्तार वर्णन किया। परिणाम यह हुआ कि यूरोप के बहुत सारे वैज्ञानिक प्लैटिनम में दिलचस्पी दिखाने लगे।

कुछ वैज्ञानिक प्लैटिनम को ज्ञात धातुओं (उदाहरणतया स्वर्ण और लौह) का मिश्रण वता रहे थे परंतु स्वीडिश रसायनज्ञ हेनरीक शेफर ने अपने प्रयोगों द्वारा उनकी धारणा को गलत सिद्ध कर दिया। उन्होंने प्लैटिनम को एक नया रसायनिक तत्व बताया।

प्लैटिनम के अध्ययन से दूसरी कई धातुओं की खोज हो गयी। ये धातुएं प्रकृति में प्लैटिनम के साथ मिलती हैं और इन सबको एक ही नाम से पुकारा जाता है – प्लैटिनम धातु। 1803 में पैलेडियम तथा रोडियम की खोज हुई और 1804 में ऑस्मियम व इरीडियम की। 40 साल बाद रसायनज्ञों को इस ग्रुप के अंतिम तत्व – रुथीनियम का भी पता चल गया।

इस क्षेत्र में इतनी उन्नति का एक मुख्य कारण और भी था – 1819 में यूराल में कैथेरिनबुर्ग (आज इस शहर का नाम स्वेर्द-लोव्स्क है) के पास भूविज्ञानियों को प्लैटिनम के बिखरे हुए निक्षेप मिले। 5 साल बाद इन इलाकों में रूस की प्रथम प्लैटिनम खान चालू हो गयी। यूराल के निक्षेपों की विपुलता की पुष्टि इस बात से हो जाती है कि उन दिनों वहां के शिकारी प्लैटिनम के छर्रों से चिड़िया मारा करते थे।

लगभग इन्हीं दिनों स्टील में प्लैटिनम मिलाया जाने लगा। 1825 में "खनन पत्रिका" में निम्न खबर छपी: उच्चतापसह मिट्टी के बरतन में 6 पाउंट स्टील के साथ 8 जोलत्नीक* प्रगलित किये गये। इस बात का ख्याल रखा गया कि बर्तन के अंदर हवा न घुस पाये। प्राप्त पदार्थ को ढलवें लोहे के बने एक सांचे में डालकर ठंडे पानी द्वारा तेजी से शीतित किया गया। जब इस स्टील की शलाकों को तोड़ कर देखा गया तो इसे समजातीय पाया गया। यह स्टील इतना सूक्ष्मकणीय था कि नंगी आंखों से इसके कण देखना असंभव था। तेज तथा मजबूत हो कर यह स्टील काँच को एक हीरे की तरह काटने लगा। यह कुंठित हुए बिना लोहे को भी काटने लगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्लैटिनम स्टील अन्य सभी स्टीलों से ज्यादा मजबूत होता है। यह भारी से भारी आघात सह सकता है। अद्वितीय मजबूती के कारण इसे "हीरक स्टील" कहा जाने लगा। बहुत लंबे अर्से तक प्लैटिनम स्टील सबसे ज्यादा मजबूत माना जाता था। बाद में स्टील में प्लैटिनम की जगह टंग्स्टन मिलाया जाने लगा, क्योंकि वह सस्ता पड़ता था तथा प्लैटिनम से भी ज्यादा मजबूत था।

प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक तथा इंजीनियर सोबोलेवस्की ने प्लैटिनम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण पृष्ठ जोड़ दिया। वे पिटर्सबर्ग में खनन तथा लवण प्रयोगशाला, खनन कैडेट कोर तथा मुख्य खनन फार्मेसी के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने एक सहायक धातु-विज्ञानी के सहयोग से कच्चे प्लैटिनम का अध्ययन तथा इसे तन्य धातु में परिवर्तित करने की विधि ढूंढ़नी शुरू कर दी। मुश्किल यह थी कि उन दिनों जितनी भी भट्टियां उपलब्ध थीं, उनमें से एक भी प्लैटिनम को इसके गलनांक (1769°C) तक या इसके लगभग तापमान तक गर्म नहीं कर पा रही थी जबकि यह तन्यता की आवश्यक

* जोलोत्नीक – जारशाही रूस का एक वजन मापक जो 4.25 ग्राम के बराबर था। – अनु०

शर्त थी। इसके बिना प्लैटिनम किसी भी दूसरे रूप में परिवर्तित होने को तैयार नहीं था। वैज्ञानिक इस समस्या का हल ढूंढने में व्यस्त थे।

जब किले पर छापे से कब्जा नहीं हो पाता तब दूसरे रास्ते ढूंढने पड़ते हैं। रूसी वैज्ञानिकों ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने लोहे के बने विशेष सांचों में स्पंज प्लैटिनम (ऐसी धातु अयस्कों की रसायनिक प्रोसेसिंग से प्राप्त होती थी) भरकर पेंचदार प्रेस में संपीडित किया और फिर इस धातु को श्वेत ताप तक गर्म किया। इसके बाद उन्होंने एक बार फिर इस प्लैटिनम को उच्च दाब पर संपीडित किया। अब धातु अपनी हार मान गयी। स्पंज प्लैटिनम प्रगलित हुए बिना ही ऐसे पदार्थ में परिवर्तित हो गया जिसमें और ढलवें पदार्थ में कोई फर्क नजर नहीं आ रहा था। इस प्रकार 1826 में तकनीक के इतिहास में पहली बार एक नवीन तकनीकी विधि खोजी और अपनायी गयी जिसका महत्व आज तक कायम है। आधुनिक चूर्ण धात्विकी इसी के आधार पर विकसित हुई है।

रूस के वित्तमंत्री यू० कान्क्रीन ने सोबोलेवस्की की इस महत्वपूर्ण खोज पर ध्यान दिया। उसने जार से सिफारिश की कि सेवानिवृत होने तक सोबोलेवस्की को तनख्वाह के अलावा हर साल 2500 रूबल अलग से दिये जायें। जार ने अपने मंत्री की सलाह मानकर आवश्यक आदेश जारी कर दिये।

तभी सोबोलेवस्की को 3.6 और 12 रूबल कीमत के प्लैटिनम सिक्के ढालने का काम सौंपा गया। शीघ्र ही पीटर्सबर्ग की टकसाल में बड़े जोरशोर से इन सिक्कों की ढलाई शुरू हो गयी। थोड़े से अर्से में ही करीब लाख से भी ज्यादा सिक्के ढाल दिये गये जिनके निर्माण में 15 टन प्लैटिनम लग गया। परंतु इस धातु की कीमत बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। सरकार समझ गयी कि प्लैटिनम के सिक्के बनवाना एक गलत कदम था। प्लैटिनम सिक्कों की कीमत लगातार बढ़ती जा रही थी जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी असली कीमत उनपर अंकित कीमत से बहुत ज्यादा हो गयी थी। शीघ्र ही इन सिक्कों का प्रचलन बंद हो गया क्योंकि वित्तमंत्री ने सरकारी खजाने में प्लैटिनम लौटाने के लिये उचित कदम उठाये। इसके अलावा कई लोग प्लैटिनम की जगह अन्य सिक्कों से अदायगी करना बेहतर समझ रहे थे; उन्होंने प्लैटिनम सिक्कों को याद के तौर पर संभाल कर रख दिया। आज ये सिक्के बहुत दुष्प्राप्य हैं। इन्हें केवल कुछ गिने चुने मुद्रातत्व संग्रहणों में देखा जा सकता है।

प्लैटिनम सिक्कों की ढलाई से विज्ञान को अप्रत्याशित लाभ हो गया। टकसाल की प्रयोगशाला में काफी प्लैटिनम अयस्क इकट्ठे हो गये थे — ये सिक्कों के उत्पादन के अपशेष थे। 1841 में कजान विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर कार्ल क्लाउस ने पीटर्सबर्ग की टकसाल से कुछ पाउंड अपशेष मांगे। वैज्ञानिक का अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। माल मिलते ही क्लाउस ने उसका विश्लेषण शुरू कर दिया। उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उस कूड़े में 10% तक प्लैटिनम उपस्थित था तथा आस्मियम, इरीडियम, पैलेडियम व रेडियम भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में थे।

जिस कूड़े की कभी किसी ने कोई परवाह न की थी, वह तुरंत एक खजाना बन गया।

क्लाउस ने इस बात की सूचना खनन-मंत्रालय को दी। कुछ समय बाद वे पीटर्सबर्ग आये जहां वित्तमंत्री काउंट कान्क्रीन से मिले। काउंट ने वैज्ञानिक की खोज को बहुत महत्व दिया और अनुसंधान कार्य जारी रखने के लिये उन्हें और प्लैटिनम अपशेष दिला दिये।

क्लाउस की इतनी मेहनत बेकार नहीं गयी। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि प्लैटिनम अपशेषों में ज्ञात तत्वों के अलावा एक नयी धातु उपस्थित है जिसका नाम वैज्ञानिक ने "रूथीनियम" रखा (लातीनी भाषा में रूस को "रूथ" कहते हैं)। इस खोज के उपलक्ष में रूसी विज्ञान अकादमी ने क्लाउस को देमीदोव पुरस्कार प्रदान किया।

यूराल में प्लैटिनम का उत्पादन बड़ी तेजी से बढ़ने लगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में विश्व में प्लैटिनम के कुल उत्पादन का 95% भाग रूस के हिस्से में आता था (शेष 5% कोलंबिया में)। बाद में दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा आदि देश भी विश्व-मार्केट में प्लैटिनम भेजने लगे।

विशेष बात यह है कि अगर विश्व में

स्वर्ण का वार्षिक उत्पादन 1000 टन से बढ़ चुका है, तो प्लैटिनम का वार्षिक उत्पादन अभी भी कुछ दर्जन टनों तक सीमित है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सोवियत कवि मायाकोव्स्की के निम्न शब्द प्लैटिनम पर सही निकलते हैं: "एक ग्राम माल निकालने के लिये कई साल मेहनत करनी पड़ती है"। और यह बात ठीक भी तो है – एक ग्राम प्लैटिनम प्राप्त करने के लिये सैकड़ों घनमीटर अयस्क की जरूरत पड़ती है – मालगाड़ी के एक डिब्बे अयस्क की। इसका कारण यह है कि अयस्कों में प्लैटिनम की मात्रा बहुत ही कम होती है। इसके अलावा एक वजह यह भी है कि अभी तक प्लैटिनम के विशाल निक्षेप कहीं नहीं मिले हैं। प्राकृतिक रूप में यह धातु बहुत कम मिलती है। आजतक जितने भी प्राकृतिक प्लैटिनम के डले मिले हैं उनमें से सबसे बड़े का वजन 10 किलोग्राम से कम है।

इस धातु का व्यावहारिक उपयोग पिछली शताब्दी के आरंभ में शुरू हो गया जब किसी ने सांद्रित सल्फ्यूरिक अम्ल के संचयन के लिये प्लैटिनम के रिटार्ट बनाने की बात सोची। तब से अम्लों के प्रति उच्च प्रतिरोधक्षमता के गुण के कारण रसायनिक प्रयोगशालाओं में प्लैटिनम बड़े शौक से इस्तेमाल होता आ रहा है। इस धातु से क्रूसिबल, नाउल, छन्नी तथा पाइप जैसी काम की चीजें बनायी जाती हैं। रसायनिक प्लांटों में अम्लरोधी तथा उच्चतापसह उपकरणों के निर्माण में भी प्लैटिनम की बहुत बड़ी मात्रा व्यय हो जाती है।

चेकोस्लोवाकिया की प्रसिद्ध ग्लास फैक्टरियों में प्रगलित कांच को हिलाने के लिये

जिस प्लैटिनम विलोड़क का इस्तेमाल हो रहा है उसकी कीमत 750000 क्राउन है तथा जिस प्लैटिनम क्रूसिबल में यह कार्य हो रहा है उसकी कीमत इससे भी दुगुनी है, परंतु इतना धन बेकार ही व्यय नहीं किया गया है। यह कारखाना सबसे आधुनिक माना जाता है तथा इसमें सूक्ष्मदर्शियों, टेलीस्कोपों तथा अन्य प्रकाशिकीय उपकरणों के लिये उच्चकोटि के शीशों का उत्पादन होता है।

रसायनज्ञों ने प्लैटिनम का एक और महत्वपूर्ण उपयोग ढूंढ़ लिया है। यह धातु बहुत सारी रसायनिक प्रतिक्रियाओं में सक्रिय उत्प्रेरक का कार्य करती है। इस गुण के आधार पर हंगरी के वैज्ञानिकों ने हाल में एक नये किस्म का लाइटर बनाया है: इसमें न तो दांतेदार चकरी है और न ही चकमक पत्थर। ढक्कन खोलते ही ज्वाला निकलने लगती है। इसका कारण यह है कि लाइटर से निकल रही गैस वायु के संपर्क में आते ही भभकने लगती है। परंतु यह प्रतिक्रिया केवल उत्प्रेरक की उपस्थिति में घटती है। इस लाइटर में प्लैटिनम का एक छल्ला उत्प्रेरक का काम करता है जिसमें से गैस बाहर निकलती है। इस लाइटर पर हवा का कोई असर नहीं पड़ता। उल्टे, हवा जितनी तेज होती है, प्रतिक्रिया की गति उतनी ही तेज होती है तथा उसी हिसाब से लपटें बढ़ती जाती हैं। जैसे ही छल्ले को ढक्कन से ढक देते हैं, लपटें निकलनी बंद हो जाती हैं।

नाइट्रोजन अम्ल के उत्पादन में अमोनिया के ऑक्सीकरण के लिये प्लैटिनम तथा वायु के मिश्रण को तीव्र गति के साथ प्लैटिनम की एक बहुत पतली जाली (इसके एक वर्ग सेंटीमीटर में रंध्रों की संख्या 5000 तक होती है) में से गुजारा जाता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जलवाष्प तथा नाइट्रोजन के आक्साइड प्राप्त होते है। इन आक्साइडों को जल में घोलने से नाइट्रिक अम्ल प्राप्त हो जाता है।

नाइट्रिक अम्ल के औद्योगिक उत्पादन में प्लैटिनम के प्रयोग का श्रेय रूसी रसायनज्ञ इ० आन्द्रेयेव को जाता है जो रूस में नाइट्रिक अम्ल उद्योग के पायानिर थे। उन्होंने अमोनिया के आक्सीकरण पर विभिन्न उत्प्रेरकों की प्रक्रिया का बहुत लंबे अर्से तक अध्ययन किया। यह प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों की बात है जब बारूद बनाने के लिये नाइट्रिक अम्ल की जरूरत बढ़ती जा रही थी। यह बात स्वाभाविक थी क्योंकि एक किलोग्राम बारूद के निर्माण में 2 किलोग्राम से भी ज्यादा नाइट्रिक अम्ल लग रहा था। 1916 के अंत में रूसी सेना को हर माह 6400 टन बारूद की जरूरत पड़ रही थी। नाइट्रिक अम्ल प्राप्त करने का प्राकृतिक माल केवल चिली में उपलब्ध था, अत: युद्ध में भाग ले रहे सभी देशों को इस अम्ल की बहुत कमी महसूस हो रही थी। वे सब बड़ी विह्वलता से इस समस्या का हल ढूंढ़ रहे थे।

उन्हीं दिनों आंद्रेयेव ने कच्चे माल के रूप में अमोनिया इस्तेमाल करने का सुझाव दिया जो कोक के उत्पादन में अपशेष के रूप में मिलती थी। अपने अनुसंधान कार्यों से उन्हें प्लैटिनम की उत्प्रेरक क्षमता में जरा भी शक नहीं रहा तथा इस बात में भी विश्वास हो गया कि प्लैटिनम की उपस्थिति में अमोनिया के आक्सीकरण की गति तीव्र हो जाती है। आंद्रेयेव के प्रस्ताव

पर दोनबास में, जहां बहुत सारे कोक तथा रसायनिक कारखाने थे (अर्थात् अमोनिया की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध थी) रूस में नाइट्रिक अम्ल का पहला प्लांट लगाया गया। 1917 में इस प्लांट से पहला माल भी प्राप्त हो गया। इस प्रकार आंद्रेयेव ने नाइट्रिक अम्ल की समस्या हल कर दी।

इस वक्त तक प्लैटिनम को कितना ज्यादा महत्वपूर्ण समझा जाने लगा था इस बात का अनुमान आप इस तथ्य से लगा सकते हैं: 1918 में रूस में इस धातु के अध्ययन के उद्देश्य से एक विशेष संस्थान खोला गया जो बाद में सोवियत विज्ञान अकादमी के सामान्य तथा अकार्बनिक रसायन संस्थान का एक अंग बन गया। आज भी इस संस्थान में प्लैटिनम ग्रुप के तत्वों के रसायनिक तथा तकनीकी गुणों पर लंबा-चौड़ा अनुसंधान कार्य हो रहा है।

आज प्लैटिनम की जरूरत केवल रसायनज्ञों को ही नहीं है। कांच के साथ अच्छी तरह मुद्रित होने की क्षमता के कारण यह धातु बहुत सारे कांच उपकरणों के निर्माण में भी प्रयुक्त होती है।

कांच के ऊपर इस धातु का बहुत पतला लेप चढ़ाने से प्लैटिनम दर्पण बन जाते हैं जिनमें एक अद्वितीय विशेषता होती है। ये केवल एक तरफ से पारदर्शी होते हैं। जिस तरफ प्रकाश का स्रोत स्थित होता है उधर से ये दर्पण अपारदर्शी होते हैं। उस तरफ से यह एक साधारण दर्पण है जिसमें चीजों का प्रतिबिंब दिखायी देता है, परंतु छाया वाली तरफ से वह एक कांच की तरह पारदर्शी होता है अर्थात् उधर से दूसरी तरफ का सारा नजारा दिखायी देता है। एक जमाने में संयुक्त राज्य अमरीका में प्लैटिनम दर्पणों का बहुत फैशन था। विभिन्न दफ्तरों की बिल्डिंगों की निचली मंजिलों की खिड़कियों में ऐसे दर्पण लगाये जाते थे तथा घरों में इन्हें पर्दों की तरह इस्तेमाल किया जाता था।

यहां यह बताना जरूरी है कि प्रथम प्लैटिनम दर्पण (कांच के नहीं बल्कि धातु के) प्राचीन अजटेक लोगों ने बनाये थे। ये दर्पण धातु के पतले, चिकने तथा पालिशदार चमकीले पत्तर के बने होते थे। उस पुराने जमाने में वे लोग कैसे यह काम कर सके, यह बात आज तक रहस्य बनी हुई

है। सर्वविदित है कि प्लैटिनम केवल श्वेत ताप पर फोर्जन योग्य हो पाता है अर्थात् बहुत ही उच्च ताप पर। और उस जमाने के धातुकर्मियों के लिये यह एक असंभव कार्य था। कुछ भी हो, अजटेकों के सरदार मोंटेजूमा ने स्पेन के बादशाह को ऐसे कुछ दर्पण भेंट के रूप में भेजे। बादशाह ने इस "वफादारी के बदले" में 1520 में मोंटेजूमा को कैद में बंद करवा दिया और बाद में जान से मरवा दिया।

स्पंज प्लैटिनम में बड़ी मात्रा में गैस निगलने की क्षमता एक अद्वितीय परिघटना का आधारभूत है—अगर एक प्लैटिनम बर्तन में हाइड्रोजन या आक्सीजन भर कर उसे पूरी तरह बंद किया जाये तथा गर्म किया जाये तो गैस बर्तन से बाहर निकलने लगती है। इसका कारण यह है कि गैस के अणु प्लैटिनम की दीवार में से इतनी आसानी से बाहर निकल जाते हैं जितनी आसानी से पानी छलनी से होकर बहता है।

उच्च तापमान नापने में प्लैटिनम महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्लैटिनम के बने प्रतिरोधी थर्मामीटरों का प्रयोग बहुत विस्तृत है। इन थर्मामीटरों के काम करने का सिद्धांत इस बात पर आधारित है कि गर्म करने पर प्लैटिनम का विद्युत प्रतिरोध तापमान के हिसाब से एक निश्चितक्रमानुसार बढ़ता जाता है। उपकरण से जुड़ी एक प्लैटिनम तार प्रतिरोध के इस परिवर्तन को नाप कर तुरंत उपकरण को तापमान के छोटे से छोटे अंतर की सूचना दे देता है।

ताप-वैद्युत युग्मों का प्रयोग और भी ज्यादा विस्तृत है। इनकी संरचना बिल्कुल भी जटिल नहीं होती परंतु तापमान वे अत्यधिक शुद्धता से नापते हैं।

अगर विभिन्न धातुओं के दो तारों को वेल्डिंग द्वारा जोड़ दिया जाये और फिर जोड़ वाली जगह को गर्म किया जाये तो तारों में विद्युत धारा उत्पन्न हो जायेगी। जोड़ को जितने उच्च तापमान तक गर्म करेंगे परिपथ का विद्युतवाहक बल उतना ही उच्च होगा। तापवैद्युत युग्मों के निर्माण में प्राय: प्लैटिनम या इसके ऐलाय (रोडियम या इरीडियम) प्रयुक्त किये जाते हैं।

प्लैटिनम और रोडियम मिलकर बहुत लंबे अर्से से समाज की काफी सेवा करते आ रहे हैं। लेनिनग्राद में मास्को प्रोस्पैक्ट पर एक साधारण इमारत खड़ी है जिसके प्रवेश द्वार पर एक काली पटिया पर रूसी और फ्रेंच में निम्न शब्द अंकित हैं: "सोवियत संघ के राजकीय मानदंड"। आज यह इमारत मेंदेलीव माप-पद्धति अनुसंधान संस्थान का एक हिस्सा है। यहां एक सेफ में बड़ी सुरक्षा के साथ 1883 में ही बनाया गया 1 किलोग्राम का मानदंड रखा हुआ है जिसे प्लैटिनम (90%) तथा इरीडियम (10%) के मिश्रण से बनाया गया था।

इस सेफ में हर वक्त एकसमान तापमान तथा आर्द्रता रखी जाती है। इसे खोलने के लिये तीन व्यक्तियों की उपस्थिति आवश्यक है—संस्थान के निर्देशक, राष्ट्रीय मानकों के रक्षक तथा इस विशिष्ट मानक के रक्षक की। इस सेफ में तीन ताले लगे हुए हैं, तीनों लोगों के पास अलग-अलग ताले की चाबी है। सेफ का भारी दरवाजा केवल तभी खुल सकता है जब तीनों चाबियां एक साथ लगायी जाती हैं। यह मानक बेलन के रूप में बनाया गया है जिसकी ऊंचाई और व्यास 39 मिलीमीटर है। यह

शीशे के दो छत्रों के नीचे चट्टानी क्रिस्टल के एक स्टैंड पर रखा हुआ है।

समय-समय पर यह मानक अतिसंवेदी माप-पद्धति तुला पर अन्य मानकों की शुद्धता की जांच करता है। यह तुला इतनी अधिक संवेदी होती है कि श्वसन-क्रिया के दौरान मुँह से निकली हवा से भी प्रतिक्रिया कर जाती है। सड़क पर चलते यातायात या संस्थान के अंदर चालू मशीनों के प्रभाव से पूर्णतया सुरक्षित रखने के लिये इस तुला को जमीन में 7 मीटर की गहराई पर रखा गया है। यहां हर वक्त एकसा तापक्रम तथा आर्द्रता रखने के लिये तुला का प्रयोग दूरवर्ती नियंत्रण द्वारा साथ वाले कमरे से किया जाता है।

इतनी सावधानियां बरतने के बावजूद भी पिछले लगभग 100 साल में इस राजकीय मानक के वजन में 0.017 मिलीग्राम की कमी आ ही गयी। परंतु यह कमी न के बराबर होने के कारण अप्रैल 1968 में इसे

दोबारा सोवियत संघ के किलोग्राम का मानक स्वीकार कर लिया गया।

इसी सेफ के अंदर एक विशेष पेटी में एक प्लैटिनम-इरीडियम शलाका रखी हुई है जो पिछले दिनों तक मीटर का राजकीय मानक मानी जाती थी। लंबाई का यह मानक पेरिस याम्योत्तर रेखा के 0.25×10^{-7} अंश के बराबर है तथा इसे 1791 में फ्रांस में बनाया गया था। आठ साल बाद मीटर का सर्वप्रथम मानक बनाया गया जो आज पेरिस में अंतर्राष्ट्रीय माप तथा तौल ब्यूरो के पास सुरक्षित है। इस पर निम्न शब्द अंकित हैं: "हर युग के लिये, हर राष्ट्र के लिये"। वास्तव में मीटर लंबाई की इकाइयों में सर्वाधिक प्रचलित है। 1889 से लेकर कुछ साल पहले तक पेरिस के इस मानक की हूबहू नकल सोवियत संघ के "मुख्य मीटर" की भूमिका निभाती रही।

वैज्ञानिक लोग इन मानकों की कोटि उच्च करने के प्रयास में जुटे हुए हैं। 1960 में प्लैटिनम-इरीडियम शलाका को इस्तीफा देना पड़ा और इसकी जगह क्रिप्टान लैंप की किरण ने ले ली। 20 साल से भी ज्यादा अर्से तक एक समस्थानिक क्रिप्टान-86 द्वारा उत्सर्जित नारंगी रंग के प्रकाश की 1650763.73 तरंग-दैर्घ्य का पट्ट मीटर का मानक बना रहा। लेकिन इस मानक का व्यावहारिक प्रयोग कैसे किया जाये? एक विशेष यंत्र ने इस समस्या का समाधान कर दिया जो यह बताता है कि तरंग-दैर्घ्य की आवश्यक लंबाई तुलना वाले मीटर के मुनासिब है या नहीं। लेकिन यह मानक भी बहुत दिनों तक नहीं चला। 1983 में माप-विशेषज्ञों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस ने मीटर की एक

नयी नाप निश्चित कर दी। अब मीटर उस दूरी को माना जाता है जो लेसर किरण एक सेकंड के 1299791458 वें अंश में तय करती है।

प्लैटिनम के साथ एक और भी मानक संबंधित है — प्रकाशीय मानक। इसके लिये पिघले हुए प्लैटिनम में डूबी एक ट्यूब से संदीप्ति का इस्तेमाल करते हैं। यह ट्यूब ढाले हुए थोरियम आक्साइड से बनायी जाती है। मापने का काम प्लैटिनम के शीतित होने पर किया जाता है। चूंकि इस वक्त तापमान स्थिर रहता है, अतः ज्योति-तीव्रता की इकाई कैंडेला बड़ी परिशुद्धता के साथ निर्धारित की जाती है।

चिकित्सा के क्षेत्र में प्लैटिनम का उपयोग बहुत विस्तृत होता जा रहा है। बहुत सारे देशों के डाक्टर इस धातु के बने विशेष इलैक्ट्रोड रोगी की रुधिर वाहिकाओं में घुसा कर विभिन्न रोगों का, विशेषतया हृदरोगों का निदान करते हैं। इस विधि को प्लैटिनम-हाइड्रोजन निदान कहते हैं क्योंकि यह इन दोनों तत्त्वों की विद्युरसायनिक प्रतिक्रिया पर आधारित है।

संयुक्त राज्य अमरीका की ओहियो स्टेट के डाक्टरों ने प्लैटिनम का एक और महत्वपूर्ण उपयोग ढूंढ़ लिया है। उन्होंने संवेदनाहरण की एक बिल्कुल नयी विधि खोजी है जो निम्न सिद्धांत पर आधारित है: रोगी की सुषुम्ना कुछ सें० मी० लंबी प्लैटिनम की एक प्लेट द्वारा एक विद्युत उद्दीपक के साथ जोड़ देते हैं। मरीज के शरीर में जरा सी भी हरकत होते ही उपकरण मस्तिष्क को विद्युत सिग्नल भेजने लगता है जिनके कारण उसे पीड़ा की अनुभूति नहीं होती।

दांतों के डाक्टर भी प्लैटिनम की बहुत इज्जत करते हैं। वे इसके आक्सीकृत न होने के गुण की ओर आकर्षित हैं। और हों भी क्यों न? नकली दाँतों के लिये यह गुण कितना महत्वपूर्ण भी तो है? शुद्ध प्लैटिनम बहुत नर्म होने के कारण इस काम के लिये उपयुक्त नहीं है, परंतु इसके ऐलाय, जिनकी मजबूती अद्वितीय होती है, दांतों के खोलों तथा नकली दांतों के निर्माण में सफलतापूर्वक इस्तेमाल हो रहे हैं। पहले प्लैटिनम को सख्त करने के लिये उसमें रजत तथा निकैल मिलाये जाते थे, बाद में स्वर्ण और प्लैटिनम धातुएं मिलायी जाने लगीं। इन धातुओं के कारण संक्षारणरोधी प्लैटिनम बहुत दृढ़ हो जाता है — ऐसा दांत सख्त से सख्त गिरी चबा सकता है।

विश्व में उत्पादित प्लैटिनम का एक बड़ा हिस्सा जौहरियों के पास पहुंचता है। इन लोगों ने इस धातु में दिलचस्पी लेनी तब शुरू कर दी जब इसका भाव स्वर्ण के भाव से कई गुना ऊंचा हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले प्लैटिनम की अंगूठियों, जड़ाऊ पिनों, बूंदों, छल्लों तथा अन्य गहनों का फैशन शुरू हो गया था। कुछ अमीर लोगों के नखरे पूरे करने के लिये कई बार इस धातु को छोटे काम भी करने पड़ते हैं — वे लोग इस धातु से अपने कुत्तों की जंजीरें तथा तोतों के पिंजड़े बनवाते हैं। कुछ साल पहले लंदन में एक नये स्वीमिंग-सूट का प्रदर्शन किया गया। यह एक नयी मिनी-बिकिनी थी जिसकी कीमत 50 हजार डालर थी। इसकी कीमत इतनी अधिक होने का कारण यह था कि इसमें प्लैटिनम के धागे इस्तेमाल किये गये थे। इसके अलावा फैशन का खयाल रखते हुए प्लैटिनम से सजावट भी की गयी थी। यह बात स्वाभाविक थी

कि प्रदर्शन के समय माडल की सुरक्षा के लिये एक हथियारबंद अंगरक्षक उसके पीछे चल रहा था। परंतु हाल में अगर एक अंगरक्षक काफी था तो समुद्र तट पर दर्जनों अंगरक्षक कम पड़ते। खैर छोड़िये, हमारा क्या मतलब, जो खरीदेगा, वही इस बात को सोचेगा।

शुद्ध प्लैटिनम के साथ-साथ जौहरी लोग इस धातु के ऐलाय भी इस्तेमाल करते हैं जो या तो मजबूती बढ़ाने के उद्देश्य से मिलाये जाते हैं या उन गाहकों को खुश करने के लिये, जो फैशन की चीजें चाहते हैं परंतु पैसे ज्यादा नहीं दे सकते।

सोवियत संघ में प्लैटिनम को बहुत मान्यता दी जाती है – देश के सबसे सम्मानीय पदक पर व्लादीमीर लेनिन का चित्र इस धातु का बनाया गया है। मास्को में आयोजित बाइसवें ओलंपिक खेलों के वक्त 1980 में सोवियत संघ में इस अवसर पर सिक्के ढाले गये। इनमें सबसे महंगे सिक्के प्लैटिनम के बने थे जिनकी कीमत 150 रूबल थी।

धातुओं का राजा – राजाओं की धातु

बादशाह मिडास अपनी इच्छा बताता है – मिस्र के फिराउनों की घाटी में – महारानी सेमीरामिदा का भेद – सिक्कों की शल्य-चिकित्सा – दिन-रात – "नीली दाढ़ी वाले" की क्रूरता – भोर होने से पहले – अताहुअल्पा की रिहाई की कीमत – सूरज देवता का मंदिर – सागर बदला लेता है – "गोल्ड-फीवर" – सम्राज्ञी का संग्रहण – प्रिंस गागारिन की बग्घी – निकीफोर स्यूत्किन को इनाम के बदले सजा मिलती है – आस्ट्रेलिया में स्वर्ण के सबसे बड़े डले मिले – बुद्ध की मूर्त्ति का भेद – बहुत रहस्य की बात – स्वर्णभक्षी जीवाणु – बीसवीं शताब्दी के "कीमियागर –" आर्कीमेडिस बेईमानों का भंडाफोड़ देता है – चर्च के लोग बेवकूफ बन जाते हैं – खजांची की चालाकी – नील्स बोहर स्वर्ण-तमगों को अम्लराज में घोल देता है – आजीवन कैद – पिरामिड में नयी चीज मिलती है – स्वर्ण की बनी सीलें – अटलांटिक महासागर के गर्भ में –

स्वर्ण! ... मानव-जाति के लंबे इतिहास में कोई भी दूसरी धातु स्वर्ण जितनी अशुभ सिद्ध नहीं हुई है। इस धातु पर कब्जा करने के लिये खूनी लड़ाइयां लड़ी गयीं, देशों और जातियों को नष्ट कर दिया गया, घोर से घोर अपराध किये गये। पीले रंग की इस सुंदर धातु ने मनुष्य को कितने दुख और कष्ट पहुंचाये हैं।

फ्रीजियाई बादशाह मिडास शायद पहला व्यक्ति था जिसे स्वर्ण के कारण असंख्य कष्ट भोगने पड़े। एक प्राचीन यूनानी किवदंती में इस बात का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

एक बार जीवस का पुत्र सुरा का देवता डायोनिसस अपने भक्तों के साथ फ्रीजिया की सुन्दर भूमि में घूम रहा था। शराब के नशे में आकर डायोनिसस का प्यारा गुरु सिलेनस धीरे-धीरे अपने साथियों से पीछे होता गया। फ्रीजियाई किसानों ने उसे देख लिया। उन्होंने उसे फूलों के हार पहनाये और बादशाह मिडास के पास ले आये। बादशाह ने तुरन्त इस बूढ़े दयालु शराबी को पहचान लिया। उसने सिलेनस का हार्दिक स्वागत किया और सम्मानित मेहमान के आने की खुशी में 10 दिनों तक भोज का आयोजन किया। दसवें दिन मिडास सिलेनस को खुद डायोनिसस के पास पहुंचा आया जिसने खुश होकर मिडास से कोई वरदान मांगने को कहा।

"प्रभु! आप महान हैं!" फ्रीजिया के बादशाह ने खुशी से चिल्ला कर कहा। "मुझे यह वरदान दीजिये कि जिस चीज को मैं स्पर्श करूं, वह सोने की बन जाये।" मिडास की "साधारण" इच्छा पूरी कर दी गयी। खुशी से पागल बादशाह बड़ी तेजी से अपने महल की ओर भागा। रास्ते में उसने वंजुल की एक हरी टहनी तोड़ी, वह तुरन्त सोने में बदल गयी, उसने खेत में गेहूं की बाली छूई, वह भी सोने की बन गयी। उसने पेड़ से एक सेब तोड़ा, वह तुरन्त सोने के पीले रंग से चमकने लगा। बादशाह ने पानी से हाथ धोने चाहे। हथेली को छूते ही पानी की जगह सोने की धारा बहने लगी। मिडास की खुशी का ठिकाना न था। परन्तु जैसे ही बादशाह खाना खाने बैठा, वह तुरन्त समझ गया कि उसने कितना खतरनाक वरदान मांग लिया है। रोटी, शराब तथा अन्य व्यंजनों को हाथ लगाते ही सारी चीजें तुरन्त सोने की बन गयीं। भयभीत बादशाह को भूख और प्यास से

अपनी मौत नजदीक दिखायी दे रही थी। उसने आसमान की ओर हाथ उठाकर चिल्लाकर कहा: "प्रभु! मेरी रक्षा कीजिये, मुझे माफ कर दीजिये, अपना वरदान वापस ले लीजिये," डायोनिसस ने मिडास को पाक्टोल्स नदी के उद्‌गम-स्थल पर जाने को कहा। जहां पवित्र पानी में हाथ धोकर बादशाह को इस भयंकर वरदान से मुक्ति मिली।

जापान की एक टूरिस्ट-कंपनी ने अपने एक फैशनबल होटल में शुद्ध स्वर्ण का बना एक हमाम लगवा दिया। काफी महंगा होने के बावजूद भी हजारों लोग इस हमाम में स्नान के लिये होटल में आने लगे। कंपनी को लाखों का फायदा होने लगा। परन्तु हर रोज मालिकों के सामने नयी-नयी समस्याएं आ रही थीं। कंपनी को दर्जनों जासूस भरती करने पड़े क्योंकि कुछ गाहक नहाते समय एकांत का लाभ उठाते हुए तौलियों में छिपायी आरी से स्वर्ण काटने की कोशिश करने लग पड़े थे। चुस्त रक्षकों ने हमाम के अन्दर जाते समय किसी भी किस्म का औजार ले जाने पर पाबंदी लगा दी। अब स्वर्ण के शौकिये केवल अपनी निजी ताकत का फायदा उठा सकते थे। उस महिला ने, जिसकी हमने ऊपर चर्चा की है, नहाने के बाद अपने दांतों से स्वर्ण काटने की कोशिश की। परन्तु "गिरी" बहुत सख्त थी। कुछ दिनों बाद लोगों ने इस महिला को दांतों के डाक्टर के पास देखा, जहां वह अपने जबड़े बदलवाने आयी थी।

सुना जाता है कि इस सफलता से कंपनी का उत्साह काफी बढ़ गया है और उसके मालिकों ने अपने सभी बढ़िया होटलों के शौचघरों में स्वर्ण के कमोड लगाने का फैसला किया है।

यह कोई नयी बात नहीं है। 1921 में लेनिन ने इस पीली धातु का तिरस्कार करते हुए निम्न शब्द लिखे: "जब विश्व स्तर पर हमारी जीत हो जायेगी, तब मैं सोचता हूं, हम विश्व के कुछ बड़े शहरों की सड़कों पर इस धातु के शौचालय बनवा देंगे। परन्तु फिलहाल हमें रूस का स्वर्ण संभाल कर खर्च करना चाहिये। इसे महंगे भावों पर बेचना चाहिये और इसके बदले चीजें सस्ते दामों पर खरीदनी चाहियें।"

स्वर्ण का इतिहास सभ्यता का इतिहास है। इस धातु के पहले दाने मनुष्य के हाथ कई हजार साल पहले लगे। तभी से वह इसे एक कीमती धातु मानता आ रहा है। पुराने जमाने में सबसे ज्यादा स्वर्ण मिस्र के पास था। मिस्र के राजवंश के लोगों की कब्रों की खुदाई से मिली चीजें इस बात का साक्षात सबूत हैं। "सूर्य की पहली किरण पड़ते ही हर तरफ स्वर्ण चमकने लगता था। फर्श पर, दीवारों पर, दूर कोने में, जहां दीवारों के पास ताबूत रखा था। यह स्वर्ण

चमकीला तथा ताजा था। ऐसा लगता था कि जैसे अभी सुनार के हाथ से निकला हो"। 1907 में ये शब्द पुरातत्त्वज्ञों के एक दल के एक भागी ने नील नदी के किनारे फिराउनों की घाटी में फीव के पास एक अज्ञात फिराउन की कब्र की खुदाई के बाद कहे।

इस घटना के 15 साल बाद अंग्रेज पुरातत्त्वज्ञ हावर्ड कार्टर को इसी जगह पर टूटनखामोन की कब्र मिली जो ईसा से चौदह शताब्दी पूर्व मिस्र का फिराउन था। इस कब्र में हजारों साल तक प्राचीन कला के अनमोल नमूने छिपे रहे जिनमें से बहुत सारे शुद्ध स्वर्ण के बने थे। इस फिराउन की ममी स्वर्ण के एक ताबूत में बंद थी जिसका वजन 110 किलोग्राम था। टूटनखामोन का नकाब अति सुंदर था। यह स्वर्ण से बना था तथा विभिन्न रंगों के कीमती पत्थरों से सजा था।

परन्तु कब्रों तथा ताबूतों में उन अनगिनत खजानों का केवल एक थोड़ा सा भाग रखा गया था जो पुराने जमाने के बादशाहों के जीवन-काल में उनके कब्जे में थे। किंवदंतियों के अनुसार असीरिया की महारानी सेमीरामिदा ने देवताओं को प्रसन्न करने के लिये शुद्ध स्वर्ण से उनकी विशाल मूर्त्तियां बनवायीं। इनमें से एक मूर्त्ति लगभग 12 मीटर ऊंची थी जिसका वजन 1 हजार बैबीलौनी टेलेन्ट (30 टन के आसपास) था। देवी रिहा की मूर्त्ति इससे भी ज्यादा भव्य थी। इसके निर्माण में 8000 टेलेन्ट (लगभग 250 टन) शुद्ध स्वर्ण लग गया था। देवी एक सिंहासन पर बैठी थी तथा उसके दोनों ओर अंगरक्षक खड़े थे – स्वर्ण के बने दो बड़े शेर।

स्वर्ण के सिक्के पहली बार लगभग ढाई हजार साल पहले दिखायी दिये। वे लीडिया में ढाले गये थे जो पश्चिमी छोटे एशिया में दासप्रथा वाला एक शक्तिशाली देश था। इस देश के यूनान तथा अपने पूर्वी पड़ोसियों के साथ लंबे-चौड़े व्यापारिक संबंध थे। सुविधा हेतु लीडिया की सरकार ने स्वर्ण के सिक्के चला दिये जो स्टेटर कहलाते थे। इन सिक्कों पर एक भागती लोमड़ी छापी गयी थी जो लीडिया लोगों के मुख्य देवता बासारियस का प्रतीक थी।

फारस के शाह साइरस के लीडिया पर कब्जा करने के बाद स्वर्ण के सिक्के मध्य पूर्व एशिया के देशों में भी चलने लगे। फारस के बादशाह दारिया प्रथम के सिक्कों – दारिकी का प्रचलन काफी विस्तृत था। इन सिक्कों पर बादशाह तीर से शिकार करता दिखाया गया था।

कुछ ऐसे सम्राट हुए हैं जिन्होंने अपने

खजाने को स्वर्ण से भरने के लिये नये नये तरीके अपनाये। 1285 में फ्रांस की गद्दी पर फिलिप चतुर्थ बैठा जो "सुंदर" के उपनाम से प्रसिद्ध था। यह बताना मुश्किल है कि वह वास्तव में सुंदर था या नहीं, परन्तु इस बात के सबूत जरूर मिलते हैं कि वह चालाक तथा लालची था। फिलिप चतुर्थ ने अपना राज्य बढ़ाने के लिये असंख्य युद्ध लड़े। स्वाभाविक था कि युद्ध के लिये धन काफी चाहिये था। सम्राट को पैसे की तंगी पड़ रही थी। धर्मभीरु न होने के कारण वह चालाकी तथा धोखेबाजी पर उतर आया। उसके गुप्त आदेश पर स्वर्ण के सिक्कों की टकसाल में "शल्य-चिकित्सा" की गयी। उन्हें घिसा गया और प्राप्त चूरे से नये सिक्के बनाये गये। इस तरीके स 100 स्वर्ण सिक्कों से 110-115 सिक्के बन जाते थे। ज्यादा मेहनत करने पर यह संख्या इससे भी ऊपर पहुंच जाती थी। सम्राट नये सिक्कों की ढलाई अपने सामने करवाता था और जो कोई भी उसका विरोध करता था, उसे वह जान से मरवा देता था।

मध्य युग में कीमियागरों का बहुत बोल-बाला था। बूढ़ा हो या जवान, हर किसी को कीमियागरी का शौक चढ़ा हुआ था। इससे पहले भी लोग अन्य धातुओं को स्वर्ण में बदलने के प्रयास करते आ रहे थे परन्तु वे इतने व्यापक नहीं थे। दिन-रात किलों के तहखानों में कीमियागरों की भट्टियां सुलग-ती रहती थीं, बायलरों में हर रंग के रहस्यमयी द्रव उबलते रहते थे, देगों तथा क्रूसिबलों से दमघोटी धुआं निकलता रहता था।

उस जमाने में लोगों को यह विश्वास था कि अगर पारस-मणि मिल जाये, तो उसकी सहायता से हर चीज स्वर्ण की बनायी जा सकती है। पारस-मणि की खोज में कीमियागर तथा उनके संरक्षक अपने प्रति-द्वंद्वियों को पीछे छोड़ने के प्रयास में जुटे हुए थे। इस आधार पर लोगों के बीच अवि-श्वास और बैर बढ़ता जा रहा था, विभिन्न अपराधों के झूठे तथा बेतुके इलजामों में निरपराध लोगों को सजायें दी जा रही थीं। उदाहरणतया, सन् 1440 में फ्रेंच मार्शल गिले डि लावाल बैरन डि राइस, जो इति-हास में "नीली दाढ़ी वाले पापी" के नाम से प्रसिद्ध है, पर सैकड़ों लड़कियां मारने का इलजाम लगाया गया। चर्च का कहना था कि यह क्रूर व्यक्ति अपने साथी कीमियागर फ्रान्सुला प्रेलाटी के सहयोग से लड़कियों के रक्त से स्वर्ण बनाया करता था। नान्ट के बिशप के आदेश पर मार्शल गिले डि राइस तथा प्रेलाटी को जिंदा जला दिया गया। 1925 में गिले डि लावाल की ध्वस्त हवेली की खुदाई करने पर जमीन के नीचे स्वर्णयुक्त क्वार्टज का एक छोटा सा निक्षेप मिला, जहां से प्रेलाटी "नीली दाढ़ी वाले" के लिये स्वर्ण निकालता था।

चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में, जब यूरोप में कीमियागरों का खूब बोलबाला था, स्पेनिश तथा पुर्तगाली विजेताओं ने स्वर्ण हासिल करने का एक और भी बढ़िया तरीका ढूंढ़ निकाला: उन्होंने अमरीका के प्राचीन देशों को बड़ी बेदर्दी से लूटना शुरू कर दिया, जिनकी 1492 में कोलम्बस ने खोज की थी। नयी दुनिया के वासियों – अजटेकों, इंकाओं, माया तथा अन्य जातियों के लोगों ने सदियों से जो स्वर्ण इकट्ठा कर रखा था, वह सारा का सारा यूरोप पहुंचने लगा।

इन अत्याचारी विजेताओं को इस बात का सपना भी नहीं आया था कि अमरीका में उन्हें अनमोल बेशुमार खजाने मिलेंगे। 1519 में जब एरनान कोरटेस वेराक्रूस बंदरगाह पर उतरा तो रैड-इंडियनों को यह पता नहीं था कि सफेद चेहरे वाला यह आगंतुक उनके लिये कितना अशुभ सिद्ध होगा। उन लोगों ने कोरटेस को तरह तरह के उपहारों के अलावा दो विशाल चकतियां भी दीं जिनमें से एक स्वर्ण की तथा दूसरी रजत की बनी थी। ये चकतियां सूर्य तथा चंद्रमा का प्रतीक थीं।

पुराने जमाने में लैटिन अमरीका के लोग स्वर्ण को एक पवित्र धातु मानते थे। वे इसे सूरज देवता की धातु समझते थे। इन लोगों के सरदार तथा पुरोहित कई तरह के अनुष्ठान किया करते थे जो इस दुनिया के ताकतवर लोगों तथा देवताओं द्वारा दी गयी समृद्धि अर्थात् स्वर्ण के बीच अखंड संबंध का प्रतीक होते थे। इनमें से एक अनुष्ठान इस प्रकार पूरा किया जाता था: भोर होने से पहले अजटेकों के सरदार अपने शरीर पर खुशबूदार तेल मल कर खड़े हो जाते थे जैसे ही उनका मुख्य पुरोहित इशारा करता था, वे अपने शरीर पर स्वर्ण का पाउडर छिड़कने लगते थे। इसके बाद स्वर्ण से जगमगाता सरदार अपने अनुयायियों के साथ सरकंडे की नाव पर बैठ कर झील के रास्ते सूरज से मिलने निकल पड़ता था। जैसे ही पहाड़ के पीछे से तप्त सूरज निकलता दिखायी देता था, अनुयायी सरदार के शरीर को धोने लगते थे। इस पवित्र काम के दौरान पुरोहित लोग सरदार को स्वर्ग की अंगूठियां, कंगन तथा अन्य गहने पहनाना शुरू कर देते थे। इस अनुष्ठान के बाद किसी को भी इस बात में तनिक भी संदेह नहीं रहता था कि उसका सरदार सूरज देवता का पुत्र है।

मंदिर स्वर्ण से भरे पड़े थे। एक मंदिर की सारी की सारी छत स्वर्ण के तारों, चिंउंटियों, तितलियों, चिड़ियों आदि से सजी हुई थी। यह मंदिर इतना खूबसूरत था कि जो कोई भी इसे देखता था, दांतों तले उंगली दबाने लगता था।

स्पेनिश विजेताओं के एक सरदार का नाम फ्रांसिस्को पिसारो था। सोलहवीं शताब्दी के तीसरे दशक के आरंभ में इसने इंकाओं की जमीन पर कदम रखे। उन दिनों इंका लोग आपसी झगड़ों में फंसे हुए थे। एक विदेशी के आगमन में आरंभ में इंकाओं को कोई खतरे की बात नहीं दिखायी दी बल्कि उनका सरदार महान इंका आताहुआल्पा यह समझा कि इस विदेशी का रूप धारण करके देवता युद्ध में उसकी सहायता करने आये हैं।

एक दिन पिसारो ने इंकाओं के सरदार को भोज पर बुलाया। अताहुआल्पा परों से सजी स्वर्ण की बनी एक पालकी में बैठ कर आया। इंका सरदार और उसके अनुचरों के पास किसी भी तरह के हथियार नहीं थे। धूर्त पिसारो को इसी अवसर की तलाश थी। उसके इशारा करते ही स्पेनिश सैनिक मेहमानों पर टूट पड़े। उन्होंने सारे अनुचरों को मौत के घाट उतार दिया और अताहुआल्पा को कैद कर लिया।

कुछ दिनों बाद पिसारो ने अताहुआल्पा से यह कहा कि अगर दो महीने के अंदर वह अपने कैदखाने का कमरा इतने स्वर्ण से भर देगा कि खड़ा होकर हाथ उठाने के बाद हाथ स्वर्ण में रहेगा, तो इंका सरदार आजाद

कर दिया जायेगा। महान इंका अपनी रिहाई के बदले इतनी ऊंची कीमत देने को तैयार हो गया। उसके घुड़सवार यह बात सारे देश में फैला आये और शीघ्र ही कैदखाने का कमरा स्वर्ण के बने बर्तनों, मूर्तियों, गहनों तथा अन्य चीजों से भरने लगा। स्वर्ण का ढेर बढ़ता गया, परन्तु दो महीने बाद भी निश्चित स्तर तक नहीं पहुंच पाया। इंका सरदार ने पिसारो को विश्वास दिलाया कि उसकी शर्त पूरी होने में बहुत थोड़ा समय और लगेगा, परन्तु पिसारो ने अताहुआल्पा को मरवाने का फैसला कर लिया क्योंकि उसे यह डर था कि जिंदा रहने पर इंका सरदार स्पेनिश लोगों के लिये एक सिर-दर्दी बना रहेगा।

जिस वक्त अताहुआल्पा को मारा गया, सोने से लदे कारवां कैदखाने की ओर बढ़ रहे थे। इंका लोग अपने सरदार की रिहाई के लिये स्वर्ण लेकर बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे थे परन्तु जैसे ही उन्हें यह पता चला कि उनके सरदार को स्पेनिश लोगों ने मार दिया है, उन्होंने सारा का सारा खजाना अजान्गार पहाड़ियों में छिपा दिया। अजान्गार का अर्थ है "सबसे दूर की जगह"। इस प्रकार स्पेनिश विजेताओं के हाथ से एक अनमोल खजाना निकल गया। कहते हैं कि इस खजाने में स्वर्ण की एक जंजीर थी जो इतनी भारी थी कि उसे उठाने के लिये कम से कम 200 आदमी चाहिये थे।

परन्तु फिर भी इंका लोग सारा खजाना नहीं छिपा पाये। स्पेनिश हमलावरों ने पेरू के एक बहुत धनी नगर, कुस्को पर कब्जा कर लिया और बुरी तरह से लूटना शुरू कर दिया। सूरज देवता का एक मंदिर इस शहर की शोभा था जो स्वर्ण से भरा पड़ा

था। इस मंदिर के मुख्य हाल की दीवारें तथा छत स्वर्ण की पत्तियों की बनी थीं तथा इसके पूर्वी हिस्से में स्वर्ण की बनी एक चकती जगमगा रही थी—यह सूरज देवता का प्रतीक थी। देवता की आंखें रंगबिरंगे नगों से चमक रही थीं। मंदिर के चारों ओर स्वर्ण का बाग लगा हुआ था। पेड़, पौधे, पक्षी—हर चीज बड़ी सफाई के साथ स्वर्ण की बनायी गयी थी। बाग में स्वर्ण के सिंहासन पड़े हुए थे जिनपर सूरज के पुत्रों "महान इंकाओं" की मूर्तियां बिठायी गयी थीं।

पिसारो के आक्रमण के कुछ हफ्तों बाद कुस्को नगर पूरी तरह से लुट गया था। स्पेनिश हमलावर बड़ी निर्दयता से इंकाओं की कला नष्ट करते गये जिसके निर्माण में शताब्दियां लग गयी थीं। उन लोगों ने प्राचीन कलाकारों की कारीगरी के अद्वितीय नमूने पिघलाकर स्वर्ण की सिल्लियों में बदल दिये जिससे समुद्री जहाजों पर लादने में आसानी रहे।

दो शताब्दियों तक हर साल स्वर्ण से लदे जहाज नयी दुनिया से पिरेनीज प्राय-द्वीप आते रहे। परन्तु सागर ने बीसियों बार लुटेरों के हाथ से स्वर्ण के खजाने छीने और अपने गर्भ में छिपा कर रख दिये जैसे कि वह स्पेनिश लोगों से बदला ले रहा हो।

सन् 1622 में फ्लोरिडा से कुछ दूरी पर भयंकर तूफान से दो स्पेनिश जहाज "सांता मारगारिता" तथा "नुएस्तरा सिन्यो-रा दे आतोचा" समुद्र में डूब गये। इन जहाजों पर बहुत बड़ी मात्रा में स्वर्ण तथा हीरे-जवाहरात लदे हुए थे। बीस साल बाद ऐसे ही तूफान ने 16 और जहाजों को नष्ट कर दिया जो स्पेनिश बंदरगाह सेविल्या की ओर बढ़ रहे थे। ऐतिहासिक दस्तावेज बताते हैं कि इन जहाजों पर लदे माल (मुख्यतः स्वर्ण) की कुल कीमत कई करोड़ डालर थी। 1715 में अमरीका के तट पर समुद्र स्वर्ण से लदे 14 जहाजों को निगल गया।

इतिहासकारों की गणनानुसार, उदाहरण-तया, कैरीबियन सागर में ऐसे सौ जहाज डूबे हैं, फ्लोरिडा के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र में भी लगभग इतने ही जहाज समुद्र ने निगले हैं। 60 से भी ज्यादा स्पेनिश जहाजों की कब्रें बहामा तथा बेरमूदा द्वीप में हैं। मैक्सिको की खाड़ी में 70 के लगभग जहाज डूबे हैं। बेशक इन सभी जहाजों को सोने की खान कहा जा सकता है क्योंकि हर जहाज पर करोड़ों का माल लदा था। यहां इतना कहना काफी होगा कि इनमें से एक जहाज "सांता रोजा" पर अजटेकों के सरदार मोंटेजूमा का बेशुमार खजाना लदा था। विशेषज्ञों के मतानुसार समुद्र में डूबे जहाजों पर लदे स्वर्ण, रजत तथा अन्य कीमती चीजों का मूल्य कई अरब डालर बैठता है।

कई शताब्दियों से ये अनमोल चीजें खजाने के खोजियों को पागल कर बैठी हैं। पिछले कुछ सालों से जल के अन्दर खजाने की खोज का कार्य कुछ ज्यादा ही तेजी पकड़ गया है। बहुत सारे देशों में ऐसी पुस्तकें, एटलसें तथा नक्शे छप रहे हैं जिनमें स्वर्ण तथा हीरे-जवाहरातों से लदे जहाजों के डूबने की अनुमानित जगह दिखायी गयी है। हर साल सैकड़ों अभियान-दल समुद्र में स्वर्ण तथा रजत की खोज में रवाना होते हैं। परन्तु खजाने के इन खोजियों को अक्सर निराशा होना पड़ता है, उन्हें ज्यादातर असफलता का यह मुंह देखना पड़ता है। इसके बावजूद भी हजारों लोग आगे बढ़ने को तैयार रहते हैं।

चूंकि समुद्र की सतह पर स्वर्ण खोजने का काम काफी कठिन होता है, अतः जमीन पर इस पीली धातु की खोज का प्रयास हमेशा बड़े जोर-शोर से होता रहा है। जैसे ही दुनिया के किसी हिस्से में स्वर्ण की कोई खान मिलने की खबर फैलती थी, वैसे ही हजारों, लाखों खजाने के खोजी उधर भागते थे। उन्हें "गोल्ड फीवर" हो जाता था। यह वह रोग है जिसका नाम किसी भी निदर्शिका में नहीं मिलेगा, परन्तु जैक लंदन तथा ब्रेट हार्ट की कहानियों में इसका बेहतरीन वर्णन जरूर मिलेगा।

कुछ ग्राम स्वर्ण के लिये इन्सान हैवान बन गया, भाई ने भाई को मार दिया, बेटों ने बाप का कत्ल कर दिया। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में ब्राजील में स्वर्ण के निक्षेप मिलने के बाद ऐसी कई बातें देखने को मिलीं। पिछली शताब्दी के मध्य में

मूरज की गर्मी से तप्त कैलीफोर्निया में स्वर्ण के खोजियों ने भी इसी तरह के गंदे काम किये। कुछ साल बाद आस्ट्रेलिया के रेगिस्तानी इलाकों में भी ऐसी घटनायें घटीं। उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में भी ऐसा ही कुछ हुआ जब पैसा कमाने के शौकियों की आंखें "ट्रांसवाल" शब्द सुनते ही चमकने लगती थीं। इसके 10 साल बाद भी ऐसी ही दुखभरी घटनाएं घटीं जब "गोल्डन फीवर" की बीमारी बर्फीली इलाके क्लोन्डाइक तथा सुनसान ठंडे इलाके अलास्का में फैल गयी थी। रूस के जार ने यह इलाका कुछ समय पहले ही अमरीका को बहुत सस्ते दामों पर बेच दिया था।

उत्तरी ध्रुव के बर्फीली इलाकों में रास्ते बना कर आगे बढ़ रहे "काले सांपों" की तस्वीरें आज भी सुरक्षित हैं। असंख्य लोगों की कतारें बर्फ पर चल रही हैं जिनके कंधों पर या स्लेज में उनकी सारी संपत्ति रखी है। इन सब को पूरी पूरी आशा है कि लौटते समय उनके थैले स्वर्ण से भरे होंगे। दुर्भाग्यवश अधिकांश लोगों का यह सपना कभी पूरा नहीं हुआ।

पिछली शताब्दी में लेना नदी के तट पर साइबेरिया में भी स्वर्ण के निक्षेप मिले। परन्तु रूसी स्वर्ण का इतिहास इससे काफी पुराना है।

रूस में पहली बार स्वर्ण के सिक्के सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में दिखायी दिये – ग्रीवेनीक (10 कोपेक) तथा प्याताक (5 कोपेक)। इन सिक्कों को वासीली शुइस्की ने चलवाया था।

सम्राज्ञी एलिजाबेथ (पीटर प्रथम की पुत्री) के जमाने में स्वर्ण का एक बड़ा सिक्का चला जिसकी कीमत 10 रूबल थी।

रूस की सम्राज्ञी के पद के सम्मान में इस सिक्के का नाम इंपीरियल रखा गया। लगता है कि रूस की इस सम्राज्ञी को स्वर्ण का काफी शौक था क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद उसके महल में स्वर्ण के सिक्कों से भरे छोटे और बड़े बहुत सारे संदूक मिले।

अभिजात वर्ग जार के खानदान से पीछे नहीं रहना चाहता था। 1711 में प्रिंस गागारिन ने अपनी अमीरी की शान मारने के लिये एक बग्घी बनवायी जिसमें विदेशी रेशम के पर्दे तथा गद्दियां लगवायीं, पहिये रजत से तथा घोड़ों की नालें शुद्ध स्वर्ण से बनवायीं। प्रिंस यह दिखाना चाहता था कि वह भी कुछ कम नहीं है।

रूस में स्वर्ण की निकासी 18वीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुई। 1745 में एक किसान ने एक मठ की जरूरतों के लिये पहाड़ी

क्रिस्टलों की तलाश करते हुए यूराल की बेरेजोव्का नदी के तट पर पहले स्वर्ण निक्षेप का पता लगाया। यूराल रूसी स्वर्ण-उद्योग का विकास-स्थान बना।

यूराल में ही रूस का सबसे बड़ा स्वर्ण डला मिला जिसका वजन 36 किलोग्राम था। इसे ढूंढ़ने का श्रेय एक मजदूर निकीफोर स्यूत्किन को जाता है जो मिआस के एक कारखाने में काम करता था। 1842 में उसे यह डला मिआस नदी की घाटी में मिला। शीघ्र ही यह कीमती चीज पीटर्सबर्ग पहुंचा दी गयी, जहां इसने सनसनी मचा दी। यह बात स्वाभाविक थी क्योंकि यह रूस में स्वर्ण का सबसे बड़ा डला था। खान के सुपरवाइजर को स्तानिस्लाव पदक से सम्मानित किया गया तथा मैनेजर को साल भर के वेतन के बराबर बोनस दिया गया। परन्तु असली खोजी स्यूत्किन को क्या मिला? एक पुरानी पत्रिका में निम्न खबर पढ़ने को मिलती है: "स्यूत्किन ने शराब पीनी शुरू कर दी, काम पर देर से आने लगा, आवारा-गर्दी करने लगा। उसकी यह आदतें देखकर एक दिन कारखाने के अधिकारियों ने उसे पकड़ कर लाने को कहा। खान पर ले जाकर अधिकारियों ने उस की खूब पिटाई करवायी।"

जार के वक्त रूस में सोने की खानों में काम की परिस्थितियां बहुत ही कठिन थीं। गर्मियों में मजदूरों को कई बार 16-16 घंटे काम करना पड़ता था। सुबह से लेकर शाम तक मच्छरों से परेशान मजदूर टनों रेत कुदाली से कुरेदते थे और पानी से सोने की सफाई करते थे। काम करते करते उन बेचारों की कमर टूट जाती थी। इसी वजह से वहां हड़तालें खूब होती थीं। सबसे मशहूर हड़ताल 1912 में लेना स्वर्ण खानों में हुई जो रूसी क्रान्ति के आन्दोलन के साथ संबंधित थी।

अक्तूबर क्रान्ति के बाद स्वर्ण की खानों में नयी तकनीक अपनाये जाने लगी, मजदूरों की सुख-सुविधा का ध्यान रखा जाने लगा। स्वर्ण की खुदाई कुटीर उद्योग की जगह उद्योग की एक आधुनिकतम शाखा बना दी गयी। स्वर्ण कुरेदने की कुदाली आज केवल संग्रहालय में देखा जा सकती है। उसकी जगह आधुनिक मशीनों ने ले ली है जो चारमंजिली इमारत के बराबर ऊंची होती हैं तथा जिन पर आधुनिक स्वचलित उपकरण लगे होते हैं, टेलीविजन कैमरे फिट होते हैं तथा दूरवर्ती नियंत्रण की सुविधा होती है। अर्थशास्त्रियों के हिसाब से ऐसी एक मशीन, जिसे गिने-चुने आदमी चलाते हैं, 12 हजार मजदूरों का कठिन काम अकेली ही कर देती है।

विभिन्न प्रोसेसों के बाद स्वर्ण के छोटे छोटे कण एक छोटी सी सिल्ली में परिवर्तित कर लिये जाते हैं। परन्तु यह धातु अक्सर प्राकृतिक डलों के रूप में मिलती है। ऊपर हमने एक ऐसे डले का वर्णन किया है जो रूस में स्वर्ण का सबसे बड़ा प्राकृतिक डला था। विश्व में स्वर्ण के सबसे बड़े डले पिछली शताब्दी में आस्ट्रेलिया में मिले। 1869 में वहां स्वर्ण का एक डला मिला जिसका वजन 71 किलोग्राम था। तीन साल बाद ऐसा एक और डला मिला जिसका नाम "होल्टर-मैन का स्लैब" रखा गया। इसका वजन 285 किलोग्राम था और इसमें अन्य धातुओं के अलावा 100 किलोग्राम स्वर्ण था। दुर्भाग्यवश प्रकृति के दिये इन अद्वितीय उपहारों की कद्र नहीं की गयी। दोनों डलों को

पिघलाकर स्वर्ण की सिल्लियों में बदल दिया गया।

कभी कभी स्वर्ण अप्रत्याशित जगहों में भी मिलता है। थाइलैंड की राजधानी बैंकाक के पास बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा खड़ी थी। पता नहीं इसे कब और कौन यहां लाया था। इस जगह पर जंगली लकड़ी काटने की एक बहुत बड़ी फैक्टरी लगाने का फैसला किया गया। आवश्यक था कि प्रतिमा को उठा कर दूसरी जगह पर रख दिया जाये। जब इस प्रतिमा को नींव से अलग किया गया तो सारी सावधानियों के बावजूद भी पत्थर की यह प्रतिमा चटक गयी तथा इसके अन्दर कोई चीज चमकती दिखायी दी। फैक्टरी के अधिकारियों ने इसका आवरण उतरवा दिया। उन्हें उसके अन्दर शुद्ध स्वर्ण की बनी बुद्ध की एक प्रतिमा मिली जिसका वजन 5.5 टन था। विशेषज्ञों के कथनानुसार यह प्रतिमा 700 से भी ज्यादा साल पुरानी है। लगता है कि आपसी झगड़ों के वक्त स्वर्ण बुद्ध के स्वामियों ने सुरक्षा के लिये इसे पत्थर के आवरण से ढक दिया और इस "सूट" को उतारने का उन्हें शायद मौका नहीं मिला। आज यह प्रतिमा बैंकाक के विख्यात स्वर्ण मंदिर की शोभा बनी हुई है।

मानव-जाति के सारे इतिहास में जितना स्वर्ण मिला है उसकी मात्रा 1 लाख टन से ज्यादा नहीं है। क्या यह काफी है? जी नहीं। अपने उत्तर के समर्थन में हम निम्न उदाहरण देना चाहेंगे: अगर स्वर्ण की इस सारी मात्रा से एक घन बनाया जाये, तो उसकी ऊंचाई सिर्फ 17 मीटर होगी। भूविज्ञानियों के मतानुसार भूपर्पटी में स्वर्ण की मात्रा लगभग 100 अरब (!) टन है। इसके अलावा इस धातु की असंख्य मात्रा हमारे ग्रह के महासागरों तथा सागरों के जल में घुली हुई है। महासागरों के ये स्वर्ण "खजाने" हर वक्त बढ़ते रहते हैं। जिन इलाकों में स्वर्ण होता है, वहां बहती नदियां इस कीमती धातु को अपने जल के साथ समुद्र तक पहुंचा देती हैं।

समुद्री जल से स्वर्ण प्राप्त करने के असंख्य प्रयास किये जा चुके हैं। ऐसे लोगों की सूची के आरंभ में एक जर्मन रसायनज्ञ फ्रीट्स हैबर का नाम दिखायी देता है जिसने प्रथम विश्व युद्ध के तुरंत बाद जर्मनी को चंदा देने की योजना बनायी थी। 1920 में डालेम में बैंक से ऋण लेकर फ्रैंकफर्ट मापन-विभाग के सहयोग से एक गुप्त समिति बनायी गयी जिसे समुद्री जल से स्वर्ण निकालने का काम सौंपा गया। 8 साल की लंबी मेहनत के बाद हैबर ने जल के अति बारीक विश्लेषण के द्वारा यह स्थापित किया कि एक लीटर समुद्री जल में 0.000 000 0001 ग्राम स्वर्ण उपस्थित है। उसने ऐसी विधि की योजना प्रस्तुत की जिसके आधार पर जल में स्वर्ण की मात्रा 10 गुना बढ़ायी जा सकती थी। ऐसा लगता था कि वह अपने उद्देश्य में सफल हो गया था परंतु (महत्वपूर्ण कामों की अंतिम अवस्था में अक्सर यह "परंतु" सामने आकर खड़ा हो जाता है) सावधानी से किये गये दूसरे विश्लेषणों से यह पता चला कि समुद्री जल में स्वर्ण की वास्तविक मात्रा हैबर की बतायी मात्रा से हजार गुना कम है। बस फिर क्या था? सारी योजना ठप्प हो गयी।

तकनीक के आधुनिक स्तर पर यह समस्या अब दुर्लभ नहीं समझी जाती है। विदेशों

की कई फर्में इस दिशा में काफी प्रयास कर रही हैं। संभव है कि आने वाले दिनों में समुद्र स्वर्ण की अपार खान बन जाये।

फ्रांस तथा सोवियत संघ के वैज्ञानिक एक और दिशा में कार्य कर रहे हैं जिससे काफी आशा की जा रही है: यहां हमारा अभिप्राय जीवधात्विकी प्रक्रियाओं से है। हाल में विज्ञान को ऐसे जीवाणुओं का पता चला है जो स्वर्ण "चाट जाते हैं"। फंफूदियों की कुछ किस्में विलयनों से स्वर्ण चूसने की क्षमता रखती है। यह स्वर्ण एक पतली झिल्ली के रूप में उनके ऊपर जमा हो जाता है। स्वर्ण प्राप्त करने के लिये इस झिल्ली को सुखाकर इसे तापते हैं। यह

बात जरूर है कि इस विधि से प्राप्त स्वर्ण की मात्रा बहुत ही कम होती है। फिलहाल यह विधि प्रयोगशाला तक सीमित है परंतु वैज्ञानिकों को विश्वास है कि विभिन्न सजीव प्राणियों की जैवरसायनिक प्रक्रियाओं की सहायता से पहाड़ी चट्टानों से स्वर्ण प्राप्त करना संभव है।

हमारे जमाने में स्वर्ण... अन्य धातुओं से भी प्राप्त किया जा सकता है। पाठक कहेंगे "तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि कीमियागरों की सदियों पुरानी अभिलाषा पूरी हो गयी है? क्या "पारस" मिल गया है?" जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। यह काम पारस की जगह नाभिकीय भौतिकी कर रही है। वैज्ञानिक लोग नाभिकीय रिऐक्टरों में इरीडियम, प्लैटिनम, पारद तथा टैलियम पर न्यूट्रानों से बमबारी करके स्वर्ण के विघटनाभिक समस्थानिक प्राप्त करते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये रैखिक या वृत्ताकार त्वरक भी इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इन त्वरकों के अंदर विद्युत तथा चुंबकीय क्षेत्रों की सहायता से आवेशित कण त्वरित किये जाते हैं।

आपको यह बात एक चुटकुला सा लगेगी कि ब्रिटेन के आधुनिक भौतिकविदों ने इंगलैंड के बादशाह हेनरी IV के आदेश का कई बार उल्लंघन किया है। इस बादशाह ने निम्न आदेश जारी किया था: "साधारण धातुओं को स्वर्ण में बदलने पर राजकीय पाबंदी लगायी जाती है। जो कोई इस आदेश का पालन नहीं करेगा, उसे कड़ी सजा दी जायेगी"। तब से कई शताब्दियों तक कोई भी इस आदेश का उल्लंघन नहीं कर सका हालांकि इस बात की इच्छा रखने वालों की कमी नहीं थी। लेकिन बीसवीं

शताब्दी के वैज्ञानिकों ने इसका उल्लंघन किया है।

हां, तो ऊपर हमने पाठकों का स्वर्ण के इतिहास तथा इसकी प्राप्ति की विधियों से परिचय कराया है। अब हम यह बताना चाहेंगे कि यह धातु है क्या चीज और आज इसके उपयोग क्या हैं?

स्वर्ण की गिनती सबसे भारी धातुओं में की जाती है। इसी गुण के आधार पर आर्किमीडिस सिराकुज के बादशाह हिरोन के सुनारों की बेईमानी का भंडाफोड़ कर सका। बादशाह ने इन सुनारों से स्वर्ण का एक मुकुट बनवाया। उसने यह मुकुट आर्किमीडिस को दिखाया और यह बताने को कहा कि मुकुट शुद्ध स्वर्ण का बना है या उसमें स्वर्ण के अलावा कोई और धातु भी मिलायी गयी है। आज के जमाने में स्कूल का एक बच्चा भी इस समस्या को हल कर सकता है। परंतु ईसा से तीन शताब्दी पूर्व उस पुराने जमाने में आर्किमीडिस जैसे महान वैज्ञानिक को इस समस्या का समाधान ढूंढ़ने में काफी सिरखपी करनी पड़ी। वैज्ञानिक ने मुकुट को तौल लिया और फिर पानी से भरी एक बाल्टी में डूबोकर विस्थापित जल का आयतन ज्ञात कर लिया। मुकुट के भार को इस आयतन से भाग देने पर उसे 19.3 (यह स्वर्ण का आपेक्षित घनत्व है) की जगह इससे छोटी संख्या प्राप्त हुई। वैज्ञानिक समझ गया कि सुनारों ने कुछ स्वर्ण अपने पास रख लिया है और उसकी जगह मुकुट में हलकी धातु मिला दी है।

शुद्ध स्वर्ण बहुत नर्म तथा तन्य होता है। माचिस की तीली के सिरे के बराबर स्वर्ण के एक छोटे से टुकड़े से कई किलोमीटर लंबी तार खींची जा सकती है या 50 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की आसमानी हरे रंग की एक पारदर्शक पत्ती बनायी जा सकती है।

नाखून से खरोंचने पर शुद्ध स्वर्ण पर निशान बन जाता है। इसी कारण आभूषणों में प्रयुक्त होने वाले शुद्ध स्वर्ण में ताम्र, रजत, निकैल, कैडमियम, पैलेडियम तथा अन्य धातुएं मिलायी जाती हैं जो इसकी मजबूती बढ़ा देती हैं।

पिछली शताब्दी के अंत में संयुक्त राज्य अमरीका में एक मजेदार घटना घटी। फिलाडेलफिया की टकसाल से कुछ दूर एक बहुत पुराना चर्च खड़ा था। एक बार जब इसकी मरम्मत करवायी जा रही थी, शहर के एक निवासी ने उस चर्च की बेकार छत खरीदने की इच्छा प्रकट की और वह भी काफी ऊंची कीमत पर। लोग समझे कि उसका दिमाग खराब हो गया है परंतु उन्होंने सोचा कि अगर वह खुद ही पैसे दे रहा है तो छोड़े क्यों जायें? सौदा तय हो गया। परंतु कुछ अर्से बाद चर्च के लोगों को पता चल गया कि वे बेवकूफ बन गये हैं। चालाक गाहक ने छत को छील कर इकट्ठी हुई छीलन को जला दिया – राख से उसे 8 किलोग्राम स्वर्ण मिला जिसकी कीमत उसके द्वारा की गयी अदायगी से कई गुना अधिक थी। छानबीन करने पर पता चला कि कई सालों से टकसाल में ढल रहे स्वर्ण की धूल पाइपों के रास्ते बाहर निकल कर आसपास की चीजों पर जम रही थी और सबसे ज्यादा मात्रा चर्च की छत पर इकट्ठी हो गयी थी।

यूरोप के एक बैंक का खजांची भी बहुत चालाक निकला। यह बात प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ होने से कुछ पहले की है जब अधिकांश देशों में स्वर्ण की मुद्रा का प्रचलन

था। इस बैंक में रोजाना हजारों सिक्के आते थे, जहां गिनती करके इनकी छंटाई की जाती थी और फिर थैलों में सील कर दिया जाता था। अक्सर यह काम लकड़ी की कुछ खास मेजों पर किया जाता था। एक बार एक खजांची ने काम शुरू करने से पहले मेज पर घर से लाया कपड़ा बिछा दिया और फिर उसके ऊपर सिक्के रखकर काम शुरू कर दिया। खजांची की कुशलता से बैंक के अधिकारी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने दूसरे कर्मचारियों के सामने उस खजांची की तारीफ करनी शुरू कर दी। रोज सुबह वह अपनी मेज की दराज से कपड़ा निकाल कर मेज पर बिछा देता और शाम को घर जाते वक्त बड़ी सावधानी से तह करके उसे मेज की दराज में बंद कर देता। शनिवार को वह उसे घर ले जाता और सोमवार को नया कपड़ा ले आता। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा परंतु एक दिन घर की नौकरानी ने उसकी चालाकी का भंडाफोड़ दिया। पता चला कि शनिवार को वह कपड़े को कड़ाही में रखकर उसमें

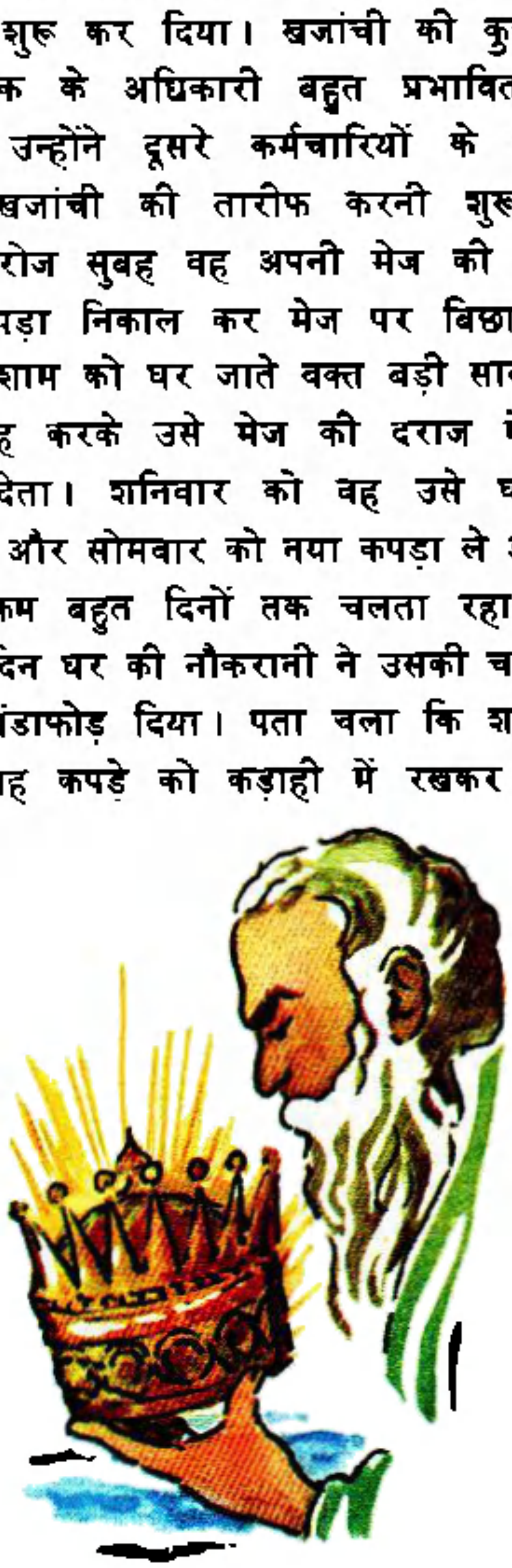

आग लगा देता था। सप्ताह भर स्वर्ण के सिक्के रखने से उस पर स्वर्ण के काफी कण जमा हो जाते थे जो आंच से पिघल कर स्वर्ण के छोटे से डले में परिवर्तित हो जाते थे।

स्वर्ण का एक अतिमहत्त्वपूर्ण गुण इसका अद्वितीय रसायनिक प्रतिरोध है। इस पर न तो अम्लों का कोई असर होता है और न ही क्षारों का। केवल अम्लराज (नाइट्रिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का मिश्रण) एक ऐसी चीज है जिसमें स्वर्ण को विलयित करने की क्षमता होती है। डेनमार्क के विख्यात भौतिकविद नोबेल पुरस्कार विजेता नील्स बोहर ने एक बार इस बात का फायदा उठाया। यह 1943 की घटना है। जर्मन सेना ने डेनमार्क पर कब्जा कर रखा था। अपनी जान बचाने के लिये बोहर को कोपेनहैगन छोड़ना पड़ा। उनके पास अपने दो साथियों – नोबेल पुरस्कार विजेताओं – जर्मन भौतिकविद्, फासिस्ट विरोधी – जेम्स फ्रैंक तथा माक्स फोन लाउए के स्वर्ण पदक पड़े हुए थे (उनका खुद का पदक पहले ही डेनमार्क से बाहर पहुंचा दिया गया था)। वैज्ञानिक को डर था कि तलाशी होने पर ये पदक निश्चय ही जर्मनों के हाथ लग जायेंगे। उन्होंने इन्हें अम्लराज में घोल कर एक साधारण बोतल में भर कर अलमारी में रख दिया जहां ऐसी कई बोतलें तथा शीशियां रखी हुई थीं। युद्ध के बाद जब वे अपनी प्रयोगशाला लौटे, तो उन्हें अपनी कीमती बोतल उसी जगह रखी मिली। बोहर के अनुरोध पर इस विलयन से स्वर्ण निकाल कर फिर से दोनों पदक तैयार कर दिये गये।

स्वर्ण को अक्सर "धातुओं का राजा"

कहा जाता है, इसकी तारीफ की जाती है, बहुत मान दिया जाता है। इतना सब कुछ होते हुए भी इसकी किस्मत बड़ी खराब है। इसे हमेशा कैद में रखा जाता है। जैसे ही पृथ्वी से निकला स्वर्ण मनुष्य के हाथ लगता है वह इसे फिर से कैदखाने में डाल देता है – बड़ी-बड़ी मजबूत सेफों में, दुर्गम तहखानों में, सीमेंट की मजबूत दीवारों में बंद कर देता है। ऐसी एक जगह फोर्ट नाक्स है जहां कांटेदार तारों की बाड़ों के अंदर स्थित इमारत में संयुक्त राज्य अमरीका का मुख्य स्वर्ण भंडार है। इन तारों में 5000 वोल्ट बिजली बहती रहती है। फोर्ट के प्रवेश द्वारों की निगरानी के लिये बीसियों वाच-टावर हैं जो आधुनिक इलैक्ट्रानिक उपकरणों से सुसज्जित हैं। इन टावरों पर लगी मशीनगनें तथा शक्तिशाली तोपें खुद निशाना बांध सकती हैं। यह फोर्ट कई सैक्टरों में बंटा है जिन्हें किसी भी क्षण पानी में डूबोया जा सकता है। सारा फोर्ट कुछ मिनटों में जहरीली गैस से भरा जा सकता है जो वहां स्थित हर जीवित प्राणी को नष्ट कर सकती है। फोर्ट के बिल्कुल केंद्र में लोहे तथा सीमेंट के बने एक ब्लॉक में अमरीका का स्वर्ण रखा हुआ है। इस ब्लॉक में लगे दरवाजे 20 टन भारी हैं जिन पर विशेष किस्म के ताले लगे हुए हैं। इलैक्ट्रानिक "आंखें" एक क्षण के लिये भी पलकें नहीं बंद करतीं। इतनी अधिक सुरक्षा दुनिया के किसी भी दूसरे कैदखाने में नहीं बरती जाती।

स्वर्ण का एक छोटा सा हिस्सा हमारे दिनों में आभूषणों तथा दांतों के निर्माण में व्यय हो रहा है। आपको शायद मालूम नहीं कि दांतों में स्वर्ण का प्रयोग बहुत

प्राचीन काल से हो रहा है। हमारी शताब्दी के पांचवें दशक के आरंभ में मिश्री फिराउन खैफेन के पिरामिड में वैज्ञानिकों को एक ममी मिली जिसके तीन दांतों में स्वर्ण की तारें लगी हुई थीं। दंतचिकित्सकों के इस करिश्मे की आयु 4500 साल बतायी जाती है। प्राचीन काल में शल्यचिकित्सा में भी स्वर्ण का उपयोग प्रचलित था। दक्षिणी अमरीका में पुरातत्वज्ञों को इंकाओं के एक सरदार की खोपड़ी मिली जिसने बड़े-बड़े डाक्टरों को चक्कर में डाल दिया। इस खोपड़ी के मालिक का उसके जीवनकाल में आपरेशन किया गया था क्योंकि खोपड़ी पर कपाल छेदन के निशान दिखाई दे रहे थे। आश्चर्य की बात यह थी कि हड्डियों के सूराख बड़ी कुशलता के साथ स्वर्ण के डिस्क से बंद किये गये थे।

पिछले दिनों तक तकनीकी कार्यों में स्वर्ण का उपयोग दंतचिकित्सा में इसके प्रयोग से कुछ ही अधिक था। परंतु अब औद्योगिक जगत स्वर्ण में बहुत रुचि दिखा रहा है।

ट्रांजिस्टरों तथा डायडों के निर्माण में इस पीली धातु का उपयोग दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इस धातु के प्लैटिनम ऐलायों से संश्लिष्ट तंतु प्राप्त किये जाते हैं जिनकी मजबूती तथा रसायनिक प्रतिरोध अद्वितीय होते हैं।

निर्वात तकनीक में तकनीकी रूप से शुद्ध स्वर्ण इस्तेमाल किया जाता है जो उच्च विरलन के दौरान पास रखे ताम्र के साथ चिपक जाता है। यहां एक धातु के अणु दूसरी धातु के अंदर घुसने की क्षमता रखते हैं। खास बात यह है कि दोनों धातुओं के बीच पारस्परिक विसरण जिन तापमानों पर होता है वे इन धातुओं या इनके ऐलायों के गलनांकों से काफी निम्न होते हैं। इन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त यौगिकों को "स्वर्ण की सीलें" कहते हैं।

स्वर्ण से आवेशित कणों के त्वरित्रों के पैकिंग छल्ले तथा डिस्कें बनायी जाती हैं। त्वरित्रों के चैम्बरों तथा ट्यूबों की वैल्डिंग में भी इस धातु का इस्तेमाल की जाती है। स्वर्ण हवा के घुसने के सारे रास्ते अच्छी तरह से बंद कर देते हैं जिसके फलस्वरूप यूनिट के अंदर अत्यधिक उच्च निर्वात उत्पन्न हो जाता है – वायुमंडलीय दाब से करोड़ गुना कम। चैम्बर के अंदर विरलन जितना उच्च होता जाता है सूक्ष्म कणों की जिंदगी उतनी ही बढ़ती जाती है।

हमारी शताब्दी के पांचवें दशक के मध्य में अटलांटिक महासागर में टेलीफोन केबल बिछाते समय इंजीनियरों को स्वर्ण का इस्तेमाल करना पड़ा। अगर अमरीका और यूरोप के बीच टेलीग्रामों का आदान-प्रदान 100 से भी ज्यादा सालों से चल रहा था तो दोनों महाद्वीपों के बीच टेलीफोन संबंध उन दिनों एक असंभव बात समझी जाती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि टेलीफोन केबलों में प्रवाहित विद्युत धारा की शक्ति बड़ी तेजी से कम होने लगती थी। इस समस्या का समाधान केबल पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर लगे त्वरित्र कर सकते थे जो विद्युत धारा की शक्ति एकसमान रख सकते थे। इन उपकरणों को समुद्री जल की विनाशकारी प्रक्रिया से सुरक्षित रखने के लिये इनके कुछ पुर्जों पर स्वर्ण लेप दिया गया। इस प्रकार स्वर्ण ने एक अति जटिल

तकनीकी समस्या हल कर दी और 1956 में इतिहास में पहली बार यूरोप और अमरीका के बीच टेलीफोन पर बातचीत हुई।

इस बात में कोई शक नहीं कि स्वर्ण अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यों में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। अंतरिक्ष के अध्ययन के उद्देश्य से इंगलैंड ने जो दो कृत्रिम उपग्रह "प्रोसपेरो" और "एरियल" छोड़े थे उन पर स्वर्ण का बारीक लेप चढ़ा हुआ था। धातुओं का राजा उपग्रहों के आवरण का तापनियमन प्रभावशाली बना देता है, उसे जंग नहीं लगने देता, आयनों तथा अन्य आवेशित कणों को एक जगह इकट्ठा नहीं होने देता जिसकी वजह से आकस्मिक संकट के पैदा होने का सवाल ही नहीं उठता। अमरीकी अंतरिक्ष यान "कोलंबस" के निर्माण में लगभग 41 किलोग्राम स्वर्ण लग गया था।

औद्योगिक कार्यों में स्वर्ण की आवश्यकता हर साल बढ़ती जा रही है। संभव है कि एक दिन इस कीमती धातु को स्टील की सेफों से मुक्ति मिल जाये और यह फैक्टरियों तथा प्रयोगशालाओं में आ जाये जहां इसे मनपसंद काम मिलने लगें।

रजत जल

हर चीज पर नियम लागू नहीं होता – जार भीषण इवान को भीषण का उपनाम क्यों दिया गया? – इंगलैंड के बादशाह का शौक – जहाज "विजय" पर दुखद घटना घटती है – कानूनन मना है – यश लौट आता है – रोम पारद खरीदता है – चेंगेज खान की चालाकी – एकिमेनिड खानदान के बादशाहों के महल में मिला शिलालेख – नया शौक – बादशाह लोग प्रयोगशालाएं बनवाते हैं – मध्ययुग के ठगों की चालाकियां – फांसी दे दी जाती थी या जिंदा जला दिया जाता था – भूमिगत प्रयोग – रंगे हाथों पकड़ा गया – बुध देवता चालाक है – मोंटफेरन का बनाया कैथेड्रल – वक्त से पहले ही खुश होना शुरू कर दिया – हरी लिपस्टिक – परम शून्य के पास क्या प्रतिक्रिया होती है? – ड्यूक फेरदिनान्द II जल की जगह ऐलकोहाल इस्तेमाल करने की सिफारिश करता है – कठिन परीक्षाएं – जीवन के मार्ग पर

200 से भी ज्यादा साल पहले प्रसिद्ध रूसी वैज्ञानिक मिखाइल लोमोनोसोव ने 'धातु' की एक स्पष्ट परिभाषा दी। उन्होंने लिखा : "धातुएं कठोर, तन्य तथा चमकीली होती हैं"। उनकी बात ठीक भी थी। लोहा, ऐलुमिनियम, ताम्र, स्वर्ण, रजत, लेड, टिन तथा अन्य कई धातुएं, जिनसे हमारा वास्ता पड़ता है, ये सारे गुण रखती हैं। परंतु कहावत है कि हर नियम में कुछ-न-कुछ अपवाद जरूर होते हैं। प्रकृति में लगभग 80 धातुएं हैं जिनमें से केवल एक ऐसी है जो साधारण परिस्थितियों में द्रव अवस्था में रहती है। आप समझ ही गये होंगे कि हमारा अभिप्राय पारद से है।

पारद तथा इसके प्रतिविन्यासी टंग्स्टन के उदाहरण से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि धातुओं के गुणों का परास बहुत बड़ा है। अगर टंग्स्टन 3410°C पर प्रगलित होता है (तुलना के लिये हम यह बताना चाहेंगे कि खुली भट्टी में आग का ताप 2000°C से ऊपर नहीं पहुंचता) तो पारद हिमीकर ठंड में भी द्रव अवस्था नहीं छोड़ता। केवल −38.9°C पर यह ठोस अवस्था में आ जाता है। हालांकि टंग्स्टन तथा पारद धातुओं के एक ही परिवार से संबंधित हैं परंतु उपरोक्त गुणों के आधार पर हम इन्हें केवल दूर के रिश्तेदार कह सकते हैं।

1759 में पहली बार पारद ठोस अवस्था तक प्रशीतित किया गया। ठोस अवस्था में इसका रंग रजत-नीला होता है तथा तब यह लेड से काफी मिलता जुलता है। अगर ठोस पारद को हथौड़े के आकार वाले एक सांचे में डाल कर तीव्रता से ठोस अवस्था के ताप तक प्रशीतित किया जाये, उदाहरणतया, द्रवित वायु से, तो इस हथौड़े से लकड़ी

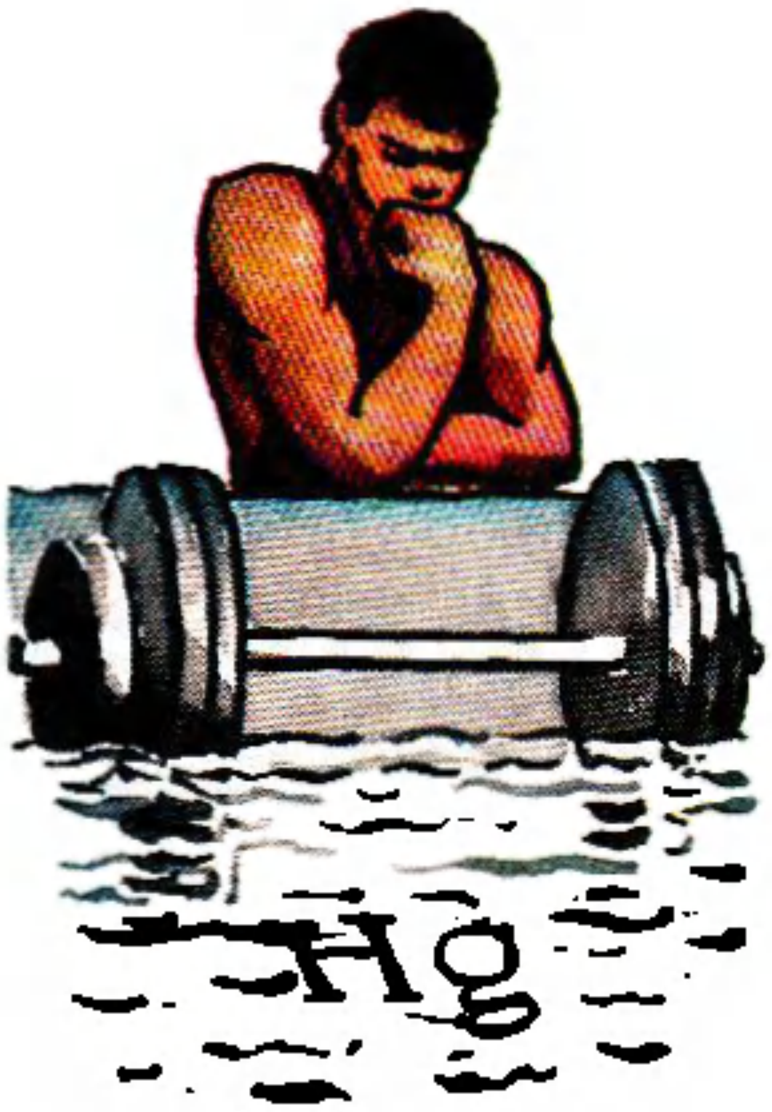

में कील ठोकी जा सकती है। परंतु यह काम बड़ी तेजी से करना होगा क्योंकि ऐसे औ-जार की आयु ज्यादा नहीं होती; वह इस्तेमाल करने वाले के हाथ में पिघल सकता है।

पारद सभी ज्ञात द्रवों में सबसे अधिक भारी है: इसका घनत्व 13.6 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। इसका मतलब यह हुआ कि 1 लीटर पारद का वजन पानी की बाल्टी के वजन से अधिक होता है। अगर वजन उठाने वाला खिलाड़ी मुगदर को फर्श पर न रखकर पारद से भरी हौज में रख दे तो भारी से भारी मुगदर डूबने की जगह तैरने लगेगा जैसे एक कार्क पानी में तैरने लगता है। इसका कारण यह है कि स्टील पारद से काफी हलका होता है।

मनुष्य प्रागैतिहासिक काल से पारद से परिचित है। अरस्तू, थीयोफ्रास्टस, प्लीनी ज्येष्ठ, विटरूवियस तथा कई अन्य प्राचीन वैज्ञानिकों की पुस्तकों में इस धातु की चर्चा मिलती है। लातीनी भाषा में इसका नाम

"हाइड्रेजियम" है जिसका अर्थ है – "रजत जल"। इसका यह नाम हमारे युग की प्रथम शताब्दी में एक यूनानी डाक्टर डिओ-स्कोरिडस ने रखा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उस जमाने में एक डाक्टर का पारद के साथ वास्ता पड़ा। पारद के चिकित्सा गुण बहुत पुराने जमाने से ज्ञात हैं। परंतु कभी-कभी उपचार कार्यों में पारद का प्रयोग काफी अजीब सा था। उदाहरण-तया, एक पुस्तक में यह पढ़ने को मिलता है कि क्षुद्रांत्र से पीड़ित मरीज को 200-250 ग्राम पारद खिला दिया जाता था। पुराने जमाने के चिकित्सकों के अनुसार भारी तथा गतिशील होने के कारण पारद टेढ़ी आंतों में घुसकर अपने भार से उन्हें सीधा कर देता है। आप खुद ही अंदाजा लगा सकते हैं कि ऐसे प्रयोगों के क्या नतीजे होते होंगे।

हमारे जमाने में उक्त रोग का इलाज दूसरे तरीकों से किया जाता है जो ज्यादा विश्वसनीय हैं। परंतु चिकित्सा कार्यों में पारद के विभिन्न यौगिकों का आज भी प्रचलन है: जैसे, मरक्यूरिक क्लोराइड विसं-क्रामक गुण रखता है, कैलोमेल मृदु विरेचक का कार्य करता है, मरकूसल मूत्रल के रूप में प्रयोग होता है, पारद की कई मलहमें त्वचा-रोगों तथा अन्य बीमारियों के इलाज में इस्तेमाल की जाती हैं।

परंतु पारद फायदे के साथ-साथ नुकसान भी कर सकता है। इस तत्त्व के बहुत सारे यौगिक तथा वाष्पें अक्सर बहुत जहरीली सिद्ध होती हैं या धीरे-धीरे मनुष्य का स्वा-स्थ्य तथा मनोवृत्ति नष्ट करती जाती हैं। डाक्टरों ने सिद्ध किया है कि पारद का जहर अक्सर मनुष्य को क्रोधी स्वभाव का बना देता है। इस धारणा के आधार पर इतिहासकारों ने जार इवान भीषण की भीष-णता का कारण पारद बताया। उनके कथनानु-सार जोड़ों के दर्द से परेशान रहने के कारण जार काफी लंबे अर्से तक पारद की मलहमों की मालिश करवाता रहा। ये मलहमें ही तो उसके क्रोधी स्वभाव का कारण बन गयीं। गुस्से के एक ऐसे दौर में जार ने अपने पुत्र को ही मार दिया। पारद के जहर के लक्षण जार की अन्य आदतों में भी दिखाई देते थे – हर वक्त दृष्टिभ्रम, घबराहट तथा खतरे की आशंका। जार की मृत्यु के बाद उसके अवशेषों के अध्ययन ने इस धारणा की पुष्टि कर दी: जार की हड्डियों में पारद की मात्रा बहुत ज्यादा थी।

यूरोप के कई अन्य सम्राटों के जीवन में भी पारद ने खतरनाक भूमिका निभायी। सोलहवीं शताब्दी में एरिख XIV स्वीडन का बादशाह था। उसका भाई योहन III किसी भी कीमत पर गद्दी का मालिक बनना चाहता था। 1568 में उसने एरिख XIV से गद्दी छीन ली। हमारे दिनों तक सुरक्षित कुछ ऐतिहासिक दस्तावेजों मे कुछ ऐसा इशारा मिलता है कि एरिख XIV को जहर दिया गया था। स्वीडन के वैज्ञानिकों ने इस बात की सत्यता जानने का फैसला किया। परंतु 400 से भी ज्यादा साल पुरानी घटना की जांच कैसे की जाये? नाभिकीय भौतिकी ने इस काम में सहायता की, आधुनिकतम विश्लेषण विधियों ने असंभव काम संभव कर दिया। बादशाह का अस्थिपिंजर सुरक्षित रखा ही हुआ था। वैज्ञानिकों ने उसके बालों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया। वास्तव में बादशाह के बालों में पारद की मात्रा सामान्य से बहुत अधिक थी। इस प्रकार एरिख XIV को जहर से मारने

की बात वैज्ञानिक रूप से सत्य सिद्ध हो गयी।

जिन इतिहासकारों ने सतरहवीं शताब्दी के पुरालेखों का अध्ययन किया है, उनके कथनानुसार इंगलैंड के बादशाह चार्ल्स II की मृत्यु भी पारद के जहर से हुई थी। यह बात जरूर थी कि इस बार बादशाह खुद अपनी मौत का जिम्मेदार था। बादशाह को कीमियागरी का बहुत शौक था। उसने अपने महल के अंदर ही एक प्रयोगशाला खुलवा दी। जब भी उसे समय मिलता वह प्रयोगशाला में आ जाता और पारद के साथ तरह-तरह के प्रयोग करता। उन दिनों कीमियागर पारद का बहुत शौक रखते थे। बादशाह कभी पारद का भर्जन करता, कभी उसे आसवित करता। वैज्ञानिकों को कुछ ऐसे दस्तावेज मिले हैं जिनमें चार्ल्स के रोग के लक्षण बताये गये हैं – चिड़चिड़ेपन की आदत, शरीर का ऐंठना तथा चिरकालिक यूरेनिआ। ये सारी खराबियां तब आती हैं जब मनुष्य दीर्घकाल तक पारद की वाष्पों के संपर्क में रहता है। शाही हकीमों ने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की – उन्होंने बादशाह को कुनैन खिलायी, उसके सिर पर गर्म प्रैस तक रख कर देखी ; उस वक्त की चिकित्सा की सारी उपलब्धियां बरत कर देखीं परंतु बादशाह की जान फिर भी नहीं बचायी जा सकी।

1810 में ब्रिटेन के एक जहाज "विजय" पर कुछ ड्रमों में रखा पारद बिखर गया जिसके परिणामस्वरूप 200 से भी ज्यादा लोग मौत का शिकार हो गये।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सोवियत संघ तथा कई अन्य देशों में कुछ उत्पादन कार्यों में पारद तथा इसके यौगिकों के प्रयोग पर सख्त प्रतिबंध लगा हुआ है, उदाहरणतया, पारद रंगों के उत्पादन पर। जहां पारद के बिना काम नहीं चल सकता, वहां विभिन्न सुरक्षा उपाय अपनाये जाते हैं जो कारीगरों की इसके दुष्प्रभावों से रक्षा करते हैं।

प्रकृति में पारद विस्तृत नहीं है। कभी-कभी यह प्राकृतिक रूप में मिलता है – छोटी-छोटी बूंदों के रूप में। पारद का मुख्य खनिज सिनबार है। यह एक अतिसुंदर पत्थर होता है। देखने में ऐसा लगता है जैसे कि इसके ऊपर रक्त गिरने से लाल धब्बे पड़ गये हों। सिनबार के बारे में एक मजेदार घटना प्रसिद्ध है। आप जानते ही होंगे कि पिछले कुछ अर्से से भूविज्ञानी खनिजों की खोज के काम में कुत्तों की सहायता ले रहे हैं। एक बार कुछ एलसेशियन कुत्तों का प्रशिक्षण पूरा होने के बाद उनकी परीक्षा ली जा रही थी। खनिजों के बहुत सारे नमूनों में उन्हें सिनबार भी ढूंढ़ना था। कुत्तों ने बड़ी जल्दी यह खनिज ढूंढ़ लिया परंतु इसके बाद भी वे शांत नहीं बैठे। सभी कुत्ते गुलाबी कैल्साइट को भी सिनबार बताने लगे। शुरू में तो भूविज्ञानी इस बात पर हंसने लगे परंतु कुछ समय बाद उन्होंने कुत्तों की इस गलती का कारण ढूंढ़ना शुरू किया। जानते हैं उन्होंने क्या देखा? गुलाबी कैल्साइट के भीतर सिनबार मिला। कुत्तों को गलतफहमी नहीं हुई थी, चार पैरों वाले इन भूविज्ञानियों का यश लौट आया।

पारद का सबसे विशाल निक्षेप – अल्मेडन स्पेन में है। पिछले दिनों तक विश्व में पारद के कुल उत्पादन का 80% भाग यहां मिलता था। प्लीनी ज्येष्ठ ने अपने लेखों में इस बात की चर्चा की है कि उसके जमाने में

रोम हर साल स्पेन से कई टन पारद खरीदता था।

निकितोव्स्काया निक्षेप की गिनती सोवियत संघ के पुराने पारद निक्षेपों में की जाती है। यह दोनवास में है। यहां विभिन्न गहराइयों पर (20 मीटर तक) पुराने जमाने के कुछ औजार मिले हैं जिनमें पत्थर के हथौड़े भी शामिल हैं।

किरगीजिया (मध्य एशिया) की फरगना घाटी में मिली खैदरकान (बड़ी खान) और भी ज्यादा पुरानी है जहां प्राचीन कार्यों के असंख्य चिन्ह मिले हैं – धातुओं की बनी पच्चड़े, लालटेनें, सिनबार जलाने के लिये

मिट्टी के भभके तथा राख के बड़े-बड़े ढेर। पुरातत्त्वीय खुदाई कार्यों से यह पता चला है कि पुराने जमाने में फरगना घाटी में पारद का उत्पादन कई शताब्दियों तक चलता रहा था केवल तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों में यह काम बंद हो गया था क्योंकि तब चेंगेज खान तथा उसके उत्तराधिकारियों ने दस्तकारी तथा व्यापार के सारे केंद्र नष्ट कर दिये थे जिसके फलस्वरूप यहां के लोग खानाबदोश बन गये थे।

मध्य एशिया में कुछ और पारद निक्षेप भी थे। जैसे, प्राचीन फारस के एखिमेनिड खानदान (ईसा से VI - IV शताब्दी पूर्व) के बादशाहों के महल में मिले शिलालेख से यह पता चलता है कि उन दिनों सिनबार, जो मुख्यतः रंगसाजी में प्रयोग होता था, जेराव्शान पहाड़ों से लाया जाता था। ये पहाड़ सोवियत संघ के ताजिकस्तान तथा उज्बेकिस्तान प्रजातंत्रों में हैं। लगता है कि यहां ईसा से 5 शताब्दी पूर्व भी पारद के खनन-केन्द्र थे।

पुराने जमाने में खनन मजदूरों का काम बहुत कठिन तथा हानिकारक था। किपलिंग की पुस्तक में निम्न शब्द पढ़ने को मिलते हैं: "मेरे खयाल से पारद खानों में काम सबसे बुरी मौत है, जहां मुंह के अंदर दांत टुकड़े-टुकड़े होते रहते हैं"। आज भी पहाड़ी खानों के अंदर असंख्य कंकाल मिलते हैं, जहां कभी पारद निकाला जाता था। इस लाल पत्थर को पहाड़ों से लाने में हजारों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। इसकी लाली देखकर ऐसे लगता है जैसेकि यह उन लोगों के रक्त से रंजित हुआ है।

मध्य युग में पारद का उत्पादन बहुत बढ़ गया जब लोगों को कीमियागरी का

काफी शौक हो गया था। कीमियागरों को पारद में रुचि का कारण यह था कि उन दिनों पारद, सल्फर तथा नमक मूल तत्त्व समझे जाते थे। पारद को मातृक गुणों की जड़ बताया जाता था: "ताप बर्फ को जल में परिवर्तित कर देता है इसका मतलब यह हुआ कि बर्फ जल की बनी होती है। धातुएं पारद में घुल जाती हैं इसका मतलब यह हुआ कि पारद इन धातुओं का मूल रूप है।"

कीमियागरों के पास यह ठोस सिद्धांत था ही, बस "पारस" ढूंढ़ना बाकी था जिसकी सहायता से पारद स्वर्ण में बदला जा सकता था। परंतु लाख कोशिशों के बावजूद पारद नहीं मिल रहा था हालांकि इंगलैंड का बादशाह हेनरी VI तथा रोमन सम्राट रूदोल्फ II जैसे प्रभावशाली व्यक्ति इस काम में दिलचस्पी ले रहे थे। यूरोप के कई अन्य बादशाहों की तरह इन दोनों ने भी अपने महलों में कीमियागर प्रयोगशालाएं खोल रखी थीं।

यह बात जरूर सच है कि इन अनुसंधान कार्यों से थोड़ी बहुत सफलता जरूर मिली: हेनरी VI के व्यक्तिगत कीमियागर ने यह पता लगाया कि अगर ताम्र पर पारद घिस दिया जाये तो उसका रंग रजत जैसा हो जाता है। बादशाह ने इस खोज का खूब फायदा उठाया: उसने ताम्र के बहुत सारे सिक्कों पर पारद रगड़वा कर उन्हें रजत के सिक्कों की जगह चलवा दिया। इस चालाकी से बादशाह ने काफी पैसे बनाये।

समय-समय पर विभिन्न देशों में कई लोगों ने "पारस" मिलने का दावा किया। कभी-कभी ये लोग ईमानदार परंतु भ्रम में पड़े वैज्ञानिक होते थे परंतु ज्यादातर ऐसा दावा ठग लोग करते थे। इन लोगों को नकली स्वर्ण बनाने के कई तरीके आते थे। इनमें से एक तरीका निम्न था: कीमियागर क्रूसिबल के अंदर पहले से ही स्वर्ण के कुछ टुकड़े रख देता था। वह इस क्रूसिबल में प्रगलित लेड या पारद डाल कर लकड़ी से हिलाता था। स्वर्ण का कुछ भाग प्रगलित धातु में घुल जाता था। स्वाभाविक था कि "प्रयोग" के बाद क्रूसिबल में स्वर्ण के चिन्ह दिखाई देते थे जिनसे लोग कीमियागर की करामात में विश्वास करने लगते थे। परंतु जैसे ही इन जादूगरों की खबर शासक तक पहुंचती थी तब या तो उन्हें अपनी धोखाधड़ी स्वीकार करनी पड़ती थी या शासक को बहुत बड़ी मात्रा में स्वर्ण बना कर देना पड़ता था और तब जादूई लकड़ी उनकी कोई सहायता नहीं कर पाती थी।

झूठे कीमियागरों को वही सजा दी जाती थी जो जाली सिक्के बनाने वालों को। उन्हें सितारे लगे कपड़े पहनाकर सुनहरे रंग के तख्ते पर खड़ा करके फांसी दे दी जाती थी। मौत की सजा देने की कुछ और तरीके भी थे। जैसे, 1575 में ड्यूक लूक्समबर्ग ने एक स्त्री कीमियागर मारिया जिग्लेरिन को जिंदा जलवा दिया क्योंकि उसने ड्यूक को पारस का रहस्य बताने से इन्कार कर दिया था। हालांकि यह जाहिर था कि मारिया को इस बात की तनिक भी जानकारी नहीं थी परंतु बेवकूफीपन में उसने यह स्वीकार कर लिया था कि वह पारस बनाना जानती है।

कुछ समय बाद इंगलैंड, फ्रांस तथा अन्य देशों में कैथोलिक चर्च ने कीमियागरी पर सरकारी प्रतिबंध लगवा दिया। परंतु फिर भी कुछ कीमियागर गुप्त रूप से यह कार्य करते रहे। फांसी की सजायें भी मिलती

रहीं। फ्रेंच रसायनज्ञ झान बारिलो रंगे हाथों पकड़ा गया जिसे केवल इस जुर्म में फांसी की सजा दे दी गयी कि वह अपनी प्रयोग-शाला में तत्त्वों के रसायनिक गुणों का अध्ययन कर रहा था। वैज्ञानिक के प्रयोग संदेहजनक लग रहे थे अतः उसे तुरंत मौत की सजा दे दी गयी।

हमारे दिनों तक सुरक्षित कीमियागरी के नुस्खों में पारद को अक्सर मर्करी कहा गया है। पारद की बूंदों में चिकने फर्श पर बड़ी तेजी से फिसलने का गुण होने के कारण प्राचीन रोमवासियों ने इसका यह नाम रख दिया। उनके विचारानुसार पारद की बूंदें चालाक और फुर्तीले बुध देवता (मर्करी) की याद दिलाती थीं। वे लोग बुध को व्यापार का देवता मानते थे। कीमियागरी साहित्य में और भी कई तत्त्वों को देवताओं के नाम दिये गये थे: स्वर्ण सूर्य का प्रतीक माना जाता था, लोहा – मंगल देवता का, ताम्र – शुक्र देवता का आदि। इस प्रकार कीमियागर अपनी जान-कारी गुप्त रखते थे।

हमारे युग से पहले भी लोगों को इस बात की जानकारी थी कि पारद कई धातुओं को अपने अंदर घोलकर पारदमिश्रण बनाने की क्षमता रखता है। इंगलैंड के वैज्ञानिक हैम्फरी डेवी ने इतिहास में पहली बार बेरियम, स्ट्रांशियम तथा मैग्नीशियम स्वतंत्र रूप से प्राप्त कर दिखाये। उन्होंने पहले इन धातुओं के पारद मिश्रण प्राप्त किये और फिर उनसे पारद अलग किया।

कैथेड्रलों के गुम्बदों पर स्वर्ण की पालिश करने के लिये पारदमिश्रण प्रयुक्त किये जाते हैं, उदाहरण के लिये, पीटर्सबर्ग के अद्वितीय इसाक कैथेड्रल के गुम्बद पर इसी तरीके से स्वर्ण का लेप चढ़ाया गया था। इस कैथेड्रल की योजना वास्तुकर मोंटफेरन ने तैयार की थी। इसके विशाल गुम्बद का व्यास 27 मीटर है। पारदमिश्रण द्वारा ताम्र की पत्तियों पर 100 किलोग्राम से ज्यादा शुद्ध स्वर्ण लेपा गया। सबसे पहले ताम्र की पत्तियों से चिकनाई हटायी गयी फिर इन पर पालिश करके पारदमिश्रण – स्वर्ण तथा पारद का विलयन – लेप दिया गया। इसके बाद इन पत्तियों को विशेष अंगीठियों पर तब तक गर्म किया गया जब तक कि पारद वाष्प बन कर नहीं उड़ गया। अब पत्ती पर केवल स्वर्ण की पतली तह (कुछ माइक्रोन मोटी) बाकी रह गयी थी। परंतु पारद की वाष्पों से निकला हलके नीले-हरे रंग का धुआं, जो अदृश्य लगता था, कारीगरों को नुकसान पहुंचाने में सफल हो गया था। हालांकि उन दिनों के सुरक्षा नियमों के अनुसार इन कारीगरों ने कांच के टोप पहन रखे थे परंतु पारद का जहर फिर भी असर कर गया। लोग तड़फ-तड़फ कर मरने लगे। समकालीन लोगों के कथनानुसार इस गुम्बद पर स्वर्ण की पालिश चढ़ाने के काम में दर्जनों कारीगरों को अपना बलिदान देना पड़ा।

पारदमिश्रणों का इतिहास केवल दुखद घटनाओं से ही नहीं भरा है। कुछ मजेदार किस्से भी इनसे संबंधित हैं। कहते हैं कि हमारी शताब्दी के आरंभ में एक वैज्ञानिक ने पारद से स्वर्ण प्राप्त करने के उद्देश्य से पारद वाष्पों पर शक्तिशाली विद्युत चिंगारियों की प्रक्रिया करायी। काफी अर्से बाद उसे पारद में स्वर्ण दिखाई दिया। वैज्ञानिक की खुशी का ठिकाना न था। परंतु जब उसे यह पता चला कि यह स्वर्ण उसके अपने चश्मे के

फ्रेम के स्वर्ण का अंश था, उसे निराशा भी बहुत हुई। बात यह थी कि समय-समय पर वह अपने हाथों से चश्मा ठीक करता था। उसके हाथों पर पारद की नन्हीं-नन्हीं बूंदें जम गयी थीं जो स्वर्ण के संपर्क में आते ही उसका कुछ अंश पारदमिश्रण में परिवर्तित कर देती थीं और फिर यही पारदमिश्रण अनुसंधान के लिये रखे पारद में मिल जाता था।

पारदमिश्रण आज भी धातुओं पर स्वर्ण की पालिश चढ़ाने के काम में प्रयुक्त किये जाते हैं (यह कहने की जरूरत नहीं है कि आज इस काम में मनुष्य की जान को कोई खतरा नहीं होता है), जैसे, दर्पणों के निर्माण में, दंतचिकित्सा में, प्रयोगशाला आदि में। फल्मिनिक अम्ल का पारद लवण बारूद के निर्माण में इस्तेमाल होता है।

तकनीकी कार्यों में शुद्ध पारद का प्रयोग बहुत विस्तृत है। उदाहरणतया, रसायनिक उद्योगों में क्लोरीन, कास्टिक सोडा, संश्लिष्ट ऐसीटिक अम्ल के उत्पादन में शुद्ध पारद प्रयुक्त किया जाता है। पारद परिशोधक बहुत भरोसेदार होते हैं तथा काफी लंबे अर्से तक चलते हैं। ये प्रत्यवर्ती धारा के सुधारने में प्रयुक्त होते हैं। स्वचलित तथा मापक यंत्रों में पारद स्विच लगाये जाते हैं जो विद्युत धारा को तात्क्षणिक चालू या बंद कर देते हैं। क्वार्टज पारद लैंपों की सहायता से शक्तिशाली पराबैंगनी विकिरण उत्पन्न किया जा सकता है। इन लैंपों से आपरेशन हालों की वायु शुद्ध रखी जाती है। ये लैंप रेडियो चिकित्सा में भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

संदीप्तिशील लैंपों (पारद वाष्प लैंपों) की कांच की ट्यूबों में आर्गान मिली पारद की विरलित वाष्पें भरी जाती हैं। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले मास्को की गोर्की स्ट्रीट पर पारद लैंप लगाये गये परंतु शीघ्र ही इन लैंपों को हटाना पड़ा क्योंकि इनके अप्रिय प्रकाश में लोगों के चेहरे फीके लगते थे तथा लिपस्टिक का रंग लाल की जगह हरा दिखाई देता था। आगे चलकर लैंपों के लिये विशेष पदार्थ – संदीपक विकसित करने में सफलता मिल गयी। ये लैंपों की आंतरिक दीवारों पर लेप दिये जाते हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्न रंगों का प्रकाश उत्पन्न होता है, जैसे, सफेद रंग का जो दिन की रोशनी से काफी मिलता जुलता है।

पारद ने हमारी शताब्दी की एक बहुत बड़ी खोज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यह खोज अतिचालकता की परिघटना के साथ संबंधित थी। 1911 में हालैंड के भौतिकविद तथा रसायनज्ञ हैक कैमरलिंग ओनेस निम्न तापमानों पर विभिन्न पदार्थों के गुणों का अध्ययन कर रहे थे। प्रयोगों के दौरान उन्होंने यह देखा कि परम शून्य के पास 4.1 K पर पारद का विद्युत धारा के प्रति प्रतिरोध बिल्कुल खत्म हो जाता है। दो साल बाद ओनेस को इस खोज के उपलक्ष में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

1922 में चैक रसायनज्ञ यारोस्लाव गैइरो-व्स्की को भी नोबेल पुरस्कार दिया गया। उन्होंने रसायनिक विश्लेषण की पोलेरोग्राफी विधि विकसित की जिसमें पारद अतिमहत्त्व-पूर्ण भूमिका निभाता है।

पारद दर्जनों भौतिक उपकरणों में मुख्य घटक का कार्य करता है – मैनोमीटरों, बैरो-मीटरों, निर्वात पम्पों में, परंतु इसका सबसे विस्तृत उपयोग थर्मामीटरों में होता है।

सत्तरहवीं शताब्दी में जब पहले थर्मामीटर का आविष्कार हुआ तब उसके अंदर द्रव के रूप में जल भरा गया था। परंतु ठंड में जल जम जाता था जिसके फलस्वरूप कांच टुकड़े-टुकड़े हो जाता था और थर्मामीटर नष्ट हो जाता था। टूस्कानी के ड्यूक फेरदिनान्द II ने जल की जगह ऐलकोहाल इस्तेमाल करने की सिफारिश की। शायद उसे ऐलकोहाल के गुणों की अच्छी जानकारी थी। अब थर्मामीटर ज्यादा भरोसेदार हो गये थे परंतु ऐलकोहाल की कोटि हमेशा एक सी न होने के कारण तापमानों में अक्सर काफी फर्क दिखाई देने लगे। फ्रेंच भौतिकविद अम्मोन्तोन पहला व्यक्ति था जिसने थर्मामीटर में पारद इस्तेमाल करके देखा। कुछ सालों बाद 1724 में जर्मन भौतिकविद फारेनहाइट

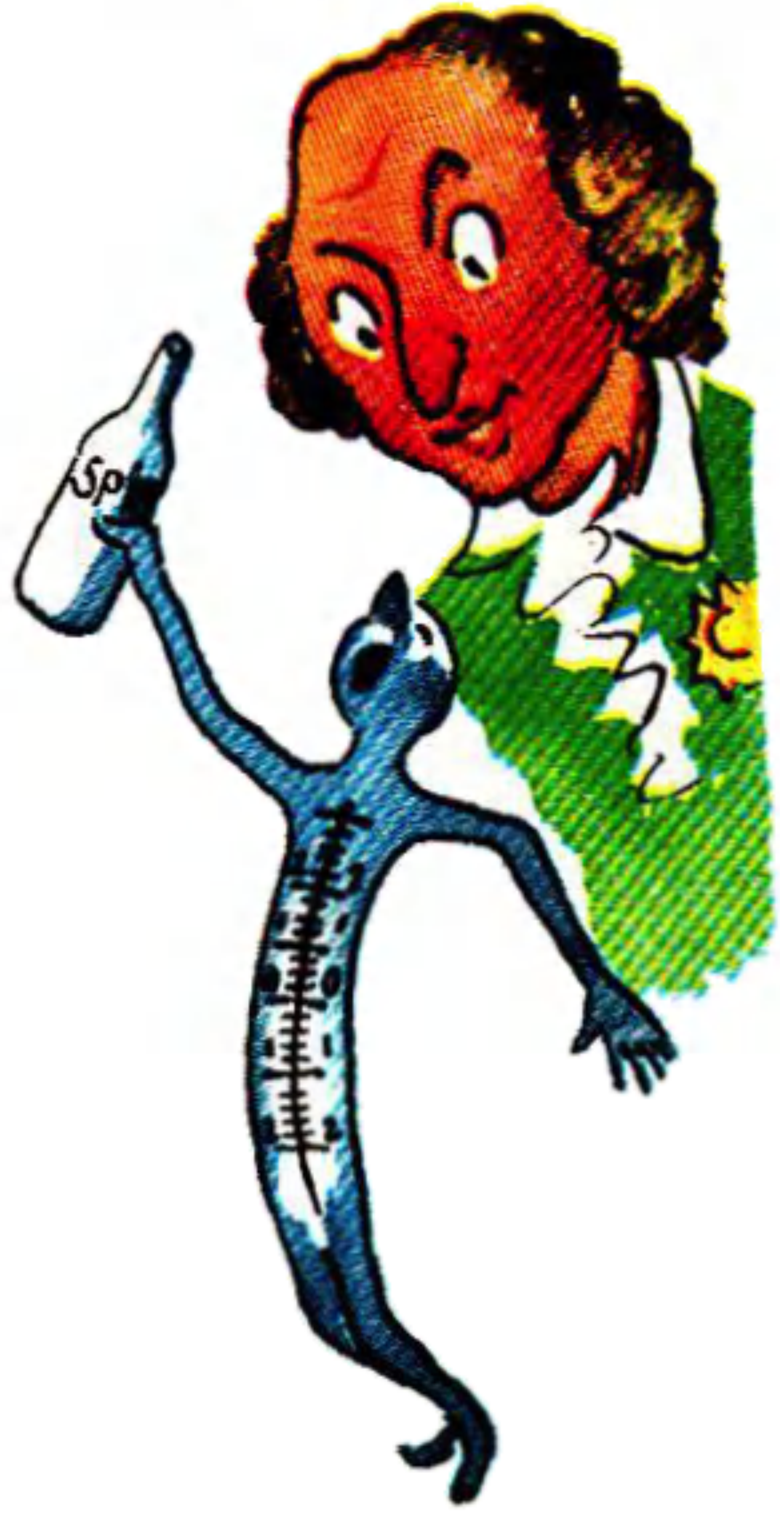

ने एक पैमाने वाला पारद थर्मामीटर बनाया जो आज इंगलैंड तथा संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित है।

आज पारद थर्मामीटरों के उपयोग विविध हैं। थर्मामीटर की बनावट उसके उपयोग पर निर्भर करती है। उदाहरणतया, कैपिलरी, जिसमें पारद भरा होता है, का व्यास थर्मामीटर के उपयोग के हिसाब से रखा जाता है। डाक्टरी थर्मामीटर की कैपिलरी सबसे पतली होती है। इसका व्यास केवल 0.04 मिलीमीटर होता है। इतने पतले पारद स्तम्भ को नंगी आंखों से देखना असंभव है। इस परेशानी से बचने के लिये कैपिलरी की आकृति एक त्रिफलकीय आवर्धक प्रिज्म जैसी रखी जाती है तथा इसकी पिछली दीवार पर एक स्क्रीन बना दी जाती है – वहां सफेद एनैमल की एक रेखा खींच देते हैं।

पारद स्तम्भ तब तक नहीं गिरना चाहिये जब तक कि उसे हिलाया नहीं जाये। इसलिये कैपिलरी में किसी न किसी जगह पर 'ग्रीवा' जरूर होनी चाहिये। परंतु त्रिफलकीय कैपिलरी पहले से ही बहुत पतली होती थी, उसे और पतली नहीं किया जा सकता। इस समस्या का एक दूसरा हल ढूंढ़ा गया है। कैपिलरी के निचले सिरे के साथ एक बेलनाकार ट्यूब जोड़ दी जाती है।

थर्मामीटरों में इस्तेमाल होने वाला पारद अतिशुद्ध होना चाहिये क्योंकि जरा सी भी अशुद्धि तापमान में फर्क पैदा कर सकती है। इसी कारण ऐसे पारद का विशेष विवेचन किया जाता है; उसे धोकर आसवित करते हैं और इसके बाद ही कैपिलरी में भरते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि भंगुर होते हुए भी कांच थर्मामीटरों के निर्माण के लिये सबसे बेहतर पदार्थ है। उदाहरणतया,

पारदर्शक प्लास्टिक इस काम के लिये बिल्कुल अनुपयुक्त है क्योंकि यह आक्सीजन को रोक नहीं पाती है जो पारद के लिये विनाशकारी है।

कैपिलरी में पारद भरना एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आपरेशन होता है: कैपिलरी में वायु बिल्कुल नहीं घुसनी चाहिये। पहले, जब यह काम हाथों से किया जाता था, तब कारीगरों को पारद से भरी कैपिलरी के दोनों सिरों को बारी-बारी से कई-कई हफ्ते गर्म करना पड़ता था जिससे कि उसके अंदर से वायु के बुलबुले निकल जायें। आज यह काम बड़ी शीघ्रता तथा सफाई से मशीनें करती हैं।

"काम" की इजाजत मिलने से पहले थर्मामीटरों का कई बार ध्यानपूर्वक परीक्षण किया जाता है। दुर्भाग्यवश इनमें से कुछ का अंत दुखदायी होता है, जो "त्रुटि-पूर्ण" होते हैं, इन बेचारों का जीवन यहीं खत्म हो जाता है। इन्हें कूड़े की टोकरी में फेंक दिया जाता है। परंतु जिन थर्मामीटरों ने कठिन परीक्षा पास कर ली है, जिन्हें उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र मिल गया है, जिन पर फैक्टरी की मोहर लग गयी है, उनकी परिशुद्धता की 100% गारंटी होती है। काँच की कैपिलरी में बंद पारद की बूंद बड़ी वफादारी के साथ विज्ञान, उद्योग, कृषि तथा चिकित्सा जगत की सेवा करती रहेगी।

पारद के उत्पादन का इतिहास सदियों पुराना है। किसी जमाने में पारद अयस्क को मिट्टी के बर्तनों में भर्जित किया जाता था। इसके परिणामस्वरूप प्राप्त पारद वाष्पों को काटे पेड़ों की ताजी पत्तियों पर इकट्ठा किया जाता था। ये पेड़ ईंटों के विशेष गढ़ों में लगाये जाते थे। आज फैक्टरियों में पारद का उत्पादन स्वचलित मशीनों से होता है जो बिना रुके यह काम करती रहती हैं। आपरेटर को सिर्फ एक बटन दबाना होता है और टनों पारद की सान्द्रता एक विशाल विद्युत भट्टी के हापर में जमा हो जाता है। यहां कई सौ डिग्री तापमान पर पारद वाष्पित होने लगता है। इन वाष्पों के प्रशीतन से प्राप्त पारद विशेष टैंकों में भर लिया जाता है।

इसके बाद धातु को अंतिम बार परिशुद्ध

किया जाता है और स्टील पात्रों में भर दिया जाता है। हर पात्र में 35 किलोग्राम पारद आता है। विशेष रूप से शुद्ध पारद पोर्सिलेन पात्रों में रखा जाता है (हर पात्र में 5 किलोग्राम)। इन्हीं पात्रों में पारद स्टोरों में रखा जाता है।

"रजत जल" की जिंदगी का दौर यहीं से शुरू होता है।

सर्वविदित है कि रोम की रक्षा हंसों ने की थी। चौकस हंसों ने ठीक वक्त पर दुश्मन की फौजों को शहर की ओर बढ़ते देख लिया और उसी वक्त शोर मचाना शुरू कर दिया। इस बार रोमनवासियों की जान बच गयी।

परंतु रोमन साम्राज्य का पतन होना ही था। इस शक्तिशाली राज्य के पतन का क्या कारण था? रोम को किसने बरबाद किया?

कुछ अमरीकी तथा कनैडियन वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि रोम का पतन लेड का जहर फैलने के कारण हुआ था। उनके विचारानुसार अभिजत वर्ग के लोग लेड के बर्तनों (बोतलों, जामों, प्यालों आदि) का इस्तेमाल करते थे तथा साजसिंगार के समान में भी लेड के रंगों का प्रयोग करते थे जिसके फलस्वरूप उन लोगों के शरीर में जहर भर जाता था। वे मौत का शिकार हो जाते थे।

विदित है कि हमारे युग के आरंभ में अर्थात् रोमन साम्राज्य के पतन से पहले

कई रोमन सम्राट विभिन्न मनोविज्ञानी रोगों से पीड़ित थे। कुलीन वर्ग के लोगों की औसत आयु 25 साल से ज्यादा नहीं होती थी। निचली श्रेणियों के लोग लेड के जहर का शिकार कम होते थे क्योंकि उनके पास न तो इतने कीमती बर्तन होते थे और न ही वे साजसिंगार करते थे। परंतु पानी वे उसी प्रसिद्ध टैंक से लेते थे जिसका निर्माण रोम के गुलामों ने किया था और यह सब जानते हैं कि जिन पाइपों के रास्ते पानी शहर में पहुंच रहा था वे लेड के बने थे।

लोग मर रहे थे, साम्राज्य नष्ट हो रहा था। परंतु यह कहना गलत होगा कि सारा दोष लेड का था। साम्राज्य के पतन के और भी कई कारण थे – राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक। परंतु फिर भी अमरीकी वैज्ञानिकों की बातों में कुछ न कुछ सच्चाई जरूर है: पुरातत्वीय कार्यों के दौरान प्राचीन रोमवासियों के जो अस्थिपिंजर मिले हैं, उनके अंदर लेड की मात्रा बहुत अधिक है।

इस तत्त्व के सभी विलयशील यौगिक जहरीले होते हैं। यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्राचीन रोम के लोग जो जल पीते थे उसमें कार्बन डाइआक्साइड बहुत ज्यादा था। लेड के साथ प्रतिक्रिया करके कार्बन डाइआक्साइड लेड कार्बोनेट बनाता है जो जल में बड़ी सरलता से घुल जाता है। जिस्म के अंदर पहुंचने पर लेड की अल्प से अल्प मात्रा वहां रुक जाती है तथा धीरे-धीरे अस्थियों में कैल्सियम की जगह लेती जाती है जिसके परिणामस्वरूप चिरकालिक रोग पैदा हो जाते हैं।

लेड ने केवल रोम का सत्यानाश ही नहीं किया; इसने और भी बहुत सारे पाप किये

हैं। धर्माधिकरण के बोलबाले के दिनों जेसूइट लोग गर्म लेड से अपने विरोधियों को यातना देते थे।

प्राचीन काल में भारत में अगर कोई शुद्र जान बूझकर या अनजाने में पंडितों की वाणी सुनता हुआ पकड़ा जाता था तो उसके कानों में पिघला लेड भरा दिया जाता था। आम जनता को काबू में रखने के लिये पुराने जमाने से बाबिलोन, मिश्र तथा भारत के पुजारी अपनी पुस्तकें बहुत छिपा कर रखते थे।

वीनस में मध्ययुग की एक जेल आज तक खड़ी हुई है जिसमें सरकारी कैदियों को रखा जाता था। यह जेल सांसों के पुल द्वारा वास्तुकला के अद्वितीय नमूने – ड्यूक डोज के महल के साथ जुड़ी हुई थी। जेल की बरसाती में खतरनाक अपराधियों के लिये विशेष कोठरियां थीं जिनकी छतें लेड की बनी थीं। गर्मियों के दिनों में कैदियों का गर्मी से दम घुटने लगता था और जाड़ों में ठंड से जान निकल जाती थी और सांसों के पुल पर उनकी आहें सुनाई देती थीं।

जब से अग्निशस्त्रों का आविष्कार हुआ है तब से बंदूकों तथा पिस्तोलों की गोलियां लेड से बन रही हैं। दो गुटों के झगड़े में लेड एक शक्तिशाली तर्क बन गया है। कई बड़ी लड़ाइयों तथा छोटी-मोटी डकैतियों में लेड ने निर्णायक भूमिका निभायी है।

उक्त बातों से ऐसा लगता है जैसेकि लेड केवल गंदे काम ही करता आ रहा है। अतः मानवजाति को इस बात की चिंता होनी चाहिये कि इस दुष्ट धातु से, जिसने मनुष्य को इतने दुख पहुंचाये हैं, कैसे पीछा छुड़ाया जाये। परंतु वास्तविकता में ऐसी कोई बात नहीं है। मनुष्य के मन में ऐसी कोई इच्छा नहीं है, उल्टा वह इसका उत्पादन बढ़ाता जा रहा है। सभी अलौह धातुओं में केवल ऐलुमिनियम, ताम्र तथा जिंक का उत्पादन लेड के उत्पादन से अधिक है। अब सवाल यह उठता है कि यह धातु ऐसी कौनसी नेकी करता है?

इतिहास में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जब राष्ट्रों ने अपनी स्वाधीनता के लिये न्यायोचित संघर्ष किये और इस कार्य में लेड ने उनकी सहायता की। देश की सीमाएं सुरक्षित रखने के लिये बारूद के साथ-साथ लेड का होना भी जरूरी है। इसी कारणवश इस धातु का सैनिक महत्त्व बहुत ही ज्यादा है।

जब तकनीक के विकास से मोटर-कारों, पनडुब्बियों, हवाई जहाजों का निर्माण शुरू हो गया, रसायनिक तथा विद्युतइंजीनियरी उद्योग विकसित होने लगे, तब लेड के उत्पादन में प्रभावशाली वृद्धि आ गयी।

1859 में फ्रेंच भौतिकविद हैस्टन प्लांटे ने विद्युत ऊर्जा के रसायनिक स्रोत – लेड बैटरी का आविष्कार किया। तब से 100 से ज्यादा साल के अर्से के दौरान विश्व में ऐसी करोड़ों बैटरियां बनी हैं। इनकी बनावट साधारण जरूर है परंतु ऊर्जा संचयन का ये भरोसेदार स्रोत हैं। विश्व में लेड के कुल उत्पादन का तीसरा भाग बैटरियों के निर्माण में व्यय होता है। कुछ साल पहले इंगलैंड के गोताखोरों को, जो इस शताब्दी के आरंभ में डूबी एक पनडुब्बी को ऊपर लाने का प्रयास कर रहे थे, समुद्र में एक लेड बैटरी मिली। उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि 80 साल तक पानी में भीगी रहने पर भी इस बैटरी में विद्युत धारा उप-स्थित थी। अमरीकी इंजीनियरों ने एक नयी योजना बनायी है: मिशीगन राज्य में

छोटी-छोटी लेड बैटरियों को जोड़कर एक अतिविशाल बैटरी लगाने का विचार है जो व्यस्ततम काल में सारे मिशीगन को ऊर्जा देगी। इस बैटरी का वजन 3000 टन होगा तथा इसे उस समय आवेशित किया जाया करेगा जब विद्युत की खपत निम्नतम होगी।

लेड का मुख्य उपभोक्ता इंधन उद्योग है। पेट्रोल वाले इंजनों में दहन से पूर्व गैसोलीन संपीडित की जाती है। संपीडन जितना उच्च होता है इंजन उतनी ज्यादा किफायती से काम करता है। परंतु बहुत उच्च संपीडन पर गैसोलीन बिना दहन के विस्फोटित हो जाता है। स्वाभाविक है कि इस तरह की मनमर्जी की अनुमति नहीं दी जा सकती। टेट्राएथिल लेड ने यह समस्या हल कर दी। पेट्रोल में इसकी थोड़ी सी मात्रा मिला देने से (1 लीटर में 1 ग्राम से भी कम) विस्फोट की संभावना खत्म हो जाती है तथा इंधन का दहन संतुलित रूप से होता है। विशेष बात यह है कि दहन तभी होता है जब इसकी आवश्यकता होती है।

चूंकि टेट्राएथिल लेड बहुत विषाक्त होता है अतः एथिलयुक्त पेट्रोल में गुलाबी, हरा, नरंगी, लाल तथा अन्य रंग (पेट्रोल की आक्टेन संख्यानुसार) मिला दिये जाते हैं जिससे इस पेट्रोल की पहचान सरल हो जाये। बड़े अफसोस की बात यह है कि मोटर-कारों के इंजनों से निष्कासित गैसों में विषाक्त पदार्थों की मात्रा बहुत अधिक होती है। कैलिफोर्निया तकनीकी संस्थान के वैज्ञानिकों की गणनानुसार एक साल के अंदर उत्तरी अर्द्धगोलार्ध के समुद्रों तथा महासागरों में लगभग 50 हजार टन लेड गिरता है जो मुख्यतः पेट्रोल में मिलाये लेड का अंश होता है। इन वैज्ञानिकों के कथनानुसार विश्व के विशाल नगरों का आकाश लेड के बादलों से ढका रहता है। आपने देख लिया कि 1 लीटर पेट्रोल में 1 ग्राम लेड मिलाने का क्या नतीजा होता है। मोटर-कारों की निष्कासित गैसों से निकला लेड आर्कटिक के बर्फीली इलाकों तक में मिला है। विशेषज्ञ लोग बहुत दिनों से टेट्राएथिल लेड का स्थानापन्न ढूंढ़ रहे हैं और इस काम में उन्हें कुछ सफलता भी मिली है।

ग्रीनलैंड के कणहिम के अध्ययन से बड़े महत्त्वपूर्ण परिणाम मिले हैं। वैज्ञानिकों ने विभिन्न ऐतिहासिक कालों के कणहिम के नमूनों का विश्लेषण किया। उन्हें ईसा से आठ शताब्दी पूर्व के नमूनों में प्रति किलोग्राम कणहिम में 0.000 000 4 मिलीग्राम लेड मिला (यह राशि प्राकृतिक संदूषण का मानक स्वीकार की गयी है जिसका मुख्य कारण ज्वालामुखियों का उदगार होता है)। अठारहवीं शताब्दी के मध्य के नमूनों में (औद्योगिक क्रांति का आरंभिक काल) लेड की मात्रा 25 गुना अधिक मिली। इसके बाद के नमूनों में इस तत्त्व की मात्रा हद से ज्यादा निकली – मानक से 500 गुना अधिक।

यूरोप के पहाड़ों की बर्फ में लेड की मात्रा और भी ज्यादा है। उदाहरण के लिये, तात्र पहाड़ों के कणहिम में पिछले 100 सालों में इस तत्त्व की मात्रा 15 गुना बढ़ गयी है। अगर इस क्षेत्र के संदूषण की प्राकृतिक संदूषण के मानक से तुलना की जाये तो पता चलता है कि इन पहाड़ों का जो इलाका औद्योगिक क्षेत्रों के पास है वहां के कणहिम में इस धातु की मात्रा लगभग 2 लाख गुना अधिक है।

कुछ समय पहले स्वीडन के वैज्ञानिकों ने जब स्टाकहोल्म के एक केंद्रीय पार्क में खड़े कई शताब्दियों पुराने वंजुल वृक्षों का अध्ययन किया तो उन्हें यह पता चला कि इन वृक्षों में लेड की मात्रा मोटर-कारों की संख्या की वृद्धि के अनुसार बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है। उदाहरण के लिये, अगर पिछली शताब्दी में इन ' वृक्षों में लेड की मात्रा केवल 0.000001% थी तो बीसवीं शताब्दी के मध्य में इनका लेड भंडार दुगुना हो गया तथा इस शताब्दी के सातवें दशक के अंत तक लगभग 10 गुना बढ़ गया। विशेष बात यह थी कि वृक्षों के उस भाग में लेड अन्य भागों की अपेक्षाकृत ज्यादा था जिसका रुख सड़क की ओर था। स्पष्ट था कि यह निष्कासित गैसों की करामात थी।

जापान के द्वीप अकीनावा में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी "एक्स्पो-75" में एक निराली चीज दर्शकों के आकर्षण का केंद्र वनी हुई थी – यह 30 मीटर ऊंचा बर्फ का एक खंभा था जिसे 3000 साल पुराने एक हिमशैल से काटा गया था। जापानी, अमरीकी तथा सोवियत वैज्ञानिक इस हिमशैल के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पिछले कुछ दशकों में इस हिमशैल को लेड की काफी मात्रा को "शरण" देनी पड़ी है – यह मोटर उद्योग के तीव्र विकास का परिणाम ही तो है।

आधुनिक तकनीक के क्षेत्र में लेड को और भी कई काम मिले हुए हैं। जैसे, विद्युत इंजीनियरी में यह धातु केबिलों के विश्वसनीय तथा पर्याप्त रूप से प्रत्यास्थ आवरण की भूमिका निभा रही है। इस धातु की काफी मात्रा वेल्डिंग के काम में प्रयुक्त होती है। रसायनिक कारखानों तथा अलौह धातु उद्योग में संक्षारण से सुरक्षित रखने के लिये कई चैंबर लेड से बनाये जाते हैं। उदाहरण के लिये, सल्फ्यूरिक अम्ल के उत्पादन में चैम्बरों की आंतरिक सतह लेड की बनायी जाती है, विभिन्न पाइप, अम्लोपचार बाथ तथा विद्युतअपघटक आदि भी लेड के बने होते हैं। कई मशीनों में लेड-ऐलायों के बने बाल-बेयरिंग इस्तेमाल किये जाते हैं।

लेड के एक ऐलाय का हम यहां सविस्तार वर्णन करना चाहेंगे। कई शताब्दियों से मुद्रण धातु के निर्माण में टिन तथा ऐंटिमनी के साथ-साथ लेड भी इस्तेमाल किया जा रहा है। इस ऐलाय के बने अक्षरों से पुस्तकों, अखबारों तथा पत्रिकाओं की कम्पोजिंग की जाती है। जर्मन बुद्धिजीवी जार्ज क्रिस्टोफ लिख्टेनवर्ग ने लेड की इस भूमिका की प्रशंसा एक बड़े निराले ढंग से निम्न शब्दों में की: "दुनिया को बदलने में लेड की भूमिका स्वर्ण से अधिक रही है। यहां मेरा अभिप्राय बंदूक की गोली के लेड से नहीं बल्कि कम्पोजिंग के लेड से है"।

यह माना जाता है कि महान जर्मन अनुसंधानकर्ता योगान गुतेनबर्ग पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मुद्रण अक्षरों के निर्माण में लेड इस्तेमाल किया। परंतु सच यह है कि लेड उनसे पहले भी मुद्रण कार्यों में इस्तेमाल होता रहा है। कुछ समय पहले सोवियत पुरातत्वज्ञों को काले सागर के एक द्वीप बेरेजान पर लेड की पतली चादर पर अंकित एक यूनानी पत्र मिला है। सोवियत संघ में बुग नदी के तट पर प्राचीन शहर ओल्वी के खंडहरों की खुदाई के दौरान भी एक ऐसा ही पत्र मिला है। पत्र लिखने का यह तरीका प्राचीन यूनान में बहुत प्रचलित था परंतु आधुनिक वैज्ञानिकों को

ऐसे केवल 5 पत्र मिले हैं। ये धात्विक पत्र इतने विरल क्यों हैं? बात यह है कि जिस किसी को भी ऐसा पत्र मिलता था वह पढ़ने के बाद उसके लेड से भारों के सेट, साहुल आदि बनवा लेता था या छतों की मरम्मत तथा अन्य कामों में लगवा देता था। उसे आने वाली पीढ़ियों की रुचि की तनिक भी चिंता नहीं थी।

वेरेजान में मिला पत्र ईसा से छः शताब्दी पूर्व के काल का बताया जाता है। इसमें अहोलोदोर नामक व्यक्ति अनाक्सागोर को गुलामों के कारण झगड़े की सूचना दे रहा है। दूसरे पत्र में, जो ईसा से चार शताब्दी पूर्व लिखा गया है, वातीकोन नामक व्यक्ति अपने मित्र दीफिल को मुकदमा हारने की बुरी खबर दे रहा है। इस प्रकार ढ़ाई हजार साल बाद इतिहासकारों को लेड की सहायता से प्राचीन यूनानी उपनिवेशकों के जीवन तथा सामाजिक संबंधों के कुछ पहलुओं की जानकारी मिली है। उस जमाने में काले सागर के क्षेत्र यूनानियों के अधिकार में थे।

हमारे जमाने में लेड के उपयोग विविध हैं। कई शताब्दियों से दुनिया क्रिस्टल से परिचित है – कांच की यह किस्म ओस की बूंद की तरह पारदर्शक होती है जिसके बजाने पर मधुर ध्वनि निकलती है। क्रिस्टल के फानूसों का प्रकाश अतिलुभावना होता है। क्रिस्टल का जन्मदाता लेड ही तो है। सत्त-रहवीं शताब्दी के आरंभ में इंगलैंड के कांच के कारीगर भट्टियों में लकड़ी की जगह कोयला जलाने लगे। इस परिवर्तन से सारे काम बढ़िया तरह से हो रहे थे परंतु एक कमी आ गयी थी। वह यह थी कि कोयलों से धुआं बहुत निकलता था। धुएं के कण कांच में मिल जाते थे जिससे कांच धुंधला हो जाता था। इस परेशानी से छुटकारा पाने के लिये कारीगरों ने कांच को बंद बर्तनों में उबालना शुरू कर दिया परंतु इससे समस्या पूर्णतया हल नहीं हुई क्योंकि कांच अक्सर कच्चा रह जाता था। तब 1635 में कारीगरों ने कांच में लेड मि-लाने का फैसला किया। उन्होंने इस मिश्रण के प्रगलन का ताप भी घटा दिया। उनके इस प्रयोग से जादूई परिणाम प्राप्त हुआ – नये कांच का चमक हीरे की तरह चमक रहा था तथा इसे बजाने पर अति मधुर ध्वनि निकल रही थी। इस कांच तथा सुंदर प्राकृतिक पहाड़ी क्रिस्टल में काफी समानता होने के कारण इसका नाम भी क्रिस्टल रख दिया गया। इस प्रकार लेड की मेहरबानी से लोगों को एक अतिसुंदर पदार्थ मिला जिससे अद्वितीय चीजें बनायी जाती हैं।

परंत क्रिस्टल के एक शौकीन को लेड ने काफी हानि पहुंचायी। एक बार एक आग दुर्घटना की जांच हो रही थी। आग से सारा घर स्वाह हो गया था परंतु भाग्य-वश मकान के मालिक ने घर का बीमा करवा रखा था जिसके कारण उसे बीमा कंपनी से भारी धनराशि मिलती थी। उसके कथनानुसार घर के अंदर अन्य चीजों के अलावा क्रिस्टल की भी बहुत सारी कीमती चीजें थीं जिन्हें आग ने कांच के पिंडों में परिवर्तित कर दिया था। अधिकारियों को उस व्यक्ति की बात पर विश्वास नहीं आ रहा था, अतः उन्होंने कांच के टुकड़े विश्लेषण के लिये प्रयोगशाला भेज दिये। प्रतिदीप्ति विश्लेषण से यह पता चला कि उस कांच में लेड की मात्रा बहुत कम थी

जबकि क्रिस्टल में इस तत्त्व की मात्रा काफी उच्च होता है। अधिकारी तुरंत समझ गये कि मकान में क्रिस्टल की जगह कांच रखा हुआ था तथा आग लगी नहीं बल्कि लगायी गयी थी। छानबीन से यह पता चला कि उस आदमी ने घर से सारी कीमती चीजें निकाल कर क्रिस्टल की जगह कांच की चीजें रख दी थीं और फिर घर को आग लगा दी थी। उसे बीमा कंपनी से मुआवजा मिलने की पूरी उम्मीद थी परंतु लेड ने सारी योजना फेल कर दी।

लेड के पेंट बहुत पुराने जमाने से इस्तेमाल होते आ रहे हैं। उदाहरणतया, 3000 साल पहले भी लोग सफेद लेड के निर्माण की विधि से परिचित थे। उन दिनों इसका मुख्य निर्यातक रोड्स द्वीप था। यहां इस रंग के निर्माण की विधि परिष्कृत तो नहीं थी परंतु विश्वसनीय जरूर थी। एक ड्रम में सिरका भरके ऊपर से झाड़ियां रख देते थे फिर लेड के टुकड़े रख कर ड्रम को कस कर बंद कर देते थे। कुछ दिनों बाद जब ड्रम खोला जाता था तो लेड के ऊपर सफेद रंग जमा मिलता था। इस रंग को खुरच कर धातु से अलग कर लेते थे और फिर डिब्बों में भरकर दूसरे देशों को बेच देते थे।

एक बार एथेन्स के बंदरगाह पिरेस पर एक जहाज खड़ा था जिस पर सफेद लेड लदा हुआ था। इस जहाज में अचानक आग लग गयी। उस वक्त निकीस नामक एक चित्रकार बंदरगाह आया हुआ था। उन दिनों रंग बहुत कीमती होते थे तथा मिलते भी बड़ी मुश्किल से थे। रंग का एकाध ड्रम बचाने की आशा से निकीस जलते जहाज पर चढ़ गया। उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि जले ड्रमों में सफेद लेड की जगह गहरे लाल रंग का एक गाढ़ा पदार्थ भरा हुआ था। एक ड्रम उठा कर वह अपने स्टुडियो की ओर भागा। ड्रम में रखा पदार्थ बहुत ही बेहतरीन रंग का निकला। आगे चलकर इसका नाम लाल लेड रख दिया गया तथा इसे सफेद लेड के भर्जन से प्राप्त किया जाने लगा।

सब जानते हैं कि लेड रंगों से रंगे चित्र तथा लकड़ी के तख्तों पर बनी देवताओं की तस्वीरें वक्त के अनुसार फीकी पड़ती

जाती हैं। इसका कारण यह है कि वायु में उपस्थित हाइड्रोजन सल्फाइड के प्रभाव से चित्रों पर धूंधले रंग का लेड सल्फाइड जम जाता है। परंतु अगर चित्रों की हाइड्रोजन पर आक्साइड के तनु विलयन या सिरके से सफाई कर दी जाये तो उनके रंग फिर से चमकने लगते हैं। इस जानकारी के बल पर चर्च के लोग सदियों से आस्तिकों को बेवकूफ बनाते आ रहे हैं। वे इस तरह देवताओं की तस्वीरों को "जीवित" कर देते थे। प्रशांत महासागर के दक्षिणी अमरीकी तट (पेरू, जहां के जल में कई स्तरों पर हाइड्रोजन सल्फाइड बहुत अधिक है) की यात्रा कर रहे यात्रियों को यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि कल शाम तक जो जहाज बर्फ जैसे सफेद रंग का था, सुबह एकदम काले रंग का हो जाता हैं। जहाज के नाविक इसका रहस्य जानते हैं। वे इसे 'पेरू के चित्रकार' की करामात बता कर यात्रियों का मजाक उड़ाते हैं। यह लेड का चमत्कार है।

चिकित्सा कार्यों में लेड के यौगिक संकोचक, रोगाणुरोधक तथा दर्दनाशक दवा के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। उदाहरणतया, लेड ऐसीटेट "लेड लोशन" के नाम से प्रसिद्ध है। मीठे स्वाद के कारण इसे "लेड शुगर" भी कहते हैं। परंतु यह न भूलें कि "लेड शुगर" शरीर के लिये बहुत जहरीली है।

यही कारण है कि जिन वर्कशापों तथा प्रयोगशालाओं में आदमी का लेड या इसके यौगिकों के साथ वास्ता पड़ता है वहां बहुत ज्यादा एहतियाती बरती जाती है। स्वास्थ्य चिकित्सक तथा श्रम-रक्षा इंजीनियर दिन-रात इस बात का खयाल रखते हैं कि वायु में लेड की मात्रा अनुमेय स्तर – 0.00001 मिलीग्राम प्रति लीटर से ऊपर नहीं पहुंचे। अगर कुछ दिनों पहले तक छापेखानों तथा लेड-प्रगलन कारखानों के मजदूरों के लिये लेड के जहर की बीमारी एक पेशावर बीमारी समझी जाती थी तो आज तकनीक के विकास, पर्याप्त वायुसंचार तथा गर्द निष्कासन ने इस बीमारी का नामोनिशान मिटा दिया है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जहर का काम करने के साथ-साथ लेड मनुष्य की रक्षा भी करता है।

धात्विक लेड विघटनाभिक तथा एक्स-किरणों के लिये सबसे अधिक अपारदर्शी पदार्थ सिद्ध हुआ है। अगर आप एक्सरे तकनीशियन के दस्ताने या एप्रन उठा कर देखें तो उनके भारीपन से आप जरूर आश्चर्यचकित होंगे। बात यह है कि रबड़ की बनी इन चीजों के अंदर लेड भरा होता है जो शरीर की अतिविनाशक एक्सरे किरणों से रक्षा करता है। कोबाल्ट गनों में, जो घातक अर्बुदों के उपचार में प्रयुक्त की जाती हैं, इस्तेमाल होने वाला विघटनाभिक कोबाल्ट का कण लेड के एक बल्ब में बड़ी सुरक्षा के साथ छिपा कर रखा जाता है।

लेड आक्साइड युक्त कांच भी विघटनाभिक विकिरण से सुरक्षित रखता है। ऐसे कांच द्वारा यांत्रिक हाथों – परिचालकों की सहायता से विघटनाभिक पदार्थों की कार्यगति पर नियंत्रण रखा जा सकता है। बुखारेस्ट के परमाणु केंद्र में लेडयुक्त कांच का बना एक प्रदीपक लगा हुआ है जिसकी मोटाई 1 मीटर तथा वजन 1.5 टन से ऊपर है।

भू-पर्पटी में लेड की मात्रा काफी कम है –

ऐलुमिनियम तथा लोहे की मात्रा से हजारों गुना कम है। परंतु फिर भी मनुष्य इस तत्त्व को बहुत प्राचीन काल से जानता है – ईसा से लगभग 6-7 हजार वर्ष पूर्व से। अन्य कई धातुओं के मुकाबले लेड का गलनांक काफी निम्न होता है (327°C) तथा प्रकृति में यह प्राय: अस्थायी रसायनिक यौगिकों के रूप में मिलता है। यही कारण है कि कई बार यह धातु संयोगवश मिलती है। जैसें, एक बार अमरीका में जंगल में आग लगने से लेड के विशाल निक्षेप का पता चला ; वृक्षों की राख के नीचे लेड की बड़ी-बड़ी सिल्लियां मिलीं। इस धातु के अयस्क पेड़ों की जड़ों के नीचे छिपे हुए थे। आग ने लेड को इन अयस्कों से अलग कर दिया था। प्रागैतिहासिक काल में हमारे ग्रह के वासियों को भी पहला लेड शायद इसी तरह से मिला था।

ब्रिटिश संग्रहालय में रखी मिश्र से लायी लेड की एक प्रतिमा सबसे प्राचीन मानी जाती है। इसे 6000 साल से भी ज्यादा पुराना बताया जाता है। स्पेन में लेड के अतिप्राचीन कूड़ों के ढेर आज तक सुरक्षित हैं – यहां ईसा से 3000 वर्ष पूर्व फिनीशियाई लोगों ने रिओ-तिन्तो के लेड-रजत निक्षेप का विकास किया था। असीरी शहर आशूरा के खंडशहरों की खुदाई के दौरान लेड का एक विशाल ढेला मिला जिसका वजन 400 किलोग्राम के लगभग था। पुरातत्वज्ञों के कथनानुसार यह ढेला ईसा से 1300 वर्ष पुराने जमाने का है।

सभी आम धातुओं में सबसे नर्म धातु लेड होती है। जरा सा नाखून लगाने से ही इस धातु पर खरोंच आ जाती है। सुप्रसिद्ध जर्मन जंतुविज्ञानी एल्फ्रेड एडमुंड ब्रेम

ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक "जंतुओं का जीवन" में एक मजेदार तथ्य दिया है: उनके कथनानुसार लेड के बक्से में बंद बर्रों ने आजाद होने की कोशिश में 43 मिलीमीटर मोटी लेड की दीवार में सूराख कर दिये। कुछ बर्रों ने तो शहर को पानी देने वाली लेड की बनी मोटी पाइप-लाइनों तक में सूराख कर दिये। बर्रों की इस विशेषता का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिकों ने निम्न प्रयोग किया: उन्होंने बर्रों को कांच की एक परखनली में डाल कर इस परखनली का मुंह लेड की पत्ती से बंद कर दिया। जाहिर था कि कांच में सूराख करना बर्रों के बस से बाहर था परंतु धातु पर विजय प्राप्त करना संभव लग रहा था। उन्होंने धीरे-धीरे परंतु विश्वासपूर्वक लेड में सूराख करना शुरू कर दिया। जंतुविज्ञानी इन कीटों के सामूहिक कार्य को देख कर आश्चर्यचकित हो रहे थे: सभी कैदी बारी-बारी से एक ही जगह पर सूराख कर रहे थे जैसेकि वे यह समझ

रहे थे कि उन सब की आजादी के लिये एक सूराख काफी रहेगा। अपना उद्देश्य प्राप्त करने में उन्हें केवल छः घंटे लगे – अर्थात् आफिस-टाइम से भी कम समय। हां, यह बात जरूर थी कि उन्होंने इस दौरान विश्राम बिल्कुल नहीं किया था।

नर्म होने के कारण लेड, ताम्र, कांसे तथा लोहे का मुकाबला नहीं कर सका और काम-काज के औज़ारों के निर्माण के अनुपयुक्त रहा। परंतु जल की सप्लाई के पाइपों तथा अन्य पुर्जों के निर्माण के लिये यह सुघट्य धातु बहुत उत्तम सिद्ध हुई। ऊपर हम रोम को जल सप्लाई करने वाले पाइपों का वर्णन कर ही चुके हैं। सेमीरामिदा के झूलते बागों की गिनती विश्व के सात अचंभों में की जाती है। इन बागों की सिंचाई असंख्य कूओं, पाइपों तथा अन्य जलीय संरचनाओं से की जाती थी। ये सारी चीजें लेड की ही तो बनी थीं। सत्तरहवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध में मास्को के क्रेमलिन की स्वीबलोव मीनार पर जल की एक टंकी बनायी गयी थी जिसके निर्माण में लेड की पत्तियाँ इस्तेमाल की गयी थीं। मास्को नदी का पानी इस टंकी में चढ़ाया जाता था और फिर यहां से लेड के पाइपों के रास्ते जल जार के हरम, बागों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण जगहों पर पहुंचाया जाता था। तब से इस मीनार को जल की टंकी कहा जाता है।

प्राचीन काल में लेड एक और महत्त्वपूर्ण कार्य करता था जिसका संबंध भी जल के साथ था। प्राचीन यूनानवासी जानते थे कि मोलस्कों, रैचेटों तथा अन्तर्जलीय दुनिया के अन्य वासियों को, जो समुद्री जहाजों के तले के साथ चिपकना बहुत पसंद करते थे, जहरीले लेड आक्साइड अच्छे नहीं लगते। इसी कारणवश वे लोग समुद्री जहाजों के निर्माण में बड़े शौक से लेड इस्तेमाल करते थे। "चिपकू" इन जहाजों से कोसों दूर भागते थे। इसके अलावा लेड जहाज के तले तथा कीलों को जंग से बचाये रखता था।

•

बीसवीं शताब्दी ने लेड को कई रोचक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य दिये हैं परंतु इसके साथ-साथ लेड के साथ काफी सख्ती भी बरती गयी है, खास तौर पर इसकी शुद्धता के साथ। सोवियत संघ में एक नयी विधि – अमलगम शोधन विधि विकसित की गयी है जिसके आधार पर विश्व में पहली बार

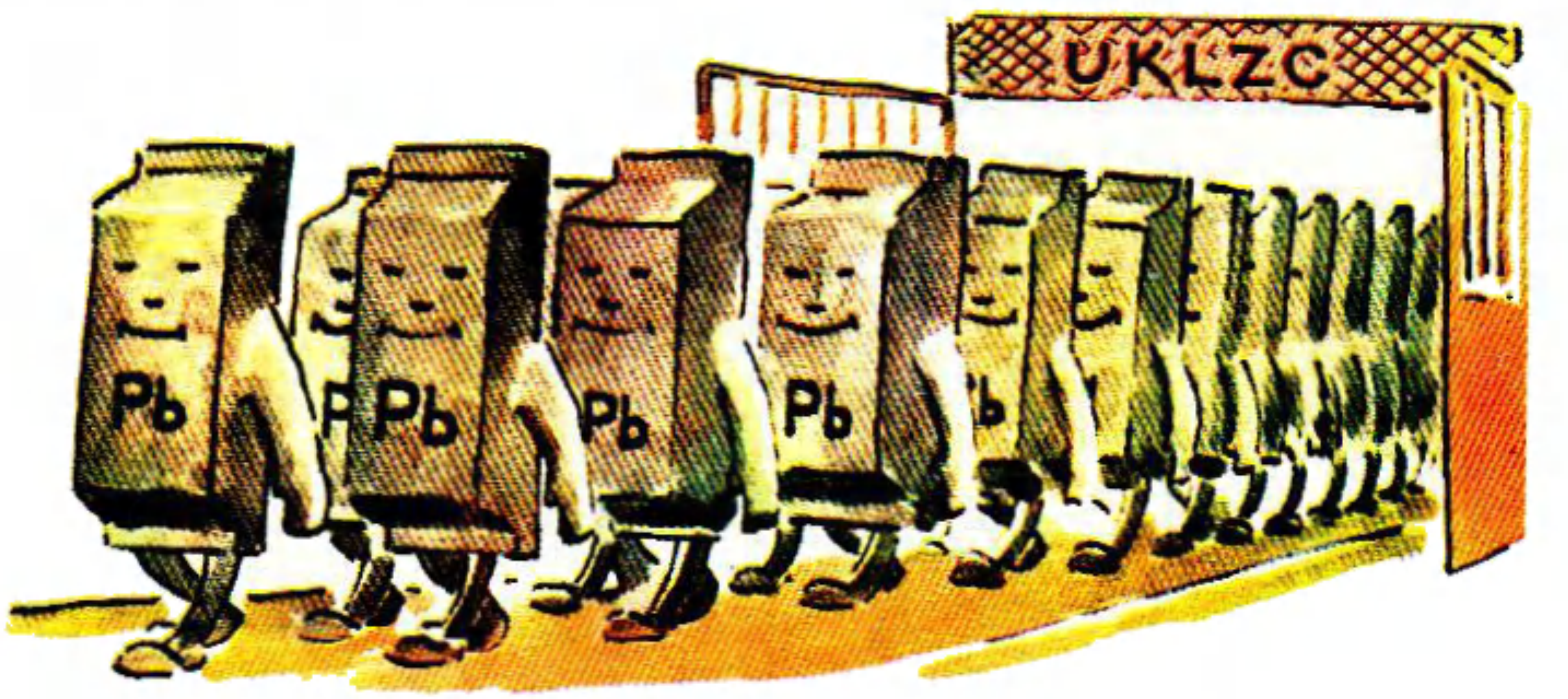

अतिशुद्ध लेड प्राप्त किया गया है। इस लेड में अशुद्धियों की मात्रा केवल 0.00001% है अर्थात् 1 टन लेड में 0.1 ग्राम से भी कम।

इन शब्दों के साथ लेड की कहानी समाप्त की जा सकती है परंतु पूरे अध्याय में लेड के नाम की कहीं भी चर्चा नहीं हुई है। रूसी भाषा में लेड को "स्विनेत्स" कहते हैं। यह शब्द शायद "स्विन्का" से निकला है। पुराने जमाने में रूस में लेड की सिल्ली को इस नाम से पुकारते थे (रूसी भाषा में "स्विन्या" सूअर को कहते हैं)। परंतु "स्विनेत्स" से पहले इस धातु के कई और नाम भी रहे हैं।

प्रसिद्ध सोवियत कवि और कहानीकार सामुइल मारशाक ने एक कहानी लिखी है जिसमें बिल्ली को पहले सूरज कहा, फिर घटा, इसके बाद वायु, फिर चूहा तथा अंत में फिर बिल्ली कहा। लेड के साथ भी ऐसा ही हुआ है।

अगर आप प्रसिद्ध रूसी शब्दविज्ञानी दाल का शब्दकोष देखेंगे तो आपको एक कहावत मिलेगी–"शब्द टिन होता है"। यहां लेखक का अभिप्राय धातु टिन से नहीं बल्कि लेड से है। यह कहावत तभी इस्तेमाल की जाती है जब सच्चे, भरोसेदार तथा मजबूत शब्द की बात कही जाती है। परंतु दाल को इस साजिश करने की क्या जरूरत थी? बेहतर यही रहता कि कहावत को इस तरह से लिखा जाता: "शब्द लेड होता है"। बात यह है कि पुराने जमाने में रूस में लेड को टिन कहते थे। वास्तविक टिन (धातु) का बाद में पता चला और शुरू में इसे लेड समझा जाता रहा (इन दोनों धातुओं में काफी समानता होती है)। परंतु जैसे ही मनुष्य को दोनों धातुओं के अंतर की बात पता चल गयी तब नयी धातु को तो पुराना नाम दे दिया गया और पुरानी धातु का नाम स्विनेत्स रख दिया गया। प्राचीन रोमवासी भी इन धातुओं का अंतर नहीं समझते थे। वे लेड को "काला प्लुम्बुम" तथा टिन को "सफेद प्लुम्बुम" कहते थे।

"पारिवारिक" संबंध लेड को एक और धातु "मालिब्डेनम" के साथ जोड़ते हैं। यूनानी भाषा में इस शब्द का अर्थ है–लेड। लगता है कि प्राचीन यूनान के लोग इन दोनों धातुओं के खनिजों–हौलेनाइट तथा मालिब्डेनाइट को एक ही चीज समझते थे। वे इन्हें "मालिब्डेनम" के नाम से पुकारते थे। परंतु कई शताब्दियों बाद जब मालिब्डेनाइट से एक नया तत्त्व प्राप्त हुआ तो उसने लेड से इसका यूनानी नाम छीन लिया।

अंत में हम यही कहेंगे कि बिल्ली को आखिरकार बिल्ली कहना ही पड़ा और लेड को लेड।

बीसवीं शताब्दी का इंधन

सातवें ग्रह के सम्मान में – प्राचीन रोमवासियों की पच्चीकारी – मेंडेलीफ ने अपने साथियों की परवाह नहीं की – प्रतिभाशाली भविष्यवाणी – बैकेरेल को धूप का इंतजार था – पुराने शेड में कई आविष्कार – विश्वकोश में गलती – सनसनीखेज खबरें – "लड़कों" के मन में एक विचार पैदा होता है – लैन्थेनम कहां से आया? – हज्जाम की दुकान में घटी घटना – न्यूट्रान कहां स लाये जायें? – लाभकारी "लालच" – "माचिस" मिल गयी है – मेट्रो के अंदर – सागर में एक बूंद की तरह – पुराने शिकागो में – चलिये, नाश्ता करते हैं – उत्तेजित ड्राइवर – फेर्मी को हंसी छिपानी पड़ती है – दिन जिसे काले अक्षरों से लिखा जाता है – पहला कदम – परमाणविक बर्फतोड़क जहाज आगे बढ़ रहा है – सूरज पर एक पार्सल भेजा जाता है – सुनहरा भविष्य

यह कहना मुश्किल है कि जर्मन वैज्ञानिक मार्टिन हेनरीख क्लाप्रोथ ने 1789 में आविष्कृत रसायनिक तत्त्व का नाम क्या रखा होता अगर इस खोज से कुछ साल पहले एक दूसरी घटना न घटी होती जिसने समाज के हर वर्ग को उत्तेजित कर दिया था। 1781 में जब अंग्रेज खगोलविद विलियम हेरशेल अपने हाथों से बनाये टेलीस्कोप से आकाशगंगा का अध्ययन कर रहे थे तो उन्हें एक चमकीला बादल दिखायी दिया। शुरू में वह उसे एक धूमकेतु समझते रहे परंतु बाद में वैज्ञानिक को पता चल गया कि यह धूमकेतु नहीं बल्कि सौर मंडल का सातवां ग्रह था जिसे पहले कभी नहीं देखा गया था। हेरशेल ने बादलों के देवता के सम्मान में इस ग्रह का नाम यूरेनस रख दिया। क्लाप्रोथ ने अपने नवजात तत्त्व को नेये ग्रह का नाम दे दिया।

इस घटना के लगभग 50 साल बाद सन् 1841 में पहली बार यूरेनियम धातु प्राप्त की गयी। इसका श्रेय फ्रेंच रसायनज्ञ एभेन मेलखीओर पेलीगो को मिला। परंतु औद्योगिक जगत इस भारी परंतु काफी नर्म धातु में कोई दिलचस्पी नहीं दिखा रहा था। इस धातु के यांत्रिक तथा रसायनिक गुण धातुकर्मियों और इंजीनियरों को किसी काम के नहीं लग रहे थे। केवल बहामा के कांचकारीगर तथा सैक्सोनी के पोर्सिलेन तथा मिट्टी के बर्तनों के निर्माता इस धातु के आक्साइड का बड़े शौक के साथ प्रयोग कर रहे थे जिसके बल पर वे चषकों को अतिसुंदर पीला-हरा तथा प्लेटों को मखमली काला रंग दे पा रहे थे।

प्राचीन रोमवासी भी यूरेनियम के यौगिकों के पच्चीकारी गुणों की जानकारी रखते थे। नेपुल्स के पास खुदाई के दौरान वैज्ञानिकों को कांच का एक अतिसुंदर भित्तिचित्र मिला। अचंभे की बात यह थी कि 2000 साल पुराना होने पर भी इसका कांच जरा सा भी धुंधला नहीं हुआ था। जब इस कांच का रसायनिक विश्लेषण किया गया तो पता चला कि इसमें यूरेनियम आक्साइड मिला हुआ था। इसी वजह से पच्चीकारी इतने दीर्घकाल तक सही सलामत रही। अगर उस जमाने में यूरेनियम के आक्साइड तथा लवण समाज का बहुत भला कर रहे थे तो शुद्ध यूरेनियम में कोई भी व्यक्ति दिलचस्पी नहीं दिखा रहा था।

उस वक्त वैज्ञानिकों को भी इस तत्त्व के बारे में कोई ज्यादा बातें पता नहीं थीं। उन्हें इस तत्त्व के गुणों की जो थोड़ी बहुत जानकारी थी वह भी गलत थी। उदाहरणतया, वैज्ञानिक यह समझते थे कि इस तत्त्व का परमाणु भार 120 के लगभग है। जब मेंडेलीफ ने अपनी आवर्त सारणी बनायी तो इस संख्या ने सारा काम चौपट कर दिया। अपने गुणों के अनुसार यूरेनियम सारणी के उस खाने में बिल्कुल फिट नहीं बैठ रहा था जो इस परमाणु भार वाले तत्त्व के लिये खाली रखा गया था। तब वैज्ञानिक ने अपने साथियों की परवाह न करते हुए यूरेनियम का परमाणु भार 240 माना तथा इसे सारणी के अंत में रख दिया। आगे चलकर महान वैज्ञानिक की बात सच सिद्ध हुई – यूरेनियम का परमाणु भार 238.03 निकला।

परंतु मेंडेलीफ की दूरदर्शिता यहीं खत्म नहीं हो गयी। 1872 में ही जब बहुत सारे वैज्ञानिक अन्य कीमती धातुओं के सामने यूरेनियम को केवल एक कंकड़ समझ रहे थे, मेंडेलीफ को इस धातु का भविष्य सुनहरा दि-

खायी दे रहा था: "सभी ज्ञात तत्त्वों में यूरेनियम अलग दिखायी देता है क्योंकि इसका परमाणु भार सबसे अधिक है! ... इस विशेषता के कारण यह धातु बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। ... मुझे विश्वास है कि इस तत्त्व का अध्ययन कई नयी खोजों को जन्म देगा। जो वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये नये विषय ढूंढ़ रहे हैं, मैं उनसे सिफारिश करूंगा कि वे यूरेनियम यौगिकों पर विशेष ध्यान दें..."।

महान वैज्ञानिक की भविष्यवाणी 25 साल से कुछ कम अर्से पहले सच सिद्ध हो गयी। 1869 में फ्रेंच भौतिकविद आन्तुआन हेनरी बैकेरेल ने यूरेनियम लवणों का अध्ययन करते समय एक खोज कर डाली, जिसकी गिनती मनुष्य की महानतम वैज्ञानिक खोजों में की जा सकती है। यह घटना इस प्रकार घटी: बैकेरेल काफी दिनों से स्फुरदीप्ति (कुछ पदार्थों का एक गुण) में दिलचस्पी ले रहे थे। एक बार वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों के लिये यूरेनियम का एक लवण चुना। उन्होंने धातु के बने एक चपटे पैटर्न पर इस लवण का लेप चढ़ाया और फिर उसे एक फोटोग्राफिक प्लेट पर रख कर एक काले कागज में लपेट दिया। इसके पश्चात वैज्ञानिक ने इस प्लेट को कड़कती धूप में रख दिया जिससे स्फुरदीप्ति तीव्रतम हो। 4 घंटे बाद जब वैज्ञानिक ने प्लेट डैवेल्प की तो उन्हें उस पर धात्विक पैटेर्न की तीक्ष्ण रूपरेखा दिखायी दी। बैकेरेल ने अपना प्रयोग कई बार दोहराया – हर बार परिणाम एक जैसे मिला। आखिर 24 फरवरी 1896 को फ्रेंच विज्ञान अकादमी की बैठक में वैज्ञानिक ने उपस्थित सदस्यों को यह बताया कि उनके द्वारा अनुसंधानित यूरेनियम का स्फुरदीप्त यौगिक अदृश्य किरणों को विकिरित करने की क्षमता रखता है। ये किरणें काले अपारदर्शी कागज को भेद कर फोटोग्राफिक प्लेट पर रजत के लवण स्थापित करती हैं।

इस घटना के दो दिन बाद वैज्ञानिक ने अपने प्रयोग जारी करने चाहे परंतु बदकिस्मती से आकाश में बादल छाये हुए थे। और बिना सूरज के स्फुरदीप्ति का सवाल ही नहीं उठता था। गुस्से में भरकर बैकेरेल ने स्लाइड तथा यूरेनियम लवण एक दराज में बंद करके रख दिये, जहां वे कई दिनों तक पड़े रहे। आखिर 1 मार्च की रात को आकाश साफ हो गया और सुबह सूरज निकल आया। बैकेरेल को इसी दिन का इंतजार था। वे भागकर अपनी प्रयोगशाला गये और दराज से स्लाइड निकाल लाये। परंतु एक विद्वान प्रयोगकर्ता होने के कारण अंतिम क्षण पर बैकेरेल ने स्लाइड डैवेल्प करने का फैसला किया हालांकि यह बात पूर्णतया तर्कसंगत लग रही थी कि स्लाइडों का कुछ नहीं बिगड़ा होगा क्योंकि वे अंधेरे दराज में बंद थे तथा प्रकाश के बिना कोई भी

पदार्थ स्फुरदीप्त हो ही नहीं सकता। उस वक्त वैज्ञानिक को यह पता नहीं था कि कुछ घंटों बाद ये साधारण स्लाइडें, जिनकी कीमत केवल कुछ फ्रेंक थी, अनमोल वैज्ञानिक खजाना बन जायेंगी तथा 1 मार्च 1896 का दिन विज्ञान के इतिहास में अमर हो जायेगा।

डैवेल्प करने के बाद स्लाइडों को देखकर बैकेरेल के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनकी प्रकाशसंवेदी सतह पर काले रंग की स्पष्ट तथा तीक्ष्ण रेखायें दिखायी दे रही थीं। स्पष्ट था कि स्फुरदीप्ति का इस बात के साथ कोई संबंध नहीं था। सवाल यह था कि यूरेनियम लवण कौनसी किरणें विकिरित कर रहा था? वैज्ञानिक ने इस प्रयोग को विभिन्न यूरेनियम लवणों के साथ दोहराया। उन्होंने वे यौगिक भी लिये जिनमें स्फुरदीप्ति का गुण बिल्कुल नहीं था या जो कई सालों तक अंधेरी जगह में पड़े रहे थे। हर बार स्लाइडों पर वैसी ही आकृति बनी।

बैकेरेल अभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पा रहे थे कि यूरेनियम ऐसी पहली धातु है जिसमें वही गुण हैं जो अदृश्य स्फुरदीप्ति में होते हैं।

उन्हीं दिनों फ्रेंच रसायनज्ञ हेनरी मुआसान को शुद्ध धात्विक यूरेनियम प्राप्त करने में सफलता मिल गयी। बैकेरेल ने हेनरी से थोड़ा सा यूरेनियम पाउडर लेकर उसका अध्ययन किया। उन्होंने यह देखा कि शुद्ध यूरेनियम का विकिरण उसके यौगिकों के विकिरण से कई गुना ज्यादा तीव्र है। विशेष बात यह थी कि परिस्थितियां बदलने पर भी यूरेनियम का यह गुण कायम था, उदाहरण के लिये, बहुत उच्च तापमान तक गर्म करने पर या अति निम्न तापमान तक प्रशीतित करने पर भी इस धातु की विकिरण क्षमता वैसी की वैसी ही रही।

बैकेरेल ने अपने नये प्रयोगों के परिणाम प्रकाशित करवाने में जल्दी नहीं दिखायी। वे मुआसान के रोचक प्रयोगों के परिणामों का इंतजार कर रहे थे क्योंकि विज्ञान में आचरण का ऐसा नियम है। 23 नवम्बर के दिन फ्रेंच विज्ञान अकादमी की बैठक में मुआसान ने एक लेख पढ़ा जिसमें उन्होंने शुद्ध यूरेनियम प्राप्त करने की अपनी विधि पर प्रकाश डाला। इसी बैठक में बैकेरेल ने इस तत्त्व में नया गुण होने की बात बतायी। उन्होंने यह कहा कि यूरेनियम के परमाणुओं का नैसर्गिक विखंडन होता है। धातु के इस गुण का नाम विघटनाभिकता रखी गयी।

बैकेरेल की इस खोज ने भौतिकी में एक नये युग को जन्म दिया – तत्वांतरण का युग। अब परमाणु को एकाकी तथा अभाज्य नहीं समझा जाता था। यूरेनियम ने विज्ञान के लिये परमाणु (वह ईंट, जिससे भौतिक जगत बना है) की दुनिया में घुसने का एक रास्ता खोल दिया।

स्वाभाविक था कि इस घटना के बाद वैज्ञानिक यूरेनियम में बहुत रुचि लेने लगे। परंतु इसके साथ-साथ भौतिकविद यह भी सोच रहे थे कि क्या यूरेनियम अकेला तत्त्व है जिसमें विघटनाभिकता का गुण विद्यमान है। क्या यह संभव नहीं है कि प्रकृति में कुछ और भी तत्त्व हों जिनमें यह गुण विद्यमान हो?

इस प्रश्न का उत्तर पति-पत्नी के एक जोड़े विख्यात भौतिकविदों पियेर क्यूरी तथा मेरी स्क्लादोव्स्काया क्यूरी ने दिया। पति द्वारा निर्मित एक उपकरण की सहायता

से मेरी क्यूरी ने बहुत सारी धातुओं, खनिजों तथा लवणों का अध्ययन किया। उन्हें अपना अनुसंधान कार्य बड़ी कठिन परिस्थितियों में करना पड़ रहा था। पति-पत्नी ने पेरिस की एक बिल्डिंग के यार्ड में एक पुराने शेड में प्रयोगशाला खोल रखी थी। मेरी क्यूरी ने अपनी डायरी में इस प्रयोगशाला के बारे में निम्न शब्द लिखे : "यह लकड़ी की बनी एक बैरक थी जिसका फर्श डामर का था तथा छत कांच की थी। बारिश के दिनों इसकी छत अक्सर चूती थी। बैरक में लकड़ी की कुछ मेजें पड़ी थीं, लोहे का एक स्टोव था जो कभी पर्याप्त आग नहीं देता था तथा एक श्यामपट्ट था जिसे पियेर बड़े शौक से प्रयोग करता था। विषाक्त गैसों से बचने की कोई व्यवस्था नहीं थी, अतः इस प्रकार के प्रयोगों को बाहर आंगन में करना पड़ता था। अगर मौसम खराब होता था तो खिड़कियां खोलकर ये प्रयोग बैरक के अंदर ही करने पड़ते थे"। डायरी में यह भी लिखा हुआ है कि कई बार काम करते समय अंदर का तापमान केवल +6°C होता था।

प्रयोगों के लिये आवश्यक सामग्री जुटाना भी एक बहुत बड़ी समस्या थी। यूरेनियम अयस्क बहुत महंगा था तथा छोटी सी तन्खवाह में क्यूरी दंपति इसकी पर्याप्त मात्रा नहीं खरीद सकते थे। उन्होने आस्ट्रिया की सरकार से सस्ते दामों पर यूरेनियम अयस्क का कूड़ा खरीदने की इच्छा जाहिर की। आस्ट्रिया में यूरेनियम लवणों से कांच तथा चीनी-मिट्टी के बर्तनों पर रंग चढ़ाया जाता था। वियेना की विज्ञान अकादमी ने क्यूरी परिवार की सिफारिश की जिसके परिणाम-स्वरूप इनकी पेरिस की प्रयोगशाला में कुछ टन यूरेनियम कूड़ा पहुंचा दिया गया।

मेरी क्यूरी ने बड़ी दृढ़ता के साथ काम शुरू कर दिया। विभिन्न पदार्थों के अध्ययन से बैकेरेल की बात सच लग रही थी। सैकड़ों प्रयोगों के परिणाम यही बता रहे थे कि शुद्ध यूरेनियम की विघटनाभिकता उसके यौगिकों की विघटनाभिकता से अधिक होती है। परंतु मेरी क्यूरी ने नये-नये पदार्थों का अध्ययन जारी रखा। और एक दिन अचानक एक नयी घटना घटी। दो यूरेनियम खनिजों चैलकोलाइट तथा बहामा के पिचब्लैन्ड के अध्ययन के दौरान उपकरण यह बता रहा था कि इनकी विघटनाभिकता यूरेनियम से काफी अधिक है। इसका मतलब यह था कि इन खनिजों में कोई अज्ञात तत्त्व उपस्थित है जिसकी विघटनाभिकता यूरेनियम से भी उच्च है। मेरी क्यूरी की मातृभूमि पोलेंड के सम्मान में इस नये तत्त्व का नाम पोलोनियम रखा गया।

इस सफलता के बावजूद भी मेरी क्यूरी ने अनुसंधान कार्य बंद नहीं किया। इस बार उनके प्रयोगों ने एक और खोज कर डाली। उन्होंने एक नया तत्त्व खोज डाला जिसकी विघटनाभिक क्षमता यूरेनियम से सौगुना अधिक थी। वैज्ञानिकों ने इस तत्त्व का नाम रेडियम रखा। लातीनी भाषा में इस शब्द का अर्थ "किरण" होता है।

रेडियम की खोज होते ही वैज्ञानिकों की यूरेनियम में उतनी दिलचस्पी नहीं रही। लगभग 40 साल तक वैज्ञानिकों ने यूरेनियम की कोई परवाह नहीं की और न ही इंजीनियरों ने इसके उपयोग की बात सोची। 1934 में प्रकाशित तकनीकी विश्व-

कोश के एक खंड में निम्न शब्द लिखे गये: "तत्त्व के रूप में यूरेनियम किसी भी काम का नहीं है"। उस वक्त के हिसाब से महत्त्वपूर्ण विश्वकोश की बात ठीक ही थी परंतु कुछ सालों बाद वैज्ञानिकों को अपनी धारणा बदलनी पड़ी।

1939 के आरंभ में दो महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक लेख प्रकाशित हुए। पहले के लेखक फ्रेडरिख जोलियट क्यूरी थे। फ्रेंच विज्ञान अकादमी द्वारा प्रकाशित उनके लेख का शीर्षक था – "न्यूट्रानों के प्रभावस्वरूप यूरेनियम तथा थोरियम के नाभिकों के विस्फोटक विखंडन के प्रायोगिक प्रमाण"। दूसरे लेख के लेखक जर्मन भौतिकविद ओटो फिश तथा लीजे मेइटनेर थे। यह ब्रिटिश पत्रिका "प्रकृति" में छपा तथा इसका शीर्षक था – "न्यूट्रानों के प्रभावस्वरूप यूरेनियम का विखंडन: परमाणविक अभिक्रिया का एक नया रूप"। दोनों लेखों में सबसे भारी तत्त्व – यूरेनियम की एक अज्ञात विशेषता की चर्चा की गयी थी।

इन लेखों से कुछ साल पहले कुछ "लड़कों" (युवा वैज्ञानिकों) ने भी यूरेनियम में काफी रुचि दिखायी थी। ये प्रतिभाशाली भौतिकविद एन्रीको फेर्मी के नेतृत्व में रोम विश्वविद्यालय में भौतिकी की एक बिल्कुल नयी तथा रहस्यमयी शाखा – न्यूट्रान भौतिकी का अध्ययन कर रहे थे।

युवा वैज्ञानिकों ने यह देखा कि न्यूट्रानों द्वारा किरणित करने पर नियमानुसार एक तत्त्व के नाभिक में परिवर्तित हो जाता है तथा आवर्त सारणी में अगली जगह ले लेता है। परंतु अगर अंतिम अर्थात् 92-वें तत्त्व को किरणित किया जाये, तब क्या होगा? नियमानुसार एक नया तत्त्व बनना चाहिये जो 93-वें खाने में जगह लेगा परंतु इस तत्त्व को पैदा करने में प्रकृति भी असमर्थ है।

'लड़कों' को यह विचार बहुत अच्छा लगा: एक कृत्रिम तत्त्व की जानकारी वास्तव में बड़ी मजेदार सिद्ध होगी: यह तत्त्व कैसा होगा, इसकी आकृति कैसी होगी तथा इसमें कौनसे गुण होंगे? परंतु जब इन लोगों

ने यूरेनियम को किरणित किया तो एक की जगह दर्जन से अधिक तत्त्व प्राप्त हुए। उन्हें यूरेनियम की इस विशेषता में कोई रहस्य छिपा दिखायी दे रहा था। एनरीको फेर्मी ने एक वैज्ञानिक जर्नल को 93-वें तत्त्व की उत्पत्ति की रिपोर्ट भेजी परंतु पक्का सबूत न होने के कारण उन्हें अपनी बात संदेहजनक लग रही थी। हालांकि इस बात का प्रमाण मिल गया था कि यूरेनियम में कई और तत्त्व उपस्थित हैं। परंतु वे तत्त्व हैं कौनसे?

मेरी क्यूरी की पुत्री इरेन जोलियोट क्यूरी ने इस पहली को हल करने की कोशिश की। उन्होंने फेर्मी के प्रयोग दोहराये तथा न्यूट्रानों द्वारा किरणित करने के बाद यूरेनियम की रसायनिक संरचना का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। परिणाम गजब का था: यूरेनियम में लैन्थेनम मिला, जिसका स्थान आवर्त सारणी के मध्य में है अर्थात् जो यूरेनियम से बहुत दूर है।

जब जर्मन भौतिकविदों ओटो हान तथा फ्रेडरिख स्ट्रासमैन ने यही प्रयोग दोहराये तो उन्हें यूरेनियम में लैन्थेनम के साथ-साथ बेरियम भी मिला। एक के पीछे दूसरा रहस्य! दोनों वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों की बात प्रसिद्ध भौतिकविद लीजे मेईटनेर को बतायी। इन दिनों कई विख्यात भौतिकविद यूरेनियम पर अनुसंधान कर रहे थे। कुछ समय बाद जोलियट क्यूरी तथा उनके पीछे लीजे मेईटनेर एक जैसे निष्कर्ष पर पहुंचे: जब एक न्यूट्रान यूरेनियम नाभिक के साथ मिलता है तब नाभिक दो भागों में विभाजित हो जाता है। लैन्थेनम तथा बेरियम के आकसमिक आगमन का यही कारण था। इन धातुओं का परमाणु भार युरेनियम के परमाणु भार का आधा था।

अमरीकी भौतिकविद लूईस अल्वारेस को, जो कुछ सालों बाद नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किये गये, यह खबर 1939 की जनवरी की एक सुबह को पता चली, जब वे नाई से बाल कटवा रहे थे। वे बड़ी शांति से अखबार देख रहे थे कि अचानक उनकी नजर एक साधारण खबर पर पड़ी: "यूरेनियम के परमाणु को दो भागों में

बांट दिया गया है"। कुछ क्षणों बाद नाई तथा अपनी बारी की इंतजार में बैठे अन्य गाहक यह देखकर आश्चर्य में भर गये कि एक सनकी गाहक पूरे बाल कटवाये बिना उठ बैठा और दूकान से बाहर भागा। उसकी गर्दन पर बंधा कपड़ा हवा में उड़ रहा था। परंतु उसे लोगों के आश्चर्य की परवाह न थी। वह अपने आफिस की ओर भाग रहा था, जहां वह अपने साथियों को यह सनसनीखेज खबर सुनाना चाहता था। कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी की प्रयोग-शाला में अल्वारेस के साथी उनको देखकर भौंचक्के रह गये परंतु खबर सुनते ही वे उनके अजीब केशविन्यास की बात भूल गये।

जी हां, इस खबर ने विज्ञान जगत में सनसनी मचा दी। परंतु जोलियट क्यूरी ने एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य स्थापित किया। उन्होंने यह बताया कि यूरेनियम के नाभिक के विखंडन के समय विस्फोट होता है जिसके दौरान किरचें बड़ी तेजी से चारों ओर उड़ती हैं। फिलहाल अलग-अलग नाभिकों के विखंडन में सफलता मिली थी अतः किरचों की ऊर्जा केवल यूरेनियम के टुकड़े को गर्म कर पाती थी। परंतु अगर विखंडन की संख्या बढ़ी दी जाये तो बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा मिलेगी।

परंतु समस्या यह थी कि यूरेनियम के बहुत सारे नाभिकों पर बमवारी के लिये बड़ी संख्या में न्यूट्रान कहां से लाये जायें? वैज्ञानिकों को न्यूट्रानों के जिन स्रोतों की जानकारी थी उनसे प्राप्त न्यूट्रानों की संख्या आवश्यक संख्या से कई लाख गुना कम होती थी। यहां प्रकृति ने इस काम में मनुष्य की सहायता की। जोलियट क्यूरी ने यह देखा कि यूरेनियम के नाभिक के विखंडन के दौरान नाभिक से कुछ न्यूट्रान निकलते हैं। अगर ये न्यूट्रान पड़ोसी परमाणुओं के नाभिकों में मिल जायें तो नया विखंडन होना चाहिये अर्थात् शृंखला-प्रतिक्रिया चा-हिये। चूंकि ये प्रक्रियाएं सेकंड के कई लाखवें हिस्से समय में घटती हैं, अतः निकलने वाली ऊर्जा की मात्रा अतिविशाल होनी चाहिये तथा विस्फोट जरूर होना चाहिये। लग रहा था कि हर बात स्पष्ट है। परंतु यूरेनियम के टुकड़ों को न्यूट्रानों द्वारा कई बार-किरणित करने पर भी विस्फोट नहीं हुआ अर्थात् शृंखला-प्रतिक्रिया नहीं घटी। इसका मतलब यह हुआ कि कुछ और बातें आवश्यक थीं। परंतु कौनसी? जोलियट क्यूरी इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूंढ़ सके।

उसी साल (1939 में) दो युवा सोवियत वैज्ञानिकों या० जेल्दोविच तथा यू० खारीतान ने इस समस्या का हल ढूंढ़ लिया। इन दोनों ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्थापित किया कि शृंखला-प्रतिक्रिया दो तरीकों से घट सकती थी। पहला तरीका यह हो सकता था कि यूरेनियम के टुकड़े का आकार बढ़ा दिया जाये क्योंकि छोटे टुकड़े के किरणित होने पर बहुत सारे नये न्यूट्रान नाभिक न मिलने के कारण बेकार जाते थे। यूरेनियम का द्रव्यमान बढ़ाने से न्यूट्रानों की नाभिकों से मुलाकात की संभावना बढ़ जाती थी।

दूसरा तरीका यह था कि यूरेनियम को समस्थानिक 235 से समृद्ध किया जाये। बात यह थी कि वैज्ञानिक जानते थे कि यूरेनियम के दो मुख्य समस्थानिक हैं जिनका परमाणु भार 238 तथा 235 है। इनमें से पहले समस्थानिक के नाभिक में 3 अतिरिक्त न्यूट्रान होते हैं। यूरेनियम 235 "भूखा" होने के कारण इन न्यूट्रानों को निगल जाता

है जिसके परिणामस्वरूप यह समस्थानिक अपने "अमीर" भाई 238 से ज्यादा शक्तिशाली बन जाता है। समस्थानिक 238 कुछ निश्चित परिस्थितियों में न्यूट्रान खा कर टुकड़ों में विभाजित न होकर एक दूसरे तत्त्व में परिवर्तित हो जाता है। आगे चलकर वैज्ञानिकों ने समस्थानिक के इस गुण के आधार पर कृत्रिम ट्रांसयूरेनियम तत्त्व प्राप्त किये। यूरेनियम 238 की न्यूट्रानों के प्रति उदासीनता श्रृंखला-प्रतिक्रिया के लिये बहुत विनाशकारी सिद्ध होती है: शक्ति प्राप्त करने से पहले ही प्रक्रिया अवमंदित हो जाती है। परंतु एक बात जरूर होती है कि यूरेनियम में समस्थानिक 235 के परमाणुओं की संख्या जितनी अधिक होती है प्रक्रिया की गति उतनी ही अधिक तीव्र ही होती है।

परंतु इस प्रक्रिया को चालू करने के लिये प्रथम न्यूट्रान भी तो चाहिये – अर्थात् माचिस की तीली चाहिये, जो परमाणविक आग जला सके। निस्संदेह इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आम न्यूट्रान स्रोतों से काम चलाया जा सकता था जिनका वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्यों में प्रयोग करते आ रहे थे परंतु ये स्रोत बहुत सुविधाजनक नहीं थे, हां, काम इससे जरूर चलाया जा सकता था। क्या इनसे बढ़िया माचिस नहीं थी?

ऐसी माचिस थी। इसे सोवियत वैज्ञानिकों क० पेत्रजाक तथा गे० फ्लेरोव ने ढूंढ़ा। 1939-1940 में लेनिनग्राद की प्रयोगशाला में अपने प्रयोगों के परिणामों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यूरेनियम के नाभिक खुदबखुद विखंडित हो जाते हैं।

परंतु यह भी तो संभव था कि यूरेनियम खुद नहीं बल्कि कास्मिक किरणों द्वारा विखंडित हुआ हो, क्योंकि हमारी पृथ्वी हर वक्त उनके आक्रमण का निशाना बनी रहती है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रयोग जमीन के अंदर काफी गहराई पर दोहराये जाये जहां कास्मिक किरणें नहीं पहुंच सकतीं। विख्यात सोवियत वैज्ञानिक – परमाणु विशेषज्ञ इ० कुर्चातोव की सलाह पर युवा वैज्ञानिकों ने मास्को के मेट्रो के किसी स्टेशन पर प्रयोग दोहराने का फैसला किया। यातायात मंत्रालय ने इस योजना में टांग नहीं अड़ायी और शीघ्र ही जमीन से 50 मीटर नीचे स्थित "डिनामो" मेट्रो स्टेशन के स्टेशन मास्टर के कमरे में एक उपकरण लगा दिया गया जिसका वजन 3 टन के लगभग था।

हमेशा की तरह स्टेशन मास्टर के कमरे के सामने से आसमानी रंग की गाड़ियां आती-जाती रहीं, हजारों यात्री बिजली की सीढ़ियों से ऊपर-नीचे आते-जाते रहे परंतु किसी को भी यह बात पता नहीं थी कि पास में ही ऐसे प्रयोग किये जा रहे थे जिनका महत्त्व आंकना मुश्किल था। इसी तरह के प्रयोग लेनिनग्राद में किये गये। इनके परिणामों से मास्को के वैज्ञानिकों को अपने कथन की सच्चाई में जरा भी शक नहीं रहा: यूरेनियम के नाभिक खुदबखुद विखंडित हो गये थे। इस गुण को देखने के लिये बहुत कुशलता की जरूरत थी। एक घंटे में यूरेनियम के 6000000000000 परमाणुओं में से केवल एक परमाणु विखंडित होता था। वास्तव में यह समुद्र में एक बूंद की तरह था।

क० पेत्रजाक तथा गे० फ्लेरोव ने अपने महत्त्वपूर्ण प्रयोगों से यूरेनियम के जीवन-इतिहास का अंतिम पृष्ठ पूरा किया। उनके

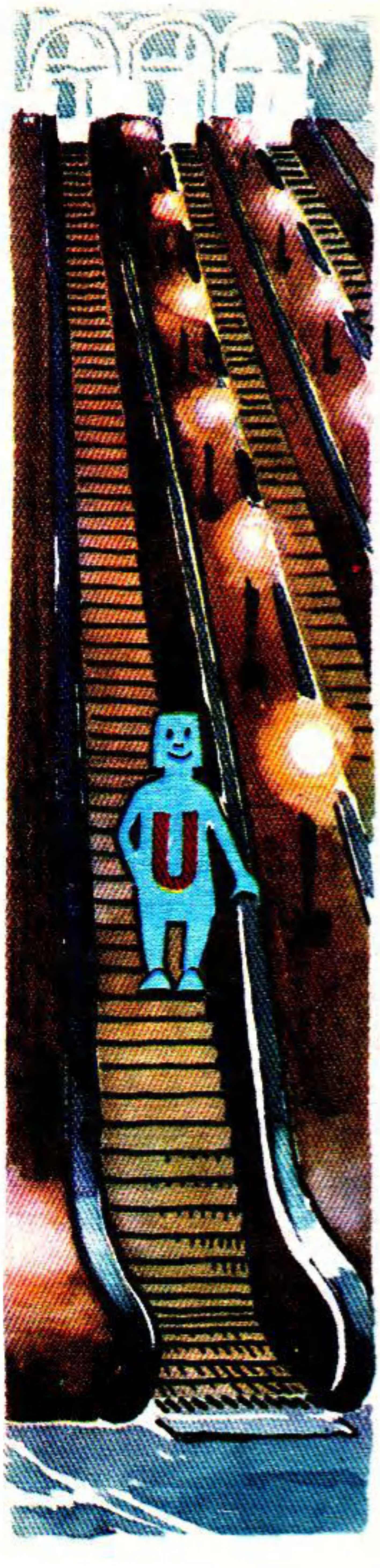

पीछे 2 दिसंबर 1942 के दिन एनरीको फेर्मी ने विश्व में पहली बार शृंखला-प्रतिक्रिया कार्यान्वित कर दिखायी।

इस शताब्दी के तीसरे दशक के अंत में कई विख्यात वैज्ञानिकों की तरह फेर्मी भी फासिस्टों के आतंक से बचने के लिये संयुक्त राज्य अमरीका भाग गये। वहां उन्होंने अपने प्रयोग जारी करने चाहे परंतु उनके पास पर्याप्त धन नहीं था। अमरीकी सरकार को यह विश्वास दिलाना था कि फेर्मी के प्रयोगों से एक शक्तिशाली परमाणु अस्त्र बनाया जा सकता है जिससे फासिस्टों का मुकाबला किया जा सकता है। विश्व के महान वैज्ञानिक एल्बर्ट आइंस्टाइन ने अमरीकी सरकार तक यह बात पहुंचाने का जिम्मा लिया। उन्होंने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा जिसकी शुरूआत निम्न शब्दों से की: "श्रीमान! फेर्मी तथा सिल्लार्ड के प्रयोगों के अध्ययन से मुझे यह आशा लग रही कि निकट भविष्य में यूरेनियम ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्रोत बन सकता है"। पत्र में आइंस्टाइन ने राष्ट्रपति से यूरेनियम पर अनुसंधान के लिये आर्थिक सहायता दिलवाने का अनुरोध किया। आइंस्टाइन की ख्याति तथा अंतर्राष्ट्रीय हालातों की नाजूकता का खयाल रखते हुए रूजवेल्ट ने अपनी सहमति दे दी।

1941 के अंतिम दिनों में शिकागो के निवासियों ने शहर के एक स्टेडियम में एक अजीब नजारा देखा जिसका खेलों के साथ कोई संबंध नहीं था। समय-समय पर स्टेडियम के गेट पर ट्रक रुक रहे थे जिनसे माल उतारा जा रहा था। सुरक्षा सैनिक लोगों को स्टेडियम के पास तक नहीं फटकने दे रहे थे। इस स्टेडियम के पश्चिमी

भाग में टेनिस के कोर्टों में फेर्मी अपने खतरनाक प्रयोग की तैयारियां कर रहे थे – वे यूरेनियम के नाभिकों का शृंखला-प्रतिक्रिया द्वारा विखंडन करना चाहते थे। विश्व के प्रथम परमाणु रिऐक्टर के निर्माण का काम एक साल तक दिन-रात चलता रहा।

2 दिसंबर 1942 की सुबह। सारी रात वैज्ञानिक जरा सी देर के लिये भी नहीं सोये, वे बार-बार हिसाब मिला रहे थे। यह कोई मजाक की बात नहीं थी। स्टेडियम शहर के केंद्र में स्थित था और शहर की आबादी कई लाख थी। हिसाब कह रहा था कि परमाणु भट्टी में प्रतिक्रिया की शक्ति काफी कम होनी चाहिये अर्थात् विस्फोट की संभावना नहीं थी परंतु लाखों लोगों का जीवन खतरे में नहीं डाला जा सकता था। सुबह हुए काफी वक्त बीत चुका था। नाश्ते का वक्त हो गया था परंतु किसी को भी भूख महसूस नहीं हो रही थी। हर किसी को बड़ी बेसब्री से परमाणु पर हमले का इंतजार था। परंतु फेर्मी जल्दी नहीं कर रहे थे, वे थके लोगों को आराम का वक्त देना चाहते थे जिससे बाद में ताजे दिमाग से एक बार फिर हिसाब मिला कर देखा जा सके। वे बहुत सावधानी बरत रहे थे। सबको उस क्षण का इंतजार था जब फेर्मी प्रयोग शुरू करने का आदेश देंगे। लगता था कि वह घड़ी आ गयी परंतु उस क्षण फेर्मी ने निम्न शब्द कहे जो परमाणु के इतिहास में हमेशा के लिये लिखे गये: "चलिये, नाश्ता करते हैं"।

नाश्ते के बाद सब लोग फिर से अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये – अब प्रयोग शुरू होने जा रहा था। वैज्ञानिकों की निगाहें उपकरणों पर टिकी थीं। इंतजार के मिनट बड़े भारी लग रहे थे। अचानक न्यूट्रानों के काउंटर गति में आ गये। शृंखला-प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। उस वक्त शिकागो में दोपहर के 3 बज कर 25 मिनट हुए थे। परमाणविक आग 28 मिनट तक जलने दी गयी तथा इसके बाद फेर्मी के आदेश पर बुझा दी गयी।

एक वैज्ञानिक ने टेलीफोन पर पहले से निश्चित गुप्त शब्दों में अधिकारियों से निम्न बात कही: "इटली का समुद्री यात्री नयी दुनिया पहुंच गया है"। इसका मतलब यह था कि इटली के मशहूर वैज्ञानिक एनरीको फेर्मी ने परमाणु के नाभिक से ऊर्जा प्राप्त कर ली है तथा यह दिखा दिया है कि मनुष्य इस ऊर्जा पर नियंत्रण रख सकता है और अपनी मर्जी से इसका प्रयोग कर सकता है।

परंतु एक आदमी की इच्छा दूसरे की इच्छा के विपरीत हो सकती है। जिन दिनों ये घटनाएं घट रही थीं, अमरीकी सरकार शृंखला प्रतिक्रिया को परमाणु बम के निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम समझ रही थी। अमरीकी परमाणु विशेषज्ञ इसी दिशा में अनुसंधान कार्य कर रहे थे। अनुसंधान कार्य बड़े तनावपूर्ण वातावरण में हो रहे थे परंतु फिर भी इस अर्से के दौरान कुछ मजेदार घटनाएं घटीं।

1943 की शरद में विख्यात भौतिकविद् नील्स बोहर को डेनमार्क से अमरीका लाने का फैसला किया गया जिससे उनकी प्रतिभा तथा ज्ञान का लाभ उठाया जा सके। उन दिनों डेनमार्क पर जर्मनी का कब्जा था। एक अंधेरी रात को मछुए के भेस में बोहर को एक नाव द्वारा स्वीडन लाया गया जहां से हवाई जहाज द्वारा उन्हें ब्रिटेन तथा वहां से संयुक्त राज्य अमरीका ले जाना था।

बोहर के पास समान के रूप में केवल एक बोतल थी जिसमें वैज्ञानिक ने भारी जल भर रखा था। बोहर ने जर्मन लोगों को इस अनमोल चीज की हवा तक नहीं लगने दी थी। उन दिनों बहुत सारे वैज्ञानिकों – परमाणु विशेषज्ञों का यह विचार था कि परमाणु प्रतिक्रिया में न्यूट्रानों को मंदित करने के लिये उपयुक्त चीज – भारी जल ही हो सकता है। बोहर इस लंबी यात्रा से बहुत थक गये थे। उन्हें अपना होश न था। अमरीका पहुंचते ही उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि अपने सामान, अर्थात् बोतल की जांच की। उन्हें यह देखकर बहुत निराशा हुई कि जल्दीपन तथा घबराहट में वे वास्तव में बियर की बोतल उठा लाये थे और भारी जल वाली बोतल डेनमार्क में अपने घर छोड़ आये थे।

टेनिसी राज्य में स्थित ओक-रिज के विशाल प्लांटों में परमाणु बम के निर्माण के लिये यूरेनियम-235 का पहला छोटा सा टुकड़ा प्राप्त होते ही उसे विशेष संदेशवाहक द्वारा न्यू-मैक्सिको की एक जगह लोस अलामोस भेज दिया गया। यह जगह सुनसान दर्रों के बीच थी तथा यहीं इस प्राणघातक हथियार की रचना की जा रही थी। संदेशवाहक को मोटर खुद चलानी थी। उसे यह नहीं बताया गया था कि मोटर पर लदे डिब्बे में क्या चीज रखी थी। परंतु उसने यह सुन रखा था कि ओक-रिज में "मौत की किरणें" बनायी जाती हैं। जैसे-जैसे मोटर आगे बढ़ रही थी उसकी घबराहट भी उतनी ही तेजी से बढ़ती जा रही थी। आखिर उसने यह फैसला कर लिया कि अगर जरा सा भी खतरा दिखाई देगा तो वह तुरंत मोटर छोड़ कर दूर भाग जायेगा। एक लंबे पुल को पार करते समय ड्राइवर को अचानक पीछे की ओर से गोली चलने की आवाज सुनाई दी। उसने तुरंत मोटर रोक दी और बाहर निकल कर बड़ी तेजी से दौड़ना शुरू कर दिया, जिंदगी में पहले कभी शायद ही वह इतनी तेजी से दौड़ा था। काफी दूर तक भागने के बाद वह सांस लेने के लिये रुक गया। अपने को सही-सलामत पाकर उसने पीछे मुड़कर देखा। इतनी देर में उसकी मोटर के पीछे दूसरी मोटरों की भीड़ लग गयी थी जिनके ड्राइवर बड़ी बेसब्री के साथ भोंपू बजा रहे थे। मजबूर होकर उसे वापस लौटना पड़ा। परंतु जैसे ही वह मोटर में बैठा उसे फिर गोली चलने की आवाज सुनाई दी। आत्मरक्षा की प्रवृति

ने उस बेचारे ड्राइवर को फिर मोटर से उतार दिया और दुष्ट डिब्बे से दूर भागने पर मजबूर कर दिया। यातायात पुलिस के सिपाही को उस ड्राइवर पर बहुत गुस्सा आया। उसने मोटरसाइकल पर बैठकर ड्राइवर का पीछा किया और रोककर उसके लायसेंस आदि की जाँच की। उस सिपाही ने भयभीत ड्राइवर को बताया कि गोलियों की आवाजें पास स्थित परीक्षण स्थल से आ रही थीं जहां उस वक्त नयी गोलियों का परीक्षण किया जा रहा था।

लोस अलामोस में हो रहा काम पूर्णतया गुप्त रखा गया था। यहां सारे विख्यात वैज्ञानिकों को नकली नाम दिये गये थे, उदाहरणतया, नील्स बोहर को लोग निकोल्स बेइकर के नाम से जानते थे, एनरीको फेर्मी को – हेनरी फेरमेर के नाम से तथा यूभीन विगनेर को यूभीन वागनेर के नाम से। एक बार फेर्मी तथा विगनेर जब एक गुप्त प्लांट से बाहर निकल रहे थे, संतरी ने उन्हें रोक दिया। फेर्मी ने उसे अपना पहचान-पत्र दिखाया जिस पर उनका नाम फेरमेर लिखा था। परंतु विगनेर अपना पहचानपत्र कहीं भूल आये थे। संतरी के पास प्लांट के अंदर जाने की आज्ञा रखने वाले लोगों की सूची थी। उसने विगनेर से पूछा: "आपका नाम क्या है?" घबराहट में प्रोफेसर के मुंह से अपना असली नाम निकल गया – 'विगनेर' परंतु उन्हें तुरंत अपनी गलती का एहसास हो गया और वे दोबारा बोले – 'वागनेर'। दो जवाबों से संतरी को उन पर शक हो गया। उसकी सूची में वागनेर था, विगनेर कहीं नहीं लिखा था। संतरी फेर्मी को पहचानता था। उसने उनसे पूछा: "क्या इस आदमी का नाम वागनेर है?" अपनी हंसी छिपाते हुए फेर्मी ने संतरी को विश्वास दिलाया: "हां, इसका नाम वागनेर है। यह बात उतनी ही सच है जितनी यह कि मेरा नाम फेरमेर है"। संतरी ने दोनों वैज्ञानिकों को बाहर निकलने दिया।

1945 के लगभग मध्य में अमरीका ने परमाणु बम तैयार कर लिया। इसके निर्माण में 2 बिलियन डालर लग गये। 6 अगस्त 1945 के दिन जापानी शहर हिरोशिमा के आसमान को एक को एक विशाल अग्नि "छत्रक" ने ढक दिया जिसने लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। सभ्यता के इतिहास में यह दिन काले अक्षरों से लिखा गया है। विज्ञान की महानतम उपलब्धि मानवजाति के लिये महाविपत्ति बन गयी।

वैज्ञानिकों के सामने, सारी दुनिया के सामने एक सवाल आ खड़ा हुआ: आगे क्या होगा? क्या परमाणु बम का विकास किया जाये, लोगों को नष्ट करने के लिये और अधिक प्राणघातक अस्त्र बनाया जाये?

नहीं। आज से परमाणुओं के नाभिकों में छिपी विशाल ऊर्जा का प्रयोग मानव-जाति के हित में किया जायेगा। अकादमीशियन इ० कुर्चातोव के नेतृत्व में सोवियत वैज्ञानिकों के एक दल ने इस दिशा में पहला कदम उठाया। 27 जून 1954 के दिन मास्को रेडियो ने एक अतिमहत्त्वपूर्ण सूचना प्रसारित की: "सोवियत वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों के परिश्रम से सोवियत संघ का प्रथम परमाणु बिजलीघर चालू हो गया है जिसकी क्षमता 500 किलोवाट है"। इतिहास में पहली बार यूरेनियम के परमाणुओं में उत्पन्न ऊर्जा विद्युत धारा के रूप में तारों में प्रवाहित हुई।

पांच साल और बीत गये। सोवियत संघ

में विश्व का पहला बर्फतोड़क जहाज 'लेनिन" जल में उतरा। इसके इंजनों को पूरी ताकत (44000 अश्वशक्ति) से चलाने के लिये केवल कुछ दर्जन ग्राम यूरेनियम काफी था। इस परमाणु इंधन की थोड़ी सी मात्रा के प्रयोग से हजारों टन तेल या कोयले की बचत की जा सकती थी। लंबी यात्रा पर निकले स्टीमरों के इतना ज्यादा इंधन लादना पड़ता था, जैसे, लंदन से न्यू-यार्क जा रहे स्टीमर को। कुछ किलोग्राम यूरेनियम इंधन से परमाणु बफतोड़क जहाज 3 साल तक लगातार आर्कटिक में बर्फ काट सकता है। उसे इंधन के लिये बंदरगाह लौटने की जरूरत नहीं है।

1974 में सोवियत संघ में एक और भी ज्यादा शक्तिशाली परमाणु बर्फतोड़क जहाज "आर्कटिका" का निर्माण पूरा हो गया। इसके इंजन 75000 अश्वशक्ति की हैं। 17 अगस्त 1977 के दिन आर्कटिक सागर की अगम्य बर्फ को काटता "आर्कटिका" उत्तरी ध्रुव पहुंच गया। नाविकों तथा ध्रुव अन्वेषकों का सदियों पुराना सपना पूरा हो गया। यूरेनियम ने इस कार्य में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कुछ सालों बाद सबसे शक्तिशाली परमाणु बर्फतोड़क जहाज को दो साथी और मिल गये: "साइबेरिया" और "रूस"।

विश्व के ऊर्जा स्रोतों में यूरेनियम का हिस्सा हर साल बढ़ता जा रहा है। कुछ साल पहले सोवियत संघ में प्रथम औद्योगिक परमाणु बिजलीघर चालू किया गया जिसमें तीव्र न्यूट्रानों वाला रिऐक्टर लगाया गया। इन रिऐक्टरों की खासियत यह होती है कि इनमें परमाणु इंधन के रूप में विरल इंधन – यूरेनियम-235 की जगह विस्तृत समस्थानिक यूरेनियम-238 इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा इन रिऐक्टरों से ऊर्जा की विशाल मात्रा के साथ-साथ एक कृत्रिम तत्त्व पोलोनियम-239 भी प्राप्त होता है जो खुद भी विखंडित होने की क्षमता रखता है अर्थात् यह तत्त्व भी परमाणु ऊर्जा का स्रोत बन सकता है।

परमाणु इंधन की श्रेष्ठता में कोई संदेह नहीं है। परंतु इसके प्रयोग में काफी कठिनाइयां सामने आती हैं। सबसे बड़ी परेशानी यह है कि विघटनाभिक अवशेषों को नष्ट कैसे किया जाये। क्या उन्हें विशेष बक्सों

में भरकर समुद्रों या महासागरों में फेंक दिया जाये? इस तरीके से समस्या शायद ही हल हो सकती है क्योंकि समुद्र के अंदर रहने का मतलब आखिर यही हुआ कि प्राणघाती पदार्थ अभी भी हमारे ग्रह पर ही रहेंगे। तब क्यों न इन्हें दूसरे आकाशीय पिंडों पर फेंक दिया जाये? एक अमरीकी वैज्ञानिक ने इसी तरह का एक प्रस्ताव रखा। उसने परमाणु बिजलीघरों के अवशेषों को सूरज की यात्रा पर जा रहे मालवाहक अंतरिक्ष यानों पर लादने की सलाह दी। जाहिर है कि फिलहाल ऐसे "पार्सल" भेजने वाले को बहुत महंगे पड़ेंगे परंतु कुछ आशावादी विशेषज्ञों को उम्मीद है कि कुछ दशकों बाद इस तरह के पार्सल भेजना युक्तिसंगत हो जायेगा।

इस बात में कोई शक नहीं कि यूरेनियम का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। यूरेनियम की ऊर्जा से कल के अंतरिक्ष राकेट चलेंगे, विशाल भूमिगत नगरों को सालों तक बिजली मिलती रहेगी, रेगिस्तानों में जल की कमी दूर हो जायेगी, पृथ्वी की आंतरिक सतह तक पहुंच कर हमारे ग्रह के मौसम बदल दिये जायेंगे।

यूरेनियम प्रकृति की एक अद्वितीय भेंट है जो मनुष्य के सामने समृद्धि के अनोखे रास्ते खोल रही है।

УДК 669. ⁄ (023) — 914.32

Научно-популярное издание

Сергей Иосифович Венецкий
РАССКАЗЫ О МЕТАЛЛАХ
Заведующий редакцией Г. П. Орлов
Контрольный редактор Н. Н. Богословская
Художник В. В. Ефимов
Художественный редактор В. А. Мирошник
Технический редактор И. М. Кренделева
Редактор Ю. О. Кондратьева

В $\frac{2601000000-221}{056(01)-88}$ 308—88 ч. 2

पुस्तक "कहानियां धातुओं की" मास्को पत्रकार संघ द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक घोषित की गयी है। सोवियत समाज "ज्नानिये" (ज्ञान) ने भी इसे ललित विज्ञान साहित्य की श्रेष्ठ पुस्तक माना है।

ISBN 5-03-000302-9